TIGHT BINDING BOOK

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182520

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83 R19K Accession No. 42489

Author रांगेय राघव

Title कब तक पुकारूँ 1957

This book should be returned on or before the date last marked below.

कब तक पुकारूँ

रांगेय राघव

राजपाल एण्ड सन्ज़
कश्मीरी गेट, दिल्ली-६

मूल्य : आठ रुपये (८०० नये पैसे)

प्रथम संस्करण फरवरी, १९५७
आवरण : नरेन्द्र श्रीवास्तव
प्रकाशक : राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली
मुद्रक : युगान्तर प्रेस, दिल्ली

भूमिका

नट कई तरह के होते हैं। इनमें करनट जरायम पेशा कहे जाते हैं। इनकी कोई नैतिकता नहीं होती। इनमें मर्द औरत को वेश्या बनाकर उसके द्वारा धन कमाते हैं। ज्यादातर यह लोग चोरी आदि करते हैं। और ढोल मँढना, हिरन की खाल बेचना इनका काम है। इनकी औरतें डोमनियों की तरह नाचती हैं। डोम जरायम पेशा नहीं हैं। पर उनको भंगी का-सा दर्जा दिया जाता है। ऊँची जातों के लोग अक्सर डोमनियों से नाजायज ताल्लुक रखते हैं, पर डोमनियां यह अपने पति को नहीं मालूम होने देतीं। करनटों में छूट है। वहाँ कोई बुराई 'सेक्स' के आधार पर नहीं मानी जाती। वह लोग हिन्दुओं के देवी-देवताओं को मानते हैं। साधारणतया नट मोर की ढलैया बनाते हैं, कस्तूरी, शहद, रोज के सींग, सांडा, और ऐसी दवादारू जो पौरुष को उत्तेजित कर सकें, बेचते हैं। नटों में छुआछूत चलती है, करनटों में नहीं। आपस में ही ब्याह-शादी कर लेते हैं। सँपेरों की तरह इनमें भी शादी में ब्राह्मण नहीं बुलाया जाता। पहले कुछ भी रहा हो, पर अब सब ब्राह्मणों की इज्जत करते हैं। उनको पूज्य मानते हैं। मुसीबत में उन्हें सीधा देते हैं, लेकिन वह सूखा माल होता है। अच्छे ब्राह्मण उनसे कुछ नहीं लेते। कुछ ब्राह्मण जो नीचे समझे जाते हैं, उनसे ले लेते हैं, खासकर जो कुम्हारों के पुरोहित होते हैं और देवी की पूजा करते हैं।

करनट खानाबदोश होते हैं। पर उनमें बाकी नटों के-से कला-कर-

में की औरतें घंघट भी खींचती हैं और मुँह खोल

पर चढ़कर तरह-तरह के खेल दिखाते हैं। करनटों में यह खेल नहीं चलते। करनट और बाकी नट भी डेरों में रहते हैं। पर इस गाँव में कुछ और बात है। यहाँ करनट भी खेल दिखाते हैं। किसी राजा के बारे में कहा जाता है, उसने पड़ोस के राज्य में चोरी कराते रहने को नटों को बस्ती बसा लेने का अधिकार दे दिया था, जो अभी तक है। अंगरेजी राज्य बनने पर राज्याश्रय हट जाने से यह नटों की बस्ती हल्की रहती है। करनट इधर-उधर कमाने चले जाते हैं।

इन कौमों का कोई एक क़ायदा नहीं है। हर जगह इनके पेशे, पोशाक और रहन-सहन में थोड़ा-बहुत भेद होता जाता है। इनकी शादियां भी दूर-दूर नहीं होतीं। धोबियों में क़ायदा चलता है कि अगर एक घर में पूरब की लड़की आ जायेगी तो वह अपनी लड़की पश्चिम में देगा, पूरब में नहीं। चमार नीम और पेड़ों से अपना गोत्र यानी जन्म बताते हैं। यह टॉटेम जातियां हैं जो आर्य्यों के आने से भी पुरानी हैं। चमारों और भंगियों में पितृसत्ताक समाज का बड़ा प्रभाव है। एक-एक भंगी के सात तक बीवियां होती हैं। वह बैठकर हुक्का पीता रहता है। वह औरतें मैला साफ़ करती हैं, बड़े घरों में मवेशियों के कण्डे थापती हैं और एक आदमी जब सात औरतों में होता है तो इधर-उधर ऊँची जात वालों से वह स्त्रियां नाजायज़ सम्बन्ध जोड़ती हैं। इन सबमें बड़े भाई की बहू छोटे भाई की बीवी बन जाती है। औरतों को विधवा नहीं रखा जाता। यह यहाँ की ऊँची मानी जाने वाली जातियों का क़ायदा है कि स्त्री को वैधव्य मिलता है।

नट हिंदू ही हैं। वे मुसलमानों के हाथ का नहीं खाते, पर करनटों में ऐसी कोई रुकावट नहीं है। वे गोश्त भी खाते हैं, शराब भी पीते हैं, खतरनाक भी होते हैं। बाकी नट करनटों को अपने से नीचा समझते हैं। करनट किसीके भी हाथ का खा-पी लेते हैं।

पुराने जमाने में यहाँ के करनटों की हर लड़की जब जवान होती थी तब पहले उसे ठाकुरों के पास रात बितानी पड़ती थी। फिर वह करनटों की हो जाती थी।

नटों के जिजमान होते हैं। कुछ के बामन, कुछ के ठाकुर, कुछ के बनिये। [illegible] करतब के नाच दिखाती हैं, तब वे सिर्फ़ अपने जिज-

रुपये भी, जो उनके लिये बहुत बड़ी चीज़ हैं, दे तो भी वे नहीं लेतीं। पर करनटों के जिजमान नहीं होते। पर इस गाँव के करनट नाचते हैं, खेल भी करते हैं, औरतें ज्यादातर नाचती हैं। कोई-कोई लड़की कला भी दिखाती है। पर खेल का रिवाज इनमें कम है। यह लोग सबसे भीख मांगते हैं।

करनटों और नटों में काम न करने पर यह लोग भीख मांगते हैं।

सुखराम करनट है।

ईसा के पहले जैसे यूनान में 'पेगन' जातियां थीं, जो असभ्य मानी जाती थीं, मुझे उन्हींकी याद आती है। इनकी औरतों में 'नैतिकता' नहीं होती। वे 'सेक्स' (यौन संबंध) में आज़ाद होती हैं। यह जातियां काफी पुरानी हैं। अभी सभ्यता से दूर हैं।

मैंने इनकी नैतिकता को समाज का आदर्श बनाकर प्रस्तुत नहीं किया है। बल्कि पाठकों को इसमें सेक्स को ऐसी जानकारी के रूप में हासिल करना चाहिये कि यह इनमें होता है। यह सारा खानाबदोश समाज घोर उत्पीड़ित है, शोषित है। न इनके यह सामाजिक नियम शाश्वत हैं। न हमारी नैतिकता के बंधन ही शाश्वत हैं। हममें बहुत-सी छिपी हुई बुराइयाँ हैं। हमारे गाँवों में रोज़ अब भी यह सब हो रहा है। अब जरायम पेशा कानून बन गया है। कोई भी जाति बेवजह गिरफ्तार नहीं की जा सकती, ऐसा कहा जाता है। चार वर्षों से मैं उन लोगों से दूर हूं। अतः कुछ कह नहीं सकता। मैंने जान-बूझकर स्थानों के नाम या तो दिये नहीं, या बदल दिये हैं। यह इसलिये कि कुछ व्यक्तियों के नाम भी फिर लिखना पड़ता, जो ठीक नहीं था।

प्रेमचन्द के समय में राष्ट्रीय आंदोलन विदेशी के विरुद्ध था, अतः उस समय राष्ट्रीयता का ही महत्त्व उनके उपन्यासों में मिलता है। प्रेमचंद आदर्शवादी भी थे। गाँव की बहुत-सी असलियत भी वे इसीसे स्पष्ट नहीं लिख सके थे क्योंकि उस समय उनकी समस्या राष्ट्रीय आंदोलन को बल देने की ही थी। किन्तु अब युग प्रेमचंद से आगे है और केवल शोषण का आर्थिक पहलू ही देखना काफ़ी नहीं है। शहरों में बैठने वाले आधुनिकता के नज़रिये से सब कुछ देख डालते हैं। पर असली भारत गाँव में है, जो अब भी मध्यकालीन विश्वासों से ग्रस्त है। वे विश्वास मध्यकालीन रूढ़ि उठाते।

मैंने [illegible] महतर नहीं

की पत्तल उठाते हैं, पर ठाकुर उसी बेड़नी के साथ एक प्याले में शराब पीता है। पूछने पर कहता है कि हम उनसे लीन हो जाते हैं, भला-बुरा काम करते हैं। सारी व्यवस्था अपने अंधविश्वासों पर जमी हुई है। बड़े परिवारों वाले भारतीय जीवन में कबीला जातियों की भांति संघभोज, संघनृत्य आदि नहीं हैं जो यूरोप में हैं। संस्कृति और साहित्य इन सबको लेकर चलते हैं।

प्रस्तुत उपन्यास का नाम मैंने पहले 'अधूरा किला' रखा था।

—रांगेय राघव

७

१९४९ ई० की बात है।

उन दिनों मैं गांव में रहता था। मैं अस्वस्थ रहा करता था। जिस स्थान र में रहता था, वहाँ एक नीरवता छाई रहती। और दिन में कभी-कभी गायें ौर भैंसें वहाँ पेड़ों की छाया में बैठकर जुगाली किया करतीं। सब अपने-पने धन्धों में लगे रहते। पेड़ों की छाया घनी-घनी-सी जब पूस की ठंडी हवाओं में कांपती तब धूप बहुत ही अच्छी लगती। मेरे पाँव का फोड़ा अब अच्छा होने लगा था। वह ऐसा भयानक था कि मैं शहर के लगभग सभी डाक्टरों को आज़मा चुका था। हकीम साहब के काढ़े, एलोपैथ की नुकीली सुइयाँ, होम्योपैथों के पानी के घोल जब उस पर व्यर्थ हो गये तो मुझे एक आदमी ने राय दी और मैं यहाँ चला आया। दूर तक यहाँ झील झाईं मारती, हवा के थपेड़ों में ऐसी लहर मारती कि जैसे कोई झीनी चादर सरकती चली जा रही हो और अब वह उठ जायेगी, उठ जायेगी, पर ऐसा नहीं होता। मैं देर तक उसे देखा करता।

मेरा इलाजी एक और भी आश्चर्यजनक व्यक्ति था। वह गले में मालाएं पहनता, सिर पर साफ़ा बाँधे रहता और हाथों में काँच के कड़े पहनता। वह इतने पुराने युग का था और मैं अपने को नितान्त आधुनिक समझता था। मैं कभी इन गँवार इलाजों में भरोसा नहीं करता, पर ज़रूरत ही कुछ ऐसी पड़ गई कि मुझे झुकना पड़ गया। वह जंगल से रूखड़ी तोड़कर लाता, किसी-को उसके बारे में नहीं बताता, पर मेरे सामने बैठकर जादू-सा करता। कभी उसमें फूंक मारता, कभी आँखें फाड़ [illegible] पान की [illegible]फ देखता और कभी झूमर-सी मारता हुआ [illegible] यों [illegible]

यह रूखड़ी खोलने की बात नहीं करता, पर क्योंकि मैं शहरी हूँ, इसलिये उसने इसमें कोई डर महसूस नहीं किया। उसने मुस्कराकर कहा : 'बाबू ! तुम बिलिया और बेंगन के पत्ते का फरक नहीं जानते, फिर तुम से क्या डर !'

उसके स्वर में वही व्यंग था जैसे हम शहरी लोगों में गांव वालों के प्रति होता है।

मैं मुस्कराया। तब उसने चिढ़कर कहा : 'बाबू भैया ! तुम तो फिर भी अपने हो, मेरी इस रूखड़ी पर जब मंतर डोला था तब साब अजंट थर गया था।'

अब मेरे कान ज़रा खड़े हुए।

'सो कैसे ?' मैंने पूछा। और आज पहली बार मैंने उसके मुख की ओर देखा। साफ़े, मूँछों और गांव की धूलि ने उसको ढँक लिया था। उसका रं ताँबे की तरह तपा हुआ था। आँखों में एक चमक थी। अब वह लगभ चालीस बरस का हो गया था। उसकी सीधी लम्बी नाक बड़ी सुन्दर थी। वह एक घुटने तक की धोती और कुछ लम्बा-सा खुले गले का कोट पहने था। और मैंने कल्पना की कि एक दिन यह सुखराम नट चौड़ी हड्डियों का गबरू जवान रहा होगा। उसकी आंखें बहुत सुन्दर रही होंगी, जिनके दोनों ओर अब गोल लकीरें खिंच गई थीं।

उस दिन वह चला गया।

सातवें दिन उसने पट्टी खोल दी और कहा : 'आज बाबू भैया मेरे संग घूमने चलो। तुम्हें अपनी दवाई का जादू दिखाऊँगा।' मैं हैरान हो गया। मैंने सोचा ज़रूर इन रूखड़ियों की वैज्ञानिक खोज होनी चाहिए। पर मुसीबत तो यह है कि यह लोग गुरु-परम्परा से पाई हुई इन चीज़ों की हवा तक नहीं देते। सदियों से जो काम हो चुका है, उसको यह लोग ईश्वरीय समझकर उसे सुलझाने के बजाय धार्मिक और दैवी बनाकर उलझाने में ही अपना गौरव समझते हैं।

आज हम लोग घूमने थोड़ी ही दूर गये। फुलवारी में बैठे रहे। उसके बीचोबीच एक सफ़ेद महल था। मैंने पूछा : 'यह कब का बना है ?'

[illegible] ने [illegible] : '[illegible] [illegible] गमलदारी शुरू हुई थी, तब पहले

धित जंगल पर पड़कर अमलतासों और सेमल के पेड़ों पर फिसल रही थीं। और फिर कच्चे दगरे की गाय-भैंसों के खुरों से उठी धूल पर आरपार हो जाने का प्रयत्न कर रही थीं। चारों ओर ठंडक थी। दूर एक पेड़ के नीचे हनुमान जी थे, लाल सिंदूर में लगे; और एक पहलवान नंगे बदन, अखाड़े की मिट्टी को मले हुए, दनादन, लंगोट बांधे बैठक लगा रहा था। एकमात्र कमरख के फलहीन पेड़ के सामने वह मुझे बड़ा अजीब-सा लग रहा था।

गाँव की शाम की गंदगी, परेशानी सब धीरे-धीरे उतरते अंधेरे में छिपती चली जा रही थी और चारों ओर लौटते पक्षियों का कलरव अंधेरे के पांवों के नीचे तिरता-तिरता दबा जा रहा था। मन्दिरों की झालरों और घंटों की आवाज़ अब ऐसे सुनाई देती थी जैसे किसीने तांता जोड़ दिया हो। और कहीं बजती बैलों की घंटियाँ और भी एक सूनापन भर-भर देती थीं।

सुखराम ने कहा : 'कल और आगे चलेंगे।'

मैंने कहा : 'वह क्या है ?'

सुखराम ने कहा : 'रोज़ तो देखते ही हो।'

मैंने कहा : 'किला है। किसने बनवाया था ?'

सुखराम ने उत्तर दिया : 'उसी राजा के बेटे ने।'

मैंने कहा : 'छोटा ही है।'

'रह गया है।'

मैंने पूछा : 'क्या मतलब ?'

'अधूरा किला है।'

'शायद राजा मर गया था ?'

'हाँ बाबू भैया। कहते हैं, राज्य के लिए उसकी भाभी ने उसे ज़हर दे दिया था। वह जानते हुए पी गया था।'

कहते हुए सुखराम की आँखों में पानी छलक आया। मैं समझा नहीं। मैंने कहा : 'ऐसा क्यों हुआ सुखराम ? और इसमें तुम्हें रोने की क्या ज़रूरत है ?'

वह आँसू पोंछकर मुस्कराया। उसने कहा : 'कुछ नहीं बाबू भैया ! अब [illegible] है। राजाओं के ही राज चले गये तो इन बातों से फायदा

न ? मैं तो परदेसी हूँ। उस दिन तुम साहब के थर्राने की बात कहते-कहते रुक गये थे, आज तुम इस बात को भी छिपा रहे हो ?'

परन्तु वह कुछ नहीं बोला। उसने बात बदलकर कहा : 'क्यों अब चल सकते हो न ?'

'क्यों नहीं। कल और भी चलेंगे।'

'हाँ, अब क्या डर है ?'

'सुखराम, वह क्या है ?' मैंने एक ओर हाथ उठाकर कहा।

वह एक नीला पहाड़ था। उस पर एक गहरा सन्नाटा था। लगता था आसमान से उतरता अंधेरा पहले वहाँ इकट्ठा हो गया है और अब हवा झोंके उसीसे उड़ा-उड़ाकर उसे इधर-उधर फैला रहे हैं। सुखराम ने कहा 'चलो बाबू भैया ! चलो।'

उसने जैसे मेरी बाँसुरी में से तरह-तरह के राग निकलते देखकर किस भी राग को पकड़ने की जगह बाँसुरी के रंध्र को ही उंगली से दबाकर बन्द कर दिया। मेरी सारी जिज्ञासा रुँधी हुई पड़ी रह गई।

तीसरे दिन जब हम लोग जंगल में पहुँचे तो सामने धूँआ उठता हुआ दिखाई दिया। मैंने कहा : 'यह क्या है ?'

'यह हमारी बस्ती है।' सुखराम ने कहा।

मैंने देखा, छोटे-छोटे घर थे। और अब साँझ उस जंगल से बस्ती को चारों ओर से घिराव डालकर दबाये ले रही थी। शायद ही दस घर हों। मैंने सोचा, यह संसार कितनी तरह का है ? कहीं बम्बई की भीड़ है, कहीं आदमी ऐसे भी सन्नाटे में रहकर उम्र गुज़ार देता है ? सामने एक बड़ा-सा कूँआ था। मैं उसकी ओर बढ़ा, पर वहाँ पहुँचकर ठिठक गया। एक बच्ची, लगभग १३ या १४ वर्ष की, वहाँ पानी खींच रही थी। वह ऊँचा घाघरा और फरिया पहने थी, फरिया इस वक्त उसके कंधों के नीचे पड़ी थी। उसकी ओर मैंने देखा तो मुझे कुछ आश्चर्य हुआ। उसके नेत्र नीले, बाल सुनहले और रंग भभूका सफ़ेद था। उसकी नाक कुछ आगे से उठी हुई थी और उसके गालों पर सुर्खी थी। वह मुस्कराई।

'कौन', सुखराम ने कहा : 'चंदा ! अभी घर नहीं गई ?'

'रोटी बनाकर धर आई हूँ दादा (पिता), पानी

मुझे अब [illegible] हुआ कि वह [illegible]

अजीब था। वह लड़की बिल्कुल अंगरेज़ मालूम देती थी। उसकी आवाज़ में कितना तीखा पतलापन था कि मेरा विश्वास विचलित हो उठा।

सुखराम ने बीड़ी सुलगा ली और फिर ध्यान में डूब गया। मैं सोच नहीं सका। सामने पहाड़ के पैरों पर चाँदी की बेड़ी-सी एक इमारत खड़ी थी। मैंने उसकी ओर इशारा करके पूछा : 'सुखराम, वह क्या है ?'

लड़की ने हँसकर कहा : 'डाक बँगला। पहले यहाँ सा'ब लोग आया करते थे। अब तो उनका राज ही चला गया।'

वह फिर हँसी और सुखराम की आँखों में एक छाया-सी डबडबा आई, कातर, परंतु अनिंद्य, सुखावह नहीं, अपने आपमें पूर्ण।

उस दिन और बात नहीं हुई। मैं घर आ गया। जिनके घर ठहरा था वे मित्र खाने के समय बताने में लगे रहे कि अब वे नयी ज़िंदगी शुरू करना चाहते थे। उनका दिल गाँव से ऊब गया था। बड़ी देर तक वे गाँव की निंदा करते रहे, परंतु उन्होंने सारांश यही निकाला कि गाँव हर हालत में शहर से अच्छा होता है, अतः वे यहीं रहेंगे। मेरे पाँव की बात चली। फिर सुखराम की बात आई। मैंने उसकी लड़की के बारे में भी जिक्र किया। मेरे दोस्त ने हुक्का पास सरकाया और खाने की थाली में हाथ धोकर उसे एक ओर सरका दिया, जिसे उनकी पत्नी यानी मेरी भाभी ले गई। दोस्त बड़े पशोपश में पड़े हुए नज़र आते थे। मैंने कहा : 'आखिर बात क्या है ? लगती है वह अंगरेज-सी, परेशान आप हैं !'

'मैं न होऊंगा तो होगा और कौन ?'

'क्यों ? आपका उससे सम्बंध ही क्या ?'

'बड़े कुवर को जाके ढूंढो इस वक्त।'

'आखिर मतलब क्या है आपका ?'

'बेटा किसी पेड़ के नीचे होगा और चंदा-चंदा कहकर आहें भर रहा होगा।'

मैं हँसा। बड़ा कुंवर पन्द्रह का, चंदा होगी तेरह या चौदह की। इनके प्रेम का इलाज मेरी राय में फकत दो-दो चाँटे थे।

मैंने कहा : 'आप भी·····?'

भाभी ने कहा : 'मगर उसने तो अभी खाना भी नहीं खाया है ? दस बज रहे हैं। पूस की ठंड है। मेरी तो दाँती बज रही है। जन्म लिया था सुअर

ने ठाकुर के घर, घूमा है तो नटनी के पीछे। मेरी तो उसने इज्जत बिगाड़ दी।'

मेरे दोस्त हठात् उठ खड़े हुए। मैं जानता था वे ठाकुर हैं जरूर पर सीधे-सादे आदमी हैं। वे दो बार कांग्रेस के अहिंसा-आंदोलनों में जेल भी हो आये थे। बोले : 'तो उसे ढूंढ़ ही लाऊँ।'

'कहाँ जायेंगे आप ?' मैंने कहा।

रात तब बाहर गरज रही थी। दूर कहीं बघरें की गुर्राहट सुनाई दे रही थी, और चारों ओर अंधकार था।

'मुझे लालटेन नहीं, मेरी टॉर्च दे दो।' उन्होंने कहा, और कानों पर गुलूबंद बांध लिया। मैं बड़े चक्कर में पड़ा। यह सब मेरे लिये ऐसा था जैसे किसी जासूसी उपन्यास का हिस्सा हो। मैं भी झट से तैयार हो गया।

जब भाई दरवाजे पर आये तो मैं वहां हाथ में डंडा लिये खड़ा था। भाभी की आँखें मुझे साथ जाते देखकर प्रसन्न दिखाई दीं। उनकी राय में चंदा व मार डालने में भी कोई हरज न था, क्योंकि वह उनके बेटे पर जादू कर रही थी, बड़े घर में आने के लिये। भाई साहब का मत और था। वे कहते थे कि साला आजकल की प्रेम की किताबें पढ़कर बावला हो गया है। नटनी से इश्क करके समझता है बड़ी तरक्की कर रहा है। बल्कि एक ग़रीब लड़की को फुसला रहा है। औरत में अक्ल होती ही कहाँ है ? और मैंने उनके तर्कों को सुना। मुझे मुस्कराहट भी आई। स्त्री अपने पुत्र को दोषहीन समझती है क्योंकि वह उसके छलछिद्रों को नहीं समझती, अपनी स्त्री-जाति के मायावी रूप को जानती है और पुरुष को मूर्ख मानती है। और पुरुष अपने छलावे को जानता है, स्त्री को बेवकूफ समझता है, अतः अपने ही पुत्र को दोषी मानता है।

बाहर हवा काटे खा रही थी। दोस्त ने टॉर्च जलाई। जब हम जंगल में पहुंचे तो पुकार सुनाई दी : 'चंदा ! ओ चंदा !'

फिर सब शांत हो गया। वहीं आगे बढ़ने पर बड़ा कुंवर नरेश लौटता दिखाई दिया। बाप और बेटे की कोई बातचीत नहीं हुई। मेरे कारण तनातनी भी नहीं हुई। घर आकर नरेश ने अनमने होकर रोटी खाई। बाजरे की घी चुपड़ी रोटी थी। मुझसे भाभी ने कहा था : 'स्वाद में ज्यादा न खा जाना, पेट में गचक जायेगी।' पर उससे कह रही थीं : 'क्यों रे ? खाता क्यों नहीं ? भूख नहीं है तुझे ?'

मैं बाहर आ गया और मैंने अपना सिगरेट का पाकेट निकालकर एक सिगरेट सुलगाई।

दूसरे दिन मैं सुबह ही उठा और आज भाई साहब के साथ खेत पर चला गया। उनके पास पचास बीघा खेत था, उसमें कूँए की सिंचाई थी और इस वक्त गेहूँ और जौ की फ़सलें झूमने के लिये तैयार हो गई थीं। पखेरू उड़ाने के लिये लड़के इधर-उधर पुकार रहे थे और पानी देने वाला जुआरा लेकर हारिया बरसात के ढांढौनों की सूखी पत्तियों के पास बैठा था। मैंने देखा नरेश चुपचाप बैठा कुछ सोच रहा था। मैंने मन ही मन निश्चित किया कि इससे बात करूँगा। लिहाज़ा जब मेरे दोस्त चले गये तो मैं नरेश के पास जा बैठा।

मैंने कहा : 'नरेश ! तू क्या सोचा करता है ?'

वह मेरी ओर देखने लगा। बोला कुछ नहीं।

मैंने ही कहा : 'तू जानता है कि दुनिया के लोगों की तरह मैं कठोर हृदय नहीं हूँ। तू मेरी रचनाएं पढ़ चुका है जिनमें मैंने जाति-पांति के बंधनों को तोड़ने की बातें लिखी हैं। मुझसे अपने दिल की बात कह दे।'

नरेश के कोमल मुख पर एक नया अवसाद घिर आया, जिसमें जीवन के नये विश्वासों का अम्बार लगा था, मानो वे जो फ़सलों में झूमती हुई हरी-हरी बालें थीं, कट-कटकर कनक बनकर ढेर-ढेर वसुंधरा पर मनुष्य के कल्याण-स्वप्न का प्रतीक बनकर सामने निखार लेकर उपस्थित हो गई थी। मेरी अंतरात्मा उस भीगे खेत-सी विभोर हो उठी। यह आयु कितनी मादक, कितनी वितृष्ण होती है, जब सारी दुनिया इसलिये फैली हुई पड़ी रहती है कि उस पर अपने ही चरणों के वैभव से चलना है। हिमगिरियों से भी ऊँचे अरमानों पर जब सूर्य अपनी देदीप्यमान किरणों को प्रतिध्वनित करता है तब मानो दिगंतों में नया आलोक विकीर्ण होकर अंधकार के-से भविष्य की मोटी-मोटी पर्त्तों को फाड़कर भीतर तक चेतना फैला जाता है। मैं जानता हूँ, इसी आयु पर पुरुष के भीतर पौरुष परिपक्व होता है और उधर चंदा की ही आयु पर बालिका स्त्री बनने लगती है। मानो तितली बनकर फूलों का मधु ले-लेकर उड़ जाने के पहले, यह किशोरावस्था वह अवस्था है, जिसमें वह कीट रेशम अपने उदार भीतर से बुनता है, और संसार के लिये उगलता है। यह वह आयु है जिसे मनुष्य की शाश्वत कोमलता, रंगीनी, और स्वप्निल झिलमिल ने आज तक, मनु से लेकर आज तक, अपने काव्य-भवन में प्रवेश करने के पहले, देहलीज़ बनाकर लगा

दिया है । सौंदर्य अपनी नयी अंगड़ाई लेकर मानो बचपन की नींद को छोड़ना चाहता है । वे अनजान मिठास भरे दिन जो बाल्यावस्था में होंठों पर पंखुड़ियों की भाँति फिसलते हैं, इस वय पर आकर मानो रसभरी फल की फाँकों-सी छाया-माया भरकर नया रूप धारण कर लेते हैं । और मैंने सोचा कि यह धरती ऐसे ही ऐसे कितने-कितने युग से मनुष्य की अमर चेतना का प्रवाह अपने भीतर, अपने कण-कण में धारण करती हुई, हर भोर की बेला में नये-नये कुड़कते कान्तारों में गुंजन भरी, डाली-डाली पर मधुर-मधुर फूल खिलाती है ।

मैंने स्नेह से नरेश की ओर देखा । किन्तु उसके कपोल आरक्त थे और वह धूप से पीले-पीले जगमगाते से अधूरे किले की ओर एकटक देख रहा था ।

मैंने फिर कुछ भी नहीं पूछा । आज मौन का प्रारम्भ कल अनवरत वाणी का स्रोत बन जायेगा, यही मैंने मन में सोच लिया ।

किन्तु सांझ की बेला जब फिर घर लौटती गायों के सींगों के बीच से निकलकर, दगरों पर लौटती हुई आ गई तब मैं और सुखराम धीरे-धीरे घूमते हुए जंगल की ओर चल पड़े । आज हम जिस ओर गये थे उधर झील लहरा रही थी । सांझ की पीली-पीली चादर ऐसे झील पर गिर गई थी, कि मुझे वह कोई भिक्षुणी-सी दिखाई दी । सुखराम आज पहले से अधिक चिन्तित था । आज हम दोनों एक स्थल पर जाकर बैठ गये । घनी झाड़ियों में हम घिरे हुए थे, वहां कुछ छोटे-छोटे देवालय थे । उनके पीछे कोई बाग था, जिसमें अब देखभाल नहीं होने के कारण बड़े-बड़े इमली के पेड़ थे जिन पर कौओं की काँव-काँव सुनाई दे रही थी ।

अचानक हमने सुना, झाड़ी के पीछे किसी ने कहा : 'चंदा ! तू सच कह, मेरी बात मानेगी ?'

मैंने स्वर से पहचान लिया कि वह नरेश का स्वर था ।

सुखराम गम्भीर था । उसमें मुझे एक भी विचलित भाव नहीं मिला ।

चंदा की आवाज़ आई : 'मैं सच कहती हूँ राजा ! मुझे लगता है कि मैं इस अधूरे किले की मालकिन हूं । पर न जाने क्यों यहाँ मैं इतनी दूर रहती हूँ ?'

इसे सुनकर सुखराम जैसे थर्रा उठा और उसने काँपकर मेरा हाथ पकड़ लिया ।

'मैं तुझे वहाँ ले जा सकता हूँ ।' नरेश का स्वर सुनाई दिया ।

'तुम्हें डर नहीं लगेगा ?'

'डरूँगा क्यों ? लोग यह भी तो कहते हैं कि यहां बघेर आता है और आज तक हम-तुम यहाँ आने से कभी नहीं डरे, तो अब ही क्या डरने की बात हो सकती है ?'

'तुम सचमुच बड़े बहादुर हो।'

'अच्छा यह तो बता, तुझे किसने बताया कि यह किला तेरा है ?'

चंदा हँसी। कहा : 'कल मैंने दादा के बक्स में एक तस्वीर पाई थी। वह बिल्कुल मुझ-सी थी। उसे देखकर मैं कुछ भी समझ नहीं पाई। वह औरत बिल्कुल मेम-सी लगती थी। और उसकी तस्वीर के पीछे एक और तस्वीर दबी छिपी थी। वह किसी पुरानी ठकुरानी की तस्वीर थी। न जाने क्यों मैंने जब से उसे देखा है, मेरे मन में चाह हो उठी है कि मैं भी वैसी ही बन जाऊँ।'

हठात् सुखराम का भर्राया स्वर उठा: 'चंदा ! चंदा हो !'

और फिर लगा झाड़ियों के पीछे कोई भागा। जब हम वहां पहुँचे, कोई नहीं था। सन्नाटा छाया हुआ था। सुखराम अत्यन्त विचलित था। मैं समझा नहीं कि आखिर बात क्या थी ? सुखराम अपने आप बुड़बुड़ाया, 'फिर आग लगेगी, फिर धूंआ उठेगा।' और वह भयानकता से अधूरे किले की ओर देखकर ठठाकर हँसा। मेरे रोंगटे खड़े हो गये। वह विकराल लग रहा था। उसने मानो अधूरे किले से कहा : 'तू गिरकर मिट्टी में मिल जा अभागे ! तूने इस धरती पर रहने वालों को कभी चैन से नहीं रहने दिया।'

मैंने पुकारा: 'सुखराम !'

'सच कहता हूँ !' सुखराम ने मेरे दोनों हाथ पकड़कर कहा: 'मैं सच कहता हूँ बाबू भैया ! जिस दिन इसकी नींव खुदी थी, उस दिन इसमें नर बलि दी गई थी। क्योंकि तब प्रेत को चौकीदार बना देने का कायदा था। जो जिंदे आदमी की हड्डियों पर खड़ा किला है, वह क्या कभी आदमी को चैन दे सकता है ? इस किले में भाई भाई का नहीं रहा। इसीके लिए भाभी ने देवर को जहर दिया। इसी किले में देवर के मरने पर देवर की गर्भवाली बहू रातोरात भागकर जंगल में छिपी और ठकुरानी को एक जोगी ने जंगल में जापा कराया। फिर उसे वह नटों में छोड़ गया, क्योंकि नटों में कोई जान का खतरा नहीं था। जब बच्चा दो बरस का हो गया तो वह ठकुरानी नाचने वाली बनकर बदला लेने आई और अभागिन कहाँ तो बदला लेने आई थी, कहाँ खुद शिकार हो गई।

जेठ नहीं जानता था, पर अपने भाई की बहू पर आशिक हो गया। ठकुरानी की चाह पूरी होने को थी, वह उसका खून कर देती, पर एक अफ़सोस रह गया कि वह एक दरबान की मुहब्बत में फँस गई। राजा को मालूम पड़ा तो उसने ठकुरानी को हीरों की, मोतियों की लड़ों की पोशाक भेजी। ठकुरानी ने उन्हें चक्की में धरकर, पीसकर चूरा करके राजा को भेज दिया और खुद दरबान के साथ भाग निकली, पर दरबान पकड़ा गया और ठकुरानी मार डाली गई। दरबान ने कैद से छूटकर बच्चे को पाला। वह बच्चा बड़ा हुआ तो नट बना।'

'फिर ?' मैंने कहा।

'फिर ?' सुखराम हिल उठा। उसकी आवाज़ कांप उठी। उसने कहा : 'मैं उसी खान्दान का आखिरी ठाकुर हूँ बाबू भैया। जब नटों के यहां रहकर ठकुरानी एक बार पड़ोस के ठाकुरों के यहाँ गई तो उन्होंने कहा—तूने नटों का छुआ हुआ खाया है, अब हम तुझे वापिस नहीं ले सकते। उस दिन उसने कहा था—तो किला मेरा है। इसे कैसे भी जीतना ही होगा। यही मेम ने कहा था, आज चंदा भी कह रही है !'

मैं आवेश में था। सुखराम की अन्तिम बात ने मुझे किसी अजीब कहानी की तरफ मोड़ दिया था। मैं अब उसे सुनना चाहता था। और सुखराम ने मुझे सुनाया। मैं सुनता रहा। सुनता रहा। उसे सुनकर मैंने सोचा, इसे मैं अवश्य लिखूंगा। यह मनुष्य की विवशता की कितनी ज्वलंत गाथा है और कितनी आश्चर्यजनक है !

'नहीं-नहीं बाबू भैया', सुखराम ने कहा : 'मैंने कभी किसी नट की बात को नहीं माना। मैं अब भी असली ठाकुर हूँ।'

'तुमने बुरा किया सुखराम', मैंने कहा : 'तुमने उनको अपना नहीं समझा, जिन्होंने तुम्हें आदमी बनकर ज़िंदा रहने का हक़ दिया। तुमने इंसान को इंसान से नफ़रत करने की बात को इतना बड़प्पन देकर अपने दिल के दूध को पिला-पिलाकर, इस जहरीले सांप को पाला है, जो भीतर ही भीतर तुम्हें डस रहा है और तुम्हें बेहोश किए दे रहा है।'

सुखराम कुछ नहीं बोल सका। उसने आंखें फाड़कर देखा, मानो जो मैं कह रहा हूँ वह उसने कभी नहीं सुना है।

मैंने कहा: 'जंगल की रूखड़ी की टोह लेने वाला नहीं जानता कि इन्सानियत

की रूखड़ी सबसे बड़ी है, सबसे ऊँची है।'

रात घिर आई थी। हम लौट आये। दूसरे ही दिन मैंने उसकी कहानी को लिखना प्रारम्भ कर दिया। यह सच है कि इस कथा की वर्णनात्मकता मेरी है, परन्तु तथ्य उसीके दिये हुए हैं। जब मैं लिखता तब मैं अक्सर सोचता कि मैं इस अजीब-सी कहानी को क्यों लिख रहा हूँ? तब मुझे महसूस हुआ कि रजवाड़ों की इस मध्यकालीन संस्कृति को अभी तक मशीन आकर बदल नहीं सकी है।

सुखराम रोज़ आता और हम घूमने जाते। धीरे-धीरे कहानी पूरी हो चली। मैंने उस चित्र को ज्यों का त्यों लिखा था। आज मेरे सामने चंदा की लाश पड़ी है और नरेश पागल-सा एक कोने में खड़ा हँस रहा है। पुलिस ने सुखराम के हाथों में हथकड़ी पहना दी है। चारों ओर सन्नाटा छा रहा है। मेरे दोस्त की आँखों में पानी है और उनकी पत्नी दोनों हाथों से सिर के बाल कभी-कभी नोंच लेती है, फिर अपने हाथों को उठाकर अपने सीने से मार लेती है।

तुम! तुम नये साहित्य को पढ़ते हो। लो इसे भी पढ़ो। जीवन उतना ही नहीं है जितना तुम समझते हो। रात भयानक आ गई है। आसमान में तूफान गरज रहा है। मैंने चंदा की लाश छू ली है। वह बच्ची कितनी खूबसूरत थी। और नरेश यों कहता है: 'काका! आज इसे सो जाने दो। कल यह अपने आप जाग उठेगी और तब यह मेरे पास आयेगी।'

भाभी कहती है: 'बेटा···'

उनका स्वर रुँध जाता है। अब वह रो रही हैं: 'अभागिन! तू औरत बनकर जन्मी ही क्यों? स्त्री होकर तू कभी मनचाहा पा सकती है? कभी नहीं। यह दुनिया बड़ी निर्दयी है।'

'सुखराम!' मैं कहता हूँ, 'तूने इसकी हत्या की है?'

'हाँ', वह कहता है, 'मैंने ठकुरानी का खून किया है, मैंने चंदा को नहीं मारा। वह मर कर भी मरी नहीं थी। उसकी आत्मा भटक रही थी। वह बार-बार आदमियों को भरम में डालती थी। मैंने उसे आज़ाद कर दिया है। एक दिन ठकुरानी ने चक्की में डालकर लाखों रुपयों के हीरे-जवाहिरात पीसकर जुलम के मुँह पर दे मारे थे। उसकी मुहब्बत का पागलपन उस पर सवार हो गया। वह मरकर भी ज़िंदा रहती थी। वह अधूरे किले को छोड़ नहीं पा रही

थी। चार पीढ़ी बीत गईं, पर उससे माया का जाल नहीं कटा। बाबू भइया, दौलत का जाल पिंजरा होता है। इसमें फँसकर आदमी तोते से भी गया-बीता हो जाता है कि द्वार खुल जाने पर भी उड़कर नहीं जाता।'

सुखराम को पुलिस ले गई है। आकाश में झम-झमकर बिजली नाच रही है। हठात् नरेश चमकती बिजली के उजाले में हाथ उठाकर अधूरे किले की ओर देखकर कह रहा है : 'चंदा ! वह रही चंदा ! वह हँस रही है। आज वह बहुत दिन बाद अधूरे किले की मालकिन हो गई।'

और वह हँस रहा है, हँस रहा है, बाहर मानो तूफान उसीकी हँसी बनाकर उमड़ रहा है। विक्षोभ आज आकाश से लेकर पृथ्वी तक थरथराकर लरजता हुआ डोल उठा है।

और मैं सुखराम की कहानी सोच रहा हूँ। मैं उसे निकाल रहा हूँ। नरेश पागल हो गया है, नहीं, यह मेरी कहानी अधूरी है। यह कहानी पीढ़ियों तक फैली हुई है, जिसमें सामंतीय व्यवस्था का भूत पुकार रहा है, लहू से इसकी नींवें रंगी हुई हैं। इसमें एक बहुत सुनहरा छलावा है, जो आज की विषमताओं को कभी-कभी छल में लगाता है, परन्तु यह स्वयं किसी नरेश की भूली हुई-सी बात है।

मैं इसे फिर लिखूंगा, जिसमें सब कहानी आ जाये।

मेरे दोस्त की आँखें अब बरस नहीं रही हैं। भाभी खामोश हैं। आस्मान चुप है, और नरेश नीरव है। बाहर वायु का संचारण शांत है। सघन वनों का हाहाकार निस्तब्ध हो गया है। अंधकार अपनी गतिहीन सत्ता में अवाक् हो गया-सा जहाँ का तहाँ जमकर बैठ गया है।

पर मैं जानता हूँ यह सब क्षणिक है। हवा फिर चिल्ला सकती है, आसमान फिर दहाड़ सकता है। सघन वन फिर पुकार सकता है, यही अंधकार अपने अंगों को झकझोरता हुआ फिर गर्जन कर सकता है, दोस्त की आँखें फिर बरस सकती हैं, भाभी फिर कराह सकती हैं, और नरेश फिर वही विकराल हँसी हँस सकता है। विकराल ! पन्द्रह बरस का लड़का और इस प्रकार उसकी चरमराती हुई कर्कश हँसी !

मैंने अपनी उमर गँवा दी है। मैंने कभी अपने लिये स्नेह नहीं माँगा, मैंने तुमसे कभी कुछ पाया नहीं, पर मेरे इस असम्बन्धित सम्बन्धी नरेश को तो देखो। कैसी फटी-फटी-सी आँखों से देख रहा है !

फिर अचानक आकाश जल उठा, उजाला हो गया, ऐसा कि बरसाती सर्दी का बहता पानी पत्तों के नीचे भागता हुआ दिखाई देने लगा। और नरेश ने द्वार पर खड़े होकर कहा : 'काका ! कोई नहीं समझ सकता, बस तुम समझ सकते हो। देखो ! वही है न चंदा ! आज कैसी ठकुरानी बनकर खड़ी ह। सोलह सिंगार किये ठीक वैसे ही जैसी वह तस्वीर थी। आज वह सचमुच अबूरे किले की मालकिन हो गई है'.....

२

जो तब सुखराम ने कहा था, वह लिखता हूँ। इसमें अनुभूतियों की गहराइयों के वर्णन स्पष्ट ही मेरे हैं, सुखराम के नहीं। उसने कहा था :

'मैं तब बारह बरस का हो गया था। अभी मेरा बोल लड़कियों का-सा था। मैं तो धीरे-धीरे जवानी की सड़क को देखने लगा था, क्योंकि बचपन की वह पगडंडी जाकर उसमें मिल जाती थी।

मेरा बाप अपने झोंपड़े में बैठा शराब पी रहा था। उसकी लम्बी मूंछें थीं, और गिद्ध की-सी आँखें थीं। वह इतना सख्त दिखाई देता था कि मेरी माँ के सिवाय सब उससे डरते थे। मां नटनी थी। अब वह लगभग पैंतीस वर्ष की थी।

मुझे वह सब बिल्कुल तो याद नहीं है, पर वह रात का वक्त था। चाँदनी पहाड़ के ढालों पर से फिसलती हुई आकर मैदान में फैल गई थी। कांस के चिलकते पके पीले सफेद-से भुरभुरे पेड़ों पर पड़कर वह कितनी बेहोश-सी दिखाई देती थी कि मुझे और कुछ नहीं भाता था। बाप की कुछ बीड़ियां चुराकर ले जाता था और किसी जगह सन्नाटे में बैठकर रात की नीली-पीली परछाइयों को मैं चुपचाप देखा करता। आज भी मैं ऐसे ही चला गया था। मैंने एक पेड़ की तिरछी होकर फैल गई जड़ पर सिर रख लिया था और पड़ा हुआ था। घरों के पास लड़कों और लड़कियों के स्वर गीत गाते हुए उठते और एक मँजी हुई स्वर-साधना-सी बार-बार झपकती, काँपती, फरफराती हुई मुझे विभोर किये दे रही थी।

पूरा चाँद निकला हुआ था। झील में उतर आया था बेईमान, चाँदी की नाव बनकर, जिस पर किरनों की लड़कियां बैठकर आई थीं। पानी की लहरों पर आकर जैसे नाव डूब गई थी और वे लड़कियां लहरों पर बहने लगी थीं।

रेंमझा के पेड़ों के पतले-पतले पत्तों के पीछे से जब मैं देखता तो दूर तक फैला हुआ जंगल बड़ा ही खूबसूरत दिखाई देता।

इतने में मेरे बाप की भर्राई हुई पर मोटी आवाज सुनाई दी : 'सुखराम ! हो ! सुखराम !'

मैं दौड़कर गया। दादा (बाप) ने आवाज़ दी थी। मेरे बाप ने कहा : 'सुखराम ! चल तुझे जंगल में चलकर रूखड़ियां दिखा दूँ। आज बहुत अच्छी पूरनमासी है, एक-एक चीज़ साफ़ दिखाई दे रही है। वह काम रात को चांदनी में ही हो सकता है।'

मैं समझ नहीं सका। पर मैंने कहा : 'चलो दादा चलें।'

मेरे अधेड़ उम्र के बाप ने मुझे सीने से लगा लिया और माथे को चूम लिया। उसके मुँह से शराब की बदबू आ रही थी। पर शराब वहाँ सब पीते थे। बचपन में मेरी माँ मुझे नशा कराके सुला देने को दो बूँद शराब पिला देती थी। मुझे शराब सूँघने की आदत थी। आज मैंने पिता में एक विह्वलता देखी थी, जैसे वह पुराना बरगद का पेड़ हिल उठा हो, जिसकी लटकती जटा फिर धरती में घुसकर एक नया बरगद बन गई हो। उस जटा के कंधे पर हाथ धरकर उसे सीने से लगाकर जैसे बरगद फिर असीम आकाश की ओर देखने लगता है, वैसे ही मेरे कंधों पर हाथ रखकर मुझे सीने से लगाये मेरा बाप आकाश की फैली हुई पीली और रुपहली विस्तृति को देखने में लगा हुआ था।

हम लोग झाड़ियों में से चल पड़े। अब गीत उठ रहा था :

'आज चाँदनी है। आज मैं तेरे पास सोऊँगी, मुझे चंदा से डर लगता है।'

'ओ चंदा की-सी कामिनी, तू जिसमें से जन्मी है, तुझे उसीसे डर क्यों लगता है बावरी !'

'ओ साजन, मुझे हँसुली बनवा दो, इस चंदा में इतना सोना-चाँदी है, इन्हें सुनार से जाकर कटवा दो न ? दरोगा क्या तुम्हें इसके गहने बनवाने पर भी पकड़ लेगा ?'

'प्यारी, वह बड़ा निरदयी होता है। वह मेरा दुश्मन नहीं है, वह चंदा का रखवाला भी नहीं है, असल में उसकी आँख तेरे जोबन पर लगी है।'

हम लोग धीरे-धीरे बढ़ रहे थे। मेरा बाप इस समय बड़ा गंभीर था। मैंने देखा वह इस समय बड़ा गंभीर दिखाई दे रहा था। उसके सिर पर साफ़ा बँधा हुआ था। मैंने उसे भिट दबाकर लोमड़ पकड़ते देखा था, वह भागते रोज को घेर लेता था, वह तीन हाथ में कांटे फेंकती सेही को मार देता था, और ज्ज जैसे सख़्त और ख़तरनाक जानवर को उसने सबके सामने अकेला मार ाला था। वह गांवों में घूमा करता। मेरी माँ से वह बहुत प्रेम करता था। कभी नहीं हाथ उठाकर बोलता था। जब वह शराब पीकर पराये मर्दों के साथ मस्त होकर बकती थी, तब वह उसे कंधों पर धरकर ले आता था। मैंने अकेले में उसे उसके साथ बड़े प्यार की बातें करते देखा था।

जब हम लोग देवी की मँड़ैया के पास पहुँचे, मैंने देखा कि एक चिराग जल रहा है, दो-तीन आदमी बैठे हैं और मेरी मां बैठी है। वे सब शराब पी रहे हैं।

मेरा बाप उसे लेने को बढ़ा पर हठात् रुक गया, क्योंकि मेरी मां के सामने बैठे हुए काले रंग के पुरुष इमीला ने कहा : 'ठाकुर ! तो वह तुझे भी ठकुरानी बना देना चाहता है ?'

'हाँ !' स्वर खींचकर माँ ने कहा, जैसे वह हँसना चाहती थी, और भीतर ही भीतर घुटी जा रही थी।

इसीला ने कहा : 'इसकी माँ नटनी थी। फिर ठाकुर क्या इसे अपने में मिला लेंगे जो यह ठाकुर बनना चाहता है ?'

वे सब हँसे और उस हास्य में एक विद्रूप था, व्यंग था। मनका ने कुल्हड़ों में शराब भरी और फिर वे नया दौर ख़तम करने में लग गये। अपने बाप को मैंने देखा। वह स्तब्ध खड़ा था, जैसे उसे काठ मार गया था। मैं उसको इस तरह गंभीर देखकर उस समय डर गया। वह बिल्कुल पत्थर हो गया था। कब तक ऐसे ही वह खड़ा रहेगा, मैं सोच नहीं सका। तब मैंने धीरे से कहा : 'दादा ! चाँद पहाड़ की सीध में आ गया है, चलो।'

वह चौंका, और हम लोग चल पड़े। जंगल भयावना था। दूर हमारी बस्ती में अब भी गीत उठ रहा था। और मुझे यहां ऐसा सुनाई देता जैसे वह कहीं दूर स्वप्न की-सी एक हल्की-सी लोरी थी, जो दूर, बहुत दूर गूंज रही थी। मेरे पिता ने मुझे जड़ियां, बूटियां खोज-खोजकर देनी शुरू कीं। वह मुझसे कहने लगा : 'सुखराम ! इन्हें पहचान लो। मैं सदा नहीं रहूँगा। यह विद्या मैंने नटों

से सीखी है और इनके ही यहां का क़ायदा है कि बाप से बेटे को यह विद्या मिला करती है।'

मेरा मन हिल गया। मैंने कहा : 'तो क्या हम इनमें से नहीं ? क्या हम नट नहीं हैं ?'

'नहीं, बेटा।' मेरे बाप ने आसमान की तरफ देखते हुए कहा : 'हम इनकी तरह जरायम पेशा नहीं हैं। इनको हमेशा से बेवजह गिरफ़्तार किया जाता है, पर हम वह नहीं हैं। तू और मैं ठाकुर हैं। ठाकुर !' उसका स्वर कठोर हो उठा। उसमें अथाह तृष्णा थी, कुचले हुए सांप की तरह का फन पटकता हुआ अहंकार था, 'हम ठाकुर हैं।' उसने हठात् हाथ उठाकर कहा : 'वह क्या है ?'

'अधूरा किला !' मैंने कहा।

'हम अधूरे किले के असली मालिक हैं। आज जो अंग्रेजों के गुलाम राजा वहां बैठे हुए रंडियों में अपनी जिंदगी गुजार रहे हैं, जो परजा के दुख-दरद नहीं देखते, वे बेईमानी से वहां आकर बैठे हुए हैं। हम इसके असली मालिक हैं।' और फिर जैसे उसका गला रुँध गया। वह कुछ कह नहीं सका। उसके सिर के काले बालों का आगे वाला गुच्छा जिसमें चाँदी के-से उलझाव आ गये थे, उसके तपे हुए रंग के माथे पर झूल आया, क्योंकि उसका साफ़ा ढीला होकर पीछे गिरकर कंधों पर सांप-सा गड़ेडी मारकर इकट्ठा हो गया था। उसकी घनी भौंहों के नीचे से उसकी अथाह आँखों को देखकर लगता था कि वे दो खाली दीपक हैं जिनमें अब किसी आग ने दो शिखाएँ जला दी थीं, जिनका धुँआ बाल बनकर ऊपर जम गया था। अलगाव की मजबूर ऊँचाई-सी वह नाक उसके रोम-रोम से अपना सम्मान मांग रही थी।

उस स्वर को सुनकर मुझे रोमांच हो आया। अधूरे किले के असली मालिक ! मेरे शरीर में एक हलचल-सी हो गई। मेरा खून मेरे सिर की तरफ दौड़ने लगा। मुझे लगा मेरी कनपटियां बहुत गर्म हो गई हैं। और मेरे सामने हकूमत का ख्वाब अब जीता-जागता खड़ा हो गया था, पत्थर की मोटी, ऊंची, मजबूत दीवारें धरती की धूल में से निकलकर बड़ी हो गई थीं, वैसी ही विशाल जैसे सामने अधूरा किला खड़ा हुआ था।

मैंने फुसफुसा कर कहा : 'दादा !'

'हां बेटा !' मेरे बाप ने फिर कहा : 'एक दिन हम ही इसके मालिक थे।'

तुमसे किसने कहा ?'

'तेरे बाबा ने ।'

'उनसे किसने कहा ?'

'तेरे परबाबा ने ।'

मैं खामोश होकर सोचने लगा । फिर कहा : 'मुझे सब कुछ बता दो ।'

मेरा बाप चुप रहा । कुछ सोचता रहा । फिर उसने कहा : 'तेरे परबाबा यानी मेरे बाबा इस किले के असली वारिस थे । पर हम ठाकुर हैं, हम नट नहीं हैं । समझा !'

मैंने कहा : 'समझ गया, लेकिन तुमने मुझे इतने दिन क्यों नहीं बताया ?'

मेरी आवाज अब तीखी हो गई थी । मेरे बाप ने ही कहा : 'अभी तक तू काठ का टुकड़ा था, अगर मैं तुझे सुलगा भी देता, तो थोड़े-से पानी से तू बुझ गया होता । पर अब तू जंगल हो गया है । अब जो मैंने तुझमें आग लगाई है वह नहीं बुझेगी । क्योंकि जितनी हवा चलेगी, उतनी ही आग फैलती जायेगी ।'

वह मुझे स्नेह से देखने लगा । मैं अपना सिर पकड़कर बैठ गया ।

पर उस वक्त हम लोगों का सपना टूट गया । मेरी माँ सामने खड़ी थी । उसके हाथ में कटार थी, जो चाँदनी में चमचमा रही थी । उसने मेरे पास आकर मुझे अपने सीने से लगा लिया और कहा : 'नहीं, तू मेरा बेटा है; तू मेरा, मेरा बेटा है । तू इसका बेटा नही है । तू ठाकुर नहीं है ।'

मेरा बाप आहत-सा पुकार उठा : 'बेला !'

'हाँ', शराब की गंध उड़ाती हुई मेरी माँ ने कहा : 'मेरे एक ही बेटा है, उसे मैं पागल नहीं बनने दूंगी । तुमने अपने आपको जैसे पागल बना लिया है, वैसे मैं इसको नहीं होने दूँगी ।'

'तब फिर तू मुझे छोड़ क्यों नहीं देती ?'

'लाज नहीं आती यह कहते हुए तुझे ?' माँ ने कहा : 'निरदयी ! तेरे लिये मैंने क्या नहीं किया'—माँ की आवाज में व्यंग था, प्रेम की ज्वाला थी, दाह की तृष्णा थी, उलाहने की ममता थी । उसने कहा : 'तू ठाकुर है । तू नटनी के पेट का जाया ! तू अपने को ठाकुर कहता है ! तूने झोंपड़े में रहकर महलों का सुपना देखा है। पर मेरा लाड़ला तेरा जैसा नहीं होगा ।'

'बेला !' मेरा बाप पुकार उठा ।

'मुझे डराता है ?' माँ ने कहा : 'ठाकुर !!'

मां ने दांत पीसे और आँखें निकालकर हाथ उठाकर कहा : 'तू जिस प
ता है, उसीमें सूराख़ करता है। तेरा बाप जब मरा था, तब तू छ
। मेरे बाप ने तुझे पाला था। कितने नट मुझे चाहते थे, पर
तेरा ही हाथ पकड़ा। क्या मैं जानती थी कि तू मुझे नफ़रत करता रहेग
तूने मुझे कभी प्यार नहीं किया जालिम! तूने मेरे पेट से एक ठाकुर लेने
लिये, अपना सुपना पूरा करने के लिये मुझसे प्यार का स्वाँग रचा था? तेरे
लिये मैंने अपने आपको मिटा दिया। दरोगा हरनाम मुझे अपनी रखैल बना-
कर सारे आराम देने को कहता था, पर तेरे लिये मैंने उसे ठुकरा दिया। जब
दरोगा करीमखां ने तुझे गिरफ़्तार कर लिया था, तब मैंने जोबन का सौदा
करके तुझे छुड़ाया था। जब अकाल पड़ा था, तब तेरे और तेरे बच्चे के लिये
गाँव में जाकर परायों के संग रातें काटकर कमाकर लाती थी, ताकि तुझे
बचा सकूं। और मेरे नटों ने मुझसे कभी घिन नहीं की, पर तू मुझसे मन ही
मन नफ़रत करता रहा।'

वह नशे में थी, अतः बकती जा रही थी। मेरे बाप ने दोनों हाथों से अपना
मुँह छिपा लिया था। मां की कटार चमक रही थी। उसने फिर कहा :
'नही सूखा! मेरे राजा! आज असली बात बताती हूँ। तू इसका बेटा नहीं
है, तू नट है, क्योंकि मैं बता नहीं सकती कि तू किसका बेटा है, जैसे कोई
नटनी नहीं बता सकती।'

'नहीं!' मैंने चिल्लाकर कहा : 'मैं इसीका बेटा हूँ। मैं ठाकुर हूँ। मैं
ठाकुर हूँ। क्यों दादा। मैं ठाकुर हूँ न?'

मेरे बाप ने पागल की तरह दोनों हाथों से अपने बाल नोंच लिये और
कांपते स्वर में कहा : 'तेरी मां सब ठीक कहती है बेटा, पर वह यह झूठ कहती
है कि तू मेरा बेटा नहीं है। तू मेरा बेटा है। तू ठाकुर का बेटा है। तू किले
का मालिक है.....'

और इससे पहले कि वह बात ख़तम करे मैंने मां की तरफ़ हाथ उठाकर
कहा : 'सुन! दादा क्या कह रहा है!'

'तू भी!' मां ने ऐसे आश्चर्य से कहा, जैसे वह विश्वास नहीं कर सकी।
उसने फिर कहा : 'सचमुच! मां की ममता भी तुझे नहीं। तू भी! सांप के
सांप।' और जैसे वह पागल हो गई थी, वह हँसी, और उसने दादा से कहा :
'तो ठाकुर! ले अपने नये ठाकुर को संभाल। मैं चली।'

वह छेंड की तरफ़ भागने लगी। छेंड में बघेर डोलते थे। उधर पुराने जमाने के कुछ कुण्ड बने थे, जिनमें पहाड़ों का पानी आता था। बघेर वहीं पानी पीने आया करते थे। वह नहीं रुकी। मैं अवाक् देखता रहा। मेरा बाप एकदम चौंक उठा। और उसके पीछे दौड़ा। वह चिल्ला रहा था : '...बेला... तुझे मेरी कसम ! तुझे मेरी कसम ! ठहर जा ! ठहर जा ! तुझे तेरे बेटे की कसम !'

पर नहीं, वह नहीं रुकी। वह छेंड में घुस गई। फिर एक भयानक दर्दनाक चीख सुनाई दी और मैंने अपने बाप को दो बघेरों से लड़ते देखा। मैं दूर था। चिल्लाने लगा। बस्ती से लोग मशालें जलाकर भागते हुए आये पर जब तक वे पहुँचे, मेरा बाप, मेरी माँ दोनों चले जा चुके थे, मैं अकेला रह गया था।

उस समय मैं रोने लगा था। मुझे मेरी माँ की सूरत याद आ रही थी। वह पति की उपेक्षा को प्रेम के सहारे से सहती जा रही थी, परन्तु बेटे की घृणा को नहीं सह सकी। उसका हृदय नहीं सह सका। वह मर गई थी। परन्तु मेरा हृदय रो रहा था। मैं अब अनाथ हो गया था।

इसीला और मनका ने पास आकर पूछा : 'क्या हुआ था ?'

मैं कुछ नहीं कह सका। रोता रहा।

इसीला ने कहा : 'लगता है बात खुल गई।'

मनका ने सिर हिलाया। पूछा : 'क्यों रे, तू कौन है ?'

मैंने उत्तर नहीं दिया।

वे लोग चले गये। मैं वहीं बैठा रोता रहा। आज मेरे भीतर अनेक विचार काँप रहे थे। मैं ठाकुर था, मैं अधूरे किले का मालिक था, मैं अपने माँ-बाप का हत्यारा था। मेरी समझ में नहीं आ रहा था कि मैं क्या करूँ ?

चाँद डूब गया था। मैं अंधेरे की भीगती हुई उदासी में चुपचाप बैठा था। सहसा मेरे सिर पर किसीने प्यार से हाथ फेरा। वह इसीला की बेटी प्यारी थी। नौ साल की। गोरी, बड़ी-बड़ी आँखों वाली। उसने कंजरियों की तरह सिर पर रूमाल बाँध रखा था। वह नटों से अधिक कंजर बच्चों में खेलती और उसकी हर आदत भी कंजरों की-सी थी। पर वह अभी से करतब दिखा लेती थी। वह अपने को लड़के से कम नहीं समझती थी।

उसने कहा : 'सुखराम !'

मैंने आँखें उठाकर देखा।

उसने फिर कहा : 'रोता क्यों है ?'

मैं उसके कंधे पर सिर धर कर सिसकने लगा। उसने फिर मेरे सिर पर हाथ फिराया।

इसीला ने पुकारा : 'प्यारी !'

'नहीं आऊँगी।' उसने कहा।

इसीला समझा नहीं। वह निकट आ गया ! उसने उसका हाथ पकड़ कर खींचा। प्यारी रोने लगी।

'नहीं जाऊंगी।'

'तो क्या करेगी आखिर।'

'मैं सुखराम के पास रहूँगी।'

बस्ती के लोगों में से कुछ ने सुना। वे हँस दिये। कहा : 'बुला ले इसीला। सुखराम भी तो अपना ही है।'

इसीला ने मुझसे कहा : 'सुन ले सुखराम ! आज ही तय करता हूँ। मेरी प्यारी तेरी है, पर अगर तूने उसे दुख दिया, या तूने अपने घमण्ड में उससे घिन की तो जब तक मैं जीता रहूँगा, तब तक मेरी कटार तेरे लहू की प्यासी रहेगी, और जब मैं मर जाऊंगा, तो इसीला नट का भूत तुझसे बदला लेगा।'

हम लोग लौट आये। मेरे झोंपड़े का सामान इसीला के झोंपड़े में आ गया। इसीला की प्यारी, अकेली बेटी थी और घर में थी प्यारी की माँ सौनो। और कोई नहीं। इसीला काला था, उसकी बेटी गोरी थी।

जब दादा का बक्स खुला तो उसमें एक तस्वीर निकली। मैंने देखा, वह कोई पुरानी ठकुरानी थी।

प्यारी ने आश्चर्य से पूछा : 'दादा ये कौन है ?'

'कोई नहीं, रख दे उसे', इसीला ने डाँटा, पर वह ज़िद्दी लड़की थी। मानी नहीं। अड़ गई। कहा : 'बता दे दादा। कौन है ? बता दे दादा !'

उसकी माँ सौनो चरखा चला रही थी। इसीला ने लड़की को ज़िद करते देख चाँटा जड़ दिया। प्यारी रोकर माँ से लिपट गई। इसीला हुक्का गुड़गुड़ाने लगा।

'क्या देखता है ?' इसीला ने मुझसे कहा : 'जा बाहर खेल।'

पर मैं नहीं हटा।

सौनो ने मुझे गोद में खींचकर कहा : 'क्या बकता है तू ?'

इसीला मुँह फेरकर बैठ गया : 'बिगाड़ दे, सबको बिगाड़ दे।'

'बतादे न ?' सौनो ने कहा : 'एक ही बेटी है, उसका भी सुख तुझसे देखा नहीं जाता ?'

इसीला नरम पड़ा। और उसने बताया :

'यह तस्वीर हां तो झगड़े की जड़ है सौनो। यह ठकुरानी है। तीन पीढ़ी पहले यह हुई थी। छिनाल थी, छिनाल ! दरबान से फँस गई। यह अभागा उसी के बेटे के बंस में जन्मा है।' उसने मेरी तरफ हाथ उठाकर कहा।

'तो सचमुच यह अधूरे किले की मालकिन थी ?' सौनो ने पूछा।

'हां !' इसीला ने कहा।

सौनो ने अपनी बेटी का और फिर मेरा गाल प्यार से चूम लिया और कहा : 'इसीला ! आज मेरी बेटी का ब्याह तूने उससे पक्का किया है जो अधूरे किले के असली मालिकों के खान्दान में से है !'

उसके नेत्र आनन्द से फट गये थे। उसने अपनी बेटी से कहा : 'समझी प्यारी ! तू अब नटनी नहीं है। ठाकुर की बहू है। तुझे ठकुरानी बनना पड़ेगा। वही इज्जत, वही परदा, वही ठाठ रख सकेगी ? या तू भी नटनियों की तरह सिलिया बीनती फिरेगी ?'

इसीला के नेत्रों में भयाक्रांत छाया थी। वह ऐसा लग रहा था, जैसे चौंक उठा हो। उसने कहा : 'सौनो क्या बकती हो ?'

'क्यों ?' सौनो ने कहा : 'तुम नहीं चाहते तुम्हारी बेटी इज्जत से रहे ? हम नट हैं। दुनिया में हमारी कोई इज्जत नहीं। हमें जब चाहें पुलिस वाले पकड़ लेते हैं। राजा के अहलकार हमारी औरतों को ले जाते हैं। हम चोर समझे जाते हैं।'

इसीला ने चिलम औंधा दी। वह कुछ नहीं कह सका। केवल मेरी ओर देखा। मैं सिर झुकाये बैठा था। सौनो मेरे सिर पर प्यार से हाथ फेर रही थी। प्यारी उसकी गोद में सिर रखे लेटी थी। इसीला उठा। उसने प्यारी को अपनी तरफ खींच लिया और कहा : 'नहीं सौनो ! प्यारी मेरी बेटी है। जैसी तू नटनी है, ऐसी ही तेरी बेटी भी बने, यही मेरी इच्छा है। और कुछ नहीं।

जो धरती पर खड़े नहीं होते और आस्मान को छूने की कोसिस करते हैं, वे मुँह के बल गिर पड़ते हैं।'

पर मैं खड़ा हो गया था। मैंने प्यारी का हाथ पकड़कर अपनी तरफ खींच लिया और कहा : 'प्यारी मेरी है। मैं ठाकुर हूँ, वह मेरी ठकुरानी है।'

सौनो ठहाका लगाकर हँसी और उसने उठकर इसीला के हाथ पकड़कर कहा : 'सुन ले इसीला ! एक दिन तूने भी मेरे हाथ पकड़कर ऐसे ही कहा था।'

इसीला की आँखों में प्यार झाँक रहा था। उसने आँखें तरेर कर कहा : 'है तो तू ठाकुर ही।'

उसके स्वर में व्यंग भी था, आश्चर्य भी, स्नेह भी और एक अपरिचित उल्लास भी।

'जुहार ठाकुर जू !' सौनो ने झुककर सलाम किया।

'पर याद रख अभागे !' इसीला ने कहा : 'तू नट है। तू बिरादरी में जायेगा, तो ठाकुर का कुत्ता भी तेरा मुँह नहीं चाटेगा। समझा !'

मुझे रुलाई आ गई। मेरी आँखों में आँसू छलक आये।

इसीला ने कहा : 'कायर ! रोता है ! किसके माँ-बाप नहीं मरते। अबे मस्ती कर। चल मेरे साथ। तुझे जंगल की जड़ी-बूटियों की पहचान करा दूँ। इस बस्ती में दो ही जानकार थे, तेरा बाप और मैं। वह नहीं रहा तो चल मैं तुझे सिखाऊँगा। यह ही एक ऐसी जानकारी है कि पुलिस वाले भी काम पड़ते रहने से जुल्म नहीं कर पाते।'

मैंने आँखें पोंछ लीं। सौनो हँस दी और उसने प्यार से मेरा माथा चूम लिया। उसकी देखा-देखी प्यारी ने मेरा हाथ पकड़ लिया। मैं तीनों से घिरा तो हँसी मेरे होंठों पर फूट पड़ी।

३

सुखराम ने कहा था :

'इसीला मेरी चतुराई पर प्रसन्न था। मैंने जल्दी ही जड़ी-बूटियों की पहचान कर ली।

उस वक्त मैं सोलह साल का था। प्यारी तेरह की थी। इन तीन वर्षों में वह लगातार कंजरों से मिलती-जुलती थी। मैं इधर सब काम सीख गया था। मैं बाँस पर चढ़ जाता था, रस्सी पर चल लेता था, पतला-दुबला था। ठाकुर, बामनों में मेरी कला का नाम फैल गया था। इसीला को मुझ पर नाज़ था। मैं पक्का नट हो गया था। परन्तु प्यारी का रंग दूसरा था। वह मुझे बहुत चाहती थी, पर वह कंजरों के डेरों में बराबर आती-जाती रहती थी।

रात हो गई थी। मैं जिस वक्त घर में घुसा, भीतर इसीला और सौनो में बातचीत हो रही थी।

सौनो कह रही थी : 'क्ये' तेरह की हो गई है। तेरह की मैं जवान थी। जब मैं तेरह की थी तब बताओ पूरी औरत नहीं थी ? मैं उठान थी, प्यारी कम उठान है ?'

इसीला ने कहा : 'तो क्या है ! सुखराम भी तो जवान हो गया है।'

'पर मुझे उसमें जवानी का हड़कम्प ही नहीं दिखाई देता। वह शराब पीता है तो पीते में हिचक जाता है। किसीकी लड़की के साथ एक दिन नहीं पाया गया। कौन-सा जवान है जो यह नहीं करता। वह गाली भी नहीं देता, जो मर्दानगी की निशानी है, चोरी वह नहीं जानता, जूआ वह नहीं खेलता।'

इसीला के नेत्र वक्र हो गये। उसने कहा : 'जानती है वह मुझसे डरता है। वर्ना क्या नहीं कर सकता। वह समझता है मैं उसे मार डालूंगा।'

'क्यों ?'

'मैंने उससे शुरू में ही कह जो दिया था।'

'पर तुमने यह भी कह दिया था कि प्यारी को हाथ नहीं लगाना ? अरे वह आप ही मरद न बनेगा तो प्यारी का दिल उससे बँधेगा कैसे ?'

'तू गन्दी बात करती है सौनो', इसीला ने कहा।

'आहा ! जैसे तुम जानते ही नहीं। मेरी बेटी है तो क्या ? औरत तो उसीकी होकर रहेगी, जो मरद होगा। तुम्हारा सुखराम अगर कुछ नहीं कर सकता तो मेरी बेटी किसी और को कर ही लेगी।'

'चुप रह सौनो।' इसीला ने कहा : 'सरम कर। अभी वे बच्चे हैं !'

'बच्चे हैं।' व्यंग से सौनो ने कहा : 'बच्चे हैं !'

मैंने देखा अन्धकार में मेरी बगल में इस समय कोई आ खड़ा हुआ था वह प्यारी थी। उसने मुझे देखा और मेरे हाथ को पकड़कर दबा दिया।

मैंने अनुभव किया। मैं मरद था। और प्यारी मेरी औरत थी।

'तुझसे कहना बेकार है', सौनो ने कहा : 'तू बूढ़ा हो गया है।'

'तू अभी तक जवान बनी हुई है ?'

'मैं कहती हूँ लड़की किसीके साथ भाग जायेगी।'

हठात् मैंने प्यारी को पकड़ लिया। कसकर पकड़ लिया। उस बंधन ने प्यारी को मेरे वक्ष पर लिटा दिया। मेरी धमनी में धड़कन होने लगी। मैंने अपनी दिल की धकधक को खुद ही सुना। मेरे हाथों में दर्द होने लगा था, पर प्यारी ने एक बार भी उतनी कठोर पकड़ पर भी उफ़ तक न की।

भीतर लंबा और काला इसीला अब खड़ा था। उस पर दीपक की रोशनी पड़ रही थी। सौनो उसके सामने आ गई। उसने कर्कश स्वर में कहा: 'तुम जानते हो, मैं यह सब क्यों कह रही हूँ ?'

'नहीं।'

'तो सुनो।' सौनो ने कहा : 'मेरी बेटी ठाकुर की बहू बनी है, उसे ठकुरानी की तरह रहना होगा। मैं नहीं चाहती कि वह नटनी की तरह रहे।'

इसीला हँसा। कहा : 'बेटी वैसी ही होगी सौनो, जैसी माँ होती है। मैं साफ़ देख रहा हूँ कि सुखराम ठीक अपने बाप जैसा है। वह चुप रहता है। मुझे कभी-कभी डर हो आता है कि कहीं यह अपने को हमारा मालिक तो नहीं समझता। और रही ठाकुर बनने की बात। सौनो, ताल के बंधे पानी को बार-बार धूप में सूख कर बरसात में ही भरना ठीक रहता है, क्योंकि वह नदी की तरह बह नहीं पाता। तू अपनी जात भूल रही है। जाने किस-किस से तू सूज़ाक ले आई थी, मैंने ही उसका इलाज किया था। फिर मुझसे तू पारसा बन रही है ?'

सौनो का मुँह लाल हो गया। उसने कहा : 'मेरी कहते हो, पर बेटी की तरफ नहीं देखते। कंजरों में पड़ी रहती है।'

मुझे धक्का लगा। मैंने प्यारी की आंखों में देखा। अंधेरे में भी मैं देख सका। वहाँ निर्मम शांति थी। उसके होठों पर मुस्कराहट थी। निर्द्वन्द्व। कोई संकोच नहीं। उसने मेरे मुँह के पास अपने होंठ रख दिये। उसकी साँस मेरी सांस से टकरा गई। मैंने सूंघा। वह शराब पिये हुए थी।

सौनो कह रही थी : 'मैंने सुखराम को पाला है कि वह मेरी बेटी को दुनिया के जुलम से बचा सके। क्या बात है बड़ी जातों की औरतों में, जो इज्जत से रहती

हैं। मेरी बेटी क्यों नहीं रह सकती ! मैंने इसी आसा से उसे इतने लाड़ से पाल-पोसकर बड़ा किया है।'

उपाले की झपकती अवस्था उसके चेहरे पर पड़ रही थी। मैंने देखा उसकी लंबी बरौनियां अब तिरछी-सी दिखाई दे रही थीं। उसका ऊपर का होंठ काँप रहा था। उसके मुख पर एक गांभीर्य्य था। उसकी नुकीली ठोड़ी पर अब भी थोड़ा मांस था जिसके कारण वह यौवन की झांई मारती थी। उसकी नाक के अब बाहरी हिस्से झुके हुए लगते थे, यद्यपि वह कुछ तेज़ी से सांस ले रही थी। मैंने उसकी उस जिज्ञासा में जीवन के सम्मान का एक सवाल देखा था। किन्तु इसीला चुप खड़ा था। वह कुछ सोच रहा था। उसने कुछ देर तक झोंपड़े में चहल कदमी की और फिर सिर उठाया।

प्यारी इस समय मेरे होंठों पर होंठ रख चुकी थी। शराब की दुर्गन्ध मेरे भीतर घुमड़ रही थी। जी घुमड़ रहा था। परन्तु मैं उसे अलग नहीं कर सका। बल्कि मेरी भुजाओं ने उसे पहले से भी अधिक कसकर पकड़ लिया था।

'तुमने', सौनो ने कहा : 'सुखराम को किसी लायक नही छोड़ा। तुमने उसे जनाना बना दिया है। नहीं, जनाना नहीं, क्योंकि औरत किसी तरह मरद से कम जोश नहीं रखती, तुमने उसे हिं···'

परन्तु इसीला ने काटकर कहा : 'खबरदार सौनो !'

'अरे रहने दो तुम। मैं जानती हूँ। सुखराम की अम्मा तुमसे फँसी हुई थी।'

हठात् इसीला के हाथ में छुरी चमक उठी। परन्तु सौनो नहीं डरी। उसने कहा : 'डराते हो। नहीं कहूँगी।' इस समय उसके मुख पर एक अजीब गौरव था। उसका मुख गंभीर और कठोर हो गया था। उसकी आँखों में से जैसे वासना का धूंआ निकल रहा था, इसीलिये वे काली दिखाई दे रही थीं। उसने काफी देर बाद कहा : 'इसीला ! तू मेरा जवानी का यार है। मैंने तुझे सदा चाहा है, मैं तेरी आसिक रही हूँ। जा मैं तुझे फिर माफ करती हूँ।'

परन्तु कहते हुए उसकी मुट्ठियां तन गईं और मैंने उसके शरीर में एक फरफरी को दौड़ते देखा। वह दोनों पांवों को दूर-दूर जमाए ऐसी खड़ी थी जैसे धरती में से निकल पड़ी हो। और उसकी दृष्टि में अब अकर्मक निराशा नहीं, सकर्मक प्रेम था। इसीला का चेहरा मुझे कुछ लाल-सा दिखाई दिया, जैसे उसे अपने ऊपर लज्जा थी। उसने अपनी अंगुलियां चटकाईं, जिनका स्वर सुनकर

प्यारी ने मुड़कर देखा और वह फिर शायद बेहोश हो गई। मैंने उसे गिरने नहीं दिया। मैं बैठा नहीं। उसे संभाले झोंपड़े के पीछे आ गया। इसीला का घोड़ा मुड़ा, और फिर हमें पहचानकर घास खाने लगा। उसका वह ऊँचा घोड़ा काले रंग का था और चमचमाया करता था। हमारा कुत्ता भूरा आकर पास बैठ गया जैसे वह कुत्ता नहीं था, कोई शेर था। हमारी रक्षा के लिये धरती पर पूंछ फैलाकर बैठ गया था। प्यारी मेरी गोद में सो रही थी।

इसीला का छुरा अब धरती पर पड़ा था। उसके फलक पर दीपक की रोशनी पड़कर जम गई थी, चमकने लगी थी। सौनो ने देखा और कहा: 'मारोगे नहीं ?'

इसीला ने हाथ फैला दिये। सौनो रो पड़ी और इसीला ने भी अपने आँसू पोंछ दिये। उनके बीच का विषाक्त वातावरण स्पष्ट हो गया था। अब कोई संदेह की बात नहीं थी। परन्तु भावों के बाह्यरूप उनके भीतरी रूप को सदैव ही ठीक-ठीक प्रतिबिम्बित कर देते हों, ऐसा कभी नही हुआ है।

'तू मुझे क्यों तंग करती है सौनो ?'

'क्या कहती हूँ मैं तुमसे ?'

'कुछ नहीं, तू कुछ नहीं कहती।'

यह समझौते की शर्तें थीं, ठीक वैसी ही थीं जैसे और मौकों पर हुई थी, पर आज के और उस समय के नज़रिये में ही भेद था। वह मान-मनावन रहा होगा। आज एक नये दृष्टिकोण के लिये संघर्ष हुआ था।

मैंने अनजाने ही प्यारी के सिर पर हाथ फेरा और मुझे ध्यान आया, रात कितनी बीत चुकी है।

सौनो कह रही थी: 'परसों सिपाही आया था। वह प्यारी को देख गया है। तुमने क्या बेचा है आज ?'

'तेरी काती रुई का बहुत अच्छा सूत था। मैंने खोर बनाने को डाल दिया है सब।'

'मेरे लिये घाघरा चाहिये।'

'ठाकुरों के जाकर माँग क्यों नहीं लाती ?'

'जाऊंगी कल।'

'भैंस के पड़ा हुआ है हरलाल के।'

वह हँसी। कहा: 'उसने भी कितनी मनौतियाँ न मानीं, पर गाय देगी

बछिया, भैंस देगी पड़ा। दो पैसे का फायदा नहीं होगा। सुखराम तो अच्छी कमाई कर लेता है।'

'अरी तू देख वह कितना हुशियार निकलता है। और छोरों की तरह वह है ही नहीं। परसों मैं नगले गया था। चंदन मेहतर उसकी बड़ी तारीफ करता था।'

'कौन चंदन ? वही जो हांडी चलाता है। मरघट जगाता है।'

'वही, वही', इसीला ने कहा : 'जरा जड़ी-बूटी का काम और पक्की तरह से सीख ले, तो शायद यह भी प्यारी को चाँदी के गहनों से लाद देगा।'

'तेरी कसम छोरी बड़ी जिद्दन है।' सौनो ने कहा : 'शाम को मैं देख रही थी। दिन भर मेहनत करके जो कमाई लाया था झट उसके साफे में हाथ डाल के सब निकाल ली।'

'फिर ?'

'फिर क्या। मैंने देखा। उसका मुँह नैक-सा निकल आया। वह सोच में पड़ गया।'

'अभी तक घर आया नहीं ?'

'न लड़की आई है।'

'लड़की तो कहीं कंजरों में होगी।'

'सुखराम रूठ तो नहीं गया ?'

'भगवान जाने। पर मुझे लगै, वह प्यारी को चाहता बहुत है।'

'अरी वही तो उसे इस घर में लाई थी।'

'सो तो है। तुम्हारी तो उसकी मां से मुहब्बत थी, उससे थोड़े ही थी।'

'फिर तू बकने लगी ?' इसीला ने कहा। सौनो हँस दी। कहा : 'अब क्यों बिगड़ते हो ? जब मैंने चिढ़कर बीच में दूसरा कर लिया था, और आन गाँव जा बसी थी, तब क्यों मुकद्दमा करके मुझे ले आये थे ?'

इसीला ने हुक्का सुलगाया और पीने लगा। फिर हठात् कहा : 'कहीं सुखराम रूठकर तो नहीं चला गया ?'

'मुझे तो नींद आ रही है। मैं तो सोती हूँ।'

वह लेट गई खटोले पर और पाँवों को घुटनों पर से मोड़कर सो गई।

मैं सोचने लगा। क्यों मैं इतना अजीब हूँ। क्यों मैं उनका-सा नहीं हूँ, जिनके बीच में रहता हूँ। मैं क्यों नहीं नाचता, मैं क्यों नहीं गाता ? सोलह

साल की उम्र तक मैं क्यों भूला रहा हूँ। मेरी गोद में मेरी प्यारी सो रही है। वह मेरी बहू है। क्यों वह कंजरों में जाती है? मैं इसे छुरियों से गोदकर फेंक दूंगा, सुसरी, अगर मुझे छोड़कर कहीं गई तो। कुतिया!

पर मुझे क्रोध अधिक देर तक नहीं आया। मैं उस सबको भूल गया। अचानक मेरी आँख पड़ी। किले की दीवार अब स्याह दिखाई दे रही थी, क्योंकि चंदा, कटीला-सा उसके ऊपर उठ आया था। वह देख-देखकर मुझे जादू-सा चढ़ने लगा। कैसे मैं इसका फिर से मालिक हो सकता हूँ। जब मैं मालिक हो जाऊँगा तब नटों को महल में बसा लूंगा। फिर नटनियां घूँघट करने लगेंगी, वे ऐसी नहीं रहेंगी। लोग नटों को जुहार करेंगे।

मेरा स्वप्न उतर गया। मुझे पसीना आ गया। यह मैं क्या सोच रहा था। नट और जुहार! ठाकुर तो मैं हूँ। यह सब कमीन हैं। जरायम पेशा हैं। चोर हैं। यह सब वहाँ नहीं रहेंगे। और उस समय मैं पागल-सा हो गया। मैंने देखा नीला पहाड़ मुझे बुला रहा था। बहुत दिन से सुनते आ रहे थे कि उसमें घने में जोगी रहते हैं, जिनके लिये कुछ भी सिद्ध कर लेना कठिन नहीं है।

अगर मैं सिद्ध कर लूं तो। तो क्या मैं राजा नहीं हो सकता! राजा! मैंने देखा था। वह बड़ी मोटर में चलता था। ज़रूर वह गुड़ से लगाकर रोज रोटी खाता होगा, तभी तो उसके गालों पर ऐसा गुलाबी रंग था। कानों में कैसे जवाहिर पहने था। उसके आगे-पीछे कैसे अमले चलते थे। यह सिपाही जो हमें पकड़ते हैं, कैसे झुक-झुक सलामी देते थे। क्या ठाठ थे। मेरी तो आंखें चौंधिया गई थीं। नटनियों ने राजा के स्वागत में गीत गाये थे, नाची थीं। राजा बाप होता है। भगवान का औतार होता है। राजा की बात ही और है!

और मैं राजा बनना चाहता हूँ। अरे सुखराम! तू क्या सोच रहा है?

पर क्या अगर मैं धन कमा लाऊँ तो भी मैं वैसा नहीं हो सकता? मैं नट क्यों बना रहूँ? मैं नट जात का तो नहीं। मैं अहमदाबाद जाकर, कलकत्ते जाकर खेल-करतब क्यों न दिखाऊँ? क्यों न खूब पैसा कमाऊँ? मैं बड़ा आदमी क्यों न बनूं? मैं क्या खेल नहीं कर लेता? मनोहर दर्ज़ी कहता था कि मैं बड़ा चतुर खिलाड़ी हूँ।

भीकम नट के पास जैसे खेत-क्यार है मैं भी वैसे ही जायदाद रखूँगा।

मेरी प्यारी को सूप नहीं बनाने होंगे, घर बैठ खायेगी ।

उस जोश में मैं पागल-सा हो उठा । प्यारी को होश आ गया था । मैंने उसकी आँखों में झांका और आज मैं उसमें डूब गया ।

प्यारी हँस दी । उसने कहा : 'तू मेरा आदमी है ।'

भोर हो गई थी । पहली किरन फूटी थी । प्यारी मेरी बगल में सो रही थी । मैं भी सो रहा था ।

मेरी आँख खुली जब सौनो ने पुकारा : 'ओ उठोगे नहीं ? हाय दैया ! कैसी सीरी रात थी, और दोनों खुले में सोये रहे । मरी ऐसी भी क्या लाज ! तुम तो मर्द वैय्यर हो । पराये थोड़े ही हो । कहीं मेरी बेटी को ठण्ड तो नहीं व्याप गई ।'

उसने प्यारी को छुआ । मैं उठकर बैठ गया । शरम तो मुझे आ रही थी । मेरे सिरहाने का कुत्ता ही रात का गवाह था । उसने मुझे अपनी ओर देखते हुए देखकर प्यार से अपनी पूंछ हिलाई । घोड़ा अब मक्खियों को उड़ाने के लिये अपनी पूंछ हिलाता या कभी-कभी धरती को सुमों से खोद देता ।

मैंने उठकर बीड़ी सुलगाई । हारों में किसान आने लगे थे । बस्ती के मैले बच्चे धूलि में खेलने लगे थे । नटनियाँ गाम से बाहर के कूएं से पानी भरने घड़े लेकर आ-जा रही थीं । घरों से रोटी पकने का धूआँ उठने लगा था ।

प्यारी लजाई-सी उठकर चली गई थी । मैं भी उठा । जब मैं हाथ-मुँह धोकर आकर खाट पर बैठा तो माथा ढँककर प्यारी रोटी ले आई । चुपड़ी हुई । उन पर लाल मिरच की चटनी थी । मैंने खाई तो आज मुझे वे बड़ी स्वाद की लगीं ।

मैंने कहा : 'रोटी बड़ी अच्छी बनी है ।'

सौनो ने कहा : 'हाँ लाला ! सब ऐसा ही कहते हैं ।'

'क्या मतलब ?' मैंने पूछा ।

'अरे रोज मैं बनाती थी तो कभी मुँह से एक तारीफ का बोल न कढ़ा, आज इसने बनाई हैं तो कहता है—रोटी बड़ी अच्छी बनी हैं ।'

मैं झेंप गया, पर सौनो ने जलन से नहीं कहा था । हँसकर कहा था । वह उसके मन की खुशी जाहिर करने वाली बात थी । उसने मुझसे कहा : 'सुखराम !'

मैंने कहा : 'हाँ ।'

'तू ! आज काम पर नहीं जायगा ?'

'नहीं, मुझे तो अंग-अंग में पीर सता रही है ।'

'रात ओस में पड़ा था, धरती पर ।'

मैं मुस्कराया । प्यारी भी । सौनो ने उसे डाँटा : 'हँसती है कि काम करती है । मैं तब से चूल्हे में लगी हूँ, तुझसे पानी भी नहीं लाया जाता कूँए से ? तेरे तो बाप ने तेरा सत्यानास करवाया है । अब ठहर दारी ! जो इसी-से तेरे हाड़ न दुचवा दूँ । हराम की लगी है मुँह में । अंग धुकाये भी नहीं जाते तुझसे ।'

प्यारी घड़े लेकर चली गई ।

४

मैं सोच रहा हूँ । सुखराम यहाँ नहीं है ।

सुखराम ने जो आगे कहा वह ठीक से नहीं कह सका । किन्तु मैंने मनुष्य के उस मूलरूप को पहचान लिया था । वह निस्संदेह एक आदिम उलझन है । उसकी अभिव्यक्ति उसकी अनुकूलता में नहीं, उसकी उलझन में है । सुखराम का जीवन एक द्वन्द्व था । मैं आज ठाकुर के कमरे में बैठा देख रहा हूँ । मेरी खिड़की से शीतऋतु की सुगंधित बेलों की बहार घुसी आ रही है । चाँद के टुकड़े पर उजाला छा गया है और झीनीझीनी-सी फुहार जाने कैसे बरसती-बरसती हवा में भींगापन बन गई है । आज मैं अपने बाह्य संसार की अंतस्थ गरिमा देखने की बजाय उस बाह्य का अपरिमित विस्तार देखना चाहता हूँ ।

चाँद कितना सुंदर है । जैसे, चंदा का मुख हो । वही श्वेत और लालिम छाँह । यह मेरी बेटी का-सा मुँह है । कितना प्यारा है । और दूर कंजरों के गीत गूंज रहे हैं । मैं सोच रहा हूँ । क्यों नहीं इन अभिशप्त आत्माओं के विषय में किसीने आज तक अपनी वेदना नहीं उँडेल दी ?

रूप का सागर मुझे जाड़ें की रात में कुहराच्छादिता जगती में उमड़ता हुआ दिखाई देता है । और सुखराम कहता था कि जाड़े में उसे बहुत कष्ट

होता है । उसकी बस्ती में बहुत तकलीफ़ होती है क्योंकि उन लोगों के पास कपड़े नहीं होते ।

इसलिये वे आग जलाकर चारों ओर बैठकर हाथ और शरीर तापते हैं, फिर उससे काम नहीं चलता और पौरुष और स्त्रीत्व एक दूसरे को तप्त करने का यत्न करते हैं । सब कुछ घृणित ! एक भयानक सूनापन मुझे इस विचार से ही खाये जा रहा है कि मनुष्य को यह सब सहन करना पड़ता है ।

सुखराम की बात फिर याद आ गई है । वह कैसी छटपटाहट में पड़ गया है ? वह भविष्य चाहता है । उसको एक ऐसी कल्पना ने मोहित कर लिया है कि अपनी अज्ञानता का आराम और चैन वह खो चुका है, परन्तु आगे बढ़ने का तरीका उसे ज्ञात नहीं है । वही झोंपड़ा है । वही दरिद्रता है और फिर रक्त और कुलगर्व का लोहा उसकी कलाइयों को काटे खा रहा है । कैसा उन्माद है कि वह उठती आयु में संघर्षों में ही अपनी सत्ता को भटका रहा है ।

प्यारी के नेत्रों में, यौवन में उसका जितना ही समर्पण होता है, वह उससे उतना ही अपने को दूर क्यों महसूस करता है ? सौनो का हृदय जीवन के समस्त अपमानों का बदला चाहता है । पर किस तरह ? केवल अपनों का ही अपमान करके ?

उन लोगों की नैतिकता को सोचकर मैं घबरा नहीं रहा हूँ, पर मेरे आलोचकों को हैरानी ज़रूर हो जायेगी । पर उन्होंने ज़िंदगी को नहीं देखा । वे अपनी दृढ़ धारणाएं बनाए बैठे हैं । हर तरफ़ मुझे मकड़ी का-सा जाला तना हुआ दिखाई दे रहा है । सबके बीच में अहंकार का मकड़ा बैठा हुआ ताना-बाना बुन रहा है ।

अब कोई आवाज़ नहीं आ रही है । चारों ओर कुहरे का रूंएदार कंबल ओढ़े अंधेरा सो रहा है । एक चाँद ऐसा लगता है जैसे किसी ग़रीब की खिड़की में लटके टाट में से किसी फटी जगह से बिजली की हल्की-हल्की रोशनी दिखाई दे रही हो ।

केवल दूर झील आज कुछ कह रही है । हवा का तर झोंका उसका सँदेसा ला रहा है । कुत्तों और सियारों की कर्कश आवाज़ें मेरे कानों में उतर रही हैं, जैसे रात की अँधियारी पुकार रही है । यह सब मुझे अच्छा नहीं लग रहा है ।

मुझे याद आ रहा है ।

मुझे ज़िंदगी में कुछ भी वह सब नहीं भाता जिसमें किसी प्रकार की

अश्लीलता मुखर हो उठती है। पर यौन सम्बन्धों की अभिव्यक्ति को मैं जीवन का एक अंग मानता हूँ। क्या सचमुच सुखराम भी इन्हीं आकृतियों में नहीं है जो मूलतः यौन मनोवृत्ति के चारों ओर घूमता है ?

मुझे ऐसा नहीं लगता। यह नीच कहे जाने वाले भी मूलतः मनुष्य हैं और उनके भावों का स्थायित्व उनके मनुष्यत्व में है। शिकारगाहों में शेर को खदेड़ने का हाँका और कोयल-संगीत की लहरियों को मापने के लिये एक ही दण्ड तो नहीं हो सकता ? यही तो जीवन का वैषम्य है। अचानक एक हल्की आहट हुई। मैं चौंक उठा हूँ। एक छाया-सी बाहर चल रही है। कौन है यह ?

मैं बैठा नहीं हूँ। मैं देख रहा हूँ। यह नरेश है।

इस आधी रात को यह चंदा के पास जा रहा है ?

क्या सचमुच प्रेम में इतनी शक्ति है ? आधुनिक विज्ञानवादी तो कहते हैं कि वासना केवल उच्च वर्गों का ही खिलवाड़ है ? क्या यही सीमित दृष्टि अपने आप में पूर्ण है ?

रेस में घोड़े दौड़ते हैं। वे मुझे अच्छे नहीं लगते। परन्तु उनकी जीत-हार की वह आवेश-भरी उन्मत्तता जो लोगों को व्यथित कर देती है, उसके प्रति मैं अवश्य काफी दिलचस्पी रखता आया हूँ। वह क्या है जो मूलतः स्थिर मति मनुष्य को इतना चंचल कर देती है ? क्या यह प्रेम वैसा ही नहीं है ? इस प्रेम का अन्त क्या है ? वासना और लय। नहीं, नहीं, मुझे अपनी सीमाओं पर स्वयं विक्षोभ हो रहा है।

नरेश की ही आयु है जब वीर्य्य परिपक्व होने लगता है और चंदा की आयु में लड़की मातृत्व के योग्य होने की अवस्था में रहती है। तब प्रकृति के ही कारण पारस्परिक मिलन की चाहना होती है। प्रेम का अंत संतान में है, न स्त्री में वह अंत है, न पुरुषों में ही। इसी अभिव्यक्ति का नाम मिलन है।

और यह मशीन का-सा मेरा विवेचन ही क्या मनुष्य के अध्ययन के लिये पूर्ण है ? नहीं, मनुष्य इन सब छोटे चिन्तनों से बड़ा है। उसकी महत्त्वाकांक्षा बहुत बड़ी है। काश ! सुखराम भी मेरे शब्दों में ही मनुष्य के जीवन के इस सार्थक महत्त्व को समझ पाता ! उसके लिये यह उतना ही असंभव है, जितना नरेश के माता-पिता के लिये इसे समझना मुश्किल है।

नरेश अब सामने के पेड़ के नीचे खड़ा कुछ सोच रहा है। नीम का वह पेड़ शायद भीतर के गुद्दे तक ठंडा हो गया है। उसके नीचे खड़ा होना क्या

सहज है ? मैं तो सचमुच वहाँ ठहर नहीं सकता। और लोग कहते हैं कि मैं बड़ी लगन का आदमी हूँ। पर वह पन्द्रह साल का छोटा-सा लड़का वहाँ निश्चल और पूर्ण धैर्य के साथ खड़ा हुआ है। वह शायद चंदा के पास जाना चाहता है। फिर ? शायद जाते हुए डरता है। क्योंकि अंधेरा बहुत घना है।

मैं वर्ग-संघर्ष के वैज्ञानिक विश्लेषण से यह समझ नहीं पा रहा हूँ कि यह क्यों उस नटनी से प्रेम करने लगा है ? इसलिये कि यह उससे कुछ वर्ग-स्वार्थ-साधना करना चाहता है ?

मैं अपने कुत्सित समाज-शास्त्र पर स्वयं ही जघन्यता का अनुभव करने लगा हूँ। क्या मैं सचमुच चंदा और नरेश की इस कथा को लिखकर मनुष्य के विकास के रास्ते में रोड़े बिछा रहा हूँ ?

मैं बाहर आ गया हूँ।

क्योंकि नरेश चला जा रहा है।

वह निःशस्त्र है। एकाकी है। सामने जीवन का अंधकार है। बंबई की-सी यह चिकनी कोलतार की सड़क नहीं है जिस पर बड़ी-बड़ी मोटरें फिसलती चली जाती हैं। कच्चा दगरा है। और नीरव ! जनशून्य !

मैंने सोचा था, इसे डर लगेगा !

भय ! जीवन के समस्त भय इस लगन के सामने क्यों ऐसे तिरोहित हो गये हैं ? क्यों वे दिखाई नहीं देते ?

नरेश ! एक पतला-दुबला लड़का। सिर्फ़ एक कंबल ओढ़े है। उसके मुख पर अब एक गांभीर्य्य आ गया है। वह बहुत लम्बा नहीं है, बल्कि पपीते के नये पेड़-सा कोमल है।

उसका रंग गेहुँआँ है, जिसमें अभी एक ताजगी है, जैसे कोई छपकर निकलने वाली साफ़ किताब, जिस पर उंगलियों के धब्बे नहीं पड़े होते। उसके मुलायम बालों को इस वक्त कंबल ने छिपा लिया है। और उसकी पेशानी पर सख्त धारियां पड़ गई हैं, जैसे सोचते-सोचते उसके मुँह पर चिन्ता की रस्सी ने बार-बार खिसलकर बचपन के नाजुक संगमर्मर के ढाने पर अपना निशान छोड़ दिया हो।

और उसकी आँखें मुझे याद आ रही हैं। कैसी मासूम और डबडबाई हुई हैं वे, जैसे घायल हिरन की हृदय को हिला देने वाली आँखें, जिनकी बरौनियों में फरियादें पर्त्त की पर्त्त जमकर काली पुतलियां बनती हैं और जिंदगी अपनी

सारी मायूसी लेकर टिमटिमाती हुई तारा बनकर चमका करती है।

भयानक सर्दी मुझे काटने लगी है। मैं चला जा रहा हूँ, जैसे वह अगर हवा से उड़ता हुआ फूल है तो मैं जड़ से उखड़कर गिरने के लिये डगमगाने वाला पेड़ हूँ।

हम लोग फुलवारी के दरवाज़े से घुसे। पुरानी इमारत में बसने वाले माली सो रहे हैं। उनके बैल भी सो गये हैं। रास्तों के दोनों तरफ़ सुनसान छाया हुआ है। और सफेद महल अपने सारे भूतों के किस्सों को लेकर एकांत खड़ा है। नरेश उसीमें चला गया है, निर्भय, प्रशांत। मैं दूर खड़ा रह गया हूँ। मुझे लग रहा है वहाँ कोई और भी है।

और फिर वे दोनों हँसे हैं। मैं जानता हूँ वह चंदा की हँसी है। संगमर्मर के चबूतरे पर वह हँसी ठंड से सिकुड़कर धीरे-धीरे कुहरे में खो गई है। जहाँ बरसात में बैठकर भीगे हुए मोर पुरवैया में अपने पंख और पर फैलाकर सुखाते हैं, वहाँ अब उनके हास्य की आखिरी चाप सुनाई दे रही है।

मेरे भीतर भय हो रहा है। मैं क्या कर रहा हूँ। लड़का मेरे सामने बिगड़ रहा है और मैं देख रहा हूँ। मुझे गुस्सा आ रहा है। क्या ज़रूरत थी मुझे यहाँ आने की? और वह यहाँ प्रेम कर रहा है। मैं ठंड में अकड़ा जा रहा हूँ।

मैं उसे बुलाकर डाँट क्यों नहीं देता? पर मेरा स्वर रुँध गया है। क्यों मैं उसे डाँट नहीं पाता?

तभी कोई बुड़बुड़ाता हुआ आ रहा है। मैं उसकी आवाज़ सुन रहा हूँ—फिर चली आई। तू मुझे जीने नहीं देगी। न जाने कब तुझसे पीछा छूटेगा! सूहर की बच्ची! हराम की औलाद! जैसी माँ वैसी ही बेटी। तेरी मां भी ऐसी ही भयानक थी!

वह सुखराम है। मैं पेड़ की आड़ में खो गया हूँ। मैं अंधेरे में हूँ। वह मुझे देख नहीं सकता।

सुखराम चंदा को ढूंढ रहा है। वह सफेद महल में घूम आया है, किन्तु कहीं भी उसे चंदा का पता नहीं मिला है। सुखराम बड़बड़ाता हुआ लौट गया है। और मैं खड़ा-खड़ा ऊब गया हूँ।

अब रात आधी हो गई है और कहीं दूर उल्लू हँसता हुआ-सा बोल उठा है। जब मैं ऊब गया हूँ तो खड़े रहने से लाभ ही क्या है? यही सोचकर मैं लौट पड़ा हूँ। अब मेरे मन में घोर संशय है। क्या नरेश लौट आया है?

और मेरे आश्चर्य की सीमा नहीं है, क्योंकि नरेश मुझसे पहले ही से उसी पेड़ के नीचे घर के सामने खड़ा है।

उसने मुझे देखकर आश्चर्य से अचानक पूछा : 'काका ! कहाँ गये थे ?'

मैंने मुस्कराकर कहा : 'घूमने।'

और इससे पहले कि वह संभल सके मैंने कहा : 'और तू यहाँ क्यों खड़ा है ?'

उसने उत्तर नहीं दिया। एक लम्बी सांस ली और फिर धीरे-धीरे भीतर चला गया।

जब मैं कमरे में पहुँचा अंग-अंग ठिठुर चुके थे। मैं अपने शरीर को गर्म करने के लिये रज़ाई में घुसकर रक्त को तेज़ी से दौड़ाने के लिये ज़ोर-ज़ोर से मालिश-सी करने लगा।

कब जाने मैं गर्म हुआ, कब जाने नींद आ गई; मैं नहीं जान सका, परन्तु भोर तभी हुआ जब मेरे दोस्त की पत्नी ने सिरहाने आकर पुकारा : 'लाला ! बड़ी देर सोये हो आज, क्या बात है ?'

मैं आँखें मलकर उठ बैठा। भाभी ने सामने चाय का गर्मागर्म प्याला रख दिया और स्नेह से मेरी ओर देखा।

मैंने कहा : 'रात में देर तक पढ़ता रह गया। सुबह आँख खुली तो सोचा कि अभी से जागकर करूँगा भी क्या ? इसलिये फिर जो दस मिनट के लिये सोया तो अब आकर तुमने जगाया है।'

भाभी हँसी। कहा : 'सुबह का सोया फिर कभी जल्दी उठ जाता हो, ऐसा तो हमने कभी सुना नहीं।' फिर बोलीं : 'देखो मैंने आज अपने मन की चाय बनाई है, इसमें इलायची और कुछ मसाले डाल दिये हैं। तुम्हारे भैया को यह बड़ी पसन्द है। सो मैंने सोचा कि जो भैया को अच्छी लगे तो लाला को क्यों न लगेगी ?'

मैंने शैतानी से कहा : 'यह भी भाभी तुमने क्या कह दिया। यह कानून हर चीज पर लागू है ?'

'अरे तुम्हारी मसखरी की आदत नहीं गई अभी तक !' भाभी ने भौं तरेरकर मुस्कराकर कहा : 'चाय पियो, अभी दिमाग में सुपने का कोई टुकड़ा बचा रह गया है। गर्मी पहुँचते ही अकल साफ हो जायगी।'

हम दोनों हँस दिये। उसी समय द्वार पर से नरेश निकला। उदास-सा।

डरा हुआ-सा । मैंने और भाभी ने देखा और दोनों ने एक दूसरे की ओर प्रश्नभरी सांकेतिकता से काम लिया ।

मैंने ही धीरे से कहा : 'भाभी, हर्ज ही क्या है, लड़के का ब्याह उसीसे कर दो न ?'

'ठीक है', भाभी ने मेरा पिया हुआ प्याला हाथ में वापस ले लिया और कहा : 'नटनी से छोरे का ब्याह कर दो और मुझे जहर की पुड़िया लाकर दे दो ।'

वह पाँव पटकती हुई चली गईं ।

मैं सोच रहा हूँ । स्त्री ही स्त्री की शत्रु होती है । वस्तुतः यह चिंतन ठीक नहीं है । स्त्री जाति आज तक संसार में एक बनकर नहीं रही है । प्रत्येक स्त्री का संसार में एक गुट्ट होता है, वह उसका पिता, माँ, पति या पुत्र आदि हैं । वह उनमें ही अपने सुख-दुख सिरजती है और उनमें ही जिन्दा रहती है और मर जाती है । वह स्त्री जाति के सुख-दुख नहीं देखती, देखती है अपने, अपने परिवार के हित-अहित ! स्त्री ही क्यों पुरुष भी तो यही करता है। क्या पुरुष दूसरे पुरुष को सड़क पर भीख मांगते देखकर अपनी स्त्री का गहना उतारकर उस भूखे को दे देता है ? समाज में स्त्री-पुरुष यद्यपि द्वन्द्व बनकर रहते हैं, परन्तु मूलतः वे एक-दूसरे से अविच्छेद्य हैं । एक हैं । और उनके स्वार्थ एक-एक गुट्ट में सीमित हो गये हैं ।

भाभी की आँखों में एक अद्भुत मिश्रण है । मेरी दृष्टि में इनका जीवन विवशता की ममता का प्रतीक है । वह सुन्दरी रही होंगी, क्योंकि अभी तक के दृष्टिकोण से मनुष्य रूप को यौवन के आधार पर ही आँकता आ रहा है । किंतु मैं जानता हूँ कि सौंदर्य्य प्रत्येक आयु की अपनी एक भिन्न सत्ता रखता है । भाभी को नरेश से स्नेह है किंतु उस स्नेह की मर्यादाएं समाज के नियमों से निर्मित हैं । जीवन का सौंदर्य्य मनुष्य को अपनी ही सीमाओं की पूर्ति में श्रेयस्कर लगता है । उनकी पतली बरौनियों पर झुकती-सी लम्बी भौंहें, उनकी भारतीयता की लापरवाही में इस आयु को काटने की भावना में, मुझे और भी आकर्षक लगती हैं । उनके पति की आँखें यद्यपि उनकी-सी पानीदार नहीं हैं, फिर भी उनमें एक करुणा है, जो ठाकुर होने के कारण कुछ उनपर फबती नही है क्योंकि गांव में ठाकुर अभी तक हुकूमत कर रहा है । मैं उस अधिकार की व्यापकता को देखकर सिहर उठता हूँ क्योंकि वह धर्म की आड़ लेकर इतिहास की शताब्दियोंरूपी

पसलियों में भाला बनकर धँसा हुआ है। उसको देखकर चमार अभी तक मन में अभाव का अनुभव करता है। भाभी के लिये यह सब होता आया है और सब सहज तथा मान्य सत्य है, जिस पर उनके स्त्रीत्व की कोमलता ने अपने आकार ढूंढे हैं और अपनी प्यारभरी सत्ता का रंग भरकर उसे आकर्षक बनाने की चेष्टा की है। भइया में मुझको और ही कुछ दिखाई देता है। वह कर्मठ व्यक्ति हैं और उनको युग के परिवर्तन का पूरा आभास है। उस स्वीकृति में नरेश अभी तक अपने नयेपन को लेकर कोई स्थान नहीं बना सका है।

भाभी जब नरेश की बात करती हैं तब उनका मुँह और ठोड़ी कुछ कठोर-सी हो जाती हैं, जैसे वे उसे चाहती तो हैं, पर उसकी हरकतों को पसंद नहीं करतीं।

यह सत्य है, कि हमारा प्रेम, हमारी समस्त कोमल भावनाएं, सब पर समाज के भीषण अंकुश हैं। हमने ही अपनी स्वतन्त्रता को मिटाया है ताकि हम अपनी स्वतन्त्रता को भोग सकें। यही तो समाज का नियम है, जिसको तोड़ने का अधिकार नहीं मिलता और उसके आधार इतने गहरे हैं कि उन्हें तोड़ना ही हमें पाप बनकर डराया करता है।

सब कुछ बदल रहा है और बदलता चला जायेगा, परन्तु जीवन की यह रेखा सीधी कभी भी नहीं चल सकेगी, क्योंकि विंदु विंदु के संघर्षों और द्वन्द्वों से ही आगे बढ़कर चित्र का रूप धारण करती है।

और वह चंदा जो अपने रूप में अप्रतिम है, उसे मनुष्यता का पूर्ण अधिकार नहीं है। उसका मुंह देखकर मुझे वीनस की याद हो आती है। वह कितनी सुन्दर है कि यदि यह मध्यकाल होता तो कोई भी राजा उसको अपनी रानी बना सकता था। किन्तु यह अधिकार केवल समर्थ को ही प्राप्त था। नरेश को नहीं।

मेरा मन छटपटा रहा है। हम क्यों इतने सीमित हैं कि अपनी चिर लघुता को ही अपनी व्यापक समष्टि स्वीकार कर चुके हैं।

चंदा के नेत्रों में आकाश की अनन्त नीलिमा है। उसके अधरों पर बिना रँगी मादक ऊष्मा की प्रतीक बनकर एक मुग्धकारिणी लालिमा सदैव मुस्कराया करती है। उसके शुभ्र वर्ण को देखकर मुझे उस दिन ऐसा लगा था जैसे वन की समस्त श्री मानवी का आकार धारण करके आ उपस्थित हुई थी।

और वह अनिंद्य सौंदर्य भी अपने गलत जगह होने के कारण अन्त में वेश्या

का-सा जीवन व्यतीत करने के लिये बाध्य है। कहते हैं, अम्बापाली इतनी सुन्दरी थी कि लिच्छिव गण के राजा उसके लिये एक दूसरे की हत्या करने पर उतारू हो गये थे। तब पुरुषकृत समाज ने स्त्री को संपत्ति की भाँति बाँट लिया था और कुल-गृहिणी का अधिकार उससे छीनकर उसे वेश्या बना दिया था।

इतने दिन बीत गये हैं, किंतु अभी हम वहीं घूम-फिर अपनी असमर्थताओं की निरन्तर घोषणाएं करते चले जा रहे हैं।

मेरा सिर झन्ना रहा है। मैं मुक्ति चाहता हूँ, मुझे बन्धन मिलते हैं।

मैं जीवन में अमर प्रेम चाहता हूँ क्योंकि मुझे घृणा की छलनियों में टपकती करुणा की बूंदें मिलती हैं। क्या यही मेरे जीवन का संतोष बन सकता है ?

मैं अब अनुभव कर रहा हूँ कि मेरा पांव पक रहा था तब मैं स्वस्थ था, किन्तु अब जब मेरा पांव ठीक हो गया है, तब मैं सचमुच अस्वस्थ हो गया हूँ क्योंकि न चल पाने का कोई बहाना तो था, परन्तु अब पांव ठीक हैं, पर चलने की इजाजत नहीं है।

धूप उतर आई है। भैय्या आ रहे हैं। उनके पैरों और सिर पर गाँव की धूल छा रही है। और वे यह सब नहीं सोच रहे, वे कह रहे हैं : 'जब फसल तैयार होगी तो सरकार नाज बाहर ले जाने पर रोक लगा देगी और हमें मजबूरन कम कीमत पर बनियों को सब माल बेचना पड़ेगा। जब फसल बनियों के हाथ में चली जायेगी तब सरकार उसे बाहर भेजने की इजाजत दे देगी और हमें उलटे महंगा नाज खरीदना पड़ेगा। तुर्रा यह है कि पहले सरकार यहाँ की जनता के फ़ायदे के नाम पर ऐसा करेगी, और फिर भारत की जनता के लाभ के हेतु नया कानून लागू करेगी·····

मैं चाहता हूँ इस विषमता को देखकर एक बार भयानकता से अट्टहास कर सकूं·····

५

सुखराम ने कहा था : 'दो साल बीत गये थे।

उसके बाद मेरी जिंदगी में एक नया रास्ता खुल गया। मैं रोज सबेरे निकल जाता। प्यारी मेरे साथ जाती। बस्ती का एक लड़का रामलाल हमारे साथ जाता। और इसीला खेल में आवाज़ें लगाता। हम लोग गांव-गांव घूमते। तरह-तरह के खेल दिखाते। रात को अपना तंबू तानकर सो रहते। इसीला पैसे इकट्ठे करके गिनने लगता और फिर छिपाकर रखता। प्यारी रोटी बनाती सौनो दिन भर एकांत में ही रहती, यानी हमारे साथ नहीं रहती। वह भीख मांग लाया करती थी। वह पीछे पड़ जाया करती थी और आदमी को उसे कुछ न कुछ देना ही पड़ता था। कभी वह सिरकी के खिलौने बनाती और बच्चों को बजा-बजाकर दिखाती और नाज के बदले उन्हें बेच आती। वह बहुत अच्छा सूप बनाती थी। दो-चार करतब प्यारी भी जानती थी। वह लहँग फिरा-फिराकर नाचती, दोनों हाथों से घूँघट आगे लम्बा-सा खींच लेती और मटक-मटककर चलती। लोग उसे देखकर खुश होते। पर वे उसका मुँह नहीं देख पाते।

एक दिन हम लोग गांव छहरन में खेल-तमासे दिखा रहे थे। अचानक मेरा पांव फिसल गया और मैं गिरा लेकिन मैंने फिर भी रस्सी पकड़ ली और ऊपर ही टँगा रह गया। चारों ओर घबराहट से हहर व्याप गयी। और उसी परेशानी में प्यारी का घूंघट भी उठ गया। नट के गिरने में अमूमन उसको गहरी चोट या मौत ही मिलती है। पर मैं होशियारी से अपनी हार को भी जीत में बदल ले गया क्योंकि रस्सी पकड़ दो दफे झूला और फिर मैंने पावों से उसे पकड़ और अंगूठों से रस्सी पकड़कर रस्सी के सहारे झूलने लगा।

'ओई साबास !' इसीला की भर्राती आवाज़ उठी : 'देखिये हज़ूर····· यह नया खेल है·····'

जब मैं नीचे आया तो प्यारी ने मुझे छुआ। कहा : 'चोट-वोट तो नहीं आई ?'

'नहीं।' मैंने कहा।

'फिर ऐसे क्या जानलेवा खेल दिखाने चला था ?'

'तू क्या समझती है ?' मैंने कहा।

वह चुप हो गई।

खेल खतम करके हम लोग गांव के ज़मींदार साहब की हवेली पर पहुँचे। इसीला ने आगे बढ़कर सलाम किया और कहा : 'दरबारजी ! तुम्हारे गाम में पेट भरते हुए आये हैं। आज का आटा मिल जाये।'

दरबारजी यानी ज़मींदार पढ़े-लिखे आदमी लगते थे, क्योंकि उनके बाल अंगरेजी फैसन के कटे हुए थे। उन्होंने अपने कारिन्दे से कुछ कहा। फिर मूंढे पर बैठे दरोगा जी से बातें करने लगे।

यह हम जानते थे कि ज़मींदार हुकम चलाता है, पर गांव के कायदे मानता है। वह हमारा बाप है, हम उसकी रियाया हैं। उसका काम है हमारा पेट भरना। पर सदा से उसके सामने सिर झुकाते ही आये हैं। पर दरोगा ने टेढ़ी नज़र से देखा।

बोला : 'साले नट हैं ?'

कारिन्दा ने कहा : 'हां हुज़ूर !'

इशारा हुआ। इसीला आगे गया। झुककर सलाम किया। दरोगा ने कहा : 'क्यों बे, यहां तुम लोग चोरी-वोरी तो नहीं करते ?'

'नहीं हुज़ूर ! हम तो मेहनत करके पेट पालते हैं। और कमीन लोग हैं, माई-बाप दरबारजी से अपना हक-पानी मांगते हैं। हम चोरी क्यों करने लगे ?'

दरोगा हँसा। उसकी नुकीली मूंछे देखकर मुझे डर लगने लगा था। प्यारी घूंघट में से देख रही थी। दरोगा की नजरें बार-बार उस पर पड़ती थीं। प्यारी शायद यह ताड़ गई थी। उसके उठे हुए वक्ष पर दरोगा की नज़रों के सांप बार-बार फन मारते और फिर वह गडेड़ी मारते अपना रोष दिखाते इसीला पर। मैं विक्षुब्ध था। मैं घुट रहा था। डर के मारे मेरा अजीब हाल था। लगता था कोई मेरा गला घोट रहा था।

जब हम लोग तम्बू में लौटकर आये सौनो रोटी पका चुकी थी। उसे आज थाने पर भीख मांगते वक्त दो आने मिल गये थे और वह उसका आटा ले आई थी। रुपये का बीस सेर मिलता था। दो आने में ढाई सेर आया था। चार खाने वाले थे। वही आधा-आधा सेर का हिसाब हम लोगों के लिए काफ़ी था। रोटियां उसने ईंटों के चूल्हे पर तवा रख के उस पर गरम-गरम रख छोड़ी थीं।

हम लोग मजे-मजे में खा रहे थे। बातें कर रहे थे। प्यारी ने घूंघट हटा

दिया था। वह मेरे सामने बैठी हाथ पर रोटी रखकर चाब रही थी। इसी समय एक सिपाही आ गया। सौनो ने सशंक आंखों से देखा। इसीला कांप उठा। मैं चुपचाप खाता रहा, और प्यारी ने घूंघट खींच लिया। हमारा भूरा सामने आ गया और दुम उठाकर गर्व से छाती फुलाकर खड़ा हो गया। इस वक्त हम आदमियों के मुकाबले में वह कुत्ता ही बहादुर दिखाई देता था।

सिपाही मोटा आदमी था। उसने इसीला को देखकर कहा : 'इस गांव में कब से आया है ?'

इसीला खड़ा हो गया। रोटी उसकी बेले में धरी रह गई। उसने कहा : 'हुजूर ! ऐसे ही कमाते फिरते हैं।'

'दरोगा जी ने बुलाया है तुझे।'

'हजूर खता माफ हो। हमने क्या कसूर किया है ?'

'इधर आ !'

इसीला चला गया। जब वह लौटा तो सिपाही जा चुका था। वह आकर फिर खाना खाने लगा। उसने सौनो की ओर देखा और प्यारी पर निगाह डालकर कुछ इशारा किया। सौनो समझ गई। उसने सिर हिलाया जैसे मैं जानती थी। और फिर वह भी रोटी हाथ पर रखकर खाने लगी।

रात हो गई थी। मैं लेटकर बीड़ी पी रहा था। मैंने सुना प्यारी और सौनो की बातें हो रही थीं।

सौनो कह रही थी : 'जानती है सिपाही क्यों आया था ?'

'जानती हूँ।' प्यारी ने कहा : 'दरोगा मुझे दिन में घूर रहा था। मरे की तबियत आ गई है। पर सुखराम तो न मानेगा।'

'नहीं मानेगा ? अरी यह तो औरत के काम हैं। उसे बताने की जरूरत ही क्या है ?'

'सो तो है। पर वह बुरा समझेगा न ?'

'औरत का काम औरत का काम है। उसमें बुरा-भला क्या ? कौन नहीं करती ? नहीं तो मार-मार कर खाल उड़ा देगा दरोगा। और तेरा बाप और खसम दोनों को जेल भेज देगा। फिर कमेरा न रहेगा तो क्या करेगी ? फिर भी तो पेट भरने को यही करना होगा ?'

प्यारी चुप हो गई।

रात गाढ़ी होने लगी। प्यारी उठकर चलने लगी। पर उसे ताज्जुब हुआ

जब मैंने उसके रास्ते को हाथ फैलाकर रोक लिया।

'तू कहाँ जा रही है ?'

'कहीं नहीं।'

'झूठी कहीं की। तुझे शरम नहीं है।'

'मैं करूँ भी क्या ?'

'कोई जरूरत नहीं है जाने की।'

'फिर ?'

'हम यहाँ से अभी भाग चलते हैं।'

'दूसरे गाँव से पकड़वा मँगायेगा। रात ही रात क्या रियासत से दूर हो जाओगे ?'

मेरी आँखों के सामने अब मजबूरी आने लगी। तो क्या हम इतने निरीह और कमज़ोर थे। और मुझे अब अधूरा क़िला याद आने लगा। मैं ठाकुर हूँ। नट नहीं हूँ। फिर मेरी बहू दरोगा के पास कैसे जा सकती थी ?

'तू नहीं जायेगी।' मैंने कहा।

'तो वह कोड़े मार-मारकर तेरी और मेरे बाप की चमड़ी उधेड़ देगा।'

'उधेड़ देने दे।'

'फिर भी पकड़वा मँगायेगा मुझे। अब इनाम भी देगा, तब ठोकर और देगा ऊपर से।'

पर मुझ पर जोश छा रहा था। मैंने उसका हाथ पकड़ लिया और कहा : 'तो तू मर क्यों नहीं जाती ?'

प्यारी हँस दी। कहा : 'इत्ती-सी बात के लिये ! मरना मुझे नहीं आता। औरत को तो औरत का ही काम करना पड़ता है। इसमें ऐसी बात ही क्या है ?'

'जानती है तू ठाकुर की बहू है।' मैंने पूछा।

वह फिर मुस्कराई और बोली : 'रोज नाइन मुझे नहलाने आती है। चमारिन मेरे कण्डे थापती है। डोमनी मेरे आड़े नहीं आती। तेलिन मेरे पांव धोती है। कूजड़िन मेरे द्वार साग बेचती है। सुनारिन मेरी नथ में कील ठोकने आती है। बाजदारनी और गड़िवारिन .....'

'रंडी !' मैंने फूत्कार किया। मैं क्रोध से भर गया था। परन्तु प्यारी की आँखों में आँसू आ गये। उसने जलती आँखों से कहा : 'धिक रे राजा मरद !

तेरी आँखों में सील नहीं रह गया है। औरत को बचाना तेरा काम है। तू अपने धरम मरजाद की टेक निबाहता है तो फिर मुझे रोकना तेरा काम है। तू मुझे बचा ! मैं और नटनियों-सी नहीं हूँ। मैं क्या करूँ ? जोबन दिखाती नहीं, दिख जाता है। उसे क्या डिबिया में बंद करके धर लूँ ? तुझे सरम नहीं। चिल्ला-चिल्लाकर जगत को अपनी सुनाता है। पेट में रख के छिपाना नहीं भाता तुझे ?'

मैंने सिर पकड़ लिया अपना। और मुझे लगा मेरा सिर फट जायेगा। मुझे क्रोध आ रहा था। मैंने उसका हाथ पकड़कर कहा : 'अच्छा ! तू तम्बू में जा ! मैं आऊँ तब ही जाना।'

मैं चला। वह लौट गई। मुझे चारों ओर अंधेरा ही अंधेरा दिखाई देता था। उस बावत मुझे गाँधी महात्मा की याद आई। कुछ गाँव के परचूनियों ने उनकी जै बोली थी, वे गिरफ्तार हो गये थे। सुना था वे दीन-दुखियों के लिये लड़ते हैं। पर गांधी तक तो उस बावत मैं पहुँच नहीं सकता था। मैं ज़मींदार सा'ब की हवेली की ओर चल पड़ा। रात के अंधेरे में उनकी बाहरी पौरी में लालटेन जल रही थी। वहाँ दरबान और दो आदमी बातें कर रहे थे। हुक्का चल रहा था। मैं गया और सलाम करके बैठ गया।

'क्या है रे ?' एक ने कहा : 'आटा तो मिल गया था तुझे ?'

'हाँ महाराज', मैंने कहा।

'फिर क्यों आया है ?'

'महाराज !' पर मेरा बोल अटक गया।

'कहता क्यों नहीं ?'

मेरा कंठ रोष और अपमान से जकड़ गया। प्यारी की सूरत याद आती थी। वह मेरी थी। मैं उसे प्यार करता था। फिर किसी दूसरे को उस पर जुलम करने का अधिकार ही क्या था ? वह औरत है। कमजोर है। यही क्या उसका पाप है ? और मैं मछली की तरह छटपटा रहा था। दरबान हँसा। उसने अपने यार से कहा : 'इन कमीनों को दो जूता दो, अभी बोल देंगे। भलमनसाहत से कहो, कभी नहीं बोलेंगे।'

भगवान की सौगन्ध ! मैं पागल हो उठा। मुझे कुछ भी नहीं सूझा। मदद लेने आया था। उल्टे यह क्या हुआ। मैंने कहा : 'कमीना तो मैं हूँ ही, पर तू भी तो ड्योढ़ी का कुत्ता है !'

मुझे धुंधली-सी याद रह गई है कि फिर क्या हुआ। एक ही ठोस बात याद है कि वह मेरी तरफ कूदा और वे सबके सब टूटे, और 'दै जूता' के नारे के साथ मुझ पर जूते बरसने लगे। वह चमरौधे जूते, मेरी सूरत लहूलुहान हो गई। मुझे चक्कर आ गया। जब मुझे होश आया तो मैं थाने पड़ा था और दरोगा से कारिंदा कह रहा था—साला चोरी करने आया था। बछिया खोल ही ली थी। पकड़ लिया गया। हुजूर इसे जरा अच्छा सबक दे दें, ताकि इसे याद आ जाये कि यह है कौन, इसकी हैसियत क्या है ? इसने पंडित बचनधर को गाली दी है हुजूर ! अभी तो महाराज का राज है, नटों का तो नहीं हो गया ?

मैंने कहना चाहा कि यह सब झूठ है, यह सब बनावटी बातें हैं, मुझे दरबारजी तक पहुँचा दो, पर मैं बोल नहीं सका। मैं रोने लगा, सिपाही हँस पड़ा।

उन लोगों के चले जाने पर सिपाही ने कहा : 'अब रोता क्यों है ? मैंने तेरे घर खबर भेज दी है। कोई आयेगा न ? दरोगा जी खुश हो जायेंगे, सबेरे तुझे सरकार से माफी दिला देंगे और तू छूट जायेगा। रोता क्यों है ?'

मैं अंधेरे में पड़ा रहा। मुझे कुछ देर बाद प्यारी का बोल सुनाई दिया : 'कहाँ है मेरा कमेरा ?'

'भीतर चल।' सिपाही ने कहा।

इसके बाद मुझे कुछ नहीं मालूम। मैं रात भर पागल-सा बैठा रहा।

सुबह जब मुझे छोड़ा गया तो पांव उठते नहीं थे। मुझे महसूस हो रहा था कि मैं मर गया हूँ। रास्ते में इसीला मिला। वह बहुत खुश था। मेरी आँखें जल उठीं। जब इस तम्बू में पहुँचे, देखा कि प्यारी चुप बैठी थी और सौनो कह रही थी : 'तू अभी नादान है पागल ! दुनिया है। इसमें सब ऐसी ही होती हैं। बड़े घरों की बहू देखकर तू महलों का सुपना न देख। रात तेरे बाप ने तेरी वजह से कमाई की है। बौहरे चंदी के घर सेंध मार दी। मालूम था दरोगा कुछ नहीं करेगा। और वहाँ बौहरे तो उगाही में आज गांव गया था, बौहरी अपने सिकलीगर यार के साथ सो रही थी। सब ऐसी ही हैं।'

प्यारी ने कहा : 'क्या मिला रात ?'

'चार लच्छे हैं चाँदी के, दो हँसुलियाँ हैं पंसेरी।'

प्यारी ने फिर सिर झुका लिया। मुझ पर नज़र पड़ी तो बड़ी बेमुरव्वत

से मुस्कराई। सौनो ने कहा : 'छूट आये लल्लू ! आओ।'

मैं चुपचाप बैठ गया। पर मेरा सिर फटा जा रहा था।

'अरे लहू !' प्यारी ने मेरा मुँह देखकर कहा : 'तू देख रही है अम्मा !'

'हाँ री ! जूते में कीलें रही होंगी।' सौनो ने गौर से देखते हुए कहा : 'अरी तेरे बाप के तो ऐसे बीसों निसान पड़े हैं।'

पर किसीने बगावत नहीं की। मैंने जहर का घूंट पिया।

'बड़े निरदयी हैं।' प्यारी ने कहा और मेरे सामने गड्डुए में पानी लाकर धरा और अपनी फरिया के कौने से खून पोंछने लगी। मुझे पलकें झुकाये देखकर सौनो उठ गई। प्यारी ने कहा : 'इतना सोच क्यों करते हो ?'

मैंने कहना चाहा पर कुछ कह नहीं सका। मेरी आँखों की बात वह समझ गई थी। बोली : 'मैं जानती हूँ। तू मुझे बहुत चाहता है बहुत। इतना जितना कि कोई पराई लुगाई को आसनाई के बावत चाहता है। पर मैं तेरे सामने हूँ। तुझे नहीं छोड़ूँगी। मुझमें क्या कुछ बिगड़ गया है', वह कुछ देर रुकी और उसने उठकर मेरे लिए चिलम भरी और कहा : 'पी ले !'

मैं पीने लगा।

उसीने कहा : 'तू बुरा क्यों मानता है। औरत के काम में औरत को सरम नहीं होती। मरद के काम से क्या मरद सरम करता है ? मेरी तेरी चाहना है। संग तो तेरे ही रहूँगी। पहले कंजरों में जाती थी तब वहाँ क्या मैंने दूसरों से नाता जोड़ के तुझे छोड़ दिया था ?'

मुझे अब लगा कि मैं दुनिया में नहीं हूँ। नहीं हूँ।

'तू अपने को ठाकुर समझता है बावरे !' वह हँस दी।

मैं दिनभर लेटा रहा। कब सो गया पता नहीं। जब जागा तो रात थी। प्यारी मेरे पास लेटी थी। उसने मेरे कंधों को हाथों में कस रखा था। मैं उसकी बाहों में एक सुख पा रहा था। मेरा गुस्सा दूर हो चुका था। मैं मुस्करा दिया। मैंने उसके गालों पर हाथ फेरा। वह हँस दी।

बोली : 'रोटी ले आऊँ ? पहले खा ले। जल्दी क्यों करता है ?'

वह रोटी ले आई। जब मैं खा चुका तो उसने पानी लाकर रखा। मैंने पिया और तब वह मेरे पास लेट गई।

दूसरे दिन इसीला ने कहा : 'चलो। नये गांव चलें। रास्ते में किसी जगह

माल बेचेंगे। एक ठाकुर को मैं जानता हूँ जो ऐसा माल आधे मोल पर खरीदता है।'

हमने तंबू समेट लिया। घोड़े पर सामान लद गया। इसीला आगे चला। सौना, मैं और प्यारी उसके पीछे, और आखिर में भूरा चला आ रहा था।

६

सुखराम ने बताया : 'मैं तब बाईस बरस का था। प्यारी उन्नीस की थी। सौनो पैंतीस बरस की उमर में एक बाईस साल के गबरू नट के साथ बैठ गई थी क्योंकि इसीला एक रात ठंड खाकर बुखार में बर्रा-बर्रा कर मर गया था। मैंने वैद जी से गोलियाँ ले जाकर दी थीं, पर कुछ नहीं हुआ था। तब सौनो ने उसे गर्मी पहुँचाने को गर्मागर्म बाजरे की मेहरी खिला दी थी, और वह मर गया था। हमने उसे फूंक दिया था। सौनो रोई थी। फिर वह आँसू पोंछकर उठ बैठी थी। उसने कहा था : 'अब मेरा संसार में कोई नहीं है।'

मैंने कहा था : 'हम तो हैं।'

'तू तेरी लुगाई का है, मेरा नहीं।'

'मुंह में आग लगा दूंगी', प्यारी ने कहा था, 'जो मेरे इस पै तेरी आँख लगी है, नहीं रहा जाता तो किसीको कर ले। बंजर धरती तक पै किसान हल चलाता है, फिर तू तो अभी जन-जन के ढेर लगा सकती है।'

'हाँ, हाँ,' सौनो ने कहा, 'बेटी ! तू इसे बांध के धर ले गांठ में। पर जब वही नहीं रहा, जिसकी ठसक पै में इत्ती बनती थी तो मेरा तो मान-मनावना ही धरा रह गया। अब तो मुझसे कोई भी कुछ मनचाही कह जाये ! अभी तो मुझमें जोर है लाड़ली। और जब नहीं रहेगा किसी साठा-पाठा के घर जा रोटी ठोकूंगी। बेटी के घर रहकर अपनी इज्जत नहीं खोऊँगी।'

मैंने बीच-बचाव करनें की कोशिश की। कहा : 'अभी तो इसीला को मरे देर नहीं हुई, फिर अभी से झगड़ा क्यों करती हो ?'

'तुम्हारी भी नीयत मुझे ठीक नहीं लगती', फिर प्यारी ने कहा : 'इसका कमेरा तो मर गया। अब यह तेरी कमाई पै जियेगी ? थू है तेरे पर !'

'अरी जा ! जा !' सौनो ने कहा : 'तू ने क्या बनिया-बामन समझा है कि जीते जनम बैठी रहूँगी ? मलूको गूजरी ने तो नाती रहते रोटी न तोड़ी, दब्बारी न सही, मौरसिंह गूजर के जा बैठी। दण्ड भर दिया। मेरा तो कोई दण्ड धराऊ भी नहीं है ? मौरसिंह का बाप लोटन गूजर तो खुस हो गया था। उसने कहा कि खारी गूजरी लाके बेटा तैंने लौहरों का नाम ऊँचा कर दिया। ठठेरनी अलबेली के सात यार थे, खसम के रहते। कोई कुछ कर लेता ! मरा तो जा बैठी अमरू ठठेरे के घर। कम्पूरी नाइन तो बूढ़ी थी जब उसे पैंसठ बरस के बैनी नाई ने अपने घर न बैठने पर चोरी लगा पुलस में फँसा दिया था, तब भी अपने मन के यार के घर बैठी। मनोहरा ले गया उसे। मेरा तो कोई नहीं। चली जाऊँगी रानी, कल ही चली जाऊँगी। नटनी का क्या ? चाहे जिसके बैठ जाये !'

प्यारी प्रसन्न हो गई। मैंने एक नई बात देखी। प्यारी अब मुझ पर हुकूमत जताती थी। वह एक तरह से मेरी रक्षक थी। पुलिस प्यादे, राजा के चौकीदारों और जागीरी अमलों से, वह मेरी रक्षा करती थी। और मैं इतना निरीह क्यों था ? क्योंकि मुझे शराब की लत लग गई थी। मैं करतब दिखाता था, पर शराब पीता था। तो अब वह बाँस पर नाचती थी। उसकी जवानी की हुमक से ठट्ठ के ठट्ठ झूमते थे। जब मैं उसके पास जाता था तो वह कहती थी, 'अभी नहीं। मैं अभी थकी हूँ। अभी तो बौहरे का बेटा गया है।'

सौनो कहती : 'कुछ दिन की बहार है लाड़ली। फिर मैंने क्या ये दिन देखे नहीं ?'

सौनो और प्यारी की जलन और द्वेष दूर हो गये। सौनो ने इंतजाम कर लिया। मैं और प्यारी अकेले रह गये। मैं चाहता था कि हम कहीं दूर जा बसें और नयी रियासत में जाकर तमोली बन जायें। पर प्यारी कहती थी : 'तमोलिन की क्या बचत है मेरे निखट्टू ! तू बनिया-बामन बन, ठाकुर बन। पर मैं तो नटिनी की नटिनी हूँ।'

और वह ठुमका मारकर कमर हिलाती हुई नाचती। मैं हँस देता। मुझे वह बहुत प्यारी लगती थी।

प्यारी कहती : 'देख ! मैं भंगिन-चमारिन नहीं जो मरद की गुलाम बन कर रहूँ। मैं तो खेलूँगी। पर मेरा मन तेरा है। जिस दिन मन तुझसे हट जायेगा, मैं तुझे छोड़कर चली जाऊंगी।'

मुझे गुस्सा आता। शराब मेरे सिर पर चढ़ जाती और मैं उसे रस्से से मारता। नील पड़-पड़ जातीं। वह रोती। निरदयी कहती। पर फिर मुझसे लिपट जाती। कहती : 'बैय्यर समझ के मार ले निगोड़े ! पर निपूते ! तेरी लुगाई हूँ तभी न मारता है ? मार ले। मैं क्या तेरी मार से डरती हूँ ?'

मैं कहता : 'फिर तू मुझे छोड़ने की बात क्यों करती है ?'

'तुझे जलाती हूँ। तू चिढ़ता है। मारता है। तू मुझे मन से न चाहता होता, तो तू मुझे मारता क्यों ? तेरा प्यार देखने को ही तो मेरा हिया तरसता है। जब कभी गाम जाती हूँ तो मरद मुझे देखकर ठंडी सांस भरते हैं, कोई रुपैया दिखाता है, कोई चवन्नी। बौहरे से मुफत नाज ले आती हूँ, पर तू मुझे अपना मन ऊँडेल कर नहीं दिखाता बेरहम !'

मैं उसके नील देखता और सहलाता। पीठ पर लंबे-लंबे दाग पड़े होते।

'चल हम गाम लौट चलें' अपने वह कहती : 'वहाँ अपने पुराने साथी हैं।'

'नहीं।' मैं कहता : 'तू फिर कंजरों की माँद में जाना चाहती है।'

'तेरी कसम ! वह तो कोई बात नहीं, पर जहाँ बचपन बीता है, वह जगह याद आती है।'

'पर मैं 'वहीं' नहीं जाना चाहता।'

वह आश्चर्य से पूछती : 'क्यों ?'

मैं उत्तर नहीं देता।

एक दिन वह अड़ गई। बोली : 'जो तू नहीं बतायेगा तो समझ ले तैंने गौ मारी।'

मैंने उसे मारा। पर उसे गुस्सा था। उसके हाथ में जूता पड़ा। उसने खींचकर मारा। बोली : 'कढी खाया मन का मेल न करे। मुझसे छिपाये। ले मैं तेरी बाँदी हूँ जो सब चुपचाप सहे जाऊंगी। मैं तो चली जाऊंगी।'

मुझे आग लग गई।

कहा : 'कहाँ जायेगी ?'

'कहीं, जहाँ मन करेगा।'

'मुझे छोड़ जायेगी ?'

'हाँ। तू मुझसे भेद रखेगा तो तेरे पास क्यों रहूँगी ?'

उसकी बात मेरी समझ में आ गई। मैंने कहा : 'जी करता है तुझे दौच के रख दूं।'

'आ तो मेरे पास ?' पर वह खुद मेरे पास आ गई। और मेरे सामने मुँह निकालकर बैठ गई जैसे मुझे थप्पड़ मारने को उकसा रही हो। मैंने उसकी ढिठाई देखकर कसकर मुँह पर चाँटा मारा। उसने पलटकर खड़े होकर लात दी। कड़े की चोट से मेरा सिर फट गया। खून आ गया। वह हँस दी और पास बैठ गई।

'कैसा दरद होता है ?' उसने कहा।

'बहुत', मैंने कहा, और पास पड़ा गंडसा उठाया।

वह डरी नहीं। कहा : 'दो टुकड़े कर दे। तेरे हाथ से मरूँगी तो मेरे मन की आग तो बुझ जायेगी।'

गंडसा मेरे हाथ से गिर गया। उसके प्यार ने जीत पाई थी। मैं उसे देखता रह गया। वह कितनी खूबसूरत थी। मुझे ऐसे घूरते देखकर उसने लाज से घूंघट काढ़कर कहा : 'हाय, मुझे सरम आती है। कैसा देखता है जैसे मैं कोई पराई लुगाई हूँ।'

रात की अंधियारी में हम चुप बैठे थे। घोड़ा धरती खूंद रहा था। भूरा अब भी इधर-उधर घूमघूमकर कभी-कभी भौंक लेता था। गाँव में सन्नाटा था। बस्ती बाहर के भंगियों के घर में अब सन्नाटा था। गाँव बाहर के धूरे पर कोई-कोई सूहर घूम रहा था और दूर पुरबिनी वाले बाबाजी के मंदिर में दिया जल रहा था।

आस्मान नीला था। तारे झलमल कर रहे थे। मैं लेट गया। वह मेरे पास बैठी रही। उसने अंगिया में हाथ डाला और पाँच रुपये का नोट मेरे हाथ पर धर दिया।

'यह कहाँ से आया ?' मैंने पूछा। इतनी बड़ी रकम ! मैं चौकन्ना था।

'हाँ तू समझता है मैं किसी काम की नहीं,' प्यारी ने कहा : 'तू मुझसे अपनी बात छिपा, मैं अपनी छिपाऊँगी।'

मैंने कहा : 'मैं तुझसे क्या छिपाता हूँ ?'

'तू क्यों नहीं बताता कि हम गाम क्यों न लौट चलें ? तू यों डरता है कि मैं किसी कंजर से नाता जोड़ लूँगी ? यही न ? पर नाता जोड़ना और बात है, मन की होके रहना और बात है।'

'नहीं, मैं इससे नहीं डरता।' मैंने कहा : 'मैं अधूरे किले से डरता हूँ।'

'क्यों ? उसमें भूत बसते हैं इसलिये ? पर मर कर तो सभी भूत बनते हैं।

क्या रंक क्या राजा। तू उसमें जाता ही क्यों है ?'

'मैं नहीं जाता, मेरा मन जाता है।'

'क्यों ?'

'मैं उसका असली मालिक हूँ प्यारी।'

'तू रेसम के गदेलों पर सोना चाहता है। तू चाहता है बाँदियाँ तेरे पांव दबायें। ला मैं दबा दूँ ?'

वह मेरे पांव दाबने लगी।

'अरी नहीं बावरी। उसे देखता हूँ तो लगता है कि वह मुझे बुला रहा है।'

वह सोच में पड़ गई। उसने कहा : 'रानी तो रोज मालपुए खाती होगी ? गदेलों पर लेटती होगी। बड़ा मजा आता होगा उसे ?'

वह शायद कल्पना का सुख ले रही थी, पर फिर उसने ठंडी सांस लेकर कहा : 'इतना ही भाग लिखाकर लाई होती तो जाने क्या बात थी। पर मैं इस तरह तो तेरे लिये रहती हूँ। रानी नहीं बन सकती तो सिपाही की तो बन सकती हूँ।'

मैं कांप गया।

मैंने कहा : 'क्या कहती है प्यारी ! तेरे बिना मैं नहीं रह सकता, तू मुझे छोड़ने की बात कर रही है ?'

'अरे नहीं', उसने हंसकर कहा : 'तुझे मैं कैसे छोड़ सकती हूँ। तू भी वहीं मेरे पास रहना।'

मैं अवाक् बैठ गया।

'सच कह', मैंने उसके कंधे पकड़कर कहा : 'तुझे यह रुपये किसने दिये हैं ?'

'रुस्तमखाँ ने।' वह दूर आसमान की तरफ़ देखती हुई बोली। मैं अब उसके पास नहीं था। वह कुछ और ही सोच रही थी।

वह बोली : 'तू महलों का सुपना देखता है। देख ! तू कभी महलों का मालक नहीं बन सकता। पर मैंने तुझे अपना माना है। अगर तुझे महलों में नहीं ले जा सकती तो अपने को बेचकर तुझे हुकूमत दूँगी। फिर तुझे पुलस-वाले डरा न सकेंगे। मुझे भी हर किसीकी झूंठन न खानी पड़ेगी जो हम-तू ब्याह-बरातों में बटोरते हैं। मैं रुस्तमखाँ के यहां बैठ जाऊंगी। तू मेरे पास

रहेगा। उसीने रुपये दिये हैं। वह मुझसे इतना खुस हुआ कि उसने मुझसे आप ही कहा। वह कहता था कि तुझे जेल भिजवा देगा। फिर मजे से मैं और वह रह सकेंगे। पर मैं तुझे जेल नहीं जाने दूंगी। इतने दिन से तुझसे कहती थी यहाँ से चला चल, चला चल। पर तू नहीं माना। अब मैं क्या करूँ ? पर इस तरह मैं भी चैन पाऊंगी, तू भी मजे में रहेगा। मनिहारिन रामकली उसकी पुरानी चहेती है। अब वह उसे नहीं चाहता। उसने छोड़ दी है।'

उसकी बात जैसे मेरे लिये नहीं कही गई थी। वह जैसे ज़ोर-ज़ोर से बोल-बोलकर सोच रही थी। उसे मुझसे राय नहीं लेनी थी, वह मुझसे सलाह नहीं ले रही थी, पर मुझे सुना रही थी। फिर अपने आप कहने लगी : 'तब मैं दो-एक ठाकुर को पिटवाऊंगी, जिन्होंने मुझसे मतलब निकालकर दुअन्नी की जगह इकन्नी दी थी। निरोती बामन के घर में आग लगवा दूंगी चुपचाप ! हरामजादा मुझे छिनाल कहता था। सो भी अपना काम सांधकर, पूरी गुड़ की भेली देने को कह-कर मुकर गया था। हुकूमत करूँगी मैं, सबका सिर कुचलूँगी। रुस्तमखाँ इकबाल बहादर तहसीलदार का मुँह लगा है। नायब पेसकार कामथ है। सबकी एक राय है। एक बार रुस्तमखाँ के पास पहुँच जाऊं तो पेसकार को भी मुट्ठी में कर लूंगी। तू देखता रहियो, भला ?'

अब उसने मुझे मुड़कर देखा।

मैंने कहा : 'प्यारी !'

'क्यों ?'

'तू क्या कह रही है ?'

'तुझे मेरी बात पसंद नहीं आई ?'

'नहीं।'

'क्यों आयेगी भला।' उसने चिढ़कर कहा : 'तू तो चाहता है मैं ऐसी ही जूतियाँ खाती डोलूं ?'

'पर तू बेड़नी तो नहीं है ?'

'नहीं हूँ। कौन कह सकता है !'

'पर यह तू क्या करने वाली है ?'

'अरे तू मेरा सुख नहीं देख सकता।'

'तू इसे सुख कहती है ?'

'क्यों मेरे वहाँ रहते, फिर कोई नटों को बेवजह पकड़कर थाने में बन्द कर सकेगा ?'

'तू क्या कर लेगी ?'

'मेरा वह न छुड़ा देगा ? कोई मेरा अकेली का फायदा ही थोड़ा है ?'

'तो क्या तूने तय कर लिया है ?'

'तय ? और तू मेरे पास बैठा क्या कर रहा है ?'

'तो क्या यह मैं कह रहा हूँ ?'

'बेवकूफ़ !' उसने कहा।

'अच्छा चली जा !' मैंने कहा : 'मैं भी चला जाऊंगा।'

'मुझे छोड़कर !'

'हाँ।'

'तुझे सरम नहीं है ? अपनी लुगाई को छोड़कर जाने की कहता है ?'

'तू भी तो जा रही है ?'

'पर मैं तो तेरे लिये जाती हूँ।'

'चल परमेसुरी ! मुझ पै अहसान न कर।'

'ओहो !' उसने स्वर उठाकर कहा—'मुझे सौक है ?'

मैं चुप रहा।

उसने कहा : 'अरे मैं समझती हूँ।'

'क्या ?' मैंने पूछा।

'तू मुझसे पीछा छुड़ाने की सोच रहा था। सो सारा दोष मुझपर ही मँढने का तुझे रास्ता मिल गया।'

'पर मैं जाने के पहले तेरा खून कर जाऊँगा प्यारी ! जानती है ?'

'कर जा। रुस्तमखाँ तेरी सात पीढ़ियों के मरों को भी हथकड़ी डलवा देगा। फाँसी होगी। भगवान् से बच जायेगा, पर पुलस से आज तक कोई नहीं बचा। वह मुझसे बहुत खुस हो गया है।'

'तूने उसे अपनी चमक-चौदस से मोह लिया होगा।'

'मैं तो जैसी हूँ वैसी ही हूँ।'

मुझे कोई राह दिखाई नहीं दे रही थी। उसने कहा : 'पर मेरा पराया है। तू मेरा अपना है। तू न रहेगा तो मैं किसके सहारे जिऊंगी ?'

उसने मुझे चिपटा लिया और रोने लगी। मैं मूरख-सा देखता रहा। समझ

में नहीं आ रहा था क्या करूँ। प्यारी मुझे बहुत प्यारी थी। मैं उसे छोड़ नहीं सकता था। मैं उसके बिना ज़िन्दा रहने की सोच भी नहीं पाता था। मैंने उसे छाती से लगाकर कहा : 'मैं तुझे नहीं छोड़ सकता। मैं तुझे नहीं छोड़ सकता प्यारी ! जब मेरा दुनिया में कोई नहीं था, तब तूने ही मुझे आसरा दिया था। तुझे छोड़कर मैं जी नहीं सकूँगा। मैं तेरी झूंठन खाकर, ठोकर खाकर भी पड़ा रहूँगा, पर तेरा कुत्ता बनकर रहूँगा।'

प्यारी ने मुझे बाहों में बांध लिया और कहा : 'मैं जानती हूँ यह जवानी सदा नहीं रहेगी। जब यह चली जायेगी तो रुस्तमखाँ भी मुझे छोड़ देगा, दूध की मक्खी की तरह निकालकर फेंक देगा। तब मेरा एक तू ही तो है। और मेरा कौन है ?'

रात घनी हो गई थी। हवा के सर्राते झोंकों में एक नशीली छाया थी जो धीरे-धीरे अब रात पर घिर आई थी। झोंपड़े के बाहर भूरा अब कभी-कभी उगते चाँद की तरफ देखकर रो लेता था और कुछ नहीं। दूर के पहाड़ सुनसान पड़े थे। मेरे मन में अब हलचल थक गई थी। प्यारी सोने के लिए लेट गई थी। दिये की रोशनी में उसका गोरा रंग दमक रहा था। मैंने दिया बुझा दिया।

७

सुखराम ने कहा :

'भोर हो गई। आज रात भर प्यारी सो नहीं सकी थी। कई बार वह सोते में बड़बड़ा उठी थी। मैंने देखा था, वह बातें कर रही थी। कभी कहती : 'तू मुझे छोड़कर चला जायेगा ?'

मैंने उसे अपने हृदय से चिपका लिया जैसे चिड़िया अपने बच्चे को अपने पंखों में छिपा लेती है। मैंने कहा : 'नहीं जाऊंगा, तुझे छोड़कर मैं कहीं नहीं जाऊंगा।'

वह सुन नहीं सकी थी। पर उस समय उसकी अकुलाहट कम हो गई थी। रात की ठंड बढ़ती जा रही थी। मैं ऊंघने लग गया था। फिर से उसे मैंने कांपते पाया और मैंने उसके होंठों को फड़कते पाया। सचमुच मैंने अपने हाथों

से उसके होंठों को दबा दिया। वह शांत हो गई।

मैं सदा से ही उसके रूप को प्यार करता रहा था। मुझे बहुत जोश आता था, मैं उससे गुस्सा भी हो जाता था, पर उसे पास देखकर मैं जानवर का-सा बोदा हो जाता। मैं उसके बदन को देर तक हाथों से सहलाया करता था। वह ऐसे हँसती थी जैसे अपनी खूबसूरती की ताकत उसे मालूम है। उन दिनों मैं जवान था। मेरे बालों में तेल पड़ा रहता और मेरा कुर्त्ता महीन काले रंग का होता। मैं मूंछों में ताव देता और धोती को दुलाँगी बांधता। कमर में मैं कटार खोंसे रखता। मेरे एक हाथ में कड़ा पड़ा था, पतला लोहे का। गले में मैं दो-तीन तावीज़ पहनता। मैं ताकत-भरा था। मुझे उसकी चाहना थी, क्योंकि मेरी सारी आग जैसे उसे छूकर बुझ जाती थी। पर आज जब कि वह मेरे हाथों में पड़ी थी, आज मुझे एक नयी बात हुई। रोज़ जब वह ऐसी हालत में होती तो वह मेरी औरत हो जाती, पर आज मुझे वह बुखार नहीं था। आज मैंने देखा था कि वह औरत नहीं थी। उभरी छातियों, पतली कमर, उसकी भारी जांघे आज मुझे रोज़ की तरह बावला नहीं बना रही थीं। तब मैंने महसूस किया कि औरत सिर्फ़ इतनी ही नहीं है। वह देवी भी है।

मैं कह नहीं सकता कि वह सब मुझमें कैसा खयाल था। पर इतना ही कह सकता हूँ, आज वह गोरापन आग की तरह नहीं था। आज वह चाँदनी की तरह हो गया था। मुझे उस सोती हुई औरत की बेहोशी में एक नया जागा-हुआपन मिला, वह था उसकी नींद में भी उसका जागी हुई की तरह हो जाना। जैसे वह आज नींद के पार भी मेरी थी। मुझे अपना बना लेना चाहती थी।

मैं समझ नहीं सका कि यह क्या था। पर मेरा दिल उमँग रहा था। आज मैंने देखा कि मैं सचमुच उसे प्यार करता हूँ। वह मेरी है। मैं उसका हूँ।'

सुखराम चुप हो गया था। मैं सोच रहा हूँ।

सुखराम की अभिव्यक्ति समाप्त हो गई थी किन्तु मैंने अनुभव किया कि आज सुखराम क्या कहना चाहता था। वह था उसके पशु का उन्नयन। और प्रेम की असाधारण शक्ति ने उसके हृदय की अन्धकारमय गुहा में जीवन की ज्योति प्रज्वलित कर दी थी। आज तक वह नारी के रूप से आकृष्ट होकर, उससे पराजित होकर पशु की भांति केवल उसका भोग करके, अपने वासना के लाल लोहे को उसकी जवानी के अथाह विलास में बुझा लिया करता था।

किन्तु आज समस्त देह उसके लिये अपनी सीमाओं का त्याग कर गई थी। अरूप ने अचेतन के माध्यम से उसकी सीमित बुद्धि पर प्रहार किया। वह अंग-अंग से अंग-अंग सटाये रहा किन्तु आज वासना नहीं, जीवन की आधारभूत संवेदना ने अपना सिर उठाया और मानो इस अज्ञात गौरव से नितान्त अपरिचित होने के कारण सुखराम अपने आपको समेट नहीं सका। वहाँ कलुषित वासना नहीं रही। यह वह नारी देह थी जिसे अनेक पुरुषों ने गंदा कर दिया था और वह नटों का पतिव्रतहीन समाज इसे प्रकृति की आवश्यकता, समाज की विषमता समझकर सहता चला आ रहा था। वे संभोग को बुरा नहीं कहते थे। स्त्री कहती थी कि उसका काम पुरुष के सामने स्त्री कर रही है। उसमें कोई लज्जा नहीं थी। किन्तु सुखराम अपने को ठाकुर समझता था और इसी अहंकार ने उसमें एक विष बो दिया था। परन्तु उसका कमनीय सौन्दर्य उसको उसके बीज को फूटकर, जड़ों में बदलने नहीं देता था। प्यारी अपनी देह उसे दे चुकी थी। और सुखराम ने इतना ही समझा भी था। किन्तु आज उस बर्बर ने एक नई बात देखी थी। उसने इस अंधेरी रात में, मसामूंद में, रहने वाली स्त्री का अपराजित हृदय देखा था, जो केवल स्त्री का हृदय था, जो मूलतः भव्य है, करुण है, प्रेम से आप्लावित है। स्त्री का यह जीवन तभी सार्थक है और इसीकी शक्ति की अपरिमित असीम वेदनात्मक ग्राह्यता से वह अपने को बनाये रह सकी है।

मैं अपनी कल्पना में देख रहा हूँ कि प्यारी लेटी है। और सुखराम उससे सटा लेटा है। उसके नेत्र मुँदे हैं। वह सो रही है। उसकी भीतरी वेदना, आसक्ति, उसके होंठों पर थिरकते हैं और सुखराम उस सबको देख-देखकर विभोर हुआ जा रहा है। आज वासना छोटी चीज़ हो गई है। आज वासना से भी ऊपर हृदय जागा है, वह जो जागरण में यदि दीपक की भाँति जल रहा था, तो नींद में बिजली की तरह कौंधिया कर अपनी एक झाँई-सी मार जाता है। अनिंद्य थी वह बेला। आकाश में मानो सकल वायु की मर्मर, वनांत की झूमती मरोर और अंधकार का अतलान्त गहन उच्छ्वास, सब आज उसी महा मोह के अस्पष्ट और छविमय प्रतीक थे, जो प्रतिकण में उच्चरित हो रहे थे। आज स्त्री का रूप अपने वास्तविक सौन्दर्य्य के कारण विजयी हो गया था। और सुखराम उसे समझ गया था। किन्तु कितना ? जैसे समुद्र के किनारे खड़ा हुआ मनुष्य अपने पांवों को भिगो जाने वाली लहर मात्र की तरलता का,

मर्मर का आभास पा सका हो। अभी उसने गहन गंभीर सिन्धुराज का वह मध्य गंभीर अन्तस्तल कहाँ देखा था जहाँ निस्पन्द किन्तु हाहाकारों की प्रतिक्रिया बनकर एक अटूट सर्जनवती शान्ति होती है।

वह प्रेम की अभिनव छाया है। प्यारी एक मशाल है। आज तक वह जैसे सुलगी नहीं थी। आज जल उठी है। उसमें से फरफराता उजाला निकल रहा है। प्यारी रहे न रहे, सुखराम उस आलोक से प्रदीप्त हो चुका है। वह ज्योति-परम्परा है। वह आज तक भी थी किन्तु मुखर नहीं हुई थी। तब उसे अनुभव हुआ था कि वे केवल शरीर के कारण ही एक दूसरे से नहीं जुड़े हुए थे। उनकी समस्त अनुभूतियों ने अपना एकाकार और तादात्म्य कर लिया था। वही जीवन की पूर्ण तृप्ति का साधन था। यह समस्त पाप-पुण्य मनुष्य-कृत है और वह ही अपनी अनुभूतियों से इनमें यातना पाता है। इनमें ही शोषण ने अपना स्थान बना लिया है। किन्तु सुखराम की यह सुखावह तृप्ति आज ऊँचा उठा रही है। उसमें दर्द जागा है।

और सुखराम ने कहा :

'वह नींद में चिल्ला उठी। उसका सारा बदन पसीने से तर-बतर हो उठा। मैं चौंक उठा। मुझे लगा वह पसीना उसे चिकना बनाकर मेरे हाथों में फिसलन पैदा करना चाहता है। वह मेरे हाथ से छूट जायेगी। मैंने चिल्लाकर कहा : 'प्यारी ! होश में आ ! क्या हुआ तुझे ?'

वह उठकर बैठ गई। उसने कहा : 'मैंने एक डरावना सुपना देखा है। डरावना !' वह कहकर कांप उठी।

मैंने कहा : 'तूने क्या देखा है ऐसा ?'

'मैं कह दूं ?'

'क्यों ? कहने में भी हरज है ?'

'पर मुझे डर लगता है।'

'मैं तो तेरे पास हूँ।'

'हाँ तू मेरे पास है।' उसने मुझे पकड़कर कहा : 'अब नहीं सोऊंगी।'

'क्यों ?'

'कहीं यही सुपना आगे शुरू हो गया तो ?'

'ऐसा भी कहीं हुआ है पगली।'

वह क्षण भर चुप रही। फिर कहा : 'मुझे वे तुमसे छीने लिये जा रहे थे।'

'वे कौन थे ?'

'मैं नहीं जानती । चारों तरफ़ साँप ही साँप थे ।'

'साँप !!' मैंने कहा : 'मैं हनुमान जी पर दीपक चढ़ाऊंगा । महादेव जी पर बेलपत्तर चढ़ाऊंगा । पीर के मजार पर दिया चढ़ाऊंगा । ईदगाह की चीटियों को बूरा डालूँगा । तू कहेगी तो पंडित को सीधा भी दे आऊंगा । भगवान् कसम ! ठाकुर जी के मंदिर में जाकर परार्थना करूँगा । पर तूने ऐसा क्यों देखा ?'

'मैंने देखा कि मैं जंगल में चली जा रही हूँ । तू मेरे पास नहीं है । वहाँ एक बड़ा सुन्दर मनी रखा है । उसमें से उजाला होता है । मैं उसको लेकर हाथ में उठा लेती हूँ । तब मैं देखती हूँ, एक बड़ा साँप मुझे देखकर फुफकारता हुआ भागा आ रहा है । मैं उस मनी को लेकर भागी जा रही हूँ । चारों तरफ़ से साँप भागे आ रहे हैं । वे कह रहे हैं : पकड़ लो इसे, जाने न पावे ।'

मेरे कान खड़े हो गये ।

पूछा : 'फिर ?'

'फिर मैंने देखा कि तू बड़ी दूर पहाड़ पर खड़ा मुझे पुकार रहा है । तू मुझसे बहुत ऊँचा है । बहुत ऊँचा है । मैं तुझ तक पहुँच नहीं सकती । मैं तुझे पुकारती हूँ—सुखराम ! हो ! सुखराम ! सुखराम ! पर मुझे लगता है मेरा गला रुँध गया है । मैं पुकार नहीं सकती । मेरी आवाज़ बँध गई है । और रात का अंधेरा अब टूट रहा है । सारा आस्मान गुफा के काले-काले पत्थरों की तरह नीचे धसकता आ रहा है । चारों तरफ़ शोर हो रहा है । गूंज उठ रही है ।

'और फिर बहुत से कंजर गाते हैं । मेरा पहला दोस्त, जिसके साथ मैं पहली बार सोई थी, वह मेरे सामने आ गया है और मुझे बचाने को दोनों हाथ उठाये खड़ा है । मैं कहती हूँ : नैकस ! तू हट जा । तेरे सामने आ जाने से मेरा सुखराम मेरी आँखों से दूर हो गया है । तू दूर हट जा, और मैं उससे लड़ने लगी हूँ ।

'तभी साँप और पास आ गये हैं, साँप··· ·····एक मुझे डसने को फन फैलाये खड़ा हो जाता है·····।

'तभी मेरी आँख खुल जाती है ।'

प्यारी का सुपना भयानक था । पर मुझे हँसी आ गई ।

कहा : 'तो इतना क्यों डरती है ? सुपना तो सुपना ही होता है ।'

'लेकिन मैंने आज तक मीठे सुपने देखे हैं ।'

'बाबरी ! रोज कोई मीठे सुपने नहीं देखता ।'

'पर सुपना कोई वैसे ही नहीं देखता । जब देवी-देवता नाराज होते हैं तभी ऐसे सुपने दीख पड़ते हैं ।'

'मैं इतनी मनावनी तो कर चुका हूँ ।'

'तू सच मुझे बहुत चाहता है ।' कहकर उसने मेरा हाथ दबा दिया । उसके कसकर बँधे हुए बाल जो कानों के ऊपर बँटी हुई बालों की लड़ों में होकर पीछे उठी हुई चुटिया में खतम होकर पीठ पर लटकते थे, इस समय ढीले हो गये । उसने उसी वक्त उन पर हाथ फेरा और कहा : 'कल तू मेरे जुएं बीन देगा ?'

मैंने कहा : 'जरूर !'

यह प्यार की निशानी थी ।

'और मैं तेरे बीन दूंगी ।' उसने कहा ।

फिर हम लोग लेट गये । आकाश की ओर उसने देखकर कहा : 'कितने तारे चमक रहे हैं । यह सब आत्मा हैं सुखराम !'

'हाँ प्यारी ! लोग ऐसा ही कहते हैं ।'

'सब मरकर आखिर में ऐसी ही आत्मा बन जाते हैं । फिर एक दिन टूट-कर धरती पर आ गिरते हैं ?'

'इसीला यही कहता था ।'

'वह जादू भी जानता था थोड़ा-सा । उसने मुझे बताया नहीं ।'

'क्यों ?'

'मैं नहीं जानती । उसीने मुझसे कहा था कि तेरा बाप भी कुछ-कुछ जादू जानता था ।'

'मेरा बाप !!' मैंने कहा : 'मुझे उसकी धुंधली-सी याद रह गई है ।'

'तब तू छोटा ही तो था ।'

'तू ही कौन बड़ी थी ।'

'हाँ मैं भी छोटी थी ।'

'तू ही ने मुझे आसरा दिया था ।'

उसने शरम से कहा : 'चल हट ! लुगाई भी कहीं मरद को आसरा देती है ?'

मैंने उसकी लाज को समझा । वह मुझ पर अहसान नहीं चाहती थी । उसने फिर कहा : 'सुखराम ! तू भी जादू सीख ले ।'

'क्यों ?'

'फिर तू चाहे जित्ते रुपये ला सकेगा ।'

'तेरा बाप ही क्यों न ले आया ।'

'उसे पूरी सिद्धी मिली ही कहाँ थी ? वह तो थोड़ा-बहुत मंतर-जंतर जानता था । सिद्धी मिलना क्या कोई खेल होता है ? गाँव में इस बखत एक समाना है । कहते हैं, बड़ा पहुँचा हुआ है । एक दिन मुझे मिला तो मुँह फेरकर बैठ गया । और गाली देने लगा । बोला : हरामजादी ! माया है ।'

'माया है । सच में डर गई । गांव में उसका बड़ा मान है ।'

मैं उसकी बातों से चकरा गया । वह मुझे एक नयी दुनिया की तरफ़ ले जा रही थी । और मुझे लगा मैं आस्मान में उड़ रहा हूँ । मैं उड़ रहा हूँ ।

कोई कहता है : 'सुखराम !'

मैं जबाब नहीं देता ।

'तू कहाँ जा रहा है ?'

मैं उड़ता रहता हूँ । बोलता नहीं ।

और फिर अचानक मैं अधूरे किले पर खड़ा हूँ । वह मेरा है । सब मेरे सामने सिर झुकाए खड़े हैं ।

पर वह सुपना भी नहीं था । एक खयाल भर था । मैं प्यारी के बोल से चौंक उठा । उसने कहा : 'तुम मेरे हो, मैं तुम्हारी हूँ । बस यही एक बात मेरे दिल की है । बाकी सब बातें दुनियादारी की हैं । वह सब तो है ही । मेरा मन उन सबमें रमता नहीं । बोलो ! तुम जलन से मुझे छोड़ तो नहीं जाओगे ? तुम पराये मरद के साथ मुझे देखकर गुस्सा तो न होगे ?'

'नहीं ।' मैंने कहा । हालाँकि मैं अपने ऊपर पूरा भरोसा नहीं करता था ।

'और एक वादा लूंगी । दोगे ?'

'कह तो सही ।'

'तुम किसी दूसरी लुगाई से नाता न जोड़ोगे !'

'क्यों ? और तू आजाद है ।'

'मेरा क्या ? मेरा तो रस्ता शुरू ही से ऐसा पड़ गया है. पर तुम पर किसी चुड़ैल की छाँह भी नहीं पड़ी है । तुम मेरे ही, सिर्फ़ मेरे ही हो ।'

मैंने कहा : 'तू मुझसे यह क्यों कहलवाना चाहती है ?'

'क्योंकि मैं चाहती हूँ ।' उसने कहा ।

'अच्छा, मैं मानता हूँ।'

मुझे खुद ताज्जुब हुआ। हम लोग शराब पीकर जब झूमते हुए लड़ते हैं तब औरतें डरती हैं। मुझे याद है, तब मैं छोटा था। एक बार हज़ारी नट ने कटार उठाकर भरी बस्ती में चंदू की लुगाई को शराब पीकर पकड़ लिया था। चंदू और हजारी में रात बड़ी देर तक कटारें चलीं। लोगों ने कुछ नहीं कहा। देखते रहे। चंदू की लुगाई डरती रही। पर अचानक वह बीच में आ गई। उसके सीने में चंदू की कटार गलती से घुस गई। हजारी ने चंदू की बोटी-बोटी काट दी और फिर सबेरे थाने चला गया। उसे फाँसी लग गई थी। हजारी नामी चोर था। पुलिस के हाथ नहीं आता था। पर मुहब्बत का ऐसा दीवाना हुआ कि आप ही मौत के मुँह में चला गया। उसे तब बिल्कुल डर नहीं लगा।

मैं उठ बैठा। मैंने बीड़ी सुलगाई, कहा : 'प्यारी।'

वह भी बैठ गई।

'तू भी पीयेगी ?'

'ला पी लूँ।'

वह और मैं दोनों बीड़ी पीते रहे।

अब मैंने कहा : 'तू सिपाही के घर बैठेगी। तो यहाँ मेरे पास आया करेगी ?'

'तूने क्या कहा ?'

'क्यों ?'

'फिर से कह तो।'

'तू यहाँ आया करेगी न ?'

उसने मेरे बाल पकड़कर झिझोड़ दिये। जैसे उसे रोष हो आया था।

मैंने कहा : 'क्यों ?'

'आऊंगी किन्तु मेरे साथ चलेगा ?'

'वह मुझे रोटी देगा ?'

'मैं दूंगी तुझे। इसी सरत पर जाकर वहाँ रहूँगी। तू समझता है पराये मरद के घर रहते हुए मुझे डर नहीं लगता !'

'तुझे काहे का डर लगता है ?'

'मैं नहीं जानती। पर तू रहता है तो सांसत नहीं रहती।'

'अच्छा, मैं दिन भर अपनी कमाई कर लिया करूँगा।'

उसके स्वर में तो रोष था, पर आँखों में खुशी थी। जैसे उसे मेरी इज्जत की बात अच्छी लगी थी। वह मरद क्या जो लुगाई का खाकर रहे !

'हाँ, नहीं खाऊँगा।' मैंने कहा।

'तुम्हारी मरजी। मैं जोर नहीं देती। पर तुम्हारी इज्जत तो मैं करवाऊँगी ही।'

इसका अन्दाज हम दोनों में से किसीको न था। हम इतना ही जानते कि सिपाही में बड़ी ताकत होती है। वह राजा का आदमी होता है। वह सबसे घूंस लेता है। गाँव के लोग उससे डरते हैं। वह बड़ी जातों में उठता-बैठता है। वह जिधर जाता है उधर ही नट दौड़कर छिप जाते हैं। हम तो यही देखते आ रहे थे कि चाहे जब चाहे जिस नटनी, कंजरिया को पकड़ ले जाता है। हम सब उससे डरते थे क्योंकि वह थाने में पकड़ ले जाता था। वहाँ वह हमें चोर कह देता था। फिर हम लोग बेतों से पिटते थे। कभी-कभी गुड़ के पानी के छींटे दे दिये जाते थे जिससे चेंटे लग जाते थे और देही सूज जाती थी। फिर उसकी बात ही सच मानी जाती थी। हमें हमेशा गाली दी जाती थीं। ज्यादा किसीने सिर उठाया तो वह जेल की हवा खाता था। चक्की पीसते-पीसते उसकी धज्जियाँ उड़ जाती थीं। एक बार एक सिपाही से एक नटनी को कोई बीमारी लग गई थी। उसका इलाज बड़ी मुश्किल से हुआ था, सो भी किया था इसीला ने रूखड़ियों से।

न जाने कैसे इसी समय उसने पूछा : 'सुखराम ! तू तो रूखड़ियों के बारे में जानता है।'

'हाँ-हाँ।'

वह चुप हो रही।

मैंने कहा : 'क्यों पूछती है ?'

'अरे मैं सबसे कह दूंगी तू बड़ा इलाजी है। फिर सब तेरी खुसामद किया करेंगे, ठोड़ी में हाथ डालते फिरेंगे।'

मैंने खुश होकर उसका सिर थपथपा दिया। फिर मैंने उठकर पानी पिया। उसने बैठे-बैठे कहा : 'ला मुझे भी पिला दे।'

'उठ के पी ले।' मैंने कहा।

'पी लूंगी नासमीटे।' उसने मुस्करा कर कहा—'आज तू ही न मेरी जूती उठा दे।'

मैं खुश हुआ। मैंने उसे पानी पिलाया। फिर मैंने बीड़ी सुलगाई। वह मेरे पास आ बैठी। मैंने कहा : 'प्यारी ! आज की रात जगार में बीत गई।'

'अभी तो सूका* नहीं ऊगा।'

'तू मुझे एक गीत सुना दे।'

'कौन-सा ?'

'वही, जिसमें तू गाती है कि बिरहिन की आग सताये···'

'आज तो मैं तेरी बगल में हूँ। तू क्यों सुनना चाहता है ?'

'जानती है, आज की रात हमने कुछ नहीं किया।'

'मैं समझती हूँ जिन रातों किया था, वे अपनी न थीं। आज तू मेरा है। उससे कोई मन नहीं मिल जाता है। प्रीत तो मन की होती है।'

'अच्छा गाना गा दे।'

'तू मेरे संग ही गाना।'

उसने गाया : 'ऐरे मैं आग में जली जा रही हूँ, हाय मेरे बलम तू कहाँ चला गया। पहाड़ के धौ सूख गये हैं। ऐसे मेरी चाहना भी सूख गई है। पर मेरा हिया देख, इसमें क्या है ? तू पर्वत पै धूनी रमाए बैठा है। जोगी ! आ मेरे मन की धूनी तो देख जा !'

मैंने मोटे स्वर में गाया : 'तेरी धूनी मुझे जलाती है तो मन जलता है, यह धूनी जलती है तो तन गलता है। प्यारी ! तेरे बिना मुझे जोग भी नहीं सुहाता।'

उसने कहा : 'ओ जोगी ! जब भसम रमाई है तो मन लगा के समाध लगा। अब पीछे न हट ! नहीं तो सब लुगाइयां मुझसे कहेंगी कि अपने प्यारे को भेड़ा बना लाई। यह डायन जादूगरनी है।'

मैंने गाया : 'प्यारी ! दुनिया में कौन क्या है कोई नहीं जानता। कोई किसीकी जीभ नहीं पकड़ सकता। यह भसम नहीं है। तेरे गोरे अंगों की याद है। यह धूआं देख मुझे तेरे बालों की याद आती है। मैं तो जलकर मर जाऊंगा। कैसे करूँ, यह मैंने कैसी बेड़ी अपने आप अपने पावों में डाल ली है।'

वह गाने लगी : 'प्यारे ! मैं जानती हूँ, तुझे मुझसे प्रीत नहीं है। तुझे तो चमकती बिजलियों से सूनापन लग रहा है। तू जब मोरनी के पास मोर नाचता देखता है तो तेरी हूक उठती है। हिरनी के पीछे दौड़ता हिरन तेरा काम

* शुक्र तारा।

जगाता है। ओ काम के मतवाले ! तू मुझे प्रीत का धोखा क्यों देता है। तू तो फिर ऐसे ही चला जायेगा जैसे ये सावन के मेघ चले जायेंगे, फिर जब सरद आयेगी तब में और आस्मान दो ही तो धरती पर आंसू गिराने को रह जायेंगे ?'

मैंने गाया : 'मुझसे कसम ले ले प्यारी ! अब की सरद पून्यौ मैं तुझे दूध से निहलाऊंगा और चुल्लू-चुल्लू वह दूध बिखरेगा तो चांदनी फैल जायेगी। तू मेरी कामिनी कैसी सुन्दर है जैसे चंदा में से चीर के निकाली हो। मैं जोगी तो तेरे लिये बना हूँ प्यारी ! तू ही मेरी सब कुछ है।'

सुर गूँजते गये। वह पतली आवाज़ और मेरी मोटी साथ-साथ गूंज उठीं—'आज प्रीत की रीत का निबाह हो गया। वह गोरी कैसी जिसका बलमा साथ न हो। तलवार सबको काटती है, पर म्यान को नहीं काटती। लौ काठ को भसम करती है, पर काठ लौ को झुकाती नहीं, उठाती ही रहती है। ओ प्रीत के दीवानो ! यह बताओ ! प्रीत में ढोला जलता है कि गोरी जलती है ? कोई आज तक बता पाया है कि आग लकड़ी को पकड़ती है कि लकड़ी आग को पकड़ लेती है ?'

हमारे गीतों ने सबेरा कर दिया।

८

सुखराम ने कहा था :

'रुस्तमखाँ का मकान पक्का भी था, कच्चा भी। वह गांव का पुराना वाशिन्दा था। उसके पुरखे पुराने जमाने से ही गांव में रहते थे। वह बड़ा नमाज पढ़ने वाला आदमी था। पर हमेशा अफ़सरों की नाक का बाल बनकर रहता था। उसको बनियों से पैसा निकलवाने के हुनर में कमाल हासिल था। रजवाड़े के ठाकुरों को झुककर सलाम करता, पर मामूली ठाकुरों के सामने खाट पर बैठता। बामनों में गरीब देखा तो पंडित जी कहकर बंदगी करता, पर अमीर को ससुरा पालागन करता था।

मुझे उसे देखते ही नफ़रत होती थी। वह लम्बा और चुस्त था। उसकी

आंखों में चालाकी भरी रहती। वह देखते ही भाव जाता कि उसका आसामी कितने पानी में है। उसने एक बार फटे कपड़ों में आये रहमतअली रंगरेज के हर तरह से गिड़गिड़ाकर अपनी गरीबी को जताते देख ऐसी धौंस दी कि उस फटेहाल के पास से चालीस रुपये निकल आये। रुस्तमखाँ मूंछों पर ताव देता और उसको देखकर नटों के छक्के छूट जाते।

नट मौका पड़ता भीख माँगते, या गाँव के ठाकुरों के यहाँ शहद पहुँचाते। वे दवाइयाँ बनाते। मैं भी रूखड़ी वालों में मशहूर था। एक दिन मैंने एक पटवाली के नीले बिच्छू के काटे को झाड़-फूंक करके, रूखड़ी लगाकर उतारा था, तब से लोग मुझे जानने लगे थे।

आज जब प्यारी और मैं रुस्तमखाँ के दरवाजे की तरफ बढ़े तो मुझसे चला नहीं जाता था। मेरे पाँव रुके जाते थे, भारी हो गये थे। प्यारी घाघरा पहने थी। वह गंदा था। उसकी चोली भी फटी हुई थी। ओढ़नी में थेगलियाँ लग रही थीं। घूंघट काढ़े थी। मुझे लगा मैं खुद अपनी दुनिया को लुटाने के लिये जा रहा हूँ। पर प्यारी के सामने बोलने की मुझमें सकत नहीं थी।

मैं ठिठक गया। सामने चौंतरे पर जाकर बैठ गया। वह किसी पुरानी धरमशाला का था। प्यारी धूल-भरे दगरे पर बैठ गई।

'रुक क्यों गये ?' उसने पूछा।

'मुझसे नहीं चला जाता।'

'क्यों ?'

'मन नहीं करता।'

'तो मुझे भी नहीं जाने दोगे ?'

'तेरी मर्जी। मेरे रोके से क्या तू रुकेगी ?'

'अच्छा तू ठहर। मैं आती हूँ।'

वह चली गई। मैं बैठा-बैठा लेट गया और फिर सो गया। घंटा भर सोया होऊंगा कि मुझे एक लड़के ने आकर जगाया। वह बीड़ी पी रहा था। उसने कहा : 'क्यों रे ! तू है सुखराम नट ?'

'हाँ, क्या है ?' मैंने रुखाई से कहा।

'अरे ! तुझे जमादार ने बुलाया है। चला जा उड़के। कहा है, फौरन भेज दे।'

वह चला गया। मैं धीरे-धीरे पहुँचा।

दरवाज़ा पक्का था। फिर कच्ची जमीन पड़ी थी। पीछे एक छोटी-सी हवेली का-सा घर था। एक तरफ़ छप्पर में घोड़ा बंधा था। दूसरी तरफ एक और छप्पर था, जिससे रुस्तमखाँ मर्दाने का काम लेता था। और पौरी की एक कोठरी की आड़ में बाईं तरफ बाहर ही से दरवाजे वाला एक कोठा था, जिसके आगे छप्पर पड़ा था। चौथे कोने के छप्पर में भैंस बंधी थी। कुछ दूर पर उसका पड़ा खड़ा था।

मैं दरवाजे पर रुक गया। एक गेहुँए रंग की डोमनी बैठी थी। उसने कहा : 'चले आओ।'

मैं भीतर चला गया। वह बोली : 'भाग खुल गये। सरकार भीतर हैं। भीतर बुलाया है।'

मैं भीतर चला गया। दुमंज़िला घर था।

ऊपर साफ़ घाघरा, साबुत चोली और नई ओढ़नी पहने प्यारी बैठी थी। उसके नीचे जाजम बिछी थी। मेरी तो उसे देखकर आँखें फट गईं। उसके होठों पर पान की लाली थी। वह मुझे इतनी सुन्दर कभी नहीं लगी थी। और खाट पर रुस्तमखाँ लेटा था। मुझे देखकर बोला : 'आ गया सुखराम ? यह तो तेरी बड़ी याद करती थी। बैठ जा !'

मैं बन्दगी करके बैठ गया।

प्यारी ने सिर ढँक लिया और मुझे विजय से देखा।

रुस्तमखाँ ने कहा : 'औरत तेरी बफ़ादार है। कहती है, सरकार ! मैं तो तब रहूंगी, जब मेरा सुखराम भी यहीं रहेगा। मानती ही नहीं। मैंने कहा, अच्छी बात है। पर देख, अब यह तेरी मालकिन है। समझा ! नीचे के कोठे में तू रहेगा। भैंस का जिम्मा तुम पर !'

मुझे लगा मैं मुर्दा हो गया हूँ। मैं प्यारी का नौकर हूँ !!

मैंने कहा : 'सरकार ! गरीब आदमी हूँ। मुझ पर इतनी दया की है, यही बहुत है। भाग ने यह औरत मुझे दे दी थी। इतनी खूबसूरत थी कि इसे तुम जैसों के घर जन्म लेना था, जहाँ आराम पा सके। भगवान ने सुन ली है। ठिकाना लग ही गया है। मुझे हुक्म दें तो चला जाऊँ। मैं दूसरी गृहस्थी बसा लूंगा।'

प्यारी ने होंठ काटे। कहा : 'तू नहीं जायेगा। समझा ?'

'तो क्या मैं तेरी चाकरी करूँगा हरामजादी ?' मैंने गुस्से से कहा।

रुस्तमखाँ बैठ गया। उसने कहा : 'अब मत कहियो कुछ कुत्ते। मार-मार-कर खाल उधेड़वा दूंगा।'

'उधेड़वा दो सरकार!' मैंने कहा : 'पर जीते जी मुझसे यह न होगा।'

प्यारी उठी। उसने पास आकर कहा : 'तो मैं यहाँ नहीं रहूँगी। सरकार! अपने कपड़े उतरवा लो। यह मुझे चैन से नहीं रहने देगा। रोज आऊंगी, चली जाऊंगी। तुम्हारा तो नुकसान नहीं होगा, पर यह मुझे सुखी नहीं देख सकता। यह तो जंगल में ही मुझे सुलाना चाहता है। तो यही सही।'

रुस्तमखाँ चक्कर में पड़ गया। प्यारी ने अपने पुराने कपड़ों को हाथ लगाया। मैंने कहा : 'इन कपड़ों को मत छू प्यारी! तुझे सौगन्ध है मेरी। इन्हें छुए तो तू मेरी ल्हास छुए।'

प्यारी का बढ़ा हुआ हाथ रुक गया। उसकी आँखों में आंसू आ गये। कहा : 'तू चाहता क्या है दईमारे?'

'मैं चाहता हूँ,' मैंने कहा : 'तू यहीं रह।'

'और तू नहीं रहेगा?'

'नौकर बनकर नहीं।'

'तो तू यहाँ सरकार के रहते मेरा खसम बनके रहेगा? तुझे जरा भी सरम नहीं। बड़े आदमियों की इज्जत का तुझे विचार ही नहीं। सरकार की इसमें नाक न कट जायेगी?'

रुस्तमखाँ ने बीड़ी सुलगाई। एक मुझे दी। मैंने भी सुलगा ली और धूंआ छोड़कर आँखें मींचकर सोचने लगा। मैंने कहा : 'तू ठीक कहती है प्यारी! यह नहीं हो सकता। एक म्यान में दो तलवारें एक साथ नहीं रह सकतीं। जब हम कमीनों में ही जाहिरा यह नहीं हो सकता तो आप तो फिर बड़े आदमी हो। यहाँ वह कैसे हो सकता है।'

मैंने आंखें खोलीं। रुस्तमखां खुश नज़र आया। उसकी शकल पर एक चालाकी उभर आई थी।

मैंने दोनों हाथ फैलाकर कहा : 'सरकार, आप न्याब करें। बताओ मैं कैसे किसीको मुँह दिखा सकूंगा। आप ऐसा करो हजूर! मुझे चोरी लगाकर थाने में डाल दो। मैं जेल में दिन काट लूंगा।'

इस समय रुस्तमखाँ ने प्यारी की तरफ देखा, जिसका मुँह मेरी बात सुन-कर सफेद पड़ गया था। रुस्तमखाँ ने सिर हिलाकर कहा : 'नहीं! सुखराम!

ऐसे कैसे हो सकता है। मैं बेइन्साफी नहीं कर सकता। बेईमानी तो मुझे छूकर नहीं गई। तूने कुछ किया नहीं, तो कैसे थाने में बंद कर दूँ तुझे ?'

प्यारी मुझे देख नहीं रही थी, जैसे जला देना चाहती थी। उसकी आँखों में अंगारे भभक उठे थे। मैं उसको देख नहीं सकता था। मैंने उस तरफ़ से आँखें हटा लीं।

'सरकार !' मैंने कहा : 'आप मुझे दो दिन को थाने भेज दो। फिर रहम करके मेरी बोली लगवा दो। रोज हाजरी दे जाया करूंगा। आपकी भी रह जायेगी, प्यारी की भी रह जायेगी। सरकार ! मुझ पर से भी बोझ उतर जायेगा।'

प्यारी खुश दिखाई दी। पर उस वक्त हम दोनों को नहीं सूझा कि क्या कर रहे हैं हम। मैं अपने को रुस्तमखाँ का बे पैसे का गुलाम बना रहा था। प्यारी ऐसे जाल में फँस रही थी जिससे निकलने का कोई रास्ता नहीं था। अगर प्यारी भागती तो मैं जिन्दगी भर जेल में सड़ता। पर उस वक्त हममें कोई सूझ नहीं थी।

रुस्तमखाँ मुस्कराया। उसने सिर हिलाया जैसे मछली फँस गई। उसके भीतर से शायद यह डर मिट गया था कि अब मैं प्यारी को कुछ दिन को उसके यहाँ बिठाकर फिर चोरी करके भाग निकलूंगा।

उसने कहा : 'अच्छा सुखराम ! यह हो सकता है। तुझे दुनिया दिखाने को पहले मेरी भैंस खोलनी होगी। फिर सब काम हो जायेगा।'

दूसरे दिन ही मैं उसकी भैंस हाँक ले गया। गाम बाहर मुझे गिरफ्तार किया गया। लोगों ने मुझसे हमदर्दी की कि बिचारे की कैसी दसा आई है। औरत बेबफ़ा निकली और अब जेल की नौबत आ गई। टीड़ी के अनारचन्द बनिये के मैंने पांव पकड़े। वह कटऊ का घी बेचता था। उसने जाकर मेरी सिफारिश की तो रुस्तमखाँ ने बोली लगवा दी। मेरा रास्ता खुल गया। लोग मुझ पर तरस खाते, मैं मन ही मन उन पर हँसता। वे प्यारी को बेबफ़ा कहते, मैं उससे और भी अच्छा समझता। दुपहर गया रात तक वहीं रहता। प्यारी मुझे पौरी में बिठाकर अपने हाथ से अच्छे-अच्छे खाने खिलाती। वह खाना इतना अच्छा था कि मैं धीरे-धीरे सुख पाने लगा और भैंस का भी काम कर देता। पर अब मेरी एक भूख बढ़ गई।

देह से प्यारी मुझसे दूर हो चली थी। हमें पहले की-सी आज़ादी नहीं

थी। हो भी नहीं सकती थी। प्यारी इतनी साफ रहती कि मैं उसके सामने अपने को गन्दा महसूस करने लगता। जब कभी वह मेरे सीने पर सिर रखती तो मुझे उसके बालों में चमेली के तेल की खुशबू आती।

उसका गजब का निखार था। जितनी वह मुझसे दूर हुई जाती थी, उतना ही मेरा मन उसकी तरफ़ खिंचता जाता था। एक सबसे बड़ी चीज़ जो मुझे उसमें मिलती, वह थी उसकी शरम। वह अब लजाती थी। उसकी चाल में अब डर नहीं रहा था। हँसती थी तो पहले-सी हा-हा करके नहीं, वह दांत निकालकर हल्की आवाज़ करती।

उसके नाक में बुल्लाक लटकने लगा था। मुझे उसे देखकर एक अजीब-सी बात लगती। प्यारी के बदन पर सोना आ गया था। उसकी दमक से वह अब कितनी अच्छी लगती थी। वह पान की पीक से रंगे होंठ और मिस्सी से काले पड़े मसूड़ों से कितने बड़े घर की-सी औरत लगती थी यह मैं अब समझ पाया था।

मैं दुपहर तक वहाँ पहुँच जाता। उस वक्त प्यारी घर में अकेली रहती थी। मैं शाम को चला जाता और, और, अपने ही डेरे में सो रहता। मेरे पास कुछ और करनट आ बसे थे। हम सब घुल-मिल गये थे। यह लोग यहाँ सिर्फ़ चोरी करते थे, औरतें पराये मर्दों को फंसाती थीं। इन्हीं में एक कजरी थी। ठीक प्यारी के बराबर थी। उसका आदमी लोहपीटों की तरह काला था। उसे शराब इतनी ज्यादा पीने की आदत थी कि बयान नहीं; तिस पर अफ़ीम भी चुराकर लाता था और शाम का पड़ा सबेरे उठता था। उसे जूए से मतलब था, और पैसे की ज़रूरत होती तो वह कजरी के सामने हाथ फैलाता। कजरी गोरी तो थी, पर उसके गाल कुछ ज्यादा सुते हुए थे। वह कमर के ऊपर हल्की, और नीचे बहुत भारी थी। उसकी आँखें छोटी पर लम्बी थीं। नाक में बुल्लाक पहनती, आँखों में काजर पारती। बदन पर एक ढीली कुर्ती पहनती। उसको चलते में सदा ही ठुमकने की आदत पड़ गई थी। मैंने उसे कभी उदास नहीं देखा। हमेशा हँसती ही रहती थी।

अब प्यारी के पास जाने की मैं कोशिश करता तो वह बड़ी गम्भीरता से पीछे हट जाती और मुझे अपना शरीर नहीं छूने देती। मुझे धक्का लगाता। मैं सोचता, क्या सचमुच प्यारी अब सिपाही के घर बैठकर मुझे छोटा आदमी समझने लगी है, क्यों वह मेरे पास नहीं आती? अपने हाथ से खाना

परोसती। हँसती, पर उसके होंठों पर एक फीकापन रहता, मुस्कराती तो दर्द कोनों पर कांपने लगता। मैं देखता, वह मुझे एकटक बिना पलक झपकाए देखा करती।

पूछता : 'वहीं सोता है ?'

मैंने कहा : 'वहाँ और भी लोग आ गये हैं।'

प्यारी पूछती रही। एक-एक बात पूछ ली। फिर कहा : 'प्यारी के रहते कजरी से नाता न जोड़ना ! मै मर जाऊँगी।'

मैंने कहा : 'पर मैं भी तो आदमी हूँ। तू मुझे अकेले में भी छूने नहीं देती अपने को। ऐसी तू सिपाही की हो गई है।'

प्यारी की आँखों में आँसू आ गये। मैं समझा नहीं। उसने उन्हें पोंछ लिया और कहा : 'यह भाग की बात है सुखराम। तू इसे छोड़। मैं किसीकी नहीं हूँ। तेरी ही हूँ। तेरी ही।'

मैं इस बात को समझ नहीं सका। पर बात मेरे भीतर खटक गई। मेरे पड़ोसी करनट खूब मस्त रहते। क्योंकि वे मेरे साथ थे, और रुस्तमखाँ की दया थी, उनसे कोई कुछ न कहता। बल्कि दरोगा जी को जरूरत पड़ती तो इनमें से किसीको बुला लेते और सिपाहियों के ज़रिये समझा-बुझाकर बनियों की चोरी करवा देते। माल बँट जता। गांव बाहर चामड़ के पीछे जूए का भी एक अड्डा पुलिस ने बनवा दिया था, जिसकी नाल का तीन चौथाई दरोगा जी के हाथ में जाता था। कहा जाता था कि राजा के यहाँ यह दरोगा खवास था। इस नाई से सरकार खुश हो गये। उन्होंने कहा : 'माँग। क्या माँगता है ?' खवास ने कहा : 'अन्नदाता। एक हवेली चाहिये। आपके द्वार से कुत्ते भी पेट भर के जाते हैं। फिर मैं तो आपका चरन-सेवक हूँ।' राजा ने कहा : 'अच्छी बात है, हवेली बना ले। जा तू भी पोल में घुस जा।' और उसे दरोगा बना दिया। और वह सचमुच एक साल में बड़ी हवेली का मालक बन गया। किसानों और कास्तकारों से खूब पैसे ऐंठता था। कितनों ही को उसने फौजदारी की मामूली बातों में थानों में सड़ाया। एक के खून निकल आया, पर उसने दूसरी तरफ के लोगों से रिश्वत लेकर रपट नहीं लिखी। कहा, डाक्टरी मुआयना कराओ। अस्पताल गांव से सात मील था। वह अस्पताल चला। जेठ की चटकती धूप थी। राह में बेहोश हो गया। जब साथ के डाक्टर के पास ले गये तो डाक्टर ने फीस माँगी। घूंस माँगी। वे लोग न दे सके तो

उसने लिखा, मामूली चोट लगती है। वह आदमी मर गया। दरोगा की हवेली के आगे का पच्चीस-पच्चीस गज थान पत्थर की पटियों से पक्का हो गया।

गांव छूटा था तब अधूरा किला दूर हो गया था। इसीला और सौनो का साथ छूटा तो प्यारी का सहारा था। अब प्यारी के बाद घोड़ा और भूरा बस दो पास रह गये थे।

रात हो गई थी। मैं अपने तम्बू में लेटा था। बाहर किसीकी पगचाप सुनाई दी। देखा कजरी थी।

'क्या है कजरी ?' मैंने लेटे-लेटे कहा।

'लो खालो।' उसने मेरे हाथ पर चार मोतीचूर के लड्डू रख दिये।

मैं अब खाने का लालची नहीं था।

'तू क्यों नहीं खाती ?' मैंने पूछा।

'मैं चार खा चुकी हूँ।'

'इतने आ कहाँ से गये ?'

'आज हम बड़े वाले गाँव गये थे, वहाँ गूजरों का कोई ब्यौहार था। बँट रहे थे। बैठ गये। मिल ही गये।' उसने स्वर बदलकर कहा : 'क्यों अच्छे हैं न ?' फिर उसने कहा : 'खाये क्यों नहीं ?'

मैंने उसके आदमी के लिये कहा : 'कुर्री को दे दे न ?'

'अरे वह नसे में पड़ा है। मीठा खायेगा तो झगड़ा करेगा। सो गया है। अब तो सबेरे ही उठेगा। उस कमबखत का तो नाम भी न ले। तू खाले।'

'कजरी, मेरा पेट भर गया है। जगह नहीं है।'

'तुझे मेरी कसम, तू उठके तो बैठ,' कहकर वह मेरी खाट पर बैठ गई और उसने मुझे पकड़ कर बिठाया। और मेरे कंधे छूकर उसने मेरे मजबूत सीने पर हाथ फेरा और फिर कहा : 'तेरे लिये मैं रोज मिठाई लाया करूँगी। सफेदी भी करे तो अच्छे मकान पै। क्या टूटे खंडहर का सजाना।' और उसने फिर अपना हाथ मेरे बाजुओं पर रखा और मेरा मांस दबाया। वह उस सख्त मांस को दबा न सकी तो उसपर उंगलियाँ गड़ा दीं और कहने लगी : 'औरत की दुनिया में क्या भरोसा ? तेरी लुगाई इतने पै भी तुझे छोड़ उस सिपाही के जा बैठी।' और उसने मेरी मोटी गठीली सख्त गर्दन पर उंगलियाँ फिराईं। मैंने लड्डू चखा। अच्छा था।

मैंने कहा : 'ले दो तू खा ले।'

'तू ही खा ले सब।'

'अरी खा भी ले।' मैंने कहा। उसने मेरी ओर मुँह खोल दिया। मैंने लड्डू बढ़ाये। मुझे ध्यान ही नहीं आया। जब मैंने उसके मुँह की तरफ हाथ न बढ़ाया तो वह खिसिया गई। उसने मुँह मोड़ किया। मैंने सोचा बिचारी खिलाने आई है। इतनी चाहना है तो मुझे इसकी बेइज्जती नहीं करनी चाहिये। मैंने उसका मुँह मोड़कर एक लड्डू उसके मुँह में धर दिया। मुँह भर गया। वह हँस दी। और लड्डू-भरे मुँह से उसने कहा : 'है अच्छा ?'

'क्यों नहीं।' मैंने कहा।

दूसरा लड्डू भी खा चुकी। मैं उठने लगा।

'कहां जाते हो ?' उसने कहा।

'पानी पी लूँ।'

'मैं लाती हूँ। मेरे रहते तुम उठोगे ?'

वह उठ भी गई। पानी ले आई। मैंने लोटे में मुँह लगाकर पी लिया। फिर उसने पिया और मैं लेटा तो बोली : 'हुक्का भर लाऊँ ?'

मैंने कहा : 'अरी मेरे पास बीड़ी है।'

'अच्छा ठहरो। अभी आती हूँ,' कहकर वह चली गई। दो मिनट में लौटकर आई तो हाथ में एक सिगरेट का पाकिट था।

बोली : 'लो यह पियो।'

एक पैसे की चार वाली सिगरेटें थीं।

मैंने कहा : 'तू यह सब कहाँ से ले आती है ?'

'हाट में मिली थी; मेले में। पानवाले ने दी थी। चार पैसे दिये थे मैंने पहिले महीने।'

'फिर तूने पी नहीं ?' मैंने पूछा।

'दो पीली थीं। अकेले फिर सिगरेट पीने में मजा नहीं आया। सो कुर्ती से छिपाके रख दी थीं। हम-तुम पियेंगे।'

वह मेरा कितना खयाल रख रही थी ! मुझे अचरज हुआ। हम दोनों ने एक-एक सिगरेट सुलगाई।

कजरी ने कहा : 'सिगरेट पीने में खाँसी नहीं आती मुझे। बीड़ी नहीं मिलती !'

'सिगरेट हल्की होती है।' मैंने कहा।

मैंने जमुहाई ली।

बोली : 'तुझे नींद आ रही है ?'

'नहीं,' मैंने कहा।

'नहीं क्यों ? तू सो जा, मैं तेरे पांव दबा दूंगी।'

'क्या कहती है कजरी ! कुर्री जानेगा तो ?'

'क्या कर लेगा मेरा मर्दुआ वह ? एक तो कमा के खिलाती हूँ फिर काहे की दब्बारी सहूँगी उसकी ?'

'मारेगा तुझे !' मैंने कहा।

'पिट लूंगी, पीटा जायेगा, मैं भी मारूँगी। पर तू मुझे पिटते देखकर चुप रह जायेगा ?'

मैंने कहा : 'नहीं तुझे बचाऊंगा।'

'बस ?' उसने कहा : 'यह नहीं कहा कि कुर्री को दौंच के धर दूंगा।'

'मैं डरता था। क्या जाने तेरा आदमी है, बुरा मान जाती।'

उसने पलटकर कहा : 'तभी तो तेरी लुगाई छोड़ गई तुझे। तू बोदा है।'

मैं चोट खा गया। और सोचने लगा।

उसने कहा : 'तो जाने दे। गम क्यों करता है ! चली गई चली गई। बेबफा थी। तू दूसरी क्यों नहीं कर लेता ?'

'नहीं कजरी ! वह मुझसे बड़ी मुहब्बत करती है।'

'इसमें क्या शक है', कजरी ने कहा : 'आप तेल से पांव धोती है, तू बालों में पानी डालता है। वह गद्दों पर सोती है, और तू···' उसने हँसकर कहा : 'यहाँ भूरा के पास सोता है। दोनों ही तुम दो तरह के कुत्तों के पास होते हो। यह वाला बफादार है, वह कटखना है।' उसने स्नेह से मेरे सिर पर हाथ फेरा और अपनी उंगलियों को मेरे बालों में बार-बार उलझाती रही।

'तुझे उसकी बहुत याद आती है ?' उसने पूछा।

'बहुत।' मैंने कहा।

'अब तू उसे नहीं भूलेगा ?'

'शायद नहीं।'

उसने एक लम्बी सांस ली।

'उसे गये कितने दिन हुए ?'

'तीन महीने ।'

'तब से तू अकेला रहता है ?'

'हाँ ।'

'जाता है वहाँ तो मिलती है ?'

'हाँ, रोज ।'

'तभी उसने तुझे बांध रखा है । मैं समझ गई ।' उसने सिर हिलाया । फिर कहा : 'बड़ी जहरीली नागिन है कोई वह । दो घोड़ों पर चढ़ती है एक साथ । तुझ पर हुकम चला रही है, हाजरी लगवा दी है सुसरी ने ।'

'गाली न दे उसे कजरी ।' मैंने कहा—और बीड़ी निकाली ।

'कसम है' उसने कहा, 'यह पियो तुम ।'

उसने सिगरेट मेरे सामने धर दी और कहा : 'यह सब तुम्हीं पी लो ।'

'पर तू तो बड़े चाव से अपने लिये लाई थी ?'

'पर अब क्या तुम्हें पिलाने में मुझे चाव नहीं है ?'

'तेरी मरजी ।' मैंने सिगरेट सुलगा ली ।

मेरे मुँह से धुंआ निकलते देखकर उसने कहा : 'तुम्हारे दिल से भी ऐसा धुंआ निकलता होगा उसके चले जाने से !'

'क्यों ?' मैंने पूछा ।

'अरे वह कितनी खराब निकली । तू तो यह समझता होगा कि दुनिया की हर औरत बेबफा होती है ?'

'नहीं । मैं तो ऐसा नहीं सोचता ।'

'नहीं सोचता न ?' कजरी ने कहा ।

'नहीं', मैंने कहा : 'तू प्यारी को बुरा कहती है ? पर वह मुझे देखे बिना चैन नहीं लेती । देखने को बुलाती है मुझे ।'

'बस देखकर ही लौटा देती है ।'

'हाँ ।'

'देखकर ? बस ??'

'क्यों तुझे विस्वास नहीं होता ?'

'होता भी हो तो मैं कर नहीं सकती । करना नहीं चाहती ।'

'क्यों ?'

'फिर तुझे इच्छा नहीं होती ? तू भी तो आदमी है ?'

मैंने जबाब नहीं दिया। वह कहने लगी : 'कुर्री बुरा है। काला है। गंदा है। कमज़ोर है। उसे छोड़ने की बात तो ठीक है। पर तू गोरा है, ताकतवर है और देखने में कितना अच्छा लगता है। मैंने ऐसा एक ठाकुर का कुँवर देखा था। देखा था तो ठगी-सी रह गई थी। तुझे भी कोई औरत छोड़ सकती है तो उसका दिल पत्थर है पत्थर ! तूने कहा नहीं ?'

'नहीं,' मैंने कहा : 'वह कहती है कि अगर मैं किसी और औरत से संबंध जोड़ूँगा तो वह मर जायेगी।'

'वाह !' कजरी ने कहा : 'क्या कहने इस मुहब्बत के ! मुझे तो तू ही उल्लू का पट्ठा दिखाई देता है।'

'क्यों ?'

'क्योंकि तू इसे मानता है। तेरी जगह मैं होती तो उसके मुँह पर इतने जूते लगाती कि दारी की बत्तीसी झड़ जाती।'

'क्या कहती है कजरी।' मैंने चौंककर कहा।

'क्यों, क्या गलत कहती हूँ ?' उसने पूछा।

मैंने धीरज से कहा : 'मरद में धीरज होता है, वह सह सकता है। औरत कमजोर होती है, वह सह नहीं सकती।'

'अरे चल, बड़ा धीरज वाला बन के मेरे सामने बातें बना रहा है।' कजरी ने बांये हाथ को हवा में झटका देकर कहा : 'औरत कमजोर होती है ! अरे औरत का धीरज तू देखेगा ? तेरी सात पीढ़ी के मरद पांव धो-धो के पी गये औरत के, समझा ! ऐसे ही धीरज के होते तो औरत के जाये न होते। वह दरद चले तो मरद चकरघिन्नी हो जाये। समझा ! तू उसका गुलाम है। बना रह। पर मुझसे हाँ में हाँ मत मिलवा। मैं नहीं हूँ तेरी तरह बोदी कि अपनी उमर यों ही गँवा दूँ।

'तो तू चाहती क्या है कजरी ?' मैंने कहा।

'तू अभी तक नहीं समझा ?' कजरी ने कहा।

'नहीं, तूने कहा ही क्या ?'

'तो तुझसे कहना ही बेकार है', कजरी ने चिढ़कर कहा और बोली : 'तुझे तो उसने कारा कम्मर बना दिया है सूरे ! तुझ पै अब कोई रंग नहीं चढ़ेगा। सो तड़प। मैं तो चली।'

पर मैंने उसको दुख पहुँचाना ठीक नहीं समझा। मैंने कहा : 'बैठ कजरी।'

वह बैठ गई। मैंने कहा : 'कजरी !'

'क्या है ?'

'तू कल हाट जायेगी ?'

'चली जाऊँगी। तू भेजेगा ?'

'हाँ देख, यह ले', मैंने हाथ बढ़ाकर एक कुल्लड़ उठाया और उसमें से पांच आने निकाले और उसके हाथ पर रखकर कहा : 'तू कल रबड़ी ले आना।'

उसने मेरी तरफ देखकर दाँत पीसे और पांच चौका बीस तांबे के टुकड़े, पूरी कोड़ी, मेरे मुंह पर फेंककर मारी। मेरी आँखें मिच गई। पैसे अन्धेरे में बिखर गये। मेरे मुँह पर चोट-सी लगी। मैंने हाथों से मुँह को दबा लिया।

'तू मुझे लड्डुओं के दाम दे रहा है बेवफा के गुलाम ?' उसने फुंकारा : 'तू समझा है कि मैं भी तेरी चहेती की तरह हूँ ! तू उसके टुकड़ों पै पल के साहूकार हो गया, और मेरी जान को ?'

फिर मेरे हाथों के बीच में हाथ डालकर मेरा मुँह सहला कर कहने लगी : 'लगी तो नहीं तेरे।'

'नहीं', मैंने मुस्कराकर कहा : 'तुझे गुस्सा आ गया।'

'आयेगा नहीं ? इससे अच्छा तो तू मुझे खूब कूट लेता।'

'तब तू खुश रहती ?' मैंने पूछा।

'क्यों नहीं ? तेरा हाथ तो मेरी देह से लगता !' एक भींगी हुई लम्बी साँस लेकर उसने कहा। मुझे अब चाह हो रही थी कि मैं कजरी की उदासी दूर कर दूं, पर प्यारी याद आ जाती थी। वह मेरे लिए इन्तज़ार करती है। पर वह मुझसे दूर हो गई है। दूर हो गई है। वह अब हम में से नहीं है। वह मुझे अपने आपको छूने नहीं देती। वह मुझे अपने से अलग बिठाती है। बस खाना खिला देती है। जैसे कोई अपने कुत्ते को भर पेट खाना खिलाकर चाहता है कि वह उसके सामने दुम हिलाया करे। वह मुझे टुकड़े डालकर यह चाहती है कि मैं सानी के लालच में गैया की तरह लौटकर थान पर आ जाया करूँ, पर मुझे हरया नहीं बनने देना चाहती। वह अपनी ही सोचती है। मेरा उसे क्या ध्यान है ?

बाहर भूरा गुर्रा रहा है। फिर चुप हो गया है। हवा फिर भी काट रही है। आस्मान में तारे छा रहे हैं। सन्नाटा छाया हुआ है। दूर-दूर तक अंधेरा

है । यह छोटा-सा डेरा, कजरी और मैं, और चारों तरफ़ के डेरों में और सोते हुए लोग ।

कजरी ने कहा : 'क्यों सुखराम, एक बात कहूँ ?'

मैंने कहा : 'कह तो ।'

'बता देगा न ?'

'जरूर ।'

'अच्छा बता, मैंने तुझे मारा तो तूने मुझे पलट के क्यों न मारा ?'

'तूने गलत समझकर मारा था कजरी । मेरा मतलब वह न था । मैंने तुझे खुश देखा । वह तेरी खुशी मुझे अच्छी लगी थी । मैंने उसे फिर से देखने के लिए तरकीब सोची थी ।'

वह जैसे इसे सह नहीं सकी । उसकी आँखों में पानी भर आया । उसने कहा : 'तू मुझे खुश देखकर खुश होता है ?'

मैं जवाब नहीं दे सका ।

'उसने आतुरता से कहा : 'मुझे बता दे सुखराम !'

'होता हूँ', मैंने कहा ।

'तू बहुत अच्छा आदमी है', कजरी ने कहा : 'आदमी अच्छे बहुत कम होते हैं । औरत माँ बनकर कम से कम अपने बच्चे के लिए दुनिया में अच्छी हो जाती है, पर मरद दुनिया में बहुत ही कम अच्छे होते हैं । तू भी अच्छा आदमी है । तभी तू प्यारी के जुलम सहता है । तू बड़ा भोला है ।' कजरी ने आजिजी से पूछा : 'सुखराम ! मैं तेरे पास आके रोज रात को यहां बैठ जाया करूँ ? तुझसे बातें कर जाया करूँ ? तुझे बुरा तो नहीं लगेगा !"

'नहीं ।' मैंने कहा । मुझे धक्का लगा ।

कजरी ने कहा : 'मेरा बुड्ढा बाबा भी बड़ा अच्छा आदमी था । वह मुझे कहानियाँ सुनाया करता था । तू कहानियाँ-किस्से सुनाना नहीं जानता ?'

मुझे गुस्सा आ गया । मैंने उसका हाथ पकड़कर दबाया । उसने हँसकर कहा : 'जोगी है तू ! है न ? पर मुहब्बत का मारा जोगी है ? मेरे पास एक तोता था । वह भी बड़ी राम-राम करता था ।'

मैं अब अपने को सम्भाल नहीं सका । मैंने उसका हाथ मरोड़-सा दिया तारे ढल चुके थे ।

उसने कहा : 'तू चक्कू नहीं है, दरांत है । फल तुझ पै आके गिरे तब भले

ही कट जाये, वैसे अपने आप चक्कू की तरह तू फल काटना नहीं जानता।'

'तू बड़ी चंट है कजरी।' मैंने कहा।

'चंट हूँ? अरे मुझे यही तो ताज्जुब होता था। ऐसा हो कैसे सकता है?' मैंने देखा वह बहुत खुश थी।

उसने कहा : 'अब जाऊँ? कुर्री को होश आता होगा।'

'तू डरती है?'

'डरती है मेरी जूती।' उसने कहा : 'सच कह, न जाऊँ?'

'चली जा। कल आयेगी?'

'पैसे दे दे, रबड़ी ले आऊँगी कल।'

'अब अन्धेरे में पैसे ढूँढेगा कौन?'

'अच्छा फिकर न कर। मैं लाऊँगी तेरे लिये।'

'तू क्यों खिलाना चाहती है मुझे!' मैंने पूछा।

'मैं क्या चाहती हूँ। दुनिया में हर औरत मरद के लिए चूल्हा क्यों फूंकती है! खिलाती है, पिलाती है, पालती है। मरद कुत्ता होता है सुखराम, खिलाने वाले हाथ को चाटता है।'

'चल कुतिया!' मैंने चिढ़कर कहा।

वह हँसी और खुश-खुश-सी, 'कल आऊँगी' कहकर चली गई।

९

सुखराम ने कहा था :

'प्यारी की हुकूमत अब शुरू हुई। एक रात निरोती बामन के घर में चुपचाप आग लग गई और उसकी औरत को पुलिस ने हिरासत में ले लिया। उसके कोई बच्चा नहीं होता था। सनीचर का दिन था। आग लगी तो यह कहा गया कि इसने बस्ती को जला देने को आग लगाई थी। कहा जाता था, जो इस तरह सात सनीचर जगह-जगह आग लगाती है, उसके बच्चा हो जाता है। पर यह किसीको भी पुलिस ने कहने नहीं दिया कि टोटका दूसरों के घर पर ही उतरता है अपने घर पर नहीं।

दूसरे हफ्ते खबर मिली कि दो ठाकुरों को हिरासत में ले लिया गया है। उन्होंने लगान नहीं दिया था। पता चला सरकार ने उनकी जमीनें नीलाम पर चढ़ा दीं और वे सड़क के भिखारी हो गये।

तहसीलदार इकबाल बहादुर का इकबाल दूर-दूर तक फैलने लगा। जब मैं प्यारी के सामने बैठा तो वह खाट पर बैठी थी। वह पान खा रही थी।

उसने कहा : 'तूने कुछ सुना।'

'क्या ?' मैंने तलाश किया।

'निरोती के घर में आग लग गई और ठाकुरों को मैंने सड़क का भिखारी बना दिया।' वह डरावनी हँसी हँसी। उसमें बड़ा घमंड था, बड़ी झुलस थी, जिससे मैं जलने लगा।

मैंने कहा : प्यारी ! वे बाल-बच्चे वाले लोग हैं। अब क्या करेंगे ? उनकी औरतें क्या करेंगी ?'

'जो मैं करती थी। दुनिया में एक नहीं, कई सिपाही हैं। हुकम उसका ही चलता है मेरे राजा, जो गद्दी पर बैठता है।'

मुझे कुछ अजीब-सा लगा। उसमें कितना ज़हर भर गया था। उसने मुझ-से कहा : 'तुझे तो किसीसे बदला नहीं लेना है ? बता दे मुझे। उसको भी बराबर करा दूँगी।'

'लेना है।' मैंने कहा।

'बता कौन है ?'

'बता दूँगा पर बदला ले सकेगी ?'

'तू कह तो।'

'मेरे दो दुसमन हैं। एक वह बड़ा जमींदार जिसने मुझे पिटवाया था, दूसरा वह दरोगा जिसका तबादला हो गया, जिसके पास तू गई थी जब उसने मुझे थाने में बन्द कर दिया था।'

प्यारी का मुंह स्याह पड़ गया। उसने कहा : 'तू मुझे चिढ़ा रहा है ?'

मैंने कहा : 'चिढा नहीं रहा हूँ। बता रहा हूँ कि तू अभी हाथी तो क्या, घोड़े पर भी नहीं बैठी, गधे से खच्चर पै चढ़के ही तुझे इतना घमण्ड है ? जो मुड्डु हैं उन पर तू हाथ उठा सकती है ! बोल ! कल तेरा यह शेरा रुस्तमखाँ

पीपल के पेड़ से टँगा दिखाई देगा। चींटी मसलके पहाड़ की तरफ़ मत देख प्यारी ! तू अन्धी हुई जा रही है।'

प्यारी ने सिर झुका लिया। मैंने कहा : 'जुलम के पांव कच्चे होते हैं। जिस-जिसने अत्याचार किये हैं वे कितने दिन रहे हैं ? लोग कहते हैं, रावन मारा गया। उसने तीनों लोक जीत लिये थे। हिरनाकुस के सामने भगवान औतार लेकर आये थे। कोई अमर नहीं हो जाता। फिर तू काहे को पाप मोल ले रही है ?'

प्यारी ने आँसू पोछे। कहा : 'तो मैं यहाँ तुझसे पूछ ही के तो आई थी ?'

'मैंने क्या जाना था तू यह सब करेगी ?'

'मैंने तो तुझसे आने के पहले ही कह दिया था।'

'मैं समझा था तू इज्जत चाहती है। गदेलों पै सोना चाहती है।'

'गदेले मुझे हराम हैं। पान खाती हूँ तो पीक न थूककर लहू उगलूं, जो मैंने झूठ कहा हो। मेरा गदेला तो तू था। था नहीं, तू ही रहेगा भी।'

'फिर क्या था जो तुझे यहाँ खेंच लाया ?'

'तेरा आराम।'

'चल-चल।' मैंने कहा : 'मुझे ही सींग दिखाये और मेरी ही गैया !'

वह मेरी ओर अपलक होकर देखती रही। फिर उसने धीमे से कहा : 'आज मुझे तेरा सुर बदला हुआ लगता है। बता सकता है क्यों ?'

'तू कितनी बदल गई है यह भी तैंने सोचा ?'

'मैं बदल गई हूँ। भला कह तो मैं क्या बदल गई हूँ ?'

'तू कहती है तू मेरी है।'

'हूँ।'

'पर कभी मुझे छूने भी नहीं देती अपने को।'

'मेरा दिल तो तेरा है।'

'तू दिल ही तो नहीं है, मेरी लुगाई भी तो है ?'

वह जवाब न दे सकी। मैंने गुस्से से कहा : 'उसके लिये तू अब बड़े घरों की इज्जत रखने लगी है। रुस्तमखाँ जो है। वह सिपाही है ! उसके साथ हुकूमत है। पर मेरे हाथ भी कटार है प्यारी ! जानती है। ऐसे दस रुस्तमखाँ की बोटी-बोटी करके चील-कौओं को खिला सकता हूँ। तू समझती है कि मैं तेरा नौकर हूँ। तू मालकिन की हैसियत पा गई है ? मैं कभी तेरा यह दुरंगा

खेल नहीं सह सकता। मैं तुझे सूरत भी नहीं दिखाऊंगा। कजरी ठीक कहती थी.....'

उसने काटकर पूछा : 'क्या कहती थी वह ?'

'वह यही कहती थी, तू पत्थर दिल है जो मुझे छोड़ गई है।'

'उस दईमारी का मन आ गया होगा तुझ पै। देखा गोरा-चिट्टा है, ताकतवर है। और चाहिए ही क्या ? और वह कहती थी ? यही न कि मैं तेरे साथ हो लूंगी ?'

मैं अचकचा गया। मैंने कहा : 'यह तुझसे किसने कहा ?'

वह मुस्कराई। कहा : 'मैं तेरी रग-रग पहचानती हूँ बलमा ! तू मुझसे उड़ कैसे सकेगा ? तेरे पर तो मैंने पहले ही कतर दिये हैं। तू नहीं मानेगा तो मैं तुझे जेल में डलवा दूँगी। मैं यह नहीं सह सकती कि तुझ पै किसी और औरत का साया पड़े।'

मैंने तड़पकर कहा : 'चाहे मैं अकेला तड़पा करूँ ? आखिर मुझे यह महसूस कैसे हो कि तू मेरी लुगाई है ? तू पत्थर है। तू डायन है। तू दूसरों के घरों में आग लगवा रही है। मैं तेरा खून कर दूंगा।'

उसमें कोई परेशानी दिखाई नहीं दी। उसने धीरे से कहा : 'कजरी के साथ तू रोज रात सोता है फिर भी तेरी आग नहीं बुझती है ?'

मैं हैरान रह गया।

पूछा : 'तू यह कैसे जानती है ?'

'जानती हूँ, तूने मुझसे दगा की है।'

'कैसे ?'

'मैंने जो किया तुझसे कहकर, तूने जो किया मुझसे छिपाकर।'

मैं ठिठका-सा रह गया। मैंने कहा : 'पर मेरा मन उससे लगता नहीं। वह मुझे बहुत चाहती है, पर मेरी इच्छा नहीं बुझती। तू मुझसे दूर हो गई। है। मुझे यही अखरता है। मैं नहीं समझता था कि तू ऐसी बदल जायेगी। कजरी कहती थी कि औरत की चाल औरत ही समझती है। तू वैसे क्या यहाँ आ-जा नहीं सकती थी ? तू आके यहाँ बसी है क्योंकि तुझे सिपाही ने मोह लिया था। उस पर आँच न आये, इसलिये तू मुझे यों बहकाकर आई है, ताकि मैं बदला न ले सकूँ.....'

प्यारी सुनती रही, सुनती रही। अचानक वह चिल्ला उठी : 'चुप रह,

नहीं तो अच्छा नहीं होगा। मैं तेरे सारे नटों के डेरों में आग लगवा दूंगी। मैं तेरी कजरी को जूतों से पिटवाऊँगी। मैं तुझे बजार में घिसटवाऊँगी।'

मैं अचरज से देखता रह गया। प्यारी शेरनी की तरह मुझे घूर रही थी। उसने काँपते स्वर में कहा : 'कजरी ! मैं तेरी कजरी को तेरे हाथ से छीन लूंगी। तू डाढ़ें मारकर उसकी याद में रोता रहेगा, बँधा रहेगा, तेरे सामने कजरी दूसरों की हो जायेगी, और जब तू तड़पेगा तब मैं हँसूंगी, क्योंकि तू मेरे तड़पने पर हँसा है। तूने मेरा भरोसा नहीं किया। तूने मेरी चाहत का भरोसा नहीं किया। मैंने अपना सब कुछ तुझे समझा था। अब तू किसी और को दिल देकर मेरे पास आया है ?'

उसकी आँखों में आँसू आ गये। वह रोने लगी। मैं हैरान था। यह क्या हो रहा था। मैं उसके पास चला गया। मैंने उसका मुँह अपने हाथों से उठाया। पर उसने फुफकार कर कहा : 'मुझे छुए मत। मुझे छुए मत।'

मुझे झटका लगा। मैं उठ खड़ा हुआ। द्वार की ओर चला, पर वह दौड़कर पहले ही वहां आ खड़ी हुई। उसने हाथ फैला लिये और कहा : 'जा रहा है ?'

मैं नहीं बोला।

'चला जा।' उसने कहा : 'मेरी लाश पर से कुचलकर चला जा। तू जा रहा है तो मैं भी आज अपने कलेजे में कटार भोंक लूंगी।'

मैं फिर भी खड़ा रहा।

'तूने सुना मैं क्या कह रही हूँ ?'

'मैं सुनना नहीं चाहता।'

उसने मुझे घायल आँखों से देखा।

'अच्छा !' उसने कहा : 'अब तुझे मुझसे इतनी घिन हो गई है ?'

'चरित्तर न दिखा।' मैंने बदला चुकाया : 'मुझे नहीं तुझे मुझसे घिन हो गई है। तू मुझे छूने में भी नफरत करती है।'

'करती हूँ।' उसने कहा : 'करती हूँ।'

'प्यारी !' मैंने पुकारकर पूछा।

'करती हूँ।' उसने मुँह फेरकर कहा : 'मैं तुझसे नहीं अपने आप से घिन करती हूँ। दर्द मुझे मारे डालता है। मैं तड़पा करती हूँ। तुझे बताना नहीं चाहती थी कि तुझे दुख होगा। पर तू नहीं मानता। तेरे भले के लिये तुझसे

दूर रहती थी। मैं तुझे ही नहीं, तेरी इस सुन्दर देही को भी प्यार करती हूँ। मेरा तो सब सत्यानास हो जायेगा। पर मैं तुझे बिगड़ते नहीं देख सकती। पर तू मुझ पर भरोसा नहीं करता न ? चला जा। मेरी ही गलती है। अगर मैं तुझे रोक भी लूंगी तो भी क्या तेरे काम आ सकती हूँ। जा तू कजरी के साथ ही बस, और यहाँ से कहीं दूर चला जा, ऐसी दूरी पर चला जा कि फिर मुझे ही तू भूल जाये। क्योंकि मैं अब बहुत नहीं जी सकूंगी।'

उसे चक्कर-सा आया। मैंने उसे पकड़कर पलंग पर लिटा दिया। पानी के छींटे दिये। वह होश में आई।

मैंने कांपते स्वर में कहा : 'प्यारी !'

'हाँ मेरे सुखराम !' प्यारी ने कहा : 'मेरा एक काम करेगा ?'

'क्या ? तू कहेगी और मैं मना करूँगा ?' मेरी आवाज़ में रोना भरा हुआ था। मेरा दिल धक-धक कर रहा था। यह कैसी अजीब बात थी। प्यारी ने कहा : 'तो कहूँ ? मना तो नहीं कर देगा ?'

'तू एक बार कहके तो देख !' मैंने हिम्मत दिलाई।

'एक बार मुझे अपनी कजरी दिखा देगा ?'

मैं चिल्लाया : 'प्यारी !'

'चिल्लाये मत।' उसने उसी धीरज से कहा : 'डर नहीं। मैं उसे तंग नहीं करूँगी। मैं उसे कुछ नहीं कहूँगी।'

मैंने सिर झुका लिया। कुछ देर सन्नाटा रहा। मैंने कहा : 'नहीं प्यारी ! मैं तुझे छोड़कर नहीं जीऊँगा। तू मेरा भरोसा कर। जो हो गया सो हो गया। मैं कजरी की तरफ मुड़कर भी नहीं देखूंगा।' और मैंने धीरे-धीरे कहा : 'चल हम और तू यहाँ से भाग चलें। हम इस रियासत में नहीं रहेंगे। गवरमन्ट में चले जायेंगे, वहाँ अंगरेजों का राज है। वहाँ कोई नहीं पकड़ सकेगा हमें।'

'क्यों,' उसने कहा : 'वहाँ क्या सिपाही नहीं है ? पुलिस नहीं है ?'

मेरी इच्छा हुई कि रो पड़ूं, और सचमुच मेरी आँखों से आँसू आ गये। प्यारी ने कहा : 'यह आँसू मजबूरी के हैं या प्यार के सुखराम ! यह किसके हैं ? तेरे या मेरे ?'

'तेरे हैं प्यारी।' मैंने उसका हाथ पकड़कर कहा।

'तू मरद होकर रोता है बावरे !' उसने मेरे सिर पर हाथ फेरकर कहा :

'तू ही हिम्मत हार जायेगा तो फिर मैं किसका सहारा लूंगी। मैं तो औरत जात ठहरी। मेरी भला हिम्मत ही कितनी ?'

मेरा मन घुमड़ आया था। आज बहुत दिन में वह फिर मेरे पास आ गई थी। आज हम दोनों खेतों के बीच की डौर ढह गई थी और हम फिर एक हो गये थे। आज डाँगर टूट गई थी और खेतों में ढाने से ढेर-ढेर पानी बहकर इकट्ठा हो रहा था। आज मेरा और उसका प्यार उस गेहूँ की तरह से निकल आया था, जो बैलों के खुरों से दांय में चिर-चिरकर ऊपर की जाली फाड़कर निकल आता है। अभी तक मैं बांस पर नाच रहा था, और जान के खतरे में झूल रहा था, पर अब मैं उसके पास धरती पर उतर आया था। जहाँ कोई सांसत और जोखम नहीं दिखाई देती थी। आज के बूकरा के बरसाने पर तूरा अलग गेहूँ अलग हो गया था।

उसकी आँखों में मुझे उदासी दिख रही थी। और फिर उसमें एक प्यार था, प्यार जिसमें एक आस थी। वह मुझे इतनी भली लग रही थी।

'तू मुझे बदली समझता है ?' उसने पूछा।

मैंने उसको देखा। वह मुस्कराई। फिर उदास हो गई।

'बोलता नहीं ?' उसने फिर कहा।

'मैं कह नहीं सकता।'

'क्यों ?'

'मेरी कुछ समझ में ही नहीं आता।'

'क्यों अब भी मुझे नहीं समझता ?'

मैंने देखा उसको बहुत दुख था। उसने उठकर बैठते हुए कहा : 'सुखराम !'

फिर वह चुपचाप कुछ सोचती रही। फिर कहा : 'तू जानता है कसूर किसका है ?'

मैंने जवाब नहीं दिया।

'मेरा, मेरा है। मैं जानता हूँ। तू क्या समझेगा भला ?' उसने कहा।

मुझे कजरी की याद हो आई जिसने कहा था कि मैं बोदा हूँ। मैं अब भी तय नहीं कर सका था कि वह मेरा भला चाहती है या उसकी कोई चाल है।

'कजरी को ले आयेगा न ?' उसने पूछा।

मैंने कहा : 'तू उसे पिटवायेगी तो नहीं ?'

'तू कुछ दवा-दारू भी जानता है ?'

'सरकार जानता-वानता क्या ? ऐसे ही थोड़ा-बहुत कर लेता हूँ।'

'इधर आ के यह जख्म तो देख !'

उसके पास जाकर मैंने देखा। पिंडली पर जखम था।

'क्या है ?' उसने पूछा।

'सरकार !!' मेरे मुँह से निकला। और मैंने प्यारी की तरफ देखा। प्यारी ने मुँह छिपा लिया।

'हाँ, हाँ।' रुस्तमखाँ ने कहा—'उसे भी हो गई है।'

मुझे लगा मैं पागल हो जाऊंगा। मेरी फूल-सी नाजुक कली को यह कीड़ा लगा था। मैंने दोनों हाथों से सिर पीट लिया। रुस्तमखाँ मेरी तरफ ताज्जुब से देखता रहा।

'क्या हुआ सुखराम ?'

'तुम !' मैंने कहा, 'तुमने यह क्या किया रुस्तमखाँ ?'

मुझे खुद ताज्जुब हुआ कि मैं इतना निडर होकर उसका नाम किस तरह ले गया। पर मैं कहता गया : 'अगर तुम्हें यह सब था तो तुमने मेरी इस चांदनी से भी साफ़, मोम से भी नरम औरत को हाथ कैसे लगाया ?'

'कौन जानता है यह सब इसीकी दैन न हो।' उसने कहा।

मैंने कहा : 'अबके कहा से कहा, जो अब फिर कहा तो तेरे रुस्तम और खाँ को अलग-अलग कर दूँगा। समझा ?'

मैं उठकर खड़ा हो गया। रुस्तमखाँ को डर लगा। उसने कहा : 'बैठ-बैठ। सुखराम ! जो हुआ सो हुआ। अब इसका कोई इलाज है ?'

पर मेरा दिल रोने लगा था। मैंने प्यारी के पाँव पकड़ लिये और कहा : 'तू मानुस नहीं है। तू देवी है। तू मेरी देवी है।'

वह रो दी। खुशी से रो दी।

वह मेरे लिये, मुझसे दूर रहती थी। वह मुझे बचाना चाहती थी। वह कितनी अच्छी थी ! यह मुझे अब मालूम हुआ था। मैं कहना चाहकर भी कह नहीं सकता था। रुस्तमखाँ ताज्जुब से देख रहा था। मैंने जब आँसू पोंछे तब भी मेरा दिल अपने भीतर ही भीतर पिघला जा रहा था।

रुस्तमखाँ ने घायल की तरह कहा : 'सुखराम ! इसका इलाज कर दे। तू प्यारी को वापस ले जा। बीमारी ने मुझे बहुत तंग कर रखा है। अगर यह

ज़ाहिर हो गया तो मेरी नौकरी चली जायेगी। मैं राह का भिखारी हो जाऊँगा। मैंने लोगों पर बहुत जुल्म किये हैं। वे मुझसे चुन-चुनकर बदला लेंगे। पर तुझे मुझे बचाना ही होगा। यह सब मैंने तेरी प्यारी के लिये किया है। मैंने इसी के लिये ठाकुरों से दुश्मनी मोल ली है।'

और वह चुप हो गया। तो यह भी प्यारी के लिये यह सब कर रहा है?

'बहुत अच्छा।' मैंने कहा : 'मैं इलाज कर दूँगा। पर तुमको मेरी बताई राह पर चलना होगा। खानपान पर रोक लगानी होगी। अलोनी चने की रोटी खानी होगी। घी-वी कुछ नहीं। मैं एक रसकपूर का नुस्खा जानता हूँ। पर अलग रहना होगा।'

'मैं सब करूँगा।' उसने घिघिया कर कहा : 'पर इससे मुझे मुहब्बत हो गई है।'

मुहब्बत !! रुस्तमखाँ को प्यारी से मुहब्बत ! तो इस जादूगरनी ने इस बे-मुब्बरत बेईमान को भी अपना कुत्ता बना लिया है? मुझे उसकी ताकत पर अचरज हुआ!

मैंने मंज़ूर कर लिया कि इलाज करूँगा। जब बाहर आया तो प्यारी ने कहा : 'कजरी को ले आना कल।'

मैंने सिर हिलाकर मंज़ूरी दी।

'वचन दे के जा।'

'देता हूँ।'

'और जो वह न आई तो?'

'खेंचकर तेरे पाँव पर ला पटकूंगा।'

'यह मैं नहीं चाहती।

'तो?' मैंने पूछा।

'वह मेरी दुसमन हो जायेगी।'

मैं सोच में पड़ गया।

उसने कहा : 'प्यार से ले आइयो।'

'कोशिश करूँगा।'

'सुन तो।' उसने रोका।

'क्या है?'

'अब मुझ पर गुस्सा तो नहीं है?'

'नहीं। मैं तुझे दूर होते देखकर कुछ और समझता था। मैं खुद भूल गया था।'

उसने कहा : 'तूने यह नहीं सोचा कि मैं तुझे नहीं, तेरे तन को भी चाहती हूँ। तू तो तेरा तन ही है न ? फिर उससे दूर रहने को मुझे अपना मन कितना न मारना पड़ता था।'

मेरा मन फिर भर आया।

'मैं अच्छी हो जाऊँगी ?'

'हो जायेगी। जरूर। फिर मेरे साथ चली चलेगी न ?'

'जरूर। चली चलूंगी। तू कहेगा तो कजरी की बांदी बनकर रह लूंगी। उसने तब तुझे सुख दिया है जब मैं न दे सकी।'

उसके दिल में कितना फैलाव था। यह मुझे अब महसूस हुआ।

'एक बार मैं फिर से तेरी होना चाहती हूँ बलमा।'

'पर यह तुझे छोड़ देगा ?'

'तू कल सरत रखना कि दवा तभी करूँगा। सड़ रहा है। चुपचाप मान जायेगा।'

इस विचार से मुझे बहुत संतोस मिला। प्यारी मुझे फिर मिल जायेगी ? मैंने उसे देखा। वह एकटक भरी आँखों से मुझे देख रही थी, ऐसा लगता था वह आँखों से बोल रही है। कितनी चमक रही थीं वे आँखें !

धूपो चमारिन, जो भीतर घुसी आ रही थी उसने देखा तो औरत औरत को झट से पकड़ गई। देखकर मुस्करा दी। प्यारी का ध्यान न गया। मैं समझ गया। चला आया।

१०

सुखराम न कहा था :

'जिस वक्त मैं डेरे पर पहुँचा नाच हो रहा था। कुर्री शराब के नशे में झूम रहा था और गोली शराब में धुत्त उसके साथ थी। कुर्री कजरी से कह रहा था : 'निकल जा, मेरे पास मत आ। गोली मेरी है। तू मेरी कोई नहीं।'

कजरी हँस रही थी। उसने कहा : 'गोली कानी है।

'होने दे तुझे क्या ?' उसने कहा : 'आज तेरा-मेरा गया।

गोली शराब पीती है, तू मनहूस है। तू क्या जाने !'

कजरी हँसती रही।

एक ने कहा : 'क्यों री तुझे गम नहीं ?'

कजरी ने कहा : 'बंदर से पीछा छूटा। हँसू कि रोऊँ ?'

कुर्री ने कहा 'साली बँदरिया है।'

कजरी फिर हँस दी।

एक ने पूछा : 'अब तू क्या करेगी ?'

कजरी ने कहा : 'मुझे तो ऐसा मिलेगा, जैसा तुम में से किसीके पास नहीं है।'

'भला कौन है वह ?'

'सुखराम !'

किसीने कहा : 'वह रहा।'

सबने मुझे घेर लिया। कुर्री ने कहा : 'यह भी गधा है। वह भी गधी है। कर दो दोनों का ब्याह। मेरा गोली से कर दो।'

गीत शुरू हो गये। नटों का बुड्ढा पुरोहित आया। उसने हम लोगों का ब्याह कर दिया। गोश्त की गंध ब्याप गई। नाच चलते रहे। शराब कुल्हड़ों में उँड़ेली जाने लगी। चुहल हुई।

रात के ग्यारह बजे थे। कजरी मेरे डेरे में आ गई। मैं सोच रहा था। यह क्या हुआ ? कजरी तो मेरी हो गई। आज उसने बकस में से निकालकर रेशमी चोली पहनी थी। वह बड़ी अच्छी लग रही थी। दिये का तेल खतम हो गया था। वह बुझ गया।

मैं सोच रहा था, कजरी ने पूछा : 'क्या सोच रहा है तू ?'

'प्यारी के बारे में सोच रहा था।'

कजरी को जैसे आग लग गई। कहा : 'हूँ तो मुझे क्यों ले आया ?'

'क्यों ? तू तो मुझे चाहती थी न ?'

'प्यारी को तो नहीं चाहती मैं ?'

मैंने कहा : 'पर प्यारी तुझे चाहती है।'

उसे विश्वास नहीं हुआ।

'चल रहने दे।' उसने कहा।

'सच कहता हूँ।'

'वह हिली नहीं।' कहा : 'क्या कहती थी ?'

'वही कहती थी कजरी को बसा ले।'

'अच्छा ही हुआ। सो अब वह वहीं रम गई ?'

'नहीं लौट आयेगी।'

कजरी पै पहाड़ फटा। 'कहाँ ?'

'तेरे पास !'

कजरी रोने लगी।

'क्यों, रोती क्यों है ?'

'रोऊँ नहीं। इतने दिन में मन की चाह पूरी हुई और साथ में ही आग भी लग गई ?'

'पर वह तो तेरी बाँदी बनकर रहने को तैयार है।'

कजरी ने आँखें पोंछ लीं। मैं पास बैठ गया।

कजरी ने कहा : 'यह नहीं हो सकता।'

'क्यों ?'

'वह बड़ी चालाक औरत है।'

'क्यों ?'

'क्यों ही क्यों पूछे जायेगा कि इस मगज से भी काम लेगा ?'

'तू ज्यादा समझदार बनती है तो समझाती क्यों नहीं ?'

'वह जान गई है तू मुझे चाहता है, सो कहीं उसे छोड़ न दे, इसलिये उसने मान लिया है।'

'मान तो लिया न ?'

'पर वह अच्छी बनकर फिर तुझे लुभायेगी। मैं थोड़े ही दिनों में बुरी बना दी जाऊंगी और तुझे मुझसे घिन हो जायेगी। रोज मुझसे तेरी गैरहाजिरी में लड़ेगी। मेरी गैरहाजिरी में तेरी भली बनकर मेरे खिलाफ़ कान भरेगी। तू कच्ची मत का आदमी, तेरी नाव आंधी और पानी दोनों के वार कैसे सहेगी ? थोड़े दिन में ही वह मुझे पिटवाने लगेगी।'

'अरी तू तो ऐसे कहती है, जैसे मेरी तुझसे प्रीत नहीं।'

मैंने उसे पास खींच लिया। उसने कहा : 'सुखराम ! कभी भी सुख नहीं मिलता। गरीबों को सुख नहीं मिलता। यह झूठ है। औरत को कभी चैन नहीं मिलता क्योंकि औरत ही औरत की जड़ काटती है।'

'तू तो बावरी है,' मैंने कहा।

बाहर भूरा की हल्की गुरगुराहट सुनाई दी। फिर कुछ नहीं।

कजरी ने कहा : 'आज हम एक हुए हैं।'

मैंने कहा : 'प्यारी बड़ी अच्छी है। वह मुझे बहुत चाहती है। उसे बीमारी हो गई है सिपाही से। उसने मुझे बचा लिया!'

'अब समझी!' कजरी ने कहा—'कि क्यों वह मेरी बांदी बनकर रहना चाहती है। अगर वह यह न कहे तो तू उसे छोड़ न देगा?' वह हँसी।

'मैं उसका इलाज करूँगा। मैं इलाजी भी हूँ कजरी।'

'तब तो साफ़ ही हो गई। उसे तुझसे इलाज भी तो करवाना है।'

कजरी की बात से मेरा मन कांप उठा : उसने मेरे माथे पर झूलते बालों को पकड़कर कहा : 'समझा? या नहीं? औरत की चाल औरत ही पकड़ सकती है। सुखराम! तू नहीं समझ सकता।'

मैं सोच में पड़ गया।'

सुखराम चुप हो गया था। मैं सोचने लगा।

सुखराम की उस उलझन की घड़ियां निस्संदेह कठिन थीं। मैं कल्पना कर रहा हूँ कि उस समय वह घात-प्रतिघातों में किस प्रकार व्याकुल हो गया होगा। एक ओर वह त्यागमयी स्त्री थी, दूसरी ओर यह आसक्ति-भरी नारी थी, जिसने एक के समस्त गुणों को क्षण भर में ही अवगुण कहकर प्रमाणित कर दिया था। किन्तु आसक्ति किसमें नहीं थी? जिस प्रकार एक ही फानूस के भीतर भिन्न प्रकार के रंग दिखाई देते हैं, इस जीवन में एक ही समय भिन्न कोणों से आलोक के ग्रहण करने से भिन्न प्रकार की सृष्टि हो जाती है। और वह ममता का उज्ज्वल रूप अब फिर अपनी परिसीमाओं में बन्द हो गया था। उस समय रात थी। अन्धकार था। सुखराम के हृदय में अशान्ति थी जैसे बहुत ऊँचे कगार की जड़ में बार-बार पानी आकर टकरा रहा हो, बिखर जाता हो, फिर टकराता हो, फिर बिखर जाता हो। वह अपनी अशिक्षित अवस्था में अपने मन का विश्लेषण नहीं कर सकता। उसकी आँखों में चिन्ता अपने उफान को भी जला चुकी है, उसकी आर्द्रता किनारे की सूखी पपड़ियों में आकर केन्द्रित हो गई है। वह उद्गारों की असीम उत्तेजना से कांपकर फिर चुप हो गया है जैसे विशाल पर्वत पर वृक्षों ने झकझोर लेकर अन्तिम अवसाद में मौन ग्रहण कर लिया हो।

कजरी आज यौवन की अबाध उच्छृङ्खलता लेकर आई थी परन्तु उसका वह खौलता पानी बर्फ की तरह जम गया है। अब वह भाफ बनकर उड़ नहीं

सकती, अपने ढक्कन को अपने धक्के से उड़ा नहीं सकती, अब वह ऐसा ताप चाहती है जो धीरे-धीरे उसे पिघलाकर बहा दे। और सुखराम को प्यारी की स्मृति हो आती है। वह प्रतीक्षा कर रही है। वह कमान से छूटे हुए तीर की तरह है जो किसी भी निशाने पर जमा नहीं, परन्तु हवा में घूमता रहा, उसकी तेजी से उसीमें आग लग गई। सुखराम उस आग को बुझाकर उस तीर को फिर तरकस में रख लेना चाहता है पर अब तरकस के बाकी तीर उसे नहीं चाहते। क्यों ? अपने लिये ? या इसलिये कि वह तीर अब हार चुका है, उसने लक्ष्यबेध नहीं किया है ?

सुखराम मेरी भाषा को नहीं समझता। वह मेरी अभिव्यक्ति को नहीं जानता क्योंकि मैं उसके फूल-से जीवन की पंखुरी को खुर्दबीन के नीचे रखकर उसे बड़ा करके देखना चाहता हूँ। वह मरीज है, तड़पना जानता है; मैं डाक्टर हूँ, मैं उसकी तड़पन का कारण जानता हूँ और नहीं जानता तो जानना चाहता हूँ।

जीवन के द्वन्द्वों ने ही सारी सत्ता को संभाल रखा है और कजरी, प्यारी और सुखराम, त्रिकोण बना रहे हैं। क्या वे अपनी वास्तविकता को झुंठा रहे हैं ? क्या कजरी स्वार्थ से भरी है ? मुझे नहीं लगता। तभी सुखराम भी उससे क्रुद्ध नहीं है।

रात को जलते हुए नक्षत्र जैसे कवि को प्रभात में घास पर चमकते नीहारों की तरह गले हुए, पानी हुए-से दिखाई देते हैं, वैसे ही मुझे भी यह सारे द्वन्द्व एक और ठोस वास्तविकता की ओर बढ़ते हुए दिखाई देते हैं। और इस समस्त व्यवधान को एक ही सूत्र ने बाँध रखा है। वह है आकर्षण। उसीकी भिन्न रूप की अभिव्यक्ति प्रेम, ममता, वासना, प्रजनन, और जीवन हैं। यह आकर्षण दोनों ओर से शक्ति को निहित रखता है और वही उसके द्वन्द्व का मूल है। इस द्वन्द्व की प्रेरणा वासना है। और वासना कर्म की चेतना है जो अलगाव नहीं चाहती, सायुज्य चाहती है।

अथाह पिपासा वाली प्यारी की वे आँखें सुखराम को याद आ रही हैं। वह उन आँखों की गरिमा को नहीं समझ सकती, उसके लिए यह गूंगे का गुड़ है। किन्तु मैं समझता हूँ कि प्यारी ने उसे देखा होगा तो वह उसे कैसा लगा होगा ?

वे नेत्र नहीं रहे थे। वह समुद्रों की अन्तिम रोर थी, जिसने क्षितिज पर

उठते हुए अरुण का अभिनन्दन किया था। वह वनांतों की झूम नहीं थी। महकते हुए वसंत को आज कानन ने दोनों हाथ खोलकर उतर आने का आवाहन दिया था। वह महागिरियों का अभिमान नहीं था, हिमशृङ्गों का किरणों के तप से पिघलने के पहले, रस बनने के पहले का जीवन-संचरण था।

समस्त नारी जैसे दो पुतलियों की ताराओं में आकर इकट्ठी हो गई थी और पुरुष ने देखा था ! एक अव्यक्त भाव की अभिव्यक्ति जब भौतिक शरीर के द्वारा अवाक् रहकर हुई थी कि आ मुझे देख, मैं तुझ पर न्योछावर हूँ, मैं अब मैं नहीं हूँ, बल्कि तू है, तब उसने इतनी विशाल परिक्रमा खींच दी थी कि धरती से आकाश तक फैले हुए सुखराम की सत्ता के विचार, उन दो छोटी-छोटी ताराओं में रम गये थे, जैसे वहीं जीवन के समस्त आलोक, रस, आनन्द और चरम तृप्ति की पराकाष्ठाएं पहुँच गई हों। कितना उद्वेग था, जैसे महा-निनाद करते हुए ज्वालामुखी की भूकम्प-भरी हलचल। पर आज वह हिलकर खड़ा हुआ ज्वालामुखी जहाँ का तहाँ स्तब्ध हो गया था। कितना हाहाकार था। जैसे समुद्र का स्तम्भ बनकर आकाश तक उड़ने का प्रयत्न। परन्तु जैसे वह स्तम्भीकृत समुद्र स्फटिक और नीलमणि जैसा पारदर्शी और मौन हो गया था। फिर जैसे दूर-दूर तक फैली हुई अन्धकारमयी गुहाओं में पवन का कलकल करता एक झोंका आया था। बगरते फूलों का हास, झमकती बिजलियों की उमंग, सब उन बरौनियों में आकर स्थिर हो गये थे। वह प्यारी ने चलते वक्त सुखराम को देखा था। सुखराम यदि मेरी भाषा में इतना स्पष्ट रूपेण समझ जाता, यदि इतनी स्पष्टता से प्यारी उसे समझा पाती, तो उनका जीवन कुछ और हो जाता। परन्तु वे दोनों ऐसे ही थे जैसे पहाड़ के सामने वे पुकार उठे थे। लौटकर आती हुई प्रतिध्वनि को सुनकर दोनों ही चमत्कृत हो गये थे और उन्होंने उस घटना को दिव्य समझकर प्रणत होकर नमस्कार किया था।

कितनी विवशताओं के बीच में प्यारी का प्यार उमड़ा था। कण-कण में वह बँधी हुई है और सच तो यह है कि यदि वह इतनी बद्ध न होती तो उसके सारे प्रेम को आँखों में आकर एकत्र होने की आवश्यकता क्या थी ? और सुखराम ने उसकी सत्ता के महिमन्त गौरव को छूआ था जो अणु से भी छोटा परन्तु महत् से भी महामहिमामय था। जीवन के पशुत्व को यदि सघनांधकारी मेघराशि माना जाये, जो परस्पर टकरा-टकराकर गरजती है, तो यह ताप कभी-

कभी उसमें विद्युत बनकर चमकता है और एक अभूतपूर्व आलोक पलक मारते में झपककर अदृश्य हो जाता है ।

प्यारी देख रही है । सुखराम उसके नेत्रों को देख रहा है । धूपो चमारिन खड़ी मुस्करा रही है । सुखराम धूपो को देखता है । प्यारी नहीं देखती । क्यों ? क्योंकि प्यारी को आवेश नहीं है, वह स्थिर है । वह आंधी बिखर जाने के लिये नहीं उठी है, वह निरन्तर घुमडकर आकाश में ही स्थिर हो गई है । और स्थिर ही बनी रहना चाहती है । वह संकोचों के परे है । आज वह दर्पण की भाँति स्वच्छ हो गई है जिसमें कोई भी अपना रूप देख सकता है, पर वह स्वयं अपने को नहीं देख सकती । ममता ने हाथ उठा दिये हैं, पर वह आज इतनी तृप्त हो गई है, इतनी गौरवान्वित हो गई है कि अब वह बोल नहीं सकती । संगीत की सबसे मीठी लहरियाँ उसकी पुतलियां हैं, जिनमें से अनन्त स्वर बह रहे हैं और फैल रहे हैं, परन्तु उनकी मूल ऋतंभरा लयमयी झूम उसकी अपनी हो चुकी है, जिसे वह चाहे जितनी बाँट दे, किन्तु यह शाश्वत है, अक्षर रहेगी, और कल्पान्तों तक उस श्वास को ढूंढा करेगी जो बार-बार उसे किसी तपस्पूत बलिदानी बांसुरी के रन्ध्रों में भरकर फिर निराकार से साकार बना सके ।

परन्तु यह मेरा तर्क है । सुखराम का नहीं । मैं धूल को उड़ते देखकर उसकी उस शक्ति को भी देख लेना चाहता हूँ जिसने जमे हुए कणों को बिखर जाने की गति दी है । मेरे आलोचक उद्भ्रान्त हो उठेंगे क्योंकि उन्होंने कभी गहराई से नहीं देखा । उन्होंने गति देखी है, किन्तु गति के प्रति क्षण के उस सौन्दर्य को नहीं देखा जो गति की गत्यात्मकता के प्राण हैं । वे अन्त को देखते हैं, उस माध्यम को नहीं देखना चाहते, जो अबूझ और अस्पष्ट रहकर भी इन भौतिकों का ही चेतनरूप से गुणात्मक परिवर्त्तन है । यदि हम इसे नहीं देखते तो जड़वाद की हड्डियों की उंगलियों को हां हम सुन्दर कहने लगेंगे, उन पर चढ़े मांस और रक्त तथा त्वचा की मधुरिमा को नहीं देख सकेंगे, उनके स्पर्श की स्निग्धता को नहीं जान सकेंगे और उनके ताप के माध्यम से समस्त सत्ता की महाप्राण ऊर्जस्वित परितृप्ति को नहीं समझ सकेंगे, उस तृप्ति के आनन्द का आभास भी अनुभव नहीं कर सकेंगे ।

आँखों में सारी सृष्टि अपना विकास प्रतिबिम्बित करती है और जब वह उसमें रम जाती है तो अन्तस् फिर उनमें से आलोक विकीर्ण करने लगता है, वह

आलोक ही प्रेम है, जीवन की अनन्त मर्य्यादा है। वह अपने भौतिक रूप में वैसा ही है जैसे सूर्य्य का वह आकर्षण जिसने पृथ्वी को अपनी ओर खींच रखा है, परन्तु पृथ्वी भी अपनी धुरी पर घूमकर, उससे टकराकर विनष्ट नहीं हो गई है। वह वैसा ही है जैसे करोड़ों तारों और ग्रहों का विशाल स्वर्गंगा का महाविराट अपरिमेय चक्र लयगति से घूमता चला जा रहा है, घूमता चला जा रहा है, पर वे सब तारे अपनी-अपनी गतियों का ह्रास नहीं कर लेते, जीवित रहते हैं। और भौतिक के दूसरे रूप में अर्थात् चेतन रूप में यह महासृष्टि का उल्लास है, निरन्तर बढ़ते रहने का चिह्न है, जैसे प्रभात की किरण से मतवाले होकर सहस्रदल कमल अपने मांसल दलों को खोल देता है, जैसे उस समय भ्रमर गुंजार करता हुआ मँडराता है, जैसे प्रभात का शीतल समीर उसके स्वर्णिम पराग को जल पर बिखेर देता है, जैसे प्रत्येक अमरता क्षणिकता में अपनी अमरता को निरन्तर प्राप्त करती चली जाती है।

प्यारी के नेत्रों में अभय है। वह संगमर्मर की तरह खड़ी है। यदि वह अब सुन्दर नहीं रहे और कुरूप हो जाये, तो भी वह बुरी नहीं लगेगी। वह जंगली औरत यदि अब सुसंस्कृत होकर अपने भावों को छिपाने योग्य भी हो जाये तो भी इस बूंद की अपराजित, अशोष्य, अजड़ित, अक्षय तरलता को विनष्ट नहीं कर सकेगी। वह प्यार की आँख है।

और तब सुखराम ने कहा था :

'कजरी की बात ने मुझमें शक पैदा कर दिया। मैं बार-बार प्यारी की उन आँखों को याद करता, फिर कजरी की बात को सोचता। मैं अजीब दुविधा में फँस गया था। मेरी समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करूँ ? अन्त में मैंने कहा : 'तू कल चलेगी ?'

'कहाँ ?' उसने पूछा।

'मेरे साथ।'

'पर कहाँ ?'

'प्यारी के पास।'

'क्यों ?'

'वह तुझे देखना चाहती है।'

'क्यों ?'

'कहती थी जब वह सुख न दे सकी, तो उस बखत जिसने मुझे सुख दिया है,

वह बहुत अच्छी ही होगी। उसे मैं देखूंगी।'

कजरी ने कहा : 'बड़ी नागिन है। देखना चाहती है पहले कि मैं अच्छी हूँ कि वह अच्छी है। लड़ाई शुरू करने के पहले ताकत भाँपना चाहती है ? तुमने क्या कहा ?'

मैंने कहा : 'ले आऊँगा।'

'क्या कहा ! ले आऊंगा !!' कजरी ने अचरज से कहा : 'मैं जाऊँगी ?'

'क्यों ?' मैंने पूछा।

'वही क्यों नहीं आ जाती। मैं तो नहीं चाहती, वही न देखना चाहती है मुझे ! कुंआ प्यासे के पास जायेगा कि प्यासा कुँए के पास !'

बात ठीक थी पर मैं क्या करता। कहा : तू जाके छोटी हो जायेगी !'

'छोटी तो मेरी नानी भी न होती, क्योंकि मैं अपने को बड़ा नहीं समझती। तभी तो उसने बुलवाया है। नट की लुगाई का क्या ! आ जायेगी ! नट ले आयेगा। वह ठहरी सिपाही की रखैल। वह कैसे आयेगी यहाँ !'

कजरी की चोट से मेरा मन तड़प गया।

मैंने कहा : 'तू तो बात का बतंगड़ कर रही है।'

कजरी ने कहा : 'पर मैं और बात सोचती हूँ।'

'क्या ?' मैंने पूछा।

'वह यह कि तूने उसकी हुकूमत के आगे सिर झुकाया है ? तू उसे अपनी मालकिन समझता है ? तू उसका नौकर है ? मैं नटनी हूँ। कैसी भी होऊँ, किसीकी चाकर नहीं हूँ। मुझसे जो काम करायेगा वह तलवार के बल पर करा सकता है, मैं मन से सिर नहीं झुका सकती।'

'नहीं, मैं प्यार के मारे राजी हो गया था।' मैंने कहा।

'तब', उसने कहा : 'तू उसे मुझसे ज्यादा प्यार करता है ? तभी तो तू मुझसे उसके हुकम पर चलने को कहता है। ऐसी ही बांदी बनेगी वह मेरी ?'

कजरी ज़हर-भरी हँसी हंस दी। मैं कुछ जवाब न दे सका। मुझे गुस्सा आ गया था। मैंने उसके कंधे पकड़कर कहा : 'मैं कुछ सुनना नहीं चाहता। तू चलेगी ?'

'नहीं चलूंगी।'

'तू मेरी बात नहीं मानेगी ?'

'हजार मानूंगी। तेरी लुगाई बनी हूँ। अपनी मर्जी से। तू कहे तो भूखी

रहूँ, प्यासी रहूँ। तू सोता रह, मैं तेरे पांव दबाऊँ। तू कहे कांटों पर चल लूँ, जलती आग में हाथ दे दूँ। पर तू मेरे लिये यह सब नहीं कहता। तू कहता है मैं तुझे प्यार करूँ और तू अपना दिल कहीं और लगा दे! तू कहे कि मैं सौत को भी प्यार करूं सो मुझसे नहीं होगा।'

मैंने उसे मारा। पर वह प्यारी की भाँति नहीं दबी। उसने पिटकर कहा : 'यह तो तेरा हक है। तू मुझे सचमुच चाहता है। तभी तो तेरा कहना मैं नहीं मानती तो तुझे गुस्सा आता है? तू किसी पेड़ से कहे और वह न माने तो क्या तुझे गुस्सा आयेगा? तू क्या उसे मारेगा? मुझे और मार! तेरा हाथ लगता है तो मेरी जलन मिटती है। इतना मार कि मेरी ल्हास तेरे पांव पर लोट जाये। फिर तू मेरी बोटी-बोटी काट के चील, कौओं को खिला दीजो। मैं सदा तेरी ही रहूँगी। पर तू कहे कि मैं चलूं सो मेरी जूती जाय। मैं न जाऊंगी। मेरे तेरे ब्योहार हैं। मेरा तेरा संसार है। वह निगोड़ी छिनाल बीच में कौन है? मैं उसे कभी नहीं सह सकूंगी। तू मेरा मरद है। तुझे मैं दिल दे चुकी हूँ। तू उसे ले आ। मैं कुछ नहीं कहूँगी। तू मुझे नहीं चाहेगा तो जान दे दूंगी। उफ नहीं करूंगी। पर तू चाहे कि उसे भी प्यार करूं, सो तू ऐसे समझ कि मैं तेरे भूरा का पाँव चाट सकती हूँ, पर उस नागिन के मुँह पै भी न थूकूंगी!'

मैंने अपने बाल नोंच लिये और सिर को हाथों पर धरकर बैठ गया। मैंने कहा : 'कजरी! तू क्यों आई। मैं अकेला रह गया था तो मैं सुखी था। तू आ गई। तूने मुझे अपने संग से लुभा लिया। तू मुझसे नहीं छूटती। प्यारी मुझे भूलती नहीं। मैं क्या करूँ?'

उसने कहा : 'कुछ भी हो। भले ही तेरी नकेल प्यारी की पूंछ में बँधी हो, पर मेरी नकेल तो तेरी पूंछ में बँधी है! तू कहे तो चली जाऊँ?'

वह उठ खड़ी हुई। मैंने उसका हाथ पकड़ लिया। कहा : 'तू ऐसी पत्थर है? मैं ही जान दे दूंगा।'

तब वह मेरे पास बैठ गई और उसने कहा : 'तू समझता है मैं डरती हूँ? चल मैं भी साथ चलती हूँ। एक दूसरे के गलबाँही डाले पहाड़ पर से हम तुम कूद पड़ें। फिर कोई हमें छुड़ा न सकेगा। अगले जनम में भी तू मेरा, और मैं तेरी हो जाऊँगी। जनम-जनम तक दोनों फिर ऐसे ही साथ बने रहेंगे।'

सोचते-सोचते मेरा सिर फटने लगा। और अचानक मुझे याद आया—अधूरा किला। मैं उसका मालिक हूँ। मैं ठाकुर हूँ। मैंने कहा : 'औरत! तू मेरे पांव

की जूती है। कजरी, और प्यारी, दोनों मेरी हैं। कजरी कहे कि मन की करेगी सो नहीं होगा। प्यारी भी मेरी होगी। मैं उसका इलाज करके ले आऊँगा। समझी ? दोनों काले मूड़ों की तुम दोनों मेरे पास रहोगी। अब कोई करनटों के पास नहीं रहेगा। मैं तुम दोनों को लेकर विदेस चला जाऊँगा। आपस में लड़ोगी तो मार-मार छाल उड़ा दूँगा। जो मैं कहूँगा सो चलेगा। वहाँ तुम दोनों जने-जने की नहीं, सिरफ मेरी होगी।'

कजरी मेरी बात समझी नहीं। उसने पूछा : 'फिर ?'

'मुझे अगर तू तनिक भी चाहती है।' मैंने कहा : 'तो तू कल प्यारी के पास चलेगी। वह बीमार है। उसने मुझे बीमारी से बचाया है। वह बुरी नहीं है। समझी। और तेरे चलकर जाने से जो तेरे पाँव की मेंहदी छूट जायेगी न ? सो मैं प्यारी से कल तेरे पांव में महावर रचवा दूँगा। फिर तो तुझे गुस्सा नहीं है ? चलेगी ?'

कजरी जवाब न दे सकी।

उसने कुछ देर बाद पूछा : 'वह तेरे कहने से मेरे पाँव में महावर लगा देगी ? वह तेरी इतनी मानती है ?'

'हाँ, वह मानती है। अगर नहीं मानेगी तो कल से मैं उससे नाता ही तोड़ दूँगा।'

'तो मैं भी चलूंगी,' कजरी ने कहा : 'वह अगर हाथ भर तेरा कहना मानती है, तो मुझे देखियो, डेढ़ हाथ तेरी कहन पर चलूंगी। तू कहे तो तलवार पर गर्दन धर दूं। यह बनैनी-बामनी मत समझ लीजो तू मुझे। दिल का सौदा है, देख लीजो। नटनी हूँ। असल नटनी ! नटनी की नटनी ! करनटनी !'

मैंने उसे बाहों में भर लिया। सच उस समय वह मुझे इतनी अच्छी मालूम हुई जितनी कभी नहीं लगी थी।

मैंने कहा : 'पर एक बात है।'

'क्या ?'

'उसके पास अच्छे कपड़े हैं। वह साबन से नहाती है। चमेली का तेल डालती है। उसके पास सोने का गहना है। तेरे पास क्या है ? तुझे छोटा-छोटा नहीं लगेगा उसके सामने ?'

'क्यों ?' कजरी ने कहा : 'जो वह कमा सकती है, सो मैं कमा सकती हूँ। भाग की बात है, उसे गाहक पहले मिल गया। मुझे भी मिल सकता है। पर

हाँ, अगर तू उसे यह सब देता और फिर मुझे न देता तो तेरे सामने ही उसका सीना फाड़कर मुँह लगा के उसका लहू पी जाती।'

'डायन', मैंने कहा : 'चुड़ैल।'

हम दोनों हँस दिये। वह अब खुश थी। बताने लगी कि उसने चुड़ैल देखी तो नहीं, पर जरख पर एक औरत की हँसी जरूर सुनी है। जरख की चलते बखत की चटपट से उसने अंदाज किया कि वह जरख ही होगा। पर घर की तरफ़ जा रही थी। वहाँ कोई सिद्ध साधू ठहरा हुआ था। और भी जाने क्या-क्या उसने सुनाया।

वह सो गई। मैं पड़ा-पड़ा सोचता रहा। सोचता रहा। सिद्धियों की बातों से अब मेरा मन बहुत खिचता था। मैं सोचता रहा। कहा जाता था कि चुड़ैल नंगी होकर अमावस की रात की अंधियारी में जरख पर बैठकर मरघट जाया करती है। मेरा मन कहता था कि मैं भी सिद्धी करूँ! कहते हैं मरघट जगता है तो भूत-परेत ज़िंदा होकर दिखाई देते हैं, नाचते हैं? न जाने क्यों इस सबकी सोचकर आँखें मींचता, तो एक चीज़ मेरे सामने आकर खड़ी हो जाती और वह था—अधूरा किला।'

११

तब सुखराम ने कहा था :

'सुबह मैं देर तक सोया रहा। कजरी ने मुझे जगाया। मैं उठ बैठा। हल्की धूप निकल आई थी। मैंने अपनी आँखें मींड लीं।

तब मैं उठा और बाहर चला गया। झील में जाकर नहाया। वहाँ से नंगे बदन लौटा। मेरी धोती गीली थी। मैंने अंगोछा पहन लिया और धोती निचोड़कर सूखने डाल दी। फिर बीड़ी सुलगाई। बैठ गया।

बूढ़ी रामा का नाती बीमार था। वह मुझे दिखाई दी।

मैंने पुकारा : 'कैसा है अब?'

'मोती झरा और ठंड दोनों का बुखार है। बचेगा नहीं।' बुढ़िया की

आँखों में आँसू आ गये। उसने कहा : 'रात भर आग जलाये रहे, फिर भी बर्राता रहा।'

'तूने किसीको दिखाया ?'

'किसे दिखाऊँ ? बैद के पास ले गई थी। उसने दवाई दी थी। कुछ हुआ नहीं। सयाने ने कल झाड़ा था। तावीज दिया है। बाँध चुकी हूँ।'

'फिर भी कुछ नहीं हुआ ?'

'अरे', बगल के डेरे से अधेड़ उम्र की रूपो ने निकलकर कहा : 'मैंने कहा था खिरनी वाले बाबा की धूनी की राख मल दे। ले आ। पर इसने सुना ही नहीं।'

'वहाँ गई तो थी।' बुढ़िया ने कहा।

'फिर ?'

'बाबा पत्थर मारने लगा।'

'नहीं तुझे तो वह मुठ्ठी भर के दे देता ?' रूपो ने कहा। उसकी आँखों के नीचे गड्ढे पड़ गये थे। उसने कहा : 'अरे वह बड़ा महातमा है। पहुँचा हुआ है। उसने तेरा इन्तियान लिया था। तू कामयाब नहीं हुई ! मैं तो कहती हूँ चुटकी भर ले आ, बुखार छूमन्तर हो जायेगा।'

'क्यों' बूढ़े पंचू ने हुक्का पीते हुए कहा : 'सुखराम ! तू भी तो कुछ जानकार है।'

मैंने कहा : 'काका ! यह सब मैं नहीं जानता। मैं तो सूंतासांती, फोड़ा, जखम, अडीठ की बात जानता हूँ। थोड़ा-बहुत बुखार का हाल बता सकता हूँ। पर इतना नहीं। और कौन किसका इलाज करता है काका ! सब अपनी तकदीर की खाते हैं, सब अपनी किस्मत का पाते हैं।'

'बड़ा समझदार लड़का है।' काका पंचू ने कहा और ढेर सारा धूंआ उगलकर खूब खखारकर थूका और सांस फिर से आ जुड़ने पर कहा : 'इसकी अम्मा कहाँ है ?'

'अरे वह तो,' रूपो ने कहा : 'तीन दिन तीन रात जागी। फिर रहा न गया तो बोली : मरने दे हरामी को, दूसरा जन लूंगी। इसके पीछे क्या मर जाऊंगी ?'

'चिढ़कर कहा होगा,' पंचू ने कहा : 'कल मैंने उसे पीर के मजार पर दिया धरते देखा था।'

'अब है कहाँ वह ?'

'पड़ी होगी किसीके पास। कुतिया से अब भी न रहा गया।' रामा ने कहा। बूढ़ी गुस्सा हो गई थी।

उसी समय देखा। सामने से वह चली आ रही थी। रामा के बेटे की बहू। वह चल रही थी। पर थकी इतनी थी, चार रात की जगार कि लगता था कि सोते-सोते ही चल रही है। वह आई। उसने अठन्नी रामा की हथेली पर धर दी और कहा : 'एक ही मिल सका। इसका बाप कहाँ है ?'

'पता नहीं कहीं जूआ खेल रहा होगा।'

'कुछ खाने को है ?'

'कुछ नहीं है। मैं दिन भर की भूखी हूँ। तू कहाँ रही रात ?'

'मैंने मजार पर मनौती मानी थी। मुझे बखत न मिला। एक अठन्नी कमा सकी। फिर मजार पर चली गई। मुझे नींद आ रही है।'

'तू भूखी सोयेगी ?' बूढ़ी ने पूछा : 'जा मटके में चने धरे हैं। चबा ले। मैं तो दाँत बिना खा न सकी। जब रहा न गया तो थोड़े-से कूटकर पानी के साथ फाँक लिये थे। अधार बन ही गया। बेटा देखा है अपना ?'

'क्या है सूहर ! मर जाये तो भला' रामा की बहू ने कहा और रोने लगी। फिर जैसे वह थक गई थी। वहीं बैठ गई और सो गई।

मैं देखता रहा। उठकर भीतर डेरे में गया।

कजरी आज नहाई थी। उसका तमाम मैल धुल गया था। आँखों में काजर लगाया था। बालों पर काठ की कंघी कर ली थी। बैठी थी। पैसे गिन रही थी।

'क्या कर रही है,' मैंने पूछा : 'तेरे पास कुछ पैसे हैं ?'

'हैं तो बीस आने हैं। क्या करेगा तू ?'

'मुझे दे दे।'

'क्यों ? करेगा क्या ? नहीं तो, मुझसे पूछ मैं क्या करूँगी ?'

'क्या करेगी तू।'

'कपड़े लाऊँगी।'

'कपड़े ?'

'हाँ, अच्छे-अच्छे।'

'क्यों ?'

'मैं चलूंगी न तेरे साथ ?'

'प्यारी के पास ?'

वह मुस्कराई।

'पर वहाँ कपड़ों की क्या जरूरत है ? '

'तूने ही तो रात कहा था ?'

वह हँसी। 'देख', उसने कहा : 'कैसी मजे की बात होगी। प्यारी को मिले सिपाही से। मैं पहन के जाऊँगी तो समझेगी कि तैंने बनवाये हैं। मेरे लिये। कैसी कुढ़ैगी मन में। मैं आपसे किसी ढंग से कह दूंगी कि मैंने तो मना किया था, पर सुखराम न माना।'

मैं हैरत में रह गया।

'तू मिलने चलेगी कि लड़ने ?'

'मिलने।'

'पर यह तो लड़ाई का ढंग है।'

'अच्छा छोड़। तू पैसे क्यों माँग रहा था ?'

'अब जाने भी दे।'

'क्यों ?'

'कुल बीस आने तेरे पास हैं। बड़ी हविस है। अभी तो तुझे ही और पैसे चाहियें ?' मैंने कहा।

'पाँच रुपये और हो जायें, मेरा काम हो जायेगा।'

'फिर उनके मिलने में भी तो देर लगेगी ?'

'तो क्या हो गया। तीन दिन तेरी प्यारी ठहर नहीं सकती ?'

'पूछेगी तो आज ही। कह दूंगा, कपड़े बनवाती है कजरी।'

'ऐसा तू साँचाधारी हो गया कि एक बार मेरी लाज रखने को झूंठ कह देने में ही तेरी बत्तीसी झड़ जायेगी ?'

'अच्छा कह दूंगा बीमार हो गई है।'

'बीमार पड़े मेरी सौत ! मैं काहेको पड़ूं ? सो डाल ही दी है भगमान ने !'

'तो क्या कहूँगा मैं ?'

'कुछ कह दीजो। यों कहियो कि प्यारी ! तेरे से पांव में महावर लगवाने

कजरी आ रही थी, पर मन बदल गया। बोली—फिर चलेंगे। सो तीन-चार दिन लगेंगे उसे लाने में।'

'यह कह दूंगा तो मेरी तो बात छोटी पड़ जायेगी।'

'सो तो है।' कजरी ने कहा : 'कह दीजो, पांव में कांटा लग गया है।'

'यह ठीक है।' मैंने कहा।

'तू ही सोच।' उसने कहा : 'वह मेरे पांव में महावर लगायेगी तो मैं ये कपड़े पहन के बैठूंगी उसके सामने। हँसेगी नहीं वह मन में। तेरी तो दो हैं। तू एक को अच्छी, दूसरी को ऐसी देख सकेगा ?'

'पर पैसे कहाँ से लायेगी ?'

'तुझसे न मांगूंगी। पर तूने बताया नहीं।'

'क्या ?'

'तू पैसे क्यों मांग रहा था ?'

'जाने दे अब।' मैंने कहा।

'तुझे मेरी कसम !' कजरी ने कहा : 'तू सब ले ले, पर मेरा जी न दुखा। मुझसे अलगाव न रख।'

'मैं ला दूंगा तेरे लिये सब कजरी,' मैंने कहा : 'इस बखत एक रुपैया दे दे।'

'ले।' उसने मेरे हाथ पर सोलह आने धर दिये।

'तूने पूछा नहीं मैं इनका क्या करूंगा ?'

'कुछ भी कर। तू मालक है।'

मैंने उसे प्यार से देखा। वह लजा गई।

मैंने कहा : 'मैं इसलिये जा रहा हूँ कि रामा का नाती बहुत बीमार है। उसकी माँ और दादी भूखी हैं। कुछ खा लेंगी। फिर बच्चे की दवाई-दारू आ जायेगी।'

और मैंने ताज्जुब से देखा कि कजरी ने मेरे पांव पकड़ लिये और कहा : 'तुझ-सा मरद मुझे मिला। मेरे भाग। तुझे छोड़ के प्यारी गई, पर तुझे छोड़ न सकी, उसका कारन अब समझ में आया। तू बड़ा अच्छा है। तू बड़ा नरम दिल है, सुखराम। लोग एक-एक पैसे के लिये दांती काटते हैं। और तू इतना सीधा है ! तू कितना अच्छा है सुखराम !'

मैंने उसे उठाया और कहा : 'कजरी ! यह दुनिया बड़ी जालिम है। मैं इतने

दिन में एक बात समझा हूँ कि गरीब की सबसे बड़ी मुसीबत है। तू तन क्यों बेचती है, जानती है ?'

'न बेचूँ तो जियूँ कैसे ?' कजरी ने कहा : 'बचपन में ही आदत पड़ गई। तब मजा भी आता था सो बह गई। पर अब उसमें मन नहीं भरता। मैं चाहती हूँ कोई मुझे अपनी कहे।'

'अच्छा ! कजरी ! तू घर बैठ। मैं फिर कला-करतब दिखाकर मेले से कमाई करके आज लाता हूँ। जूए के दो हाथ बैठ गये तो जरतारी उढ़ा दूँगा तुझे। तू मेरे रहते क्यों दुःख उठाती है ? तू बैठ। मैं तेरा सिंगार अपने हाथ से करूँगा और तब ही प्यारी के पास चलेंगे।'

'यह नहीं सुखराम,' कजरी ने कहा : 'मैं मेले में जाऊंगी। नाचूंगी, गाऊंगी, जो मिल जायेगा, ले आऊंगी। वह नहीं करूँगी।'

मैंने स्नेह से उसे सीने से लगा लिया। कजरी की आँखों में आँसू आ गये। बोली : 'मरद तो वही है जो लुगाई को बचा के रखे। पर कुर्री भी एक था। तू इतना अच्छा क्यों है सुखराम ? तुझ-सा कहीं मैंने करनट नहीं देखा।'

'करनट !' मैंने कहा : 'मैं करनट नहीं हूँ।'

कजरी को धक्का लगा। पूछा : 'तो क्या तू हममें से नहीं है ? कोई पराया है ? हमारी बिरादरी का नहीं है ?'

'सब हूँ। मेरी माँ करनटिनी थी। पर मेरा बाप ठाकुर था।'

'अरे उससे क्या हुआ ?' कजरी ने कहा : 'ऐसी तो कई नटनियों की औलाद हैं। जो नटिनी का जाया है सो नट है।'

मैंने कहा : 'नहीं कजरी। मेरे साथ आ।' मैंने उसका हाथ पकड़ लिया और चल पड़ा। बाहर आकर मैंने सीधा रास्ता पकड़ा। रास्ते में मंगू मिला। मैंने कहा : 'ओ मंगू ले यह सोलह आने। इसे बूढ़ी रामा को दे दे। बिचारी का नाती बीमार है।'

मंगू के हाथ पर जब पैसे पड़े तो आँखें कुछ चमकीं। मैंने कहा : 'दे दीजो नहीं तो अच्छा न होगा।'

मंगू ने अपने मजबूत कंधों की तरफ देखकर कहा : 'अरे क्या बात करता है सुखराम ! पर तेरा कुछ हरज है अगर मैं अपने नाम से दे दूं ?'

'सो कैसे हो सकता है ?' कजरी ने कहा—'मुंहजले की बात तो देखो।'

मैंने कहा : 'उससे क्या फ़ायदा है तुझे ?'

मंगू झेंपा, बोला : 'मेरी, लुगाई मर गई है। तू जानता है। रामा का बेटा बहू को तंग करता है। जरा कुछ ले देता रहूँगा तो वह मुझे मान जायेगी।'

कजरी ने कहा : 'अरे सांड के सांड ! तू ऐसे लोगों से मांग-मांगकर लुगाई लायेगा ?'

मंगू ने उसे देखा फिर मेरी तरफ़ भिखारी की-सी आँखें उठाईं।

मैंने कहा : 'अच्छा मंगू ! दे दे। अपनी तरफ से दे दे। तेरा घर बस जाये तो अच्छा ही है। पर मैंने ये पैसे कजरी से लिये हैं, सो तू चुका देना। वचन दे।'

'मैं वचन देता हूँ।' उसने कहा।

'और ये सब रामा के बच्चे के लिये दे देगा ?'

'हाँ।',

मंगू चला गया, कजरी मुझे देखने लगी।

'क्या देखती है ?'

'तू कोई महातमा है ?' कजरी ने पूछा।

'महातमा होता तो लोग मेरे पाँव न पूजते ?'

'आज मैं तुझे पूजूंगी !' कहकर उसने दोनों कानों पर हाथ रखकर अंगुलियाँ चटकाकर मेरी बलैया ली।

मैंने कहा : 'चल !'

'कहाँ ?'

'चल, जहाँ मैं कहूँ।'

कजरी चली। मैं लम्बे डग भरकर चला। पथरीला रास्ता था। एक कोस चलकर हाँफने लगी। अगले आधे कोस पर संग रखने को भाग-भागकर चलने लगी।

नीचे नीले पत्थर बड़े-बड़े ढोंकों से फैल गये थे जो पैरों को सख्त लगते थे। कजरी बैठ गई। 'क्यों,' मैंने कहा।

'ज़रा सुस्ता लेने दे मुझे। कहाँ चल रहा है ?' उसने कहा।

'तू चल तो सही।' मैंने उसका हाथ पकड़कर उठा लिया। मेरे मजबूत पंजे में एक झटके से उठ आई।

'अच्छा चल।' उसने कहा : 'तू तो मरद है। बड़ी तेज चलता है। मुझ-से तेरे साथ नहीं चला जाता।' वह अब भागने लगी। पर आधा कोस और

चले, अब पहाड़ का तला आ गया था। हम ऊपर चढ़ने लगे। सामने पहाड़ का सिरा दिखाई दे रहा था। हम उस सीधी चढ़ाई पर चढ़ते रहे। कजरी थक गई। बोली : 'दईया री। घुटने टूट गये। कैसी चढ़ान है। तू बहुत जल्दी चलता है। मैं नहीं चल सकती।' सिरा आया तो बैठ गई। बोली : 'मैं समझती थी पहाड़ इत्ता ही होगा। तेरी सौं ! मैं कभी इस पै नहीं चढ़ी थी। पर यहाँ तो अन्त ही नहीं लगता।'

मैंने कहा : 'पहाड़ ढलुआँ होता है। नीचे से देखने को गोलाई से ऊपरी छोर नहीं दिखता। जहाँ नजर पहुँचती है, वहाँ ढाल की गोलाई आती है।'

'अब कितना और है ?'

'चल तो सही।' मैंने कहा। कमर पर हाथ देकर उठाया।

फिर चढ़ने लगे। पर अगली चढ़ाई यह और भी कठिन थी। कजरी मेरे सहारे से चढ़ती गई। पर बुरी तरह हाँफ गई और टांगें लम्बी करके पत्थरों पर ही लेट गई।

बोली : 'दईया रे ! फाड है कि हांफत है !' उसने हाँफते हुए कहा।

'थक गई ?' मैंने कहा। और इधर-उधर देखा। अभी पेड़ों की हरियाली आड़ में आती थी। सो मेरा काम पूरा नहीं हुआ था।

वह बैठ गई। घुटनों के नीचे पाँव की हड्डियों को दबाती रही। बोली : यहीं सारा लहू इकट्ठा हो गया है। दरद होता है।'

मैंने बैठकर बीड़ी सुलगाई।

'तू नहीं थका ?' उसने कहा।

'मुझे पुरानी आदत है पहाड़ पर चढ़ने की।' मैंने धूआ उगलकर कहा।

हवा वहाँ तेज़ थी। कुछ ठंडी भी थी। कजरी ने कहा : 'कैसा लगता है सब। नीचे देख। खेत कैसे रंगीन हरे-हरे हैं। चौका-चौका-से। घर कैसे छोटे-छोटे-से हैं। नीचे से सब कित्ता बड़ा-बड़ा लगता है। यहाँ से देख सुखराम ! वे बैल देख। पैर चल रही है। ऐसा लग रहा है जैसे बैल न हों, कुत्तों से भी छोटे हों।'

'अब चलती है कि बात बनाती है।'

'तेरी सौं, मुझसे नहीं चला जायेगा।'

'अरी तू तो जवान है !'

'ना, ना ! मैं तो बूढ़ी हूँ। अब तू जा। कहाँ जा रहा है ?'

'बस तीन चढ़ान और हैं।'

'तीन !' वह फिर लेट गई।

'अच्छा !' मैंने कहा : 'तू मेरे कन्धे पर चढ़ जा।'

'अरे नहीं !' उसने लजाकर कहा : 'कोई देखेगा तो क्या कहेगा ?'

'क्या यहाँ की बात नीचे से दिखाई देती है ? एकदम छोटी। जैसे यहाँ से वहाँ की। देख ये धौ के पेड़ नीचे से कितने छोटे-से लगते हैं। ऊपर हम से बड़े हैं।'

मेरे समझाने से वह मान गई। मैंने उसे कन्धों पर बिठा लिया। दोनों तरफ उसने टांगें लटका लीं और मेरा सिर पकड़ लिया। मैं धीरे-धीरे चढ़ने लगा। वह मेरी ताकत पर ताज्जुब करने लगी।

जब एक चढ़ाई खतम हुई तो मैंने कहा : 'उतर बकरी !'

वह उतर गई। हँस दी। फिर उसने गले से एक तावीज उतार और मेरे हाथ पर बांधने लगी।

'यह क्यों ?' मैंने कहा।

'यह मुझे मेरी अम्मा ने दिया था, मरते बखत।'

मैंने देखा।

वह कहती रही : 'उसने कहा था : तेरा बच्चा हो तो उसके बाँध दीजो, तेरी भी नजर न लगेगी उसे। तुझ में बड़ी ताकत है। मैंने तभी बांधा है तेरे। कहीं तुझे नजर न लग जाये मेरी मरी।'

'तो मैं तेरा बच्चा हूँ !' मैंने कहा।

ढोकों की छाया आ रही थी। कजरी एक के नीचे बैठ गई और बोली : 'बच्चा भी तो अच्छा लगता है। जब मेरे बच्चा हो जायेगा तो तेरे हाथ से उतार के उसके गले में बांध दूँगी।'

'अच्छा अब चल !'

'कन्धे पै न बैठूंगी, मुझे डर लगता है। तू झुकता है तो मुझे लगता मैं गिरूँगी और मेरे दांत टूट जायेंगे। तेरी कसम जान गले में आ अटकती है।'

'गिरेगी कैसे ?' मैंने कहा : 'मैं ऐसे ही थोड़े पाँव धरता हूँ। पांव का जोर देने के पहले देख लेता हूँ कि पत्थर में मुझे सम्भालने का दम है कि नहीं ? कहीं खिसक तो न जायेगा ?'

'न मैं नहीं चढ़ूंगी।'

'अच्छा तू मेरी पीठ पर चढ़ जा।'

'वह मना करने लगी पर मैं न माना। मैंने उसे मशक की तरह पीठ पर उठा लिया और धीरे-धीरे चढ़ने लगा। अब की बार मैं दोनों चढ़ान एक ही बार में चढ़ गया। कजरी मिनमिनाती रही : 'ओ तू तो आदमी नहीं है। कैसे सर-सर चढ़े जा रहा है ? कहीं फिसल न जाइयो। हाय ऐसे लटकाये जा रहा है मुझे। मेरे बदन में दरद होता है।'

पर मैंने उसे पहाड़ की चोटी पर पहुँचकर पत्थर पर एकदम छोड़ दिया। वह धप से गिरी और चिल्लाई : 'हाय मार डाला कढ़ीखाये ने ! कुहनी फूट गई मेरी मैया।'

मैं बैठ गया। मैं थक-सा गया था। मैंने कहा : 'कजरी !'

मैंने धीरे-धीरे हाँफनी भरी। और कहा : 'तू पूरी ढाई मन की ल्हास है। तेरी कसम। गधे पर लाद दी जाये, तो गधा रेंक के मर जाये। मेरी मैं ही जानता हूँ। दिखती तो ऐसी फूल-सी है, पर आँख की ओट करके उठाओ तो भूतनी-सी टांगें फैला देती है। पूरी ढुबाई है, पूरी।'

कजरी की आँखों में हँसी थी। चिढ़न भी थी। बोली : 'अरे रहने दे ! तूने उठाया कहाँ मुझे ? पाँव तो पहाड़ पै छिलते-घिसटते आये हैं। फिर भी मुझमें बोझ था ? अच्छी कही। अपनी न कहेगा पूरे लाला का-सा गट्ठर है।'

मैंने कहा : 'और लो। इतनी भारी तो तब थी जब पाँव धरती पै घिसटते हैं भूतनी के। जो कहीं सारा बोझ मुझ पै आ गया होता तो मेरे बाप और बाबा से भी नहीं उठती !'

हम दोनों हँस दिये।

दुपहर हो गई थी चरवाहे दूर कहीं पहाड़ पर पुकार रहे थे। सामने के पहाड़ पर कई जगह गायें धौरी-धौरी-सी दिखाई दे रही थीं। एक पेड़ के नीचे कुछ लड़के बैठे थे। कोई बांसुरी बजा रहा था।

'मेरे पैरों में बड़ा दरद हो रहा है।' कजरी ने कहा।

मैं पास बैठ गया। उसके पाँव गोद में रखकर दबाने लगा।

'अरे क्या करता है ?' कजरी ने शर्माके उठते हुए कहा : 'तू नहीं थका ?'

'अब थकान दूर हो गई है।'

'मेरी आँखें फूट जायें।' उसने कहा : 'जो तुझे मेरी नजर लगे।'

उसने मेरे पांव छुए। फिर कहा : 'मरद में बड़ा दम होता है ? क्यों ?'

मैं मुस्कराया।

उसने फिर कहा : 'तभी तो उसका हुकम चलता है।'

'मैं तुझ पर हुकम चलाता हूँ ? अभी तो तेरे पाँव दाब रहा था। ऐसी गुलामी तेरी किसीने की है ?'

'सो तो है।' उसने कहा : 'तू बड़ा घुन्ना है।'

'क्यों भला ?'

'भीतरी मार मारता है।'

'क्या नुकसान किया है मैंने तेरा ?'

'अरे और क्या नुकसान करेगा तू ? ऐसे उठा के लाया है बेदरदी से, कि अंग-अंग ढीले हो गये हैं।'

मैंने हँसकर उसे देखा।

उसने कहा : 'मेरा बाप मेरी अम्मा से कहता था—मरद वही है जो औरत को दाबके रखता है। रोटी दे दो और बोटी दे दो। इनकी भूख मत रखो, पर फिर मीठे न बोलो। नहीं तो सिर पर चढ़ जाती है। औरत और आग बराबर हैं। सुलगते ही बुझा दो, नहीं तो ऊपर तक चाटती हुई जलाती हुई चढ़ती चली जायेगी। तू मुझे क्यों नहीं दबाके रखता।'

मैंने कहा : 'तेरी अम्मा कटखनी होगी। मेरी कुतिया तो पालक है। अपने आप, बंधे बिना ही, मेरे डेरे के द्वार पै बैठकर भोंकती है, तो मुझे जरूरत क्या ? जब सीधी उंगली घी निकले तो उंगलियाँ टेढ़ी क्यों करूँ ?'

कजरी ने कहा : 'यों कहेगा ? यों कह कि मेरा बाप धोबी था, पत्थर पै पछाँट के धोता था, और तू धोबी का गधा है जो लादी लाद के चलता है ?'

हम दोनों हँसे। मैंने कहा : 'अच्छी बात है।'

'क्या अच्छी बात है ?'

'इसीला कहा करता था कि लातों के देव बातों से सीधे नहीं होते।'

'सो ?'

'मुझे जब लात का देव मिला है तो बातों से काम नहीं लूंगा।'

'मुझे मारेगा ? तूने मारा तो था।'

'झूंठी ! कब मारा था ?'

'बातों की मार मारी थी। यह चोट तो बदन पै लगती है, पर मन कं चोट तो कसक के रह जाती है।'

'तू बड़ी बातूनी है। जीभ कतरनी-सी चलती है तेरी। तेरी यह जीभ ही काटूंगा।'

'मुझे धक्का न दे दे यहाँ से नासपीटे। तेरे हिये में सीरक पहुँच जायेगी। बता मुझे क्यों लाया है यहाँ ?'

मैंने देखा। दूर वह धूप में सुर्ख़-सा चमक रहा था।

'क्या देख रहा है ?' वह मेरे पास आकर मेरी एकटक नज़र को देखकर बोली।

'वही, जिसे दिखाने को तुझे यहाँ लाया हूँ।'

'क्या है वह ?'

'अधूरा किला।'

अरे तुझ पै पत्थर पड़ें।' कजरी ने कहा : 'कमबख़त ने इसे दिखाने को मेरी हड्डियाँ ढीली कर दी हैं ? नीचे ही कह देता, मैंने क्या देखा नहीं था पहले ? मैं सारी रियासत में घूमी हूँ। इसे दिखाने को तैंने मुझे सरग दिखाया है ? तू पागल तो नहीं है ?'

'हाँ कजरी !' मैंने कहा : 'यह अधूरा किला मुझे पागल कर देता है।'

'मैं नहीं करती ?'

'नहीं। तू मुझे भाती है, यह मुझमें कंप जगाता है।'

'चला गया होगा इसमें ? कहते हैं भूत रहते हैं। मेरा बाप कहता था, वह इसके नीचे चला गया था। वहाँ अन्धेरा ही अन्धेरा था। उसके खरच पूरे ही नहीं पड़ते थे। उसने जगह-जगह पुरानी इमारत खुदाई थी कि कहीं धन निकले। बड़े-बड़े सयाने उसकी नौकरी में थे। किसीने कहा इसके नीचे कई थैंखाने हैं जिनमें बड़ी दौलत भरी पड़ी है। पर भीतर घुसते लोग डरते थे। मज़ूर डर गये। मुकर गये। राजा ने कहा : गोली लगवा दूंगा। वे बोले : तू मार ले ! गोली से मरना भला, भूतों से कौन मरे !'

'फिर ?' मैंने कहा।

'मेरा बाप तब अधेड़ था। मेरी अम्मा से बोला कि जाता हूँ। जो एक आद भी माल हाथ पड़ गया तो पौबारह हैं। नहीं तो फिर नहीं सही। अम्मा ने कहा : और जो तू मर गया तो ! मेरे बाप ने कहा : मरना एक दिन है

ही। आज ही सही। वह न माना। भीतर उतर गया। और लोग भी उतरे। उसने लौटकर बताया, भीतर बड़े तिवारे-तिवारे-से थे। पूरा महल-सा था। अन्धेरा-अन्धेरा। घुप्प अन्धेरा। हवा गूंजती थी।'

मैं सुनता रहा। कजरी कहती गई : 'कुछ भी नहीं मिला। यों ही घूम-घाम के लौट आये। छोर ही नहीं मिला। वहाँ पुरानी कचहरी में अभी तक पहले राजा के लिये हुक्का भर कर धरते हैं। सबेरे ऐसे मिलता है जैसे पिया हुआ हो!'

कजरी के नेत्र आश्चर्य्य से फैल गये। उसने फिर कहा : 'एक नाई का छोरा एक बार जाने कैसे घुसकर खजाने तक पहुँच गया। कहता था, वहाँ हीरे-जवाहिरातों की ढेरियां लग रही हैं। बड़े-बड़े लोहे के जिरह बख़तर टँगे हैं। कमानीदार बंदूकें धरी हैं। सोना तो यों ही पड़ा है कि उससे उठाये ईंटें न उठीं। इतनी भारी-भारी थीं वे सोने की ईंटें!'

मैंने कजरी के हाथ पकड़ लिए। उसने मुझे देखा। मेरी आँखें फटी हुई थीं। मैंने कहा : 'कजरी!'

वह डर गई। कहा : 'क्या है रे?'

'वह सब मेरा है।'

'तेरा है?' कजरी ने कहा और बोली : 'तेरा क्यों, तेरे बाप का भी होगा!'

मैं नहीं समझा कि वह मज़ाक कर रही है।

मैंने कहा : 'तू जानती है कजरी! तू जानती है! वह मेरे बाप का भी था।'

'तेरे बाप का भी होगा?' कजरी ने कहा। अब मुझे महसूस हुआ कि वह मुझे ताना मार रही थी।

'सच कहता हूँ कजरी। मैं इसी किले के असली मालिकों के ठाकुर-खानदान में से हूँ। मैं ही इस किले का असली मालिक हूँ। मेरा बाप, मेरा बाबा, मेरा परबाबा और उसकी माँ, बस यही इसे नहीं भोग सके। पहले हमारे पुरखे इसमें राज करते थे। भाग ने हमें इससे दूर कर दिया।'

जब मैं कह चुका तो कजरी ठठाकर हँस पड़ी। उसका हास्य पहाड़ पर झंकारता हुआ फैल गया। मेरा मन सिकुड़ गया। मुझे चोट पहुँची।

मैंने कहा : 'तुझे विश्वास नहीं होता?'

'नहीं।' कजरी ने कहा। फिर वह गाने लगी :

'जब कभी भैंस के सींग पर ऊँट नाचा।'

और फिर उसने पलट कर गाया—

'जब कभी ऊँट के सींग पर भैंस नाची !!'

'कजरी !' मैं गुस्से से चिल्लाया।

'क्या हुआ ?' कजरी ने कहा : 'महाराज ! तेरी बाँदी सामने है। हुकम दे। मच्छर की आँख निकाल के सामने हाजिर करू ?'

मुझे चोट लगी।

उसने कहा : 'अरे मेरे गंगुआ तेली ! तू तो राजा भोज बन बैठा।' वह हँसती गई। उसने फिर कहा : 'तू मेरा राजा, मैं तेरी रानी ! तू है लँगड़ा, मैं हूँ कानी।'

वह तो गा रही थी। फिर उसने उठकर ठुमका मारकर कहा—

'मेरी सौत के बिछिया बजे आधी रात,
ऐरी आग लगिय मेरे जोबन गात।'

और अन्तिम स्वर खींचकर वह बेहूदे इशारे करके मटकने लगी। मुझे इतना गुस्सा आया कि मैंने उसकी तरफ़ से मुंह फेर लिया। पर उसने कूल्हे नचाना शुरू किया और गाया —'मैं तो चढ़ी हूँ पहार, बलम मोहे,
हरी-हरी दीसे सकल संसार···
बलम मोहे···'

मेरी आँखों में आँसू आ गये।

कजरी रुक गई। पास आई।

उसने पूछा : 'अरे तू रोता है ?'

मुझे चुप देखकर उसने कहा : 'क्यों ? क्या हुआ ?'

'कुछ नहीं', मैंने आँसू पोंछ लिये।

उसका मन भर आया। उसने मेरे हाथ पकड़ लिये।

'क्या यह सब सच है जो तूने कहा है ?'

'सच है कजरी।'

'खा मेरी कसम।'

'तेरी कसम।'

तब उसकी आँखों में डर दिखाई दिया। उसने कहा : 'तो तू राजा है !'

'हाँ कजरी। राजा नहीं हूँ। उस वंस में हूँ!'

वह कुछ कह सकने में असमर्थ हो गई। चुपचाप बैठी रही। भोंचक। मैंने ठकुरानी का किस्सा सुनाया। सब बताया। फिर भी वह घुटनों में सिर दिये बैठी रही। केवल आँखें उसने मेरी सूरत पर गड़ा रखी थीं।

मैं चुप हो गया। पूछा: 'क्या सोच रही है?'

'यही कि तू राजा है।'

'तो?'

'अगर तू राजा हो गया, क्योंकि भाग विचित्तर है, तो तू मुझे भूल जायेगा।'

'क्यों?'

'तब ठकुरानियां तेरी सेज सजायेंगी। तब तू कहेगा नटिनी हरजाई मेरी कौन है?'

'पर मैं तो तेरे साथ हूँ न?'

'लोग कहते हैं संग का पाप लुगाई को लगता है, लोग को नहीं। सब जात यही कहती हैं।'

मैं हँसा। कहा: 'मैं क्या राजा हो गया हूँ जो ऐसा भय खा रही है?'

'भाग की कौन जानता है। वह दूसरे पहाड़ पै तुझे छत्तरी दीखती है?'

'हाँ हाँ।'

'किसकी है?'

'किसी साधू की होगी।'

'नहीं वह नटिनी की छत्तरी है।'

'नटिनी की?' मैंने पूछा।

'हाँ, एक नटिनी ने इस पहाड़ से उस पहाड़ तक रस्सी बांधी थी। राजा ने कहा था जो तू इस पर चले तो आधा राज तुझे दे दूँ।'

'फिर क्या हुआ?'

'नटिनी सरत बाँध चली।'

'चली गई?' मैंने पूछा।

'आधे पहुँची,' कजरी ने कहा। 'सो राजा डर गया। झट इसारा किया। राजा के आदमियों ने रस्सी काट दी। नीचे गिरी सो नटिनी फट्ट मर गई। उसीकी याद में छत्तरी बना दी है।'

'राजा बचन पलट गया ?'

'पर वह राजा था। कहीं तू भी पलट गया तो ?'

'चल उल्लू की पट्ठी। तू तो शेखचिल्लिन है।'

'जैसा मरद है वैसी ही लुगाई है।' कजरी ने कहा—'क्यों ?'

'कोई एक कोस तो होगा इस पहाड़ से वह पहाड़। इत्ती लम्बी रस्सी कहाँ से आई होगी ?'

'अरे वारे !' उसने कहा : 'तू तौ अकल का बड़ा मट्ठा है। कल झोंपड़े में रहके राजा का सतखंडा कुआँ देखकर कहेगा कि यह कैसा बनाया गया होगा ? ओ दारी ! एक कोरिन ने कहा था, लगता है महल के बीच में कूआँ ऊपर से उतारा होगा।' वह हँसी : 'भला बता राजा के लिये कुछ मुस्किल है।'

मैं जवाब न दे सका। कजरी ने कहा : 'सुखराम !'

'क्या ?' मैंने पूछा।

'राजा के पास धन होता है ?'

'हाँ, बहुत !'

'तो मेरे साथ चल।'

'कहाँ ?'

'जहाँ मैं कहूँ।'

'बता भी !'

'तूने मुझे बताया था ?'

'पर तू मूरख है। तुझमें अकल नहीं है। पहले बता दे।'

'हाँ मैं मूरख ही सही। चल वहीं चलें। हम किले के नीचे घुसेंगे। शायद हमें वह खजाना मिल जाये।'

मेरी आँखें चौड़ गईं। मैं सोचने लगा। क्या यह हो सकता है ? कौन जानता है भगवान ने ही कजरी के मुँह से यह न सुझा दिया हो ! वर्ना मेरे मगज में यह क्यों आया नहीं ? मैंने हनुमान जी को सोने का हार बोल दिया। कैलावारी मैया के लिये नगों की छत्तरी बोल दी। घाटे वाले भैरों को सवा मन चून की मनौती की। मन हल्का हो गया। लगा बस अब मैं राजा हुआ। वह फौज बनाऊँगा। फतह करूँगा। मैंने कहा : 'कजरी ! तुझे और प्यारी को पीली कर दूँगा।'

'तो तू प्यारी को ले जा ?' कजरी ने कहा।

मुझे याद आया। कहा : 'तू उसे नहीं सह सकती ?'

'क्यों नहीं सह सकती ? तू तो कहता था वह मेरी बाँदी बनेगी ? फिर उसे मेरे बराबर क्यों कहता है ?'

मैं हँस दिया। मैंने कहा : 'चल मुझे भूख लग रही है।'

'रोटी भी नहीं खाने दी तैंने। तैयार छोड़ आई थी।'

'जल्दी चल।'

हम पहाड़ से उतरने लगे। वह फिसलने लगी तो मैंने उसका हाथ पकड़ लिया।

'धीरे उतर लाली !' मैंने कहा : 'संभल के पांव धर। कहीं पत्थर सरक गया तो वह पीछे पहुँचेगा, तू पहले पहुँच जायेगी।'

पर हम लोगों को आधी देर भी न लगी, उतरने में, जितनी कि चढ़ने में लगी थी।

हम सीधे डेरे पर पहुँचे।

पहुँचते ही सुना रामा की माँ और बहू रो रही हैं। बच्चा मर चुका है। हम दोनों को बुरा लगा। वह बच्चा बड़ा ऊधमी था, खूब खेलता था। जब किलकारी मारकर मोटे कुत्ते भूरा पर बैठ जाता था तब कितना अच्छा लगता था। भूरा उसे काटता न था। वह भी उससे ऐसा ही रहता था जैसे जानता था कि यह तो बच्चा है। इस वक्त दूर खड़ा हवा में सिर उठाये कभी-कभी रोने लगता था।

मैं आगे बढ़ा। मंगू मिला।

'क्या हाल है ?' मैंने पूछा।

'मर गया बिचारा।'

'पैसे दे दिये थे तूने ?' कजरी ने कहा।

रामा की मां ने कहा : 'मंगू बिचारे ने चार आने दिये। इस बखत एक वही काम आया।'

मैंने कहा : 'मंगू ! तूने चार आने दिये ? मैंने तुझे रुपया दिया था ?'

मंगू सकपका गया। रामा की माँ और बहू बच्चे की लाश के पास बैठी थीं। चौंक उठीं।

मंगू ने कहा : 'तूने मुझे उधार दिये थे। जब मुझे चुकाने ही है तो तू कौन मुझे खर्च का रास्ता बताने वाला। मैं मर्जी होगी तैसे खरच करूँगा।'

मैंने कहा : 'मंगू ! तू इतना कमीना है !'

कजरी ने कहा : 'अरे वनबिलाव-सी डाढें क्या चमकाता है तू ? तू इस बच्चे से न निभा सका, तू इसकी अम्मा से क्या निभायेगा ? यह तो इसीका बच्चा है।'

रामा की बीबी खड़ी हुई। उसने कहा : 'अरे कलमुँहे ! तेरा यह रंग था।' उसने चवन्नी फेंककर मंगू पर मारी : 'ले जा !'

मंगू ने पैसे उठा लिये और चलने लगा। उस वक्त मुझे बहुत ही गुस्सा आ गया। मैंने उसका कंधा पकड़कर कहा : 'कहाँ चला कमीने। ले के चल दिया सोलह आने, जैसे तेरे बाप की कमाई है। तेरे लिये दिये थे ?'

मंगू को अपनी ताकत पर नाज़ था। उसने कंधा झटके से छुड़ाकर कहा : 'मेरे बाप की नहीं,' और कजरी की तरफ इशारा करके कहा : 'तेरी अम्मा की कमाई है।'

कजरी झपटी और उसने उसका मुँह नोंच लिया। उसने कजरी को हाथ मारा। कजरी गिरी कि मैंने बफर कर हमला किया। मंगू और मैं धड़ से धरती पर आ गिरे। रामा की माँ और बहू चिल्लाने लगीं। नटों की भीड़ इकट्ठी हो गई। हम दोनों की कुश्ती हो रही थी। कभी वह मेरे बाल पकड़ता, कभी मैं उसे दे मारता। हम दोनों को ही तेज़ गुस्सा था।

कजरी मेरी ताकत जानती थी। वह आराम से खड़ी गाली दे रही थी : 'हरामी को देखो ! सब लोग। इसने मुझे मारा ! पर ठहरे रहो ! अभी मेरा मरद इसकी चटनी करके धर देगा !'

मंगू की मां ने कजरी को हाथ नचाके टोका। कहा : 'अरी क्या सिपाही के जा बैठी सौत का डर दिखाती है ?'

'चल खुस हो !' कजरी ने दाँत निपोरकर बंदर-सा मुँह बनाया।

मैं ज्यादा न देख सका। मंगू ने मेरे पांव में काट खाया। मुझे दर्द हुआ। तब मैंने उसे हाथों पर उठा लिया और धम से धरती पर दे मारा। मंगू चिल्लाकर बेहोश हो गया। मंगू की मां उससे चिपट गई।

कजरी ने मेरे फटे कुर्त्ते को देखा और मुझसे चिपट गई। जगह-जगह लगी मिट्टी साफ़ करके झाड़ने लगी। मैं कजरी को ले के डेरे में आ गया। मैंने देखा, पाँव में उसके चार दांत गड़े थे। खून निकल आया था। कजरी ने उसे धोया और मैंने बाहर जाकर पास के पेड़ों में से एक रूखड़ी निकाल के उस पै

निचोड़ी और आके रोटी खाने बैठ गया। मैं और कजरी खाने लगे।

मुझे नींद आ रही थी। मैं सो गया। कजरी द्वार पर बैठकर अपने बाल खोलकर काढ़ने लगी।

जब मैं जागा तब पांव में दर्द था थोड़ा-थोड़ा।

'कटखना।' मैंने कहा।

'दर्द है अभी ?' उसने पूछा।

'पूरे गचका दिये उसने।'

'कुत्ता है, मेरी तो उसे फाड़ खाने की इच्छा हुई थी। पर तूने कमाल किया।'

'क्यों ?'

'अब कहूँगी तो समझेगा तेरी खुसामद करती हूँ।'

'क्यों ?'

'अरे चल बोदे ! क्यों से तो मुझे जूड़ी चढ़ती है।'

'कुछ कहेगी भी कि नहीं ?'

'तूने जो उसे उठा के हवा में घुमाया तो मैं तो डर गई। अम्मा रो ! ऐसा हाथ नहीं देखा था। सबकी आंखें फट गईं। इस मंगू ने तो सबके दांतों में उंगली चबवा दी थी। हरामी जूआ होता है न ? उसकी नाल पुलस को पहुँचाता है, सो अपने को दरोगा का बच्चा समझने लगा है।'

'इसे मैं ठीक कर दूँगा।'

'मुझे डर लग रहा है।'

'क्यों ?'

'यह बड़ा खूनी है।'

'मैं ही इसका खून कर दूँगा।'

'तू खून भी कर सकता है ?' वह हँसी।

मैंने कहा : 'तुझे विस्वास नहीं होता ?'

'तेरी कसम ऐसे नहीं होता, जैसे कोई कहे कि एक मरद ने बच्चा जना था।'

'अच्छी बात है। एक दिन तेरा ही खून करूँगा सुसरी। तू बड़ी मस्ता गई है।'

मैंने उसकी पीठ पर कसके धौल जमाया।

कजरी की आँख में आँसू आ गये। इतनी जोर से लगी। बोली : 'हत्यारे! मुझे मार डाला! हाय गई, मेरी कमर टूटी!'

मैंने हँसकर उसकी पीठ सहलाई। बोली : 'यह क्या तूने मुझे कमजोर समझा है?'

मैं हँसा। उसने कटार निकाल ली। कहा : 'ले ले कटार हाथ में। फिर दिखाऊं तुझे अपने हाथ।'

'तेरे लिए जिस दिन कटार उठाने की जरूरत पड़ेगी, मेरा जीना बेफिजूल है।'

'अच्छा रे तुझे इतना हैंकार है? तो ले संभाल।'

उसने छुरा फेंका। मैं उछलकर बच गया। अगर वह मेरे लगा होता तो पसली काट गया होता।

'देखा!' कजरी ने कहा—'आदमी से बंदर की तरह उछल-कूद तो पहले ही हाथ में करने लगा।'

मैंने उसको उठाकर मंगू की तरह ऊपर घुमाया। बोली : 'अरे परमेसुरे। माफ कर। छोड़ दे तेरे पांव पड़ूं। कैसी मर्दानगी दिखा रहा है अपनी लुगाई पर। कोई सुनैगा तो हँसेगा। तेरी कसम! मर जाऊँगी। दया कर। मैं तेरी गैया हूँ।'

मैंने उतारकर नीचे रख दिया तो बोली : 'बैल नहीं तो कहीं का।'

'फिर चटकी?' मैंने कहा।

'तू हाथ चला, तेरे हाथ है, मेरे जीभ है, मैं जीभ तो चलाऊंगी ही।'

मैं हँस दिया। वह भी।

उसने कहा : 'यह मंगू रात को तुझ पर जरूर कभी हमला करेगा।'

'टुकड़े कर दूँगा।'

'अरे अन्धेरे में कहीं पीछे से कटार घुसेड़ दे तो?'

'मैं तो लड्डू हाथ में भर के नहीं चलता?'

'मैं तेरे पांव पड़ती हूँ। मेरी बात तो सुन ले।'

'अच्छा कह।'

'इसे तू जेल करा दे। पहली दो बार हो आया है। एक जरा-सी रपट में घिर जायेगा। सांसत मिट जायेगी।'

'नहीं।' मैंने कहा।

'तू नहीं जायेगा, तो मैं तेरे लिए प्यारी के पांव पकड़ूँगी। सौत मेरी, आप बंद करा देगी।'

मुझे लगा मैं पागल हो जाऊँगा। मैंने उसे हाथों में उठा लिया। कहा : 'कजरी ! तुझे मेरा इतना ख्याल है। तू मेरे लिए प्यारी के पांव छूने को तैयार है ?'

'सच कहती हूँ।' उसने कहा : 'यह बातें छोड़। अकल की बात कर। थाने में खबर दे दे।'

मैंने कहा : 'नहीं कजरी। मंगू भी हममें से है। गलती कौन नहीं करता। मर्दों का खेल था। दो-दो हाथ हो गये। बात निबट गई। मुझे उससे कोई बैर थोड़े ही है। मंगू को असल में लुगाई चाहिये। उसका कोई इन्तजाम करना चाहिये।'

और अचानक डेरे के दरवाज़े पर मंगू दिखा। शायद वह आड़ में खड़ा था। उसके हाथ में कटार थी। उसने वहीं फेंक दी और दौड़कर मेरे पाँव पकड़ लिये।

मैंने उसे सीने से लगा लिया और कहा : 'मंगू ! मैं और तू दो इतने मजबूत हैं कि पहाड़ हैं। पर जब हम तुम लड़ते हैं तो हम दोनों कमजोर हो जाते हैं।'

कजरी ने दांतों में उंगली दबा ली। सब नट द्वार पर आ गये थे। उन्होंने कहा : 'मंगू ने माफी मांग ली ?'

मैंने बाहर आकर कहा : 'वह क्या मुझे मारने आया था ?'

उन्होंने कहा : 'हाँ। वह आखिरी फैसला करने आया था।'

मैंने कहा : 'सुनती है कजरी। वह मर्द है। सामने आया था फिर से। तू बेकार की बात करती थी। मैंने नहीं माना।'

भीड़ चुप थी।

मैंने मंगू को सीने से लगाकर कहा : 'यह मेरा यार है। हम लोग आपस में एक दूसरे के दुसमन नहीं हैं।'

मंगू ने कहा : 'मैं फैसला करने आया था, पर सुखराम शेर है। मैं इसकी बात पै रीझ गया हूँ। सुखराम मरद है।'

भीड़ चली गई। मंगू भी चला गया। मैं और कजरी रह गये। मैं खाट

पर लेट गया। वह घड़ा लेकर गई। लौटी तो पानी के साथ एक बटेर ले आई।

उसे भूनने को रख दिया और बोली : 'रस्ते में वह खरहा पड़ा। पर घड़ा धरा था, नहीं तो मार लाती। बड़ा अच्छा था। खाल बिक जाती। मांस मिल जाता। चलो सुखराम ! तुम भी कहना कि लुगाई भी बड़ी मस्तानी होती है। बटेर को मारा निसाना। बस वहीं औंधी हो गई।' उसने पंख-पर समेटे और चोंच के साथ बाहर फेंक आई।

जब बटेर पक गई तो मिर्च और नमक रखकर चाकू से काटकर पास ले आई।

मैंने खाई। बड़ी अच्छी थी।

'कैसी है ?' उसने पूछा।

मैंने चिढ़ाने को कहा : 'ठीक ही है।'

'ठीक ही है ? अच्छी नहीं है ?'

'हाँ अच्छी ही है।'

'तो इस फूटे-से ढोल से अब बोल भी नहीं कढ़ता ?'

'जैसी तू वैसा मैं ?'

'क्यों ?'

'तू मन की बात क्या सहज कहती है ?'

'कैसे ?'

'कब चलेगी अब ?'

'कहाँ ?'

'प्यारी के पाँव पड़ने।'

कजरी चिढ़ी नहीं। मुस्कराई।

बोली : 'तू बड़ा वो है।'

'क्या है ?' मैंने पूछा।

'चुप्प !' उसने कहा : 'सारी बात पंचों की सिर-आँखों पै, पै परनाला यहीं बहेगा। तू राजा है। तू गरजने वाला नहीं, बरसने वाला है। मेरा गला सूख गया, पर तूने नहीं सुनी एक भी। अपनी ही टेक निभाई है। लूंगी मैं भी, बदला लिये बिना नहीं छोड़ूँगी। तू मेरे पांव पकड़ न घिघियाये तो मेरी जात नहीं।'

'तू कहे अभी घिघियाने लगूं ?'

'आज माफ़ कर। मेरे पांव वैसे ही टूट रहे हैं। और मत मारियो मुझे । अरे सांझ हो आई। लकड़ी बीन लाऊँ जंगल से। रोटी बनानी है। कहीं ठीक बखत से रोटी नहीं हुई तो दाईमारा फिर मारेगा मुझे।'

'कह ले, कह ले !' मैंने कहा : 'आज तक मारा नहीं है तुझे। किसी दिन बताऊँगा।'

कजरी हँसती हुई दाँत पीसती भाग गई।

१२

और सुखराम ने कहा था :

'मैंने सवेरे के बखत अपना सामान इकट्ठा किया और कजरी को साथ लेकर दो और लड़कों को लेकर मेले की तरफ़ चल दिया। मेला उसी गांव में था जहाँ हमारी, बाहर की तरफ, बस्ती बसी हुई थी।

मैंने खेल दिखाना शुरू किया। खेल खूब जमा। और कजरी के नाच ने तो समा बांध दिया। जब वह कमर हिलाने लगी तो देखने वालों के मुंह से आहें निकल पड़ीं। वह जिधर देखती उधर लोगों की मण्डली झुक पड़ती। जब वह जाटनियों की तरफ़ नाची तो जाटनियों में काना-फूंसी और हँसी होने लगी। कजरी ने उन्हें गंदे इशारे किये। वे हँस दीं।

एक जाटनी ने मुंह में फरिया देकर कहा : 'रंडी। कैसी चमको है।'

कजरी ने पलटकर कहा : 'मैं चमको तू चौदिस,'

और दूसरी कड़ी इतनी गंदी थी कि जाटनियों में झेंप पड़ गई। मरद चिल्लाने लगे। गांवों के छैलाओं ने कजरी को रुपये दिखाये। कजरी ने घूंघट काढ़ लिया और वह उधर चली गई। हाथ फैलाकर गाने लगी। उसने वह गीत गाये कि छैला शर्मा गये और रुपये उनके हाथों से कजरी निकाल लाई। और मुझे दे दिये।

हमने खेल के बाद घूम-घूमकर चँदिया-पकौड़ियां खाईं। कजरी ने कहा : 'नुकती ले दे मुझे।'

हमने नुकती खाई। आज वह बहुत खुश थी। पास आकर कान में कहा : 'कित्ते पैसे हैं!'

'कजरी, चौदह रुपये हैं।'

'सच??'

'तेरी सौगंध।'

'मुझे लगै भगवान ने सुन ली।'

'चल कपड़े खरीद लें।'

'तू चुन लीजो मेरे लिये।'

'तू अपनी पसन्द की देख लीजो।'

एक-एक रुपया मैंने छोरों को खाने को दे दिया। वे सामान लेकर डेरे चले गये।

मैंने कजरी के लिये कपड़े की दूकान पर कहा : 'बौहरे! फरिया दिखाओ।'

'ले ओ। आओ!' बनिये ने कहा।

उसने हरा, पीला, और काला रंग सामने रखा।

'कौन-सा लेगी?'

'मैं क्या जानूं?'

बनिये ने कहा : 'तीनों रंग फबेंगे। चाहे जौन-सा ले लो।'

मैंने कहा : 'पीली दे दे।'

छींट का लहंगा लिया। रेशम की चोली।

शाम हो गई थी। मेला पतला गया था। हम मैदान के बाहर आये तो सामने नजर पड़ी। अधूरा किला खड़ा था।

मैं और कजरी उसको देखकर ठिठक गये।

'कजरी!'

'क्या है?'

'चलैगी?'

'तेरे संग तो मैं जम के भा यहाँ चली जाऊँगी।'

हम दोनों उतरते अंधेरे में किले की तरफ़ चल दिये। किला टूटा हुआ

था। एक ओर अधूरा था, सो उसकी मरम्मत नहीं हुई थी। मैं और कजरी फुलवाड़ी में होकर गुजरे और बिल्कुल सुनसान में आ गये, जहाँ गुञ्जान झाड़ियाँ थीं। पर हमारे पास रोशनी नहीं थी।

कजरी ने कहा : 'चल अभी बाजार होगा।'

हम लौटे। कपड़े लिये। डंडा पेड़ से काटा। तेल खरीदा। पलीता बनाया और दियासलाई लेकर हम फिर वहीं पहुँचे। झील बराबर में लहरा रही थी।

मैंने कहा : 'कजरी, तू यहीं ठहर। मैं भीतर देख के आता हूँ।'

'नहीं। मैं नहीं रहूँगी यहाँ !'

'क्यों ?'

'मुझे डर लगता है।'

वह ऐसा भयावना सन्नाटा था कि मुझे भी दहशत-सी चढ़ गई। पर उस वक्त मुझे बुखार-सा था। मैंने एक हाथ में कटार ले ली, दूसरे में जलती मशाल। फिर मैंने कहा : 'कजरी।'

'क्या है ?'

'तू मसाल पकड़ ले।'

उसने मसाल पकड़ी। मैंने उसकी कमर में बाँया हाथ डाल दिया। उसका डर कम हुआ। बोली : 'यहाँ एक बावड़ी है। उसमें तहखाने का रस्ता है। मेरे बाप ने बताया था।'

हमने कुछ ही देर में शिवाले के पीछे की बावड़ी को ढूंढ निकाला, जो घनी इमलियों के नीचे पड़ी थी। बाबड़ी क्या थी चौखना कूँआ था। एक तरफ से उसमें पैर चल सकती थी। दूसरी तरफ सीढ़ियाँ उतरती थीं। मशाल की फरफराहट में हमने देखा कि सामने के बाँये तरफ छोटी-छोटी-सी तिदरियाँ बनी थीं।

कजरी ने कहा : 'यहाँ बाबरी का मेला जुड़ता है।'

'मैं देख चुका हूँ।' मैंने कहा।

'पर मेरा बाप जितना जानता था उतना तू नहीं जानता।'

'क्या कहता था वह ?'

'कहता था यहाँ जिन्न आते हैं पून्यो के पून्यो !'

मुझे चैन आया। आज दौज थी।

'पास ही बड़े महाराज की समाध है।' कजरी ने कहा—'वे यहीं रात को आते हैं। तेरे तो पुरखा हैं। तुझे थोड़े ही तंग करेंगे ?'

'हाँ कजरी। वे तो मुझे रास्ता बतायेंगे।'

उस वक्त उस अंधेरे में कजरी ने मशाल जंगल की तरफ करके कहा : 'यहाँ बघेर आता है।'

उसका चेहरा सफेद पड़ गया था। मैंने उसे सीने से लगाकर अपना मुंह उसके माथे पर रगड़ा। उसे ढांढस बँधा। तभी बावरी में लगा कोई छुन-छुन-कर बिछिया बजी और हम चौंक उठे। तभी अंधेरे में कोई भारी आवाज से हँसा। कजरी ने कहा : 'कोई इसमें है जरूर। कहते हैं एक गूजरी इस बावड़ी में सास से तंग आके डूब मरी थी। वह यहीं रहती है।' वह काँप रही थी।

मैंने कहा : 'डर नहीं कजरी। हमारे पास आग है। कोई आसेब पास नहीं आ सकता। ला मुझे दे मसाल, कहीं तू डर से छोड़ न दे।'

मैंने मशाल हाथ में ले ली। कजरी ने मेरी कमर पकड़कर दोनों हाथों से मुझे जकड़ लिया। फिर मैं आगे बढ़ा। कजरी मेरे साथ खिसकी।

'तू डरती है ?' मैंने कहा।

कजरी दूसरी तरफ़ देख रही थी। वह बोली : 'देख ! देख ! गूजरी, गूजरी !!'

उसका बदन पसीने से तर ब तर हो गया। अंधेरे में सामने एक खंभे की आड़ में दो पीली-पीली आँखें चमक रही थीं।

कजरी ने कांपती आवाज में कहा : 'ओझल हो जा परमेसुरी। तुझे गंगा निहलाऊंगी।' लेकिन आँखें चमकती रहीं। और एक बिल्ली निकल आई। कजरी ने कहा : 'देखता है, बिल्ली बन के आई है। चली गई।'

उसने एक लम्बी सांस ली।

मैं सिड्डियाँ उतरने लगा। अन्त में हमने साफ़ देखा कि पानी चमक रहा है। उसी समय कोई बड़ी ज़ोर से चिल्लाया, जैसे बच्चा रोया हो। और वहाँ कोई बड़ा-सा पखेरू उड़ता हुआ दिखाई दिया। उसके फटफटाते पंखों की चपेट से वहां की हवा हिल उठी। वह पखेरू नीचे को घहराया। कजरी के मुंह से चीख निकल गई।

जब वह सुस्थिर हुई तो हम आगे बढ़े। पर कजरी मुझसे चिपट गई। उसके दिल की धड़कन से हिलते सीने के कारण मैंने उसकी धड़कन को साफ़ सुना।

अब जंगल से गेदुओं और कुत्तों की गांव से पुकारों की चोटफेंट होने लगी थी। उससे सारी हवा डरावनी होने लगी थी। मैंने कजरी को आंखें भरकर देखा और कहा : 'अगर तू डरेगी तो काम कैसे चलेगा।'

'मैं जानकर तो नहीं डरती।'

'तेरा बाप शेर था कजरी। तू उसकी बेटी होकर गोबर कर रही है? तुझसे गरजा नहीं जाता?'

कहीं दूर बघेर की गुर्राहट सुनाई दे रही थी। कजरी कांपने लगी। मैंने कहा : 'दूर है। झील पै पानी चाटने आया होगा कुत्ता!'

और मुझे उस वक्त अपने बाप की याद हो आई जिसने दो बघेरों से लड़ते हुए जान गँवा दी थी। मुझे बघेर से घिन हुई। इच्छा हुई कि एक बार उससे लड़ूँ। मुझे फड़कन हुई। कजरी को ढांढस हुआ। फिर हम एक अंधेरे छोटे दरवाज़े के सामने पहुँचे। मैंने मशाल झुकाकर देखा। कमरे में जाले लगे थे। उसकी हवा गंदी थी। मैं नीचे उतरा। कजरी मुझसे ऐसे लिपट गई थी कि कोई अनजाना आदमी दूर से देखता तो समझता कि मैं चार पाँव का जिनावर हूँ। सच तो यों है कि वह जितना डरती थी, मुझे उतनी ही हिम्मत बढ़ती थी। वह औरत थी। मैं उसे चाहता था। और मैंने महसूस किया कि मैं असल में उसीकी वजह से डटा हुआ था, वर्ना कभी का भाग गया होता।

हमारे कमरे में घुसते ही कई पटादीवलियों ने घुमड़ कर चक्कर मारे और छुनछुन कर बाहर निकल गई। कजरी ने कहा : 'मेरा दम घुट रहा है।'

हम अगली कोठरी में घुसे। उसकी धरती खुद गई थी। मैंने देखा वह कोठरी तीनों तरफ़ से बन्द थी।

'बाहर चलो।' कजरी ने कहा : 'यहाँ रास्ता नहीं है।'

मैं नहीं हटा। मशाल की पूरी चमक में मैंने देखा कि धरती में एक सीढ़ी उतरती है।

मैंने कहा : 'कजरी।'

'क्या है?'

'देखती है?'

'सिड्डी है।'

'चल उतर कर देखें।'

'नहीं, लौट चलो। हमें राजा नहीं होना है। हम नट ही अच्छे हैं।'

'चुप रह ! मेरे साथ मेरे पुरखों का देवता है। तू मेरे साथ है।'

'पर मैं नटनी हूँ, वे मुझसे गुस्सा होंगे। तू ठाकुर है।'

'तूने सुना नहीं गंगा का पानी, सूरज की धूप और औरत की कोई जात नहीं है। यह तीनों सबके लिये समान हैं। ठाकुर के लिये धरती और औरत एक-सी। जिसे पांव के नीचे दाब लिया सो अपनी, अपनी जात की।'

मैं सीढ़ी उतरने लगा। बड़ी तंग जगह थी। मेरे पीछे कजरी थी। जब हम काफ़ी उतर गये तो एक चौड़ा दासा पड़ा। कजरी बुरी तरह से चिल्लाई।उसकी घिग्घी बंध गई। मैंने देखा तो थर्रा गया। मेरे सामने हड्डी का ढांचा खड़ा था।

मैंने न जाने कैसे कहा : 'तू कौन है ?'

कोई जवाब नहीं मिला। कजरी मेरी इन्सानी आवाज सुनकर कुछ हिम्मत पा सकी। मैंने मशाल के उजाले में देखा। वह ठठरी किसी रस्सी से टँगी थी। तो यह किसी-को फाँसी पर लटकाया गया है। ठठरी टँगी थी। मैंने कहा : कजरी ! यह भूत नहीं है। हड्डी का ढाँचा है।' मैंने उसमें कटार मारी। हड्डियाँ चटचटाई और कटार पार हो गई। तो यह बहुत पुराना है।

मैंने कहा : 'न जाने कब से टँगा है।'

'न जाने तू कहाँ आ गया है ?' कजरी ने कहा : 'मेरा बाप इस रास्ते की कभी नहीं कहता था।'

यह सुनकर मुझे बड़ी खुशी हुई। मैंने मुड़कर कजरी को कटार वाले हाथ से कसकर उसका मुँह चूम लिया। कजरी में जान आई।

मैंने कहा : 'कजरी ! तेरा बाप क्या पास का था ? कुछ नहीं। हम शायद ठीक रास्ते पर आ गये हैं।'

'सो तो ठीक है।' कजरी ने कहा, 'पर खजाने पर बाबा बैठता है। बली माँगेगा तो ?'

'तो अपनी बलि दे दूँगा कजरी। अगर मेरा पुरखा मेरा खून चाहेगा तो मैं दे दूँगा।'

कजरी ने कहा : 'भली कही। तू अपनी बलि दे दीजो, मैं डरके मारे मर जाऊँगी। इससे तो भली यही है कि तू मेरी बली दे दीजो न ? तू राजा हो जाये तो मेरे लिये इससे बढ़कर और क्या होगा ?'

उस वक्त मेरे मुँह से निकला : 'नहीं कजरी ! मुझे नहीं चाहिये यह हुकूमत। मुझे राजा नहीं बनना। मुझे तू चाहिये ! मुझे तू चाहिये !'

कजरी का डर अब दूर हो गया। उसने अब लाज छोड़कर पहली बार मेरा मुँह ऐसे चूम लिया जैसे मैं औरत होऊँ और वह मरद हो।

'मैं तुझे इतनी अच्छी लगती हूँ ?' उसने कहा।

'बहुत अच्छी। तू मुझे प्यारी से भी अच्छी लगती है।'

कजरी में बिजली-सी दौड़ गई। उसने कहा : 'सच ??'

'सच कजरी।'

'तो खड़ा क्यों है ? गिरादे इसे आगे बढ़।'

मुझे अपने ऊपर जो ताज्जुब हुआ था कि कब कजरी मुझे प्यारी से अच्छी लग गई थी, वह डूब गया और नया ताज्जुब हुआ उसकी हिम्मत देखकर। प्यारी मुझे प्यार करती थी पर अपने ऐंकार से मुझ पर हावी थी। कजरी सिरफ़ मेरी थी और कुछ नहीं। मैं दोनों के दिल का फरक देख रहा था।

मैंने कटार से रस्सी काट दी। ठठरी गिर गई। हम आगे बढ़े। आगे एक लम्बा दालान-सा था। ऊपर से बूँदें गिर रहीं थीं। सीलन थी।

मैंने कहा : 'कजरी। ऊपर झील लगती है।'

'पानी ऊपर चल रहा है।'

'आवाज सुनाई देती है न ?'

'हाँ।'

हम बाँये मुड़े। एक बड़ी कोठरी थी।

घुसने ही लगा किसीने नाक के सामने बंदूक उठा दी।

मैं पीछे हट गया। मैंने कजरी को हटा दिया।

मशाल झुकाई। देखा एक ऊँची टिकटी पर बंदूक धरी है। हम कमरे में घुसे। लगा चारों तरफ़ आदमी खड़े थे। कजरी किच्चा उठी : 'अरी दैया !'

उसकी आवाज़ गूंज उठी और लगा कि सारा किला हुंकार उठा—अरी दैया ! अरी दैया !!

कजरी थरथरा गई। मैंने पास जाकर देखा।

वह कई पुराने जमाने के कपड़े दीवारों पर टँगे थे। लम्बे-लम्बे। मैंने एक को छुआ तो वह राख-सा गला हुआ-सा गिर गया।

'सब गल चुके हैं।' कजरी मैंने कहा।

उसने भी छुए। दो और गिर गये।

हम अगले कमरे में गये। वहाँ हथियार ही हथियार रखे थे। मैंने एक

तलवार उठा ली। कजरी ने कटार अपने हाथ में ले ली। हम लोगों की हिम्मत अब पहले से बढ़ गई थी।

हम जहाँ भीतर पहुँचे वहाँ औरतों के कपड़े टँगे थे। कजरी उन्हें आँख फाड़कर देखने लगी। खूबसूरत चोलियां टंगी थीं। लहंगे टँगे थे। फरियाँ थीं। कमर के पटुके थे। कजरी ने छूए, तो वही हाल। राख-से झड़-झड़कर गिर गये। जितना ही वह छूती, उतनी ही उनकी राख-सी बनती जाती। कजरी में जोश आ गया था। वह कुछ पा लेना चाहती थी। मेरी नंगी तलवार और उसकी कटार चमक रही थीं। धीरे-धीरे वे सब कपड़े धरती पर गिर गये। वह जर्जर कपड़ों का ढेर था। कजरी के हाथ कुछ भी नहीं लगा था। उसे गुस्सा-सा आ गया था।

'जाने कब के हैं।' उसने कहा।

हम आगे बढ़े। एक बड़ा कमरा था। उसमें एक आला था। उसकी दूसरी तरफ़ लगता था कोई धक्के मार रहा है। कजरी कांप गई। मैं भी डर गया। लगा वह सब अब ढह जायेगा और हम वहीं चूर हो जायेंगे, दफन हो जायेंगे। हम भाग चले। ऊपर एक जीना चढ़ता था। हम वहाँ दौड़कर पहुँच गये। हम दोनों हांफ रहे थे।

कजरी ने कहा : 'वह कौन था उधर ?'

'लगता था नगाड़ा-सा बजा रहा है कोई ?'

'उधर कुछ है जरूर।'

'पर उधर जायेंगे कैसे ?'

'कोई तो रास्ता निकलेगा ही।'

'यहाँ से तो बाहर निकलना भी कठिन हो जायेगा कजरी।'

'चलो लौट चलें।' कजरी ने कहा।

'पर कोई दौलत बाहर नहीं रखता कजरी। अब तो हम खजाने के पास ही आ गये हैं।' अचानक कोई हँसा। डर के मारे हम लोगों के रोंगटे खड़े हो गये। हम भागे। सामने उजाला-सा था। वहाँ पहुँचकर देखा एक छत थी, खुली हुई, जिसके चारों ओर घनी घास उग रही थी। वहां से हमें देखकर एक उल्लू उड़ गया। जान में जान आई।

'यह ही था,' कजरी ने कहा।

'यह कई तरह से बोलता है।'

'चलो, सुखराम ! अब निकल चलें। मेरी तो भीतर घुसने की फिर हिम्मत नहीं होती।'

'पर यहाँ से जायेंगे कैसे ?'

'यह तो झील है इधर।' कजरी ने झाँका।

उस समय दूर फुनवाड़ी की तरफ हो हल्ला हो रहा था। एक भीड़ भागी आ रही थी। वे लोग बुरी तरह चिल्ला रहे थे। कजरी ने कहा : 'कौन हैं ?'

'पता नहीं।'

मैंने देखा। भीड़ दूर झील के किनारे आ रही थी।

'कजरी, भाग चलें। लगता है किसीने हमला किया है ? तू औरत है।'

'यह आदमी नहीं हैं मूरख ! मुझे लगता है आसेव हैं। अभी आ जायेंगे।'

मैंने कहा : 'कजरी ! तू मेरी कमर में अपनी कमर बांध ले।' उसने फरिया उतारी। मैंने धोती उतारी। लंगोट पहने रहा। कजरी से कहा : 'लहंगा उतार ले और फरिया कांछ ले लांग लगा के।'

कजरी तैयार हो गई।

मैंने कहा : 'नये कपड़े इस लहंगे की भूल में दबा के बाँध दे।'

उसने बांध लिये। मैंने कहा : 'इसे अपने सिर पै बांध ले।'

और फिर मैंने धोती से उसे अपनी कमर से बांध लिया। उसके बाद मैंने घुमाकर मशाल झील पर फेंक दी। गिरी और भुक से बुझ गई। अँधेरा छा गया। जब आंख ठहरी तो देखा तारे पानी में झलमला रहे थे। हमारे हाथ का हथियार जा चुका था। मैंने कहा : 'कजरी, तू कटार फेंक दे।'

और मैंने तलवार को दांतों से पकड़ा और दोनों हाथ नीचे करके झील में उदने को हुआ।

कजरी ने कहा : 'मैया ! पार लगा दे।'

उस आवाज से मुझमें बड़ी ताकत भर गई। मैंने गोता लगाया और फिर हम पानी में थे।

जब मैंने बाहर सिर निकाला तो पता चला कि कजरी तैरना जानती है। वह भी सांस रोक गई थी। वह मेरी पीठ पर ऐसे जमी थी जैसे फूल चिपक-चिपक गया हो। वह पाँव चला रही थी। हम कुछ ही देर में सरकंडों के खेत में निकले।

किनारे आकर मैंने और कजरी ने कपड़े सूखने डाल दिये। सब भींग गये

थे। कजरी ने कहा : 'तुझसे क्या लाभ !'

दो घंटे बीत गये, पर जाड़े की रात थी। दांत बजने लगे। हम गीले कपड़े पहने डेरे लौट चले।

हवा ठंडी। काटे खाती थी। कजरी के दांत बजने लगे। हम दोनों भागने लगे। सामने से एक कुत्ता भौंकता हुआ बढ़ा। मैंने उसके मुँह में तलवार घुसेड़ दी। वह उसकी पूंछ की तरफ निकल गई। फिर हम जान तोड़कर भागे।

सूका उगा नहीं था, जब डेरे पर पहुँचे। कपड़े उतार सूखने डाल दिये और हम दोनों खोर ओढ़कर आग जलाकर बैठ गये। मुझे लौट आया देख भूरा मेरे पास आ गया। मैंने उसे चिपकाया और उसकी पीठ पर हाथ फेरा। उसकी शकल से लग रहा था जैसे उसे बड़ी फिकर हो रही थी। मैंने कहा : 'अरे !'

जाकर देखा घोड़ा चुप खड़ा था। मैं पास गया तो उसने मुँह फेर लिया। मैंने प्यार से उसका मुँह थपथपाया। कान के पास प्यार से चूमा। तब वह हल्के से हिनहिनाया। मैंने कहा : 'छोड़ गुस्सा। मुझे देर हो गई। माफ कर। तू भूखा है न ?'

घास लाकर सामने डाली।

कजरी कंडे सुलगा रही थी।

'क्या बात है ?' मैंने पूछा।

'अरे मैं मरी जा रही हूँ भूख से। यह दो सकरकन्दी भून लूं।'

सकरकन्दी जल्दी ही भुन गईं। हमने छीलीं। खाईं। पानी पिया। फिर हम दोनों ठंड से चिपटकर सो रहे। हमारी खोर काफी न थी। हम दोनों की गर्मी ही एक दूसरे को ताप दे रही थी। मैंने काम न चलते देखकर खटिया पैं गाढ़े के नीचे खूब पुआल डाल ली और कहा : 'अब तो ईख के पत्ते लाने होंगे। नहीं तो इस जाड़े में मर ही जायेंगे।'

'सर्दी अभी इतनी नहीं है।' कजरी ने कहा : 'पानी की ठंड है। ताप ले और।'

'इतना तो ताप चुका।'

कजरी ने उठकर आग तेज़ की। एक ओर कजरी एक ओर मैं, वह गाढ़े में लिपठी, मैं खोर में लिपटा, दोनों सो गये। कुत्ता डेरे के द्वार पर बैठा रहा। हम खुले में आग के सहारे पड़े थे। डेरे में आग जल नहीं सकती थी। सबेरे जब आँख खुली थी तो धूप निकली ही थी। शायद दो घंटे ही सोये होंगे पर

थकान उतर गई थी । बड़ी गहरी नींद आई थी ।'

१३

और सुखराम ने कहा था :

'जिस बखत मैं प्यारी के यहाँ पहुँचा, एक अजीब बात थी । आज वहाँ हल्ला हो रहा था । रुस्तमखाँ बैठा था । उसके दो मुँहलगे गाँव के लुच्चों ने धूपो चमारिन को पकड़ रखा था और जूते लगा रहे थे । प्यारी बघेरनी की तरह बफर रही थी । लोग तमाशा देख रहे थे । धूपो गाली दे रही थी । मुझे देख लुगाइयों ने कहा : 'आ गया नटनी का घरवाला । अब तो और ठसक दिखायेगी ?'

मेरी समझ में नहीं आया । मैंने रुस्तमखाँ को सलाम किया । उसने कहा : ' आ गया सुखराम ! देखा इस हरामज़ादी को !'

धूपो की तरफ़ उसका इशारा था । मैंने कहा : 'क्या बात है ?'

धूपो चिल्लाई : 'तेरी नटनी की धौंस मैं सहूँगी ? मुझसे डेढ़ कहेगी ? सो मैंने इसका बाप उधेड़ा है ?'

मेरे पांव के नीचे से धरती निकल गई । बांके और चक्खन उसे जुतिया रहे थे । मुझे बड़ा बुरा लगा । मैंने कहा : 'छोड़ दो उसे ।'

और बीच में खड़ा हो के मैंने धूपो को ढँक लिया ।

'ओ हो ठाकुर !' प्यारी ने कहा : 'तू न्याब करने आया है ? हट जा बीच से !'

मैं चिल्लाया : 'प्यारी ! तू अंधी हो गई है ? औरत पर हाथ उठवाती है । और वह उस गरीब पर ?'

'मुझे बचा ले बीरन !' धूपो ने मेरे पांव पकड़ते हुए कहा ।

बांके बढ़ा । मैंने उसका हाथ पकड़ लिया । उसने छुड़ाने का जतन किया तो मैंने उसे एक झटका दिया । वह 'हाय माड्डाला', कहकर बैठ गया । लोग-लुगाई बड़ी जोर से हँसे । रुस्तमखाँ कांपते पांवों से उठ खड़ा हुआ । मैंने झपटकर उसका हाथ पकड़ लिया और कहा : 'सरकार ! क्या करते हैं । मैं

दवा लाया हूँ। कल दिन भर जंगलों में ढूंढता फिरा। भीतर चलिये।'

प्यारी ने घूरा। मैंने कहा : 'भीतर चल !!'

मेरी कड़क सुनकर वह भन्ना कर भीतर चली गई। मेरे साथ रुस्तमखाँ भीतर गया। मैंने कहा : 'लेट जाइये मालिक। लेट जाइये।'

वह खाट पर लेट गया।

मैंने कहा : 'हुजूर को बुखार है। और हुजूर बाहर बैठे थे ! यह कैसी बात। जान है तो जहान है सरकार।'

'मैं तो लेटा था सुखराम ! प्यारी का कुछ उस चमारिन से झगड़ा हो गया था। उसकी वजह से मुझे जाना पड़ गया।' उसने कमज़ोर आवाज़ में कहा।

'मैं तो सरकार की आँखें देख के ताड़ गया था कि सरकार की हालत अच्छी नहीं है। प्यारी गुस्सा हो गई थी हुजूर ?'

'हाँ, उसकी कुछ उस चमारिन से कहा-सुनी हो गई थी।'

'कुछ बात भी पता चली सरकार ?'

मेरी खुशामद और बुखार की कमज़ोरी ने उसे शान्त कर दिया था। बाहर भीड़ छँट गई थी। धूपो चली गई थी। बाँके चला था। चक्खन छप्पर में बैठा था, बीड़ी पी रहा था। मैंने गोली खिलाई और रुस्तमखाँ के पांव पर रूखड़ी रख के पट्टी बाँधी। परहेज बताया और कहा : 'सरकार, अब आप अगर परहेज कर गये तो आपकी जवानी लौटेगी। और हुमसती जवानी। प्यारी को भी दे दूं दवा ? हुकम है ?'

'हाँ, हाँ,' रुस्तमखाँ ने कहा—'ऊपर चला जा।'

मैं ऊपर गया। प्यारी तमतमाई खाट पर बैठी थी। मैंने सामने बैठकर कहा : 'बंदगी हुजूर !'

उसका होंठ फड़क उठा, जैसे वह रो देगी। फिर वह चिल्लाई : 'चला जा यहाँ से।'

'चला जाऊँगा।' मैंने कहा।

'अभी चला जा।' उसने कहा।

'अभी नहीं जा सकता। सरकार के पट्टी बांधने आया हूँ। घंटे भर तक उसका असर देख लूं। फिर चला जाऊँगा।'

प्यारी अचरज से देखती रही। मैंने कहा : 'सरकार कहते थे यहाँ कोई

और भी बीमार है। कौन है ? गोली खा लेने से फायदा हो जायेगा। परहेज में गुस्सा न करना भी है। सब ठीक हो जायेगा। हूँ !'

'मैं नहीं खाती,' उसने कहा।

'खा भी ले अब !' मैंने कहा : 'पहले गोली खा के पानी पी ले। फिर मैं सब सुन लूंगा। तेरी तो सहने को ही पैदा हुआ हूँ।'

मैंने गोली निकाली। उसके पास गया। उसने मुँह न खोला तो पहले मैंने पानी का लोटा लिया। उसे खाट पै गिरा के मैंने मुँह भीच के गोली डाली और पानी डाला। उसने गोली उगलने की कोशिश की तो मैंने एक ठोंस दिया। गोली गले के नीचे उतर गई। फिर मैं अपनी जगह आ बैठा।

प्यारी की आँखों में आंसू आ गये थे। उसने रोते हुए कहा : 'तूने मेरी नाक कटवा दी।'

'सो कैसे ?'

'धूपो को तैंने बचाया। तूने उसे सह दी।'

'बिल्कुल गलत।' मैंने कहा : 'दो लुच्चे उसे जूते मार रहे थे। मैंने छुड़वा दिया।'

'तुझे खबर है क्या बात थी ?'

'जो बात थी सो मैंने देख ली। तुझे गुस्सा आ गया था, तूने पिटवा दिया। तुझे हुकूमत चढ़ी हुई है। आदमी-सा आदमी तुझे नहीं सूझता। पुरबिनी वाले बाबा कहते हैं कि नीच सिर पै चढ़ा तो धूल डालता है। बरसाती नदी की तरह बहता है। बिजली की तरह कड़कता है। गिरता है। सूरज सदा एक-सा ताप देता है।'

'तो मैं नीच हूँ ?'

मैंने कहा : 'प्यारी तू है क्या आखिर ? नटिनी ही न ? और सो भी कर-नटिनी। हरजाई ! अपने मरद के रहते, दूसरे के घर रखैल बनकर बैठी है। सो तेरी नाक कहाँ ? भगवान ने हमें नीच बनाया है, सो हम भोग रहे हैं। अब सूहर यों कहे कि न्हा-धो के मैं गैया हो गया, सो कभी हुआ है ?'

'और वह धूपो डेढ़नी ऊँच है ?' उसने पूछा।

'मरजाद रखती है। पत नहीं बेचा उसने।'

'उनकी बिरादरी का नेम और है, हमारी का और है।' प्यारा ने कहा : 'इससे क्या है ? मैं कैसे नीच हो गई ?'

'यों कि तूने हुकूमत पाके जुलम किया। उसका कसूर क्या था ?'

'मुझे जवाब देती थी।'

'कैसे ?'

'मैंने कहा : तू बाहर का आंगन लीपा कर, सो बोली, सरकार कहेंगे तो सब करूँगी, पर नटिनी की नही सुनूंगी।'

प्यारी ने मेरी तरफ आँखें निकालकर देखा जैसे कह रही हो कि अब क्या कहता है ?

मैंने कहा : 'तो तैंने क्या कहा !'

'अरे तू कोई पेमकार है जो मुझसे पूछ रहा है ऐसे ?' मैंने कहा : 'जवाब न दे निगोड़ी डेढ़ ! इतने जूते लगवाऊँगी कि चांद गंजी हो जायेगी। बग बकने लगी : मैंने पिटवाया गुमरी को।'

'बुरा किया,' मैंने कहा।

'क्यों बुरा किया ?'

'तू नहीं लीप सकती आंगन ?' मैंने पूछा।

'तेरे डेरे लीपूंगी। यहाँ नही लीप सकती।'

मैं हँसा। मेरी हँसी से प्यारी को चोट लगी। कहा : 'तुझे मुझ पै अब हँसी आती है ? कल कहाँ था !'

'कल मैं कजरी के साथ था।'

प्यारी की एकदम से सूरत उतर गई। उसने संभलकर कहा : 'तू तो उसे लानेवाला था न ?'

'परसों आयेगी वह।'

'क्यों ?'

'आ ही नहीं रही थी।'

'तू तो वचन दे गया था ?'

'वचन अभी टूटा तो नहीं ? परसों आयेगी वह।' मैंने दुहराया।

रुस्तमखाँ ऊपर आया। पलंग पर लेट गया। उसने कहा : 'तूने सुना सुखराम ?'

'क्या सरकार ?'

'परसों अधूरे किले पर जिन्नात आये।'

मेरे कान खड़े हुए। पूछा : 'कब ?'

'अरे बाजार में बड़ी चर्चा है। मालियों का कहना है कि रात कल आधी पीछे, मशाल की रोशनी किले पर दिखाई दी। माली फुलवाड़ी में इक्ट्ठे हुए। फिर मशालें चलने लगीं। लोग कहते हैं सैकड़ों मशालें जल उठीं और उजाला हो गया। एक आदमी दिखाई दिया। फिर लोगों को देखकर जिन्नों ने मशालें फेंकना शुरू किया। एक फेंकी तो लोग भागे। एक न टिका। सुना है तूने ?'

'नहीं मालिक मैंने नहीं सुना। हमारे डेरों में तो यह खबर नहीं पहुँची। बड़े अचरज की बात है।'

मेरे दिमाग में उसी बखत खयाल आया। तौ ये जिन्न, भूत, आसेब, क्यों, क्या ये सब झूंठ बात हैं ? पर मैं इतनी जल्दी तय न कर सका।

रुस्तमखाँ ने कहा : 'सुबह लोगों ने देखा कि बड़े जमींदार साहब के कुत्ते के मुँह से पूंछ तक एक तलवार झुंकी हुई है। तूने देखा है न सुखराम ! कितने जबर्दस्त किस्म का कुत्ता है। सरकार इसे बम्बई से खरीद कर लाये थे। नस्ल का अंगरेजी था। उसने कितने ही आदमियों को फाड़ दिया था। बड़ा खतरनाक कुत्ता था। जमींदार साहब का था तभी कोई न बोलता था। मुँह में किसीने एक ही हाथ में पूंछ तक तलवार निकाल दी। यह काम आदमी का नहीं लगता सुखराम। तूने तो उस कुत्ते को देखा था ?'

'देखा था सरकार ! वह बड़ा कटखना था। एक दिन मेरे पीछे भी लग लिया था।' मैंने झूंठे ही कहा।

'और' रुस्तमखाँ ने मुझे देखकर कहा : 'अभी तो ताज्जुब की बात अब आ रही है।'

'सो क्या ?' मैंने पूछा।

'तलवार अबकी न थी। देखकर लगता था कोई दो सौ बरस की है।'

मेरी ऊपर की साँस ऊपर, और नीचे की नीचे रह गई।

'दो सौ बरस !' मेरे मुँह से निकला।

'हाँ, हाँ, उस पर खुदा हुआ मूंठ पर—महाराजा जितेन्दरसिंह ! और वे भी कोई तभी के राजा थे। कहते हैं उन्हींने इस किले को बढवाया था।'

मेरा सिर चक्कर खाने लगा था। पर मैं संभलने की कोशिश कर रहा था। मैंने बीड़ी सुलगाई। कुछ देर में मैं ठीक हो गया।

मैंने कहा : 'प्यारी ! तो मैं परसों आऊँगा। यह गोलियाँ ले ! एक-एक

गोली सबेरे दोनों खाकर पानी पीना। यह रूखड़ी है। इसे ज्यों का त्यों जखम पै बांधना इनके। ज्यादा खिचे तो थोड़ा पानी का भभका देना, नीम का भौंरा डालके। ज्यादा सिकाई न करना। और दोनों जने अलग रहना। और परहेज में स्वाद के लिये भी नमक न खाना, नहीं तो कभी न जायेगी। इसे पालना मत। यह आग है जो सात पीढ़ी तक जलाती है। बच्चे बिना नाक के-से पैदा होते हैं। सरकार इसे वैद लोग फिरङ्ग रोग कहते हैं। यह साहब लोगों के साथ यहाँ आया था। पहले हमारे यहाँ नहीं था।'

मैं उठ खड़ा हुआ। प्यारी का जी घुट रहा था। वह मुझसे बहुत कुछ कहना चाहती थी; मेरे बारे में, कजरी के बारे में, धूपो के बारे में, बीमारी-हारी, और न जाने क्या क्या न था। पर रुस्तमखाँ आ गया था। अब हम क्या बात कर सकते थे। सो प्यारी घुट गई थी। मैं तमाम बातें किले की कहना चाहता था, पर अब कैसे कह सकता था। अब मेरी चाहना थी कि जल्दी से कजरी के पास पहुँचूं और उससे सब कह दूँ।

मैंने कहा : 'सरकार! यह दवा इक्कीस दिन की है। मैं परसों तक की दे चला हूँ। बाकी साथ ले आऊँगा तीन दिन की। गोलियाँ ताजी रहनी चाहियें।'

तब रुस्तमखाँ पलटा। बोला : 'अरे सुखराम सुन तो!'

'क्या है सरकार?'

'देख होशियारी से जाना।'

'क्यों सरकार?'

'वह बाँके बड़ा बदमाश है, कहीं हमला न करे तुझ पर।'

'सरकार के रहते हुए?'

'क्या बताऊँ सुखराम! वह बड़ा कुत्ता है। यह नहीं सोचता कि उसे कभी खुदा के सामने भी जाना पड़ेगा। मुझे तो बड़ा डर लगता है।'

'सरकार बीमार हैं, ज्यादा न सोचें।' मैंने कहा : 'फिर तुम्हारा भी डर छूट जायेगा।'

प्यारी मेरी बात समझ गई। मुस्करा गई।

'उसकी' रुस्तमखाँ ने कहा : 'असल में धूपो पर आँख है। उसने उसे एक बार छेड़ा भी था। सो वह गँडसा लेकर खड़ी हो गई थी। तब से वह बदला लेना चाहता था।'

मैंने प्यारी की तरफ देखा ! वह नीचे देखने लगी । मैंने कहा : 'सरकार ! आप हुकम दें तो लाके आपके सामने उसे पटकूँ ?'

'अरे नहीं सुखराम ! वह बड़ा कांइयां है । तू उससे अलग ही अलग भुगत लीजो । मेरा नाम न लीजियो ।'

'तो तू आज मत जाना', प्यारी ने कहा वह डरी हुई थी ।

'पहले की और बात है प्यारी ।' मैंने कहा : 'यहीं खाता था । पर अब वह छूट गया । अब कजरी बैठी होगी ।'

'अरे तो तूने कर ली ?' रुस्तमखाँ ने ऐसे कहा जैसे टंटा कटा ।

'सरकार हम लोगों में क्या करना, क्या न करना ? पेट भरने को, उमर काटने को सहारा ढूंढते हैं । किया नहीं किया बराबर है । हममें तो रोज करते हैं, रोज नहीं करते । आप लोगों में इसकी इतनी बात है ।'

'एक जून तू यहीं खाया कर' प्यारी ने कहा ।

'खा लूंगा प्यारी । सरकार का दिया ही खाता हूँ । अब ये बीमार हैं तो इन पै बोझ क्यों बनूँ ?'

रुस्तमखाँ चुप था । प्यारी को भी चुप होना पड़ा । पर मैं उसके चेहरे को पहचान गया कि वह लहू का घूंट पी के चुप रह गई है । उसे ऐसा लग रहा था जैसे मैं उसके हाथ से निकल जा चुका हूँ । तभी मैंने आज उससे उखड़ी-उखड़ी बातें की हैं । कहाँ तो मैं इस सरत पर रुस्तमखाँ का इलाज करने वाला था कि प्यारी को मांग लूँगा, कहां मैंने आज इस बारे में बात भी न की । पर मैं असल में डर रहा था । मुझे यही ताज्जुब था कि यह मेरी की हुई बेइज्जती पी कैसे गया । मैं जानता था । मैं जानता था बाँके उसके पास जूए के अड्डों से नाल लाता था । वह गाँव का छैला था । जात का अहीर था, पर बनैनियों पर डोरे डाले रहता था । बनिये रुस्तमखाँ के डर से चुप रहते थे । कुछ या बहुत करके अपनी बदनामी से डरते थे । सो चुप रह जाते थे । धूपो ने फटकारा होगा साले को और मैं यह भी समझ गया कि रुस्तमखाँ काम निकालने को चुप था । अगर काम न होता तो मुझे जूते लगवा देता ।

मुझे प्यारी पर गुस्सा आ रहा था । पर मैं चुप रह गया । उसकी वजह से भी मैंने प्यारी को नहीं मांगा ।

'सरकार' मैंने कहा : 'हुकम हो तो अरज करूँ ।'

'क्या है सुखराम ! कह दिया कर न !' रुस्तमखाँ ने आँख मींचकर कहा।

मैंने कहा : 'सरकार रुपये की जरूरत थी। दवा बड़ी महँगी है हुज़ूर।'

उसने अपनी जेब से एक रुपया निकालकर प्यारी को दिया और कहा : 'दे दे इसे।'

वह लेट गया। मैंने प्यारी को इशारा किया। मैं नीचे आ गया। वह पीछे-पीछे आ गई। बाहर के छप्पर में चक्खन बैठा ही था।

प्यारी ने धीरे से रुपया दे दिया। मैंने कहा : 'रुपया तू ही रख। तुझे नीचे बुलाने को मैंने बहाना किया था।'

'तो अब लेजा न ?' उसने कहा।

मैंने ले लिया। मैंने धीरे से कहा : 'परसों कजरी आयेगी। पर उसकी एक सरत है।'

'क्या ?'

'तुझे उसके पाँवों में महावर लगानी होगी।'

'तूने मान लिया है ?' उसने मुँह फाड़कर पूछा। जैसे उस पर बिजली गिरी हो।

'हाँ' मैंने कहा।

उसने गुस्से से होंठ चबाया। और पटाक मेरे मुँह पर चाँटा मारा। चक्खन ने देखा तो उठकर बैठ गया। बोला : 'क्या बात है ?'

'कुछ नहीं,' प्यारी ने कहा—और मुझसे बोली : 'अच्छी बात है जालम ! जला ले मुझे तू ! तेरे लिये उस हरामजादी के महावर भी रच दूँगी।'

वह पीछे हट गई और फूट-फूटकर रो उठी। मैंने बढ़कर उसे दिलासा देना चाहा पर चक्खन ने फिर पूछा : 'क्या बात है सुखराम !

'कुछ नहीं भइया, रूठ गई है।' मैंने कहा।

'क्यों ?'

'मैंने दूसरी कर ली है।

'यह बात है !' चक्खन फिर लेट गया और उसने आंखें बन्द कर लीं। चक्खन गड़रिया था। गायें रखता था। थोड़ा लुच्चा था, थोड़ा व्यापारी था। डरपोक अव्वल दर्जे का था।

मैंने धीरे से कहा : 'रो रो के हिया हलकान मत कर प्यारी। मेरी बात तो सुन ले।'

उसने मुड़कर देखा। जैसे पूछ रही हो।

मैंने कहा : 'वह तुझसे डरती है। मैंने यह कहा है कि तेरी तरफ से उसका डर मिटा दूँ। तू तो उस दिन उसकी बाँदी बनने को तैयार थी !'

उसने जवाब नहीं दिया। ऐसे देखा जैसे मैं उस पर बड़ा भारी अत्याचार कर रहा होऊँ।

'तो मैं चलूँ ?' मैंने कहा।

'जा।' उसने कहा : 'परसों ले अइयो। मैं भी तो देखूँ तेरी उस रानी को जरा।'

मैं बाहर आ गया। चक्खन के मुँह पर मक्खियाँ उसके होंठ के कोनों पर जमा हुए थूक पर भिनभिना रही थीं और उसके मुँह में घुसकर घबराकर बाहर निकल आती थीं। मैंने जाना वह सोया हुआ था।

पलभर मैंने सोचा और फिर आम दगरे पर लौट चला, फिर खयाल आया। लौटा और प्यारी को बुलाकर एक लट्ठ मांगा।

'क्या करेगा ?' उसने डरकर पूछा।

'खून।' मैंने कहा : 'ला जल्दी निकाल।'

वह ले आई। मैंने कंधे पर धरा और तब मुड़कर देखा। प्यारी ने कहा : 'अरे कोई ऐसी-वैसी बात मत कर दीजो तू। मैंने जाने कैसे-कैसे संभाल के तुझे ठीक रखा था। मरा, रोक हटते ही नट हो गया।'

'तू क्यों डरती है ?' मैंने कहा।

'डरूँ नहीं। औरों के भी तो हाथ हैं।'

'दांत भी हैं।' कहकर मैंने मंगू के दांत के निशान दिखाये। प्यारी ने उंगली काट ली !

मैं चल पड़ा।'

*

१४

और सुखराम सोचता हुआ लौट चला।

आज वह नयी दुविधा में पड़ गया था। उसे अपने ऊपर आश्चर्य्य हो रहा था। क्या वह सचमुच इतना बदल गया था कि आज कजरी के असर से वह प्यारी को अजीब-अजीब-सा लगने लगा था? क्यों वह कल तक इतना दबा हुआ था और अब उसके मन पर से वह तमाम अधिकार की वञ्चित अवस्था ऐसे ढुल गई थी जैसे बहुत बड़ी बाढ़ घिरी हो जिसमें से पर्वत का शिखर फिर ठोस बनकर निकल आया हो, जिस पर चँदोवे की भाँति आकाश चक्कर काट रहा हो। वह समस्त जल जो कल तक सबको डुबा रहा था आज उसी पर्वत के चरण पर मर्मर-मर्मर कर रहा था।

प्यारी आई थी। लहँगा छींट का था। उसके ऊपर उसके गोरे-गोरे हाथ उसकी सुरमई चोली की बाँहों में से निकले हुए थे। सिर पर हरी फरिया थी। होठ के ऊपर बुलाक हिल रहा था। फिर भी क्यों सुखराम उसे देखकर भी आज नहीं देख सका था। वह मन में से झांकने वाला कौन था जो कल तक आँख बंद कर लेने पर भी उस छोटे तन को विराट् बनाकर भी मन में समा देता था? प्यारी की आधिकारहीनता आज बार-बार लोटने लगी थी, धूलि में, धूलि में। उसकी आँखों में स्नेह था। स्नेह जो चिरंतन जीवन की शाश्वत शक्ति है, जिसकी मादकता से ही दिगंतों में उज्ज्वल ज्योति विकीर्ण हो रही है, वही उसकी पुतलियों में आज फिर दोनों बाँह खोलकर सदा की भाँति प्रतीक्षा करता हुआ खड़ा था। किन्तु वह आवाहन रुक क्यों गया था?

आज उलाहना ही देहलीज़ था। जिस पर मान रूपी चरण धर वह उन्मादिनी अपने प्राणों का आक्रोश अपने ही भीतर रोके खड़े हुई थी। भीतर से गूँज उठती थी, किन्तु बाहर आते-आते वह दृष्टि-सी स्निग्ध हो जाती। तीर दिखाई नहीं देता था पर उसकी अनी न जाने कैसे हृदय में गँस रही थी—भीतर बहुत भीतर। उसे खेंचकर निकालना था परन्तु विवशता कैसी विचित्र थी कि सुखराम जितना ही उसे खींचने का प्रयत्न करता, लहू तो दिल को भर रहा था उफन-उफनकर फैलता हुआ, पर लोहे की गाँस निकलने का नाम नहीं लेती थी।

प्यारी हिरनी बनकर अब देख रही थी। शिकारी ने बीन बजाकर मोह

लिया था। पर जब वक्त आया तो उसने हिरनी को मारा नहीं, छोड़ दिया। तन्मयता के बाद तड़प नहीं मिली।

वह अपना न्याय नहीं दे पा रही थी। वह पराये की रखैल थी। उसने ही तो सुखराम को निरीह जानकर छोड़ दिया था। क्या वह उसी ज़िन्दगी में अपने संकुचित दायरों के भीतर सुखी नहीं रह सकती थी? तृष्णा का चोर जो उसके भीतर ही भीतर था आज उसकी प्रेम की दीवार में सेंध लगाकर अन्त में उसके विश्वास रूपी गठरी पर ही हाथ डाल रहा था। और अब वह 'चोर-चोर' पुकारकर दूसरों की सहायता लेने की भी अधिकारिणी नहीं रह गई थी।

कजरी के आ जाने से उसमें द्वेष भड़का था। क्यों? क्या बिगड़ गया था प्यारी का? वह तन बाँट सकती है पर मन नहीं बाँट सकती। पर क्या मन सचमुच ही तन से बिल्कुल अलग होता है? क्या तन की भूख भी मन की स्वीकृति को नहीं आत्मसात कर लेती? तन से ही तो मन का आवेश प्रगट होता है।

किंतु प्यारी यह नहीं जानती। वह तो सुखराम को जानती है। बाप मरा तब नैक न रोई, मां को उसने अलग कर दिया। अब तक अपने में भूली थी, अपने ही केन्द्र के चारों ओर उसने अपनी सत्ता की परिधि खींच रखी थी, किंतु अब वह रेखा जो चारों ओर से अपने भीतर ही बंद थी, अचानक सुखराम ने उसे एक ओर से खींचकर लम्बा कर दिया था और वह खिंचती ही चली जा रही थी, उसका अब अंत ही दिखाई नहीं दे रहा था।

वह कह उठी थी कि सुखराम ने कजरी के लिये उसका अपमान किया था। कहते समय कितनी घुमड़ थी। उसको देखकर सुखराम को लगा था जैसे पुरबैया के थपेड़ों से बादल झूमकर चमके हों और बिजलियाँ पांवों पर लरज गई हों। वह आकाश का-सा अथाह दाह था, दाह था क्योंकि दुख पाकर धरती के रस ने मरोर भरी थी।

और सुखराम ने मान लिया था! उसने सिर झुका लिया था। क्या वह सचमुच अपराधी था। क्या उसने उससे विश्वासघात किया था। क्यों नहीं कह सका वह कि उसकी अपनी भी एक सत्ता थी, जो असंख्य मनुष्यों के बीच में उसकी अपनी ही थी। जिस प्रकार प्यारी का संसार उसको अपना केन्द्र नहीं समझता, वैसे ही सुखराम की दुनिया भी अपना केन्द्र उसे नहीं, केवल सुखराम को समझती है। परन्तु उसमें संकोच आ गया। वह नहीं कह सका।

पर कजरी ठीक ही तो कहती है। उसका मन आ गया। वह अपने मरद को छोड़ आई। और जब छोड़ा तो बात को दो टूक कर आई। अब उसके पीछे कोई उलझन नहीं, कोई ऐसी वफा नहीं, जो वह किसी दूसरे के पास धरोहर बनाकर रख आई हो। उसे न किसीसे मंगाना है, न किसीका दिया चुकाना है। अपने ही समर्पण में उसकी विजय का गौरव निहित है, क्योंकि उसने अपने को दिया है, दिया है, केवल अपने लिये सुखराम को लेकर।

यह आग सुखराम ने लगाई है। उसने दो पत्थरों को टकरा दिया है और आग की छिटकती चिन्गी ने सुखराम को ही रूई बनाकर पकड़ लिया है।

परन्तु मन नहीं भरता। वह कौन-सी पुकार है जो निरभ्र दाह से पीड़ित आकाश को अपनी कुहू-कुहू से विदारित कर देती है। वह गरज से मेघों की प्रिय-प्रिय छाया में कान्तारों को प्रतिध्वनित कर देती है? सुखराम नहीं जानता। वह भला करे भी तो क्या? नहीं यह आग उसकी अपनी लगाई हुई है। उसने क्या अनजाने ही प्यारी से बदला लिया है? क्या उसने प्यारी को बताया है कि प्रेम क्या है? वह जो अपने को मिटा देना है और जिसमें अपने किये की शक्ति का अनुभव ऐसा है कि अपमान नहीं ढो सकता। उसे ग्लानि नहीं सता सकती, उसे अधिकारों की याचना नहीं करनी पड़ती। उसे बैल की तरह जुआ ढोकर सानी के लिए रँभाना नहीं पड़ता। उसके तो तितली के-से पंखों में फूलों का पराग अपने आप चिपक जाता है।

कजरी आयेगी। उसे घमण्ड होगा। पर मन में वह पानी-पानी होगी कि मुझे मेरा मरद दूसरी के पास लाया है। क्यों लाया है। इसलिये कि वह अभी तक पहली को भूल नहीं सका है। गोया कजरी अब प्यारी की बाँदी है। पर आना उसे पड़ेगा, क्योंकि सुखराम चाहता है। चाहता है कि उसके लिये कजरी प्यारी के पास जाये। कितना विक्षोभ भरेगा उसके मन में? अपनी ही सौत के सामने जाकर उसे सिर झुकाना पड़ेगा। परन्तु इसमें क्या है? उसके बाद क्या होगा?

प्यारी महावर रचायेगी। कजरी खाट पर बैठेगी। उसके नंगे पाँवों को प्यारी पहले धोयेगी। और फिर महावर रचायेगी। कैसा अजीब लगेगा वह

सब ! कैसे बैठी रहेगी कजरी ? क्या उसमें इतना अहंकार है कि फिर भी पांव न हटायेगी ?

तलवार पर तलवार बजेगी और सुखराम बैठा उनकी झनझनाहट को सुनता रहेगा ? उस समय वह केवल दर्शक बनकर क्या रह सकेगा ? प्यारी के हाथों का जब कजरी के पांवों से स्पर्श होगा तब सुखराम क्या करेगा ?

सुखराम सोच नहीं पाया कि उसने यह क्या कर दिया है ।

प्यारी पर यह आघात कब होगा ? कैसे सहेगी वह ? और वह भी अब जब वह सिपाही के बैठी है ! सिपाही एक दिन वैभव का पुतला-सा दिखाई दिया था । पर प्यारी उस वैभव से हार क्यों गई ? आज वह उसका ही प्रायश्चित्त करेगी !

किसलिये ?

सुखराम के लिये !

वह उसका कौन है ?

उसका प्रेमी है ।

प्यारी उसका कहना न करे तो ?

सुखराम उसका नहीं होगा !

क्या सुखराम का प्यार आज शर्त्त पर ज़िंदा रहना चाहता है ?

क्यों नहीं ।

पर पहले तो ऐसा नहीं था ।

उस समय प्यारी पर भी बंधन न थे ।

पर प्यारी के बंधन तो सुखराम की रज़ामंदी से हैं ।

हुआ करें पर वे उसे पराया बनाए हुए हैं ।

पर सुखराम ने कजरी को करके क्या दग़ा न की है ?

नहीं ।

क्योंकि वह मरद है ।

मरद होने से ही क्या वह यह हक पा जाता है ?

नहीं; उसने अपने अभावों को भरा है ।

प्यारी का अपमान कराने के लिये ?

नहीं; प्यारी को ज़रूरत ही क्या है कि वह सुखराम की हर चीज़ में, हर

बात में अपना हाथ डालना चाहती है।

वह उसे अपना समझती है।

जहाँ अपनापन है, वहाँ अपमान कहाँ ?

पर कजरी सामान नहीं है, उसके भीतर भी स्त्री है।

तो क्या हुआ यदि एक स्वायत्त सत्ता दूसरी स्वायत्त सत्ता से अपना मूल्यांकन करने की तृष्णा रखती है ?

पर सुखराम ने इसे माना कैसे कि प्यारी कजरी के पांव में महावर रचेगी ?

ठीक ऐसे ही जैसे उसने प्यारी के द्वार पर कजरी को ला खड़ा करने की बात मान ली थी।

बजमारी ने मोह लिया है। मेरा साँवरिया सलोना क्या जानता था।

न जानता हो सो बच्चा नहीं था। पर जाने क्यों कुछ कहता नहीं था।

कोठरी के द्वार बंद थे। प्यारी ताला खोल आई थी।

कजरी ने पटों को खोल दिया।

प्यारी ने बंद द्वार को देखकर भीतर की दौलत का अंदाज़ किया था।

पर कजरी ने उस दौलत को हाथों में उठाया था और उस ढेर-ढेर हीरे-मोती की लड़ियों से अपने अंग-अंग को सजाया था।

प्यारी को क्रोध आने लगा। उसे अपने हाल पर गुस्सा आने लगा। वह कजरी के सामने ऐसे झुका दी जायेगी ? पर कजरी का इसमें दोष ही क्या है ? अगर वह खुद उसकी जगह होती तो क्या वह चली जाती कहीं ? अजी जाती उसकी जूती। जूती नहीं हवा के चलते झोंकों पर उसकी जूती की धूल भी नहीं जाती। पर कजरी तो आने को मान गई है। सुखराम ने डाँटा होगा।

रुस्तमखाँ पड़ा है। उसका जोश कहाँ है ? वह कितनी तकलीफ़ पा रहा है। अपनी गलाज़त अब सड़ने लगी है। भगवान ने भी कितनी अच्छी तरकीब निकाली है। पराई औरतों से छेड़ करो तो सड़ा-सड़ा के मारता है। न होता सुखराम तो सुसरा कुत्ते की मौत मरता। प्यारी तो दो लात देके चली जाती।

प्यारी क्यों आई ? इसी गंदे कुत्ते को बड़ा आदमी समझ बैठी थी वह एक दिन, क्योंकि यह सिपहिया कड़ी-कड़ी आवाज़ में बोलता था, क्योंकि यह मनचाहे ढंग से नटों को गिरफ़्तार कर लेता था। प्यारी ने सोचा था कि वह

इसकी आग को अपने भीतर बुझाकर सारी बिरादरी का सिर उठा देगी ? क्या सिर्फ़ इतनी ही-सी बात थी ? नहीं !

क्या वह हवस थी ? क्या प्यारी सुखराम के ऊपर इसे सलूक समझ कर आई थी ?

प्यारी का मन उबकाई लेने लगा। यह कितना बुरा है। सुखराम कितना खूबसूरत है ! कितना खूबसूरत है !

प्यारी ने एक लम्बी सांस ली।

किसलिये ?

क्योंकि आज वे सुनहली रातें फिर उसके सामने घूम गई थीं, जब वह तम्बू के सामने खुले मैदान में अपने प्यारे के पास सोती थी। किसी रानी से कम थी वह ? आज़ादी और चीज़ है। यहाँ उसका मन ही नहीं भरता। कितना सुख था तब ? न कजरी थी, न झंझटें ही सताती थीं। रात को सोते थे, सुबह उठते थे। सुबह भी अपनी थी, रात भी अपनी थी।

सुखराम ने तब मान क्यों लिया था ?

क्योंकि वह प्यारी का मन नहीं दुखाना चाहता था ?

नहीं !

फिर ?

क्योंकि सुखराम अपने को घटिया समझता था। वह अपने को दीन समझता था। उसकी सिपाही के सामने सिर उठाने की भी हिम्मत न थी। अब यह फर्क क्यों था ?

और तब तो वह ऐसी हुकूमत से नहीं बोलता था ? वह आता था। चुपचाप सिर झुका लेता था। यही रुस्तमखाँ जो उसके सामने शेर की तरह डोलता था, आज उसके सामने गीदड़ बन गया ?

तो असल शेर तो सुखराम ही था !

प्यारी गलती कर गई। जिस नाव पर जा रही थी, उसे छोटा समझकर उसने नाव को जहाज़ पर चढ़कर संग बाँध लेना चाहा। पर जहाज़ के चूहों ने जहाज़ में सूराख कर दिया। जहाज़ डूबने लगा तो प्यारी फिर अपनी नाव पर चढ़कर किनारे की तरफ़ लौटना चाहती है, पर अब नाव भी उसके इशारे पर नहीं है !

उसकी हिम्मत कि उसने सिपाही का हाथ पकड़ लिया ?

और वह भी सबके सामने ?

निडर !

कैसा खड़ा था सीना तानकर जैसे उसे भय ही नहीं।

प्यारी ने तो उसका वह रूप देखा ही नहीं था।

वह एक क्षण था जब प्यारी को गुस्सा भी आया था, गर्व भी हुआ था। किसका क्रोध था, किसका संतोष था !

अपना अपमान होने पर भी उसे लगा था, उसीकी एक प्रतिहिंसा का रूप जाग्रत होकर आ खड़ा हुआ था।

सुखराम को हो क्या गया है ?

वह एकदम मरद कैसे हो गया ऐसा ? आज वह डरता क्यों नहीं ?

कल तक वह प्यारी के इशारे पर चलता था।

आज उसे फटकारता है।

यह परिवर्त्तन उसमें कजरी ने भर दिया है।

कैसी होगी वह कजरी ?

प्यारी चली क्यों न जाये ?

देख आये जाकर एक बार !

दारी बड़ी मलूक होगी !

और बड़ी जवान होगी !

प्यारी को अपने ऊपर दुख हुआ।

अब सचमुच उसमें वह बात कहाँ ?

मरद का क्या ? उसे तो कुत्ता वही बना सकती है जिसकी जवानी में हुमस हो। सच, शेर की तरह गरजता डोलेगा पर उसके सामने हुक्म के लिये पूंछ हिलाता खड़ा रहेगा।

कैसी अजीब बात है।

और जवानी सदा तो नहीं रहती।

फिर उसका घमंड क्या करना ?

पर सब लुगाइयां करती हैं !

प्यारी जब भरी जवान थी तब दुनिया क्या उसे बड़ी मक्खी का शहद-भरा छत्ता समझ अपने होंठों पर जीभ न फेरती थी ? मजाल थी कोई सामने से टकरा जाये आकर। और वही रुस्तमखाँ। अंधेरे में चोर की तरह कम्बल ओढ़-

कर आया। प्यारी का डंक भटक गया। शहद से हाथ धो बैठी। अब तो मोम के मोल भी नहीं बिक सकती।

पर प्यारी चली कैसे जाये ?

मेरी बेइज्जती करेगी वह।

पूछेगी : 'कौन हो ?'

क्या कहेगी प्यारी ?

तेरी सौत हूँ ?

सौत ! !

प्यारी का सिर झन्ना गया। क्यों स्त्री एक और स्त्री को नहीं सह सकती ? मरद क्यों दूसरे मरद को नहीं सह सकता ?

कमीनों में परख नहीं होती।

बड़ी जात वाले तो इसी पर सबको आँकते हैं।

उनके यहाँ तो पतबरता की इज्जत है।

और सच तो नटनी और कुतिया में फरक ही क्या है ?

पर मरद को दोस क्यों नहीं लगता ? भगवान ने ही तो मरद को मरद और औरत को औरत बनाया है ? अपने आप तो कोई बनके दिखा दे।

औरत ही औरत को दोस लगाती है।

प्यारी समझ नहीं सकी।

उसने उठकर पानी पिया। थोड़ी सुस्थिर हुई। उसने आँखें मींड लीं और अंगड़ाई ली। मुँह पर हाथ रखकर फिर लेट गई। वह सोचना नहीं चाहती, पर विचार बार-बार आ जाता है। वह तो असल में थक गई थी। बहुत थक गई थी। क्यों ? क्योंकि वह चलना नहीं चाहती ?

बेइज्जती करेगी। क्यों ?

मेरा सामरिया उसका जो है। उसीकी बात की ज्यादा कदर है। तभी तो वह ऐंठेगी। पर ऐसा क्यों होता है ? क्या जवानी और तन ही सब प्यार की जड़ है ? ठीक ही तो है ? मरद भी तो लुगाई आने पर मां का कहना नहीं मानता। दूध पिला-पिला के दिन-रात एक करके पालती है अम्मा, पला-पलाया लेकर मौज उड़ाती है बहू ! और फिर उसे भी अन्त में एक दिन माँ बन के यही अन्त देखना पड़ता है।

रुपया मेरे हाथ था तो मैं खरीदती थी, उसके हाथ है तो वह खरीदेगी।

पर रुपया है किसका ? रुपया खरीदता है, प्यारी और कजरी नहीं । टके का भाव, टका नहीं जानता, सौदागर जानता है । यहाँ टका सौदागर का मोल-तोल करता है । उल्टी रीत है ।

प्यारी फिर सोचती है । क्या प्यारी उस धन की मोहताज होकर धनी हो गई है या यह भी उसकी एक दूसरे तरह की सदा से चली आती हुई मज़बूरी में ही भूखी-प्यासी गरीबी ही है न ?

कजरी क्या वैसी ही मजबूर नहीं है ?

है !

फिर घमण्ड किसका ?

जगत का न्याय यही है !

मजबूरी ही न्याय की स्वतन्त्रता है ।

पर उस मजबूरी में भी वह मालकिन है ।

और प्यारी ?

कुछ नहीं ।

क्यों ?

क्योंकि वह तो तराजू पै चढ़ चुकी ।

कजरी नहीं चढ़ी, सो जीत गई ।

प्यारी गुलाम है । वह ही तो गुलाम है जो अपने मन की नहीं कर सकता । बंधन उसे जकड़ लेते हैं और वह छटपटाता है ।

पहले भी क्या वह मन की कर पाती थी ? कितनी मुसीबतें नहीं थीं तब ? चारों तरफ़ से बरसती थीं ।

पर सब कुछ रहते हुए भी उसमें कचोट नहीं थी । किसीका हाहाकार नहीं था । सब अपना था, अपना था, पराया उसमें कुछ भी नहीं था, न उसके होने की कोई गुंजायश ही थी ।

प्यारी ऐसी जगह रहती है जहाँ उसका मन नहीं मिलता । वह रुस्तम-खाँ से नफ़रत करती है । उसीने उसके जवानी के फूल को ज़हर से बुझा दिया है । ऐसा ज़हर कि अगर इसे सुखराम सूंघ ले तो उसका भेजा तक सड़ जाय । तभी तो उसने उसे छूने नहीं दिया अपना तन । कैसा-कैसा रिसाता था सुखराम उस बखत । उसी बखत प्यारी ने सुखराम से कह क्यों न दिया ? तभी वह गलत समझा और कजरी का उस पर दाँव चल गया । वर्ना उसकी क्या मजाल

थी जो उसे फुसला लेती। पर मौका चूक गया, अब चिड़ियाँ खेत चुग गईं। तब पछताने से लाभ ही क्या है ?

प्यारी जी नहीं रही है, दिन काट रही है।

वह जीना चाहती नहीं।

भगवान अभी क्यों नहीं उठा लेता। ऐसे ही आँखें मुँद जायें तो क्या नुकसान है। प्यारी को चैन पड़ जायेगा। सारी झंझट उठ जायेगी। कोई परेशानी नहीं रहेगी।

प्यारी आँखें मींचे पड़ी है। वह भगवान से प्रार्थना कर रही है—मुझे उठा ले। अपने पास बुला ले। दुख दे-देकर मुझे जिला-जिलाकर न मार। मेरा पाप क्या है ? पराये मर्दों के संग सोई हूँ। तो तूने मेरी जात ऐसी बनाई क्यों जिसे कोई हक नहीं। तूने मुझे औरत बनाया क्यों ? तभी तो आज यह बीमारी भोग रही हूँ ?

रुस्तमखाँ कह रहा है : 'अल्लाह मेरे गुनाहों को माफ कर। मैंने जो कुछ किया है, वह सब मेरी नापाक ज़िंदगी की लम्बी काली फहरिस्त है।'

प्यारी सुन रही है। उस स्वर में एक व्याकुलता है, जैसे कोई तड़पते हुए नरक में से घुट-घुटकर बोल रहा है। आज यन्त्रणा फूट-फूटकर मवाद की तरह निकल रही है।

क्या वह दयनीय नहीं है ? क्या वह इस लायक नहीं कि कोई उसे उठकर पानी पिला दे। पर क्यों ? क्या उसने कभी प्यासे को दो बूंद पानी भी पिलाया है ? प्यारी सोचती है : भगवान ! तूने इसे कैसा दण्ड दिया है ? थोड़ा-सा पाप किया था प्यारी ने कि वह इसके साथ आ के रही थी, सो भगवान ने उसका भी संग ही दण्ड दे दिया। वह अपने सुखराम को छोड़ आई थी, उसका क्या नतीजा उसे भोगना नहीं पड़ेगा ?

प्यारी करवट बदल रही है। रुस्तमखाँ फिर बडबड़ाता है—'ऐ खुदा ! तूने मुझे किस क़दर तक़लीफ़ दी है। यह क्या तू नहीं जानता ? क्या मैं इसी लायक हूँ। आह !'

फिर वह सर्द आह निकलती है और प्यारी के कानों के पास आकर मच्छर की तरह भनभनाने लगती है। प्यारी उसे नहीं सह सकती। वह उसे आराम नहीं करने देती।

प्यारी की देही तप रही है। पर वह नहीं महसूस करती। वह चादर ओढ़े

है। और ओढ़कर लेटा रहना कितना अच्छा लग रहा है। चुपचाप, शांत। हाथ-पैर डुलाना भी अच्छा नहीं लगता। वह बीमार है। पर वह रुस्तमखाँ का दुख देखकर खुश हो रही है। उसे लग रहा है कि उसका पाप घट रहा है।

रुस्तमखाँ भर्राये गले से कह रहा है: 'परवरदिगार! तू रहमदिल है। मैंने सब गुनाह किये हैं, मैं मानता हूँ। कोई ऐसा नहीं है जिसे मैंने अपना नापाक दिल लगाकर नहीं किया हो। फिर भी तेरा हाथ सबको पनाह देता है। मैंने रोज़ तेरे सामने घुटने टेके हैं। सिज़दा किया है।'

प्यारी को लग रहा है, वह बहुत दीन हो गई है। उसके हाथ-पाँव अब सुन्न-से हो गये हैं।

वह क्यों नहीं भगवान को पुकार रही है?

रुस्तमखाँ जैसे पापी के मुँह से भगवान का नाम सुन-सुनकर प्यारी को लाज आ रही है। वह किस मुँह से भगवान से प्रार्थना करे। वह तो अपने को पापिन समझती है।

क्यों?

क्योंकि उसने सुखराम को छोड़ दिया था। प्यारी अपनी आँखें मींचकर अपने हाथों और पाँवों को समेटकर छाती और पेट से लगा रही है। सारा शरीर गर्म है। गरम-गरम भभक में एक चैन है।

और रुस्तमखाँ हल्के-हल्के स्वर में कुछ गा रहा है—गा रहा है धीरे-धीरे। वह कुछ प्रार्थना कर रहा है। दुख भी कितनी अजीब वस्तु है। इसमें इन्सान सिर्फ़ इन्सान रह जाता है। सुख में इन्सान के फ़र्क शुरू होते हैं। वह धनी गरीब बनता है, तन्दुरुस्त रहने पर दूसरों पर जुल्म करता है, पर दुख में बच्चे की तरह हो जाता है।

गाना उसके कोठे से निकलकर आता है और प्यारी को लगता है कि वह गाना बहुत दूर-दूर तक चला जा रहा है। वह करुण पुकार उसके मन को सान्त्वना दे रही है। मलहम-सा लगाती हुई, सारी जलन को मिटाती हुई।

प्यारी को वह सब अच्छा लग रहा है। वह चादर से मुँह भी ढँक लेती है। और फिर गर्म-गर्म साँसें चादर के भीतर ही भीतर भरती हैं और सब कुछ गर्म हो जाता है। बिल्कुल भभकता हुआ।

प्यारी खुश होती है। वह कितनी शान्त है। अब भी उसके कुछ अंगों में जलन है, पर वह धीरे-धीरे कम होती जा रही है। सुखराम की दवा ने फ़ायदा

किया है । वह कहता था, दवा के असर से भी बुखार आ सकता है । अगर बुखार तेज़ हो तो समझना चाहिये शर्तिया फ़ायदा होगा ।

तो क्या वह अच्छी हो जायेगी ? वह फिर स्वस्थ हो जायेगी ? तब तो वह सिपाही को छोड़ देगी और सुखराम के पास चली जायेगी । तब वह कितना सुख पायेगी ? आनन्द फैल जायेगा ।

वह सोच रही है । सुखराम से वह क्यों बँधी है । उसे यहीं क्या दुख है, जो वहाँ जाकर सब ही सुख हो जायेगा ? यहाँ कम से कम उसकी हुकूमत तो है । वहाँ क्या है ? वहाँ मरद पुलिस की बाट जोहते हैं, औरतें भूखे बच्चों के लिये पराये मरदों का । और फिर ? दुख ही दुख ।

पर वहाँ सुखराम है ? और इसीलिये वह वहाँ जाना चाहती है । पर सुखराम के पास वह रहना चाहती है ।

यह उसके मन की बात नहीं है । दुनिया में बहुत-बहुत लोग होते हैं । सब तो सबको नहीं चाहने लगते ? वह क्या है जो सूप में फटके हुए दाने की तरह के अपने को भा जाने वाले को ही पास रखता है ? पास रहना ? पर पास रहने वाले सभी तो पसन्द नहीं आ जाते ? फिर जब मन रमता है तो क्यों, और किसी एक की ही चाहना क्यों हो आती है जो मन पर लकीर खींच जाती है ।

उसे उसके साथ बिताई हुई रातें याद आ रही हैं । एक-एक करके वे अनेक हैं । वे रातें जब अंधेरी तारों को देखते-देखते बीत गईं । वे रातें जब चांदनी में प्यारी उसको देख-देखकर मुस्कराती रही । वे बरसाती रातें जब हचकोले खाता आस्मान तम्बू के बाहर घहरा करता था, और वे रातें जब आग जलाकर दोनों उसके दोनों ओर आग तापते रहते थे । वे सब रातें कितनी अन-बूझ थीं । तब जैसे दुनिया में कुछ था ही नहीं । मन को साँसत ही नहीं थी । नींद पलकों के पंख दबाया करती थी और सुपने बरौनियों के बिछौनों पर करवटें बदलते थे ।

वह पहली रात कैसी थी ?

प्यारी का दिल धड़क रहा है ! वह रात । वह शराब पीकर आई थी । भीतर इसीला और सौनो बातें कर रहे थे । बाहर सुखराम उसे गोद में लिये बैठा था । और ठंडी-ठंडी ओस गिर रही थी । उस दिन लगता था कि रात सदा ही बनी रहेगी । तन का सम्बन्ध तो उसने और भी किया था, पर उस दिन उसके रोम-रोम में एक भींगी सिहरन थरथरा उठी थी । वह क्या थी ? वही

तो सुखराम से उसकी प्रीत थी। सुखराम बचपन का प्यारा दोस्त था और अब वह उसका मरद है।

प्यारी करवट बदल रही है। विचार टकरा रहे हैं।

दुनिया में सब होता है। पर जब तक मन का मीत नहीं मिलता तब तक लोग कहते हैं इसने दुनिया में कुछ देखा ही नहीं। लोग को लुगाई और लुगाई को लोग न मिले तो सब लोग यही कहा करते हैं कि अभी दुनिया की जानकारी ही हासिल नहीं की। और लोग आदमी का विश्वास भी तभी करते हैं जब वह अपने को अकेला नहीं कहता।

दूर कहीं घंटे बज रहे हैं। शायद किसी मन्दिर में भोग लग रहा होगा। भगवान अब आराम करेंगे, क्योंकि सुबह से शायद वे काम करते-करते थक जाते हैं।

प्यारी का मन विश्रांत हो उठा था। अब थकान बढ़ गई थी। उसने उठकर खाट पर पांव समेट लिये और दोनों हथेलियों पर सिर रखकर कुछ देर बैठी रही। आज वह चुप ही बनी रहना चाहती है।

और दुपहर की गहराई बाहर सुनसान रास्तों पर अब छाया के टुकड़ों की तरह तिनके-पत्तों की छाया में जाकर बैठ गई थी। कोई चिड़िया अकेली बोल उठती थी। फिर घर्र-घर्र करके मानों वह उस सन्नाटे को तोड़ देने का यत्न करती थी और फिर चुप हो जाती थी।

सुखराम अपने जोश में चला गया है। वह जाकर कजरी से अब कहेगा ? क्या कहेगा ?

प्यारी मान गई है ?

सुखराम में इतनी अकल कहाँ जो वह यह सब सोच सके ? प्यारी सोचती है कि यह सब कजरी की ही चाल है। सुखराम ने तो उससे चलने की जिद् की होगी। कजरी ने अपनी हेठी समझकर पहले मना किया होगा, बाद में सुखराम की जिद् देखकर सरत लगा दी होगी।

सौत बड़ी चालाक लगती है। मैं भी देखूंगी उसमें ऐसा कितना पानी है।

पर प्यारी फिर लेट गई। मन को सन्तोष मिल रहा है। वह यह सोचकर निहाल हुई जा रही है कि सुखराम को उसका इतना ध्यान है ? कौन नहीं जानता कि दुनिया में जब मरद दूसरी लुगाई ले आता है तब पहली को मुड़कर भी नहीं देखता। सुखराम तो ऐसा नहीं है ?

उसने फिर चादर ओढ़ ली। अब और वह कुछ सोचना नहीं चाहती। पड़ी है तो तरह-तरह की सोच-भरी यातना आ घेरती है। पर यादों से ज्यादा प्यारा उसके पास सहारा ही क्या है ?

कोई नहीं।

प्यारी को याद आ रहा है।

निरदयी ने ले चलने की एक बात तक नहीं की।

कजरी जो बस गई है मन में।

रुस्तमखाँ कराह रहा है।

प्यारी सुनती है तो वह चौंक उठती है। उसे ऐसा लग रहा था, जैसे वह घर में अकेली है। उसकी आवाज़ सुनकर उसे झटका लगा जैसे क्या यह अभी तक ज़िन्दा है ?

क्या वह इस खूसट से बंधी रहेगी ?

प्यारी को ग्लानि हो रही है। उसे लग रहा है कि वह बंधी हुई तोती की तरह पिंजरे में फरफरा रही है, बार-बार चोंच मारती है, पर लोहे की तानों से चोंच टकराकर रह जाती है और नतीजा कोई नहीं निकलता।

रुस्तमखाँ कहता है : 'प्यारी !'

वह नहीं बोलती।

वह फिर कहता है : 'प्यारी ! सो गई ?'

वह नहीं बोलती।

फिर वह बड़बड़ाता है—'सचमुच सो गई।'

'क्या है' प्यारी औंध में जवाब देती है : 'पुकारा था क्या ?'

'हाँ !'

'क्यों ?'

'पूछता था सो गई ?'

'सोई नहीं थी।'

'मैंने दो बार पुकारा था।'

'झपकी आ गई होगी।'

रुस्तमखाँ चुप हो गया है।

प्यारी पूछती है : 'क्या काम है ?'

'कुछ नहीं।'

'वाह !' प्यारी कहती है : 'ऐसे भी कोई बुलाता होगा। मैं समझी जाने क्या हुआ।'

रुस्तमखाँ कहता है : 'तू तो परेशान नहीं है ?'

'नहीं।'

'एक बात पूछूँ प्यारी।'

'पूछो।'

'अगर मैं मर गया तो ?'

'तो ?' प्यारी पूछती है।

'तो तू क्या करेगी ?'

वह भाग जायेगी। वह यही कहना चाहती है। पर कहती है : 'नहीं, तुम मरोगे नहीं। अभी और जियोगे।'

'अल्लाह तेरी उम्र बढ़ाये प्यारी।' रुस्तमखाँ कहता है।

'फिर उमर बढ़ाकर क्या करेगा ? औरत तो तब तक जिये जब तक जवानी रहे, वर्ना फिर उसे कौन पूछता है ?'

रुस्तमखाँ चुप हो गया है। वह तर्क नहीं करना चाहता। प्यारी फिर कल्पना कर रही है कि वह फिर तारों-भरे आस्मान के नीचे सोयेगी। कोई उसके बालों की लटों को धीरे-धीरे सुलझाता होगा। वह हँस देगी ! लाज भरी।

रुस्तमखाँ काटता है : 'प्यारी ! सुखराम की दवा अच्छी ही-सी लगती है।'

वह उत्तर नहीं देती। वह दूसरी कल्पना कर रही है। उस समय उसके पास लेटा हुआ कोई गबरू जवान होगा। और उसकी कैसी विवशता है कि जब वह सुख की कल्पना करती है तब वह कल्पना पुरुषहीन नहीं होती। क्योंकि समाज की विषमता से व्याकुल हुई भी इस स्त्री का हृदय अप्राकृतिक विकृतियों से ग्रस्त नहीं है। वह कुछ बढ़ी-चढ़ी बातें नहीं समझती, किंतु वह मानवी है, केवल मानवी है। वह उसी अधिकार को चाहती है, जो जीवन की सहज पुकार है और उसे कौन नहीं रोकना चाहता ? सब उसे काटना चाहते हैं।

फिर वह गबरू जवान धीरे-धीरे सुखराम बन गया है।

उपचेतन के भीतर से जब भाव का तादात्म्य पूर्व सञ्चित स्मृतियों से होता है तब मस्तिष्क में चित्र को बदलते क्या देर लगती है। एक-एक बदलाव आता है और फिर अपनी नई छवियों को धारण करके सब कुछ को अपने में सराबोर कर देता है।

मुखराम !

वही गोरा युवक ! जिसकी आँखें सजीली हैं। जिसकी देही से देही सटाकर बैठने से लगता है जैसे फूल के पास तितली बैठती है। प्यारी को तो इतना ज्ञात है कि उसे सुख होता है। कितनी अनबूझ भावना है वह सुख की ! वह क्या उसे समझा सकती है ? बस इतना लगता है कि उसके बाद कुछ और बाकी नहीं रह जाता।

रुस्तमखाँ कराहता है।

प्यारी कहती है : 'फिर क्या हुआ ?'

'बड़ा दरद है।'

'मेरे भी तो है।'

'पानी !'

'प्यास लग रही है ?'

'हाँ प्यारी।'

प्यारी को झुँझलाहट आती है। उसे भी तो बुखार है। कह दे आपही उठकर पी ले। पर वह कह नहीं पाती।

वह उठती है। उसका जोड़-जोड़ दुख रहा है। अभी बुखार है। और अब सिर में झनझनाहट हो रही है। पड़ी थी तो शांति थी। उस बखत कुछ भी चाहना नहीं थी। पर उठती है तो लहू जैसे फैल-फैल जाता है। वह खाट पकड़कर सिर थाम लेती है। फिर आँख खोलकर देखती है। सब कुछ घूम रहा है। आँखों के सामने पतंगों-से उड़ रहे हैं।

उसके पांव लड़खड़ा रहे हैं।

वह पानी भरकर गिलास ले जाती है।

'लो पी लो।'

'ला।' रुस्तमखाँ घिघियाता है। प्यारी गिलास देती है। रुस्तमखाँ कुहनियाँ टेककर उठता है। उसका चेहरा दर्द से भयानक-सा हो गया है। पर प्यारी को उससे हमदर्दी नहीं होती। उसे वह ऐसा लगता है जैसा कोई बड़ा झबरा कुत्ता था, जिसने मीठा खाया, खाज हो गई और उसके एक-एक करके तमाम बाल झड़ गये, अब वह मैली घृणित खाल से मँढ़ा हुआ दुबला-पतला कुत्ता, जो कल तक दांत दिखाता था, केवल पूंछ हिला रहा है।

रुस्तमखाँ पानी पीकर लेट गया है।

प्यारी गिलास वहीं रखकर अपने कोठे में आकर लेट गई है।

कितनी थकान है। इस तनिक से उठने के कारण उसे चक्कर आ रहा है।

प्यारी रो रही है।

क्यों ?

वह नहीं जानती।

केवल इतनी अनुभूति है कि वह किसी बड़े अभाव के गड्ढे में गिरी पुकार रही है। वह घुमड़न जब होंठों पर आती है, तो आँखों में आंसू फिर-फिर भर-भर आते हैं। कितनी लाचारी है। जिन आँखों से प्रेम की अरूप बौछार-सी होती थी, उन आँखों से दिल हमक-हुमककर पिघल-पिघलकर निकल रहा है। मन करता है, वह रोती ही रहे, रोती ही रहे। क्या है जिसके लिये मुस्कराहट होंठों पर आयेगी, और फिर वह लौटी हुई मुसाफ़िर-सी मुस्कराहट रहेगी भी तो क्या, अपनी यातना के पानी में फीकी न पड़ जायेगी ?

रुस्तमखाँ कह रहा है : 'प्यारी !'

वह सिसकना रोकती है।

'तू रो रही है ?'

'नहीं।'

वह आँसू पोंछ लेती है। और फिर उन लाल-लाल आंखों से देखती है। अब भी नीचे का होंठ फड़क रहा है, जिसे दांतों से वह रोके-सी हुई है, जैसे मन अभी हल्का नहीं हुआ है, उसे रोने की भी इजाजत नहीं है, जैसे बरसता-बरसता पानी रुक गया हो, और उमस घिर आई हो, अभी गगन में कितने बादल छटपटा रहे हैं, किन्तु धरती की हवा का तापक्रम बढ़ गया है, जिसे छूकर वे मेघ ऊपर ही उठे हुए टँगे-से रह गये हैं।

'क्यों रोती है ?' रुस्तमखाँ पूछता है।

वह कहती है : 'दरद होता है।'

'रो नहीं, सब ठीक हो जायेगा।'

कितनी सान्त्वना है ! कितनी समवेदना है ! पर क्या उसमें यह आत्मीयता तब भी होती जब रुस्तमखाँ बीमार न होता। यह तो जैसे एक भिखारी ने दूसरे भिखारी से कहा था कि भगवान तुझे भी भीख दे।

रुस्तमखाँ ने गिड़गिड़ाती आवाज़ में कहा है : 'ऐ खुदा ! यह नीच कौम

की औरत है, मगर तूने ही तो इसे नीच बनाया है। यह मेरी वजह से तकलीफ़ झेल रही है। इसे नजात दे। इसे आराम दे। इसका अपना तो कोई भी कुसूर नहीं है।'

और वह रो रहा है। उसने कहा है—'मालिक! यह औरत कितनी अच्छी है, जो सारी तकलीफ़ झेल रही है और मुझसे कुछ भी नहीं कहती, चुपचाप दुख झेल रही है।'

उसकी प्रार्थना का स्वर फिर रोने लगता है।

प्यारी को ताज्जुब होता है। क्या सचमुच यह जानवर भी आदमी है?

किन्तु वेदना के झटकों में जागी हुई इन्सानियत क्या फिर परिस्थितियों के बदलते ही बदल नहीं जायेगी? प्यारो सोचती है कि बीमारी ने इसे कितना कमज़ोर कर दिया है, पर अगर यह ठीक हो गया, तो क्या फिर भी ऐसा ही भला आदमी बना रहेगा?

उसे विश्वास नहीं होता। वह उसका रोना सुन रही है और ज्यों-ज्यों वह दुआ करता है उसे खुशामद-सी लगती है।

वह उठती है। खाट पर बैठकर कहती है: 'सुनते हो!'

'क्या है प्यारी!' वह चुप हो गया है।

'तुम क्यों रोते हो?'

'मैं गुनहगार हूँ।'

वह सह नहीं सकती। वह एकदम उठती है और सिर पकड़कर चुपचाप बगल के कोठे में जाके लेट जाती है।

यहाँ कोनों में अन्धेरा छा रहा है और जंगल से आती हल्की रोशनी से अपना पंजा लड़ा रहा है। प्यारी को यहाँ सान्त्वना मिलती है। वह ओढ़कर फिर चैन पा रही है।

प्यारी सोचती है।

क्यों दिन नहीं कटता।

अगर वह तम्बू पर होती तो सुखराम उसके पास बैठा रहता और प्यारी को कोई बेचैनी नहीं होती। मन तब तृप्त-सा होता। ऐसा क्यों होता है? वह जो अच्छा लगने का भाव है, जो मन की सूनी गलियों को भर देता है, वह आखिर है क्या? दिन का क्या पहले भी ख़याल किया गया था कभी?

पहले तो पता भी नहीं चलता था। ऐसे कट जाता था जैसे पतंग की डोर और अब ऐसा दीरघ होता जाता है जैसे खुलती चकलिया जिसका कोई न आदि है न अन्त।

प्यारी को वह बचपन के दिन याद आते है। इसीला आज पहली बार उसे याद आया है। सौनो की मुहब्बत आज जाग उठी है। वह सब कहाँ गया ? आह, तब कैसे हिरनी-सी कुलांचें मारती थी। सेंमल के लाल-लाल फूल उठाकर जब अपने बालों में लगाती थी और घाघरा उठाकर नाचा करती थी। जब सौनो बाजरे की रोटी और गुड़ देती थी तब वह भूरा के साथ बैठकर खाया करती थी। एक दिन घोड़े की नंगी पीठ पर बैठ गई थी। चरता घोड़ा भाग चला था, उस दिन वह गिर गई थी। पर वे दिन कहाँ हैं !

और भी तो नटनियां हैं।

उनकी तो उसने कभी चिन्ता नहीं की।

और वे नटनियाँ सहज सुखी हैं। प्यारी थोड़ा-थोड़ा क्यों सोचने लगी है ? वे तो आपस में लड़ती हैं, खाती हैं, बच्चे जनती हैं, और दिल्लगी करती हैं। यहाँ आकर प्यारी को क्या जरूरत थी बदला लेने की ?

उसने लोगों को दुश्मन क्यों बना लिया ? लोटे के थोड़े-से दूध में अंगीठी पर धरते ही उफान आ गया ? होता अगर कढ़ाव, तो क्या इतनी जल्दी उसमें दूध उफन जाता। जिसको ज़िन्दगी का अरमान बनाया था, जब वही धूलि में बिखर गया है, तो क्या करे यह मन ? यह तो बिखरे अरमानों को समेट रखने के मोह में तमाम धूल ही इकट्ठी किये ले आ रहा है, और धूल में मिले अरमान आज धूल नहीं लग रहे हैं।

हुकूमत ही गुलामी बन गई है। हाथ उठाये थे कि प्यार का आलिंगन बाँध लें, पर हुआ क्या है ? वे उठे हाथ फंदों में फँसे रह गये हैं, बंधन में, आक्रोश की पराजय में···

जब वह कंजरों में जाती थी तब वह खाने-पीने की शौकीन थी। कितनी ही बार उसने चोरी करती कंजरियों का साथ भी दिया है। उसे वह कंजरिया याद आई जो उसके बचपनके खतम होने के बखत जवान थी और जिसने दिल्लगी में ही उसे ऐसी बहुत-सी बातें बता दी थीं, जिन्हें सुनकर उसे उस बखत ताज्जुब होता था। वह ताज्जुब ही आगे चलकर उसे एक दिन सुख देने लगा था।

और वह पहला दोस्त उसे याद आया जिसके साथ पहली बार उसने शराब पी थी। तब वे दोनों नशे में झूम गये थे। इतना ही याद था और कुछ नहीं। और वह जो कुछ शेष था, उसे वह भूल चुकी थी। और उसे वह याद रखती भी कैसे ?

पर वह उसके पास रहता था। प्यारी ने ही उसे छोड़ दिया था। वह तो उसे चाहता था।

अगर वह उसके पास चली जाये तो ?

क्या कहेगी जाकर ?

मैं अकेली हूँ।

पूछेगा सुखराम कहाँ है ? क्या उसने तुझे छोड़ दिया ? तू तो मुझे उस दिन छोड़ गई थी न ?

अब वह उसे क्या याद रख सकेगा ? कितनी शराब पीता होगा ? दिन-रात जुआ खेलता होगा। हँसते-हँसते छुरा भोंक देना तो उसका सहज खेल था। वह कैसी गरगलाती आवाज़ से हँसता था। झूंठ तो ऐसी बोलता था कि बयान नहीं और जहाँ सिपाही देखा कुत्ते की-सी दुम हिलाता था। मक्कारी उसमें कूट-कूटकर भरी थी। वह उसके पास जायेगी ?

जाने उसके पास कौन होगी ? और जो होगी वह न जाने कैसी खंखा लड़ाका होगी। पर प्यारी को वह घृणित जीवन भी अच्छा लग रहा है। तब वह ऐसी घिरी हुई तो न थी। उसे बीमारी तो न थी ! वह तब तड़पती न थी। और तब वह मस्त रहती थी। खाती थी, शराब पीकर नाचती थी, और उसके हर काम का एक मकसद होता था, आनन्द लूटना। वह लुटनेवाली भी अपने को लुटेरा समझती थी, मस्ती उसके सामने झूमती थी, वह जैसे तब बेहोश थी, बेहोश, मदहोश···

प्यारी का मन घुमड़ रहा है।

सुखराम उसे छोड़ गया है। जिसे उसने प्यार किया है वह पराई के पास चला गया है। वह सुख जो एक दिन प्यारी पाती थी, आज कजरी के हिस्से में चला गया है···

क्यों ?

क्योंकि वह सिपाही के पास आ गई है···

और रुस्तमखाँ दुआ कर रहा है—'अल्लाह ! रहम कर···

रहम !! रहम !!!!'

किस पर ? इस कुत्ते पर !!

हे भगवान् ! कभी नहीं । कभी नहीं ।

और जीवन पर्य्यन्त सुख की खोज करने वाली मानवी तृष्णा का दाह प्यारी को छटपटाहट से भर रहा है । कहाँ है वह अन्तस् की तृप्ति, जो ऐसे विभोर हो जाती थी कि होठों तक भरी हुई प्याली की तरह प्यारी छलका करती थी, और रूप के फेनों में तरह-तरह की रंगीन छायाएँ अपने असंख्य रूप लेकर चमका करती थीं ।

वह सब अब कहाँ है ? वह सब कहाँ चला गया है !!

आज वह सूनी पड़ी है !! अकेली पड़ी है !!!!

अकेली !! बेआसरा, बेसहारा, बेबुनियाद ! केवल अकेली !!

प्यारी ने खाट की पाटी पर सिर दे मारा ।

१५

सुखराम की तबियत कर रही थी कि वह लौट जाये । जब से वह चला आया है, उसे बराबर यह विचार आ रहा था कि उसने ठीक नहीं किया । उसने प्यारी से आकर ढंग से बात नहीं की थी । बात के जोश में कुछ भी रहा हो, पर अब अनुभव हो रहा था कि बहुत कसर रह गई थी । प्यारी से उसने ऐसी बेमनी बात कभी नहीं की थी । उसके मन का अपना चोर ही उसे डरा रहा था । उसकी इच्छा हुई वह लौट जाये और उसके पास जाकर बैठे । प्यारी बीमार है । क्यों न वह प्यारी को ढाँढस दे ।

उसे सहलाये । क्या उसका दुख इससे हल्का नहीं हो जायेगा ? उसने उससे यह तो कहा ही नहीं कि उसे ले जायेगा या नहीं ? क्या वह जान-बूझकर इस विषय पर चुप हो गया था ? क्या सचमुच उसे प्यारी अब अच्छी नहीं लगती ? इस विचार पर सुखराम मन ही मन काँप उठा । प्यारी उसे अब प्रिय नहीं । यह कैसे हो सकता है ?

आज उसे बड़ी चोट पहुँची होगी। उसकी आत्मा ने दुख से यह अनुभव किया होगा कि अब कजरी ने सुखराम के मन में उसकी जगह को घेर लिया है ? और सुखराम ने सोचा कि अगर प्यारी रुस्तमखाँ के पास ही रह जाये तो क्या हरज है ? वह खर्चा चलायेगा ही, और सुखराम दोनों की बीमारी को तो अच्छा कर ही देगा। न एक म्यान में दो तलवारें रहेंगी, न झंझट ही होगा। किसलिये यह इतनी चिंता ग्रस रही है ? पर अब दिमाग़ में प्यारी की तस्वीर बड़ी होने लगी। फैलने लगी·····

उसने सोचा होगा कैसा बेदरद है। पहले कितने वादे किया करता था। कहाँ गया वह प्यार ! अरे यही सुखराम प्यारी के इशारों पर नाचता था। क्यों ? और उसे विचार पीछे खींच ले गए। वह दिन याद आया जब सुखराम बाप और माँ के मरने पर रोया था और इसी प्यारी ने उसे दुनिया में आसरा दिया था। उस दिन से वह आज तक यही तो समझती रही है कि वह सुखराम की मददगार है।

अब वह कजरी और प्यारी का मुकाबला करने लगा।

कजरी उसे अपना मालिक समझती है, मरद समझती है।

प्यारी उसे अपना मालिक और मरद शायद कुछ ही क्षण में मानती है, वैसे वह समझती है वही उसकी रक्षिका है। सुखराम में जैसे अकल नहीं है। जो कुछ संभाल रखा है, वह प्यारी ने ही।

दोनों अच्छी हैं, पर एक दूसरी से कितनी दूर हैं।

सुखराम ने बीड़ी जलाई। धूंआ उगला और फिर कश खींचकर उसे सीने में भर लिया, जैसे वह अपना ध्यान दूसरी ओर लगाना चाहता था, सोचने से बात में गांठ पड़ती थी। वह उस उलझन को ढीले डोरे की ही तरह पड़ा रहने देना चाहता है, ताकि उसे यह भ्रम बना ही रहे कि वह जब चाहे उसे सुलझा लेगा, चाहे सुलझा सके या नहीं।

फिर प्यारी की वे प्रतीक्षा-भरी आँखें पीठ की ओर से बुलाने लगीं। और अब ध्यान में कजरी की वे उत्साह-भरी आँखें सामने से हेरने लगीं, जिनमें विश्वास का अखंड राज्य था कि ऐसी है कौन जो सुखराम को मेरे पास आने से रोक लेगी।

स्त्री के ये दो रूप सुखराम को एक तड़प दे गये। और वह इन दो का केन्द्र है ? दोनों का अपना है। क्या वह सचमुच किसी एक का भी है ? या

दोनों को छल रहा है ? कहीं ऐसा ही तो नहीं है कि प्यारी सेवह असल में ऊब गया है और कजरी की करफ़ खिंचता जा रहा है। लेकिन ऐसा क्यों हुआ ? उसका पुरुष अब धीरे-धीरे अपने अहं को प्राप्त करता जा रहा था !

उसे दोनों ही दो धारों-सी लगीं। दोनों तेज़, चमचमाती। लहू की प्यासी, पानीदार !

उसने रुस्तमखाँ के बारे में सोचा। पड़ा-पड़ा खाट पर खाँसता रहता है न ? क्या वह सदा ही ऐसा था ? क्या आज भी वह भला बन गया है ? नहीं। उसका मतलब है इसलिये दबा हुआ है। कितना कमीना आदमी है।

और फिर विचार आया। इस दुनिया में पुलस क्यों रखी जाती है ? वह दुनिया कितनी अच्छी होगी, जिसमें पुलस नहीं होगी।

और पुलस बड़े आदमियों की ही मदद क्यों करती है ? चोरों, लफंगों से बचाने के लिये। आदमी चोर और लफंगा क्यों हो जाता है ? क्योंकि वह नीच होता है। पर आदमी को नीच कौन बनाता है ? उसकी जात !

'मैं भी तो नीचों में ही हूं।' सुखराम ने फिर सोचा।

अगर पुलस-फौज न हो तो क्या दुनिया में नीचों का ही राज हो जाये ? क्या हम नीचों में इतना दम है ? और तब सुखराम ने नटों की तुलना की, गांव के बनिये-बामनों के सामने रख-रखकर तोला। ठाकुर जरूर नटों का मुकाबला कर सकते हैं। पर ऊँच जातों के दिल बड़े होते हैं। उनमें अकल है। हम लोग गमार हैं, पढ़े-लिखे नहीं हैं। उज्जड हैं। खूनी हैं।

तभी हमें दबाने को लोहे की ज़रूरत है।

क्या हम इतने ख़तरनाक हैं कि हमें दबाने को इतनी बड़ी फौज की ज़रूरत है ?

पर विचार जीवन की यथार्थ विषमताओं में जन्मा था। आया, चला गया, क्योंकि सुखराम के पीछे शिक्षा नहीं थी, समाज के विकास की वैज्ञानिक व्याख्या नहीं थी। अब वह उसी सामन्तीय संसार के ढाँचे में सोचने लगा—'अगर मैं दरोगा बन जाऊँ तो एक-एक साले को खोद के गड़वा दूं !'

'पर मैं दरोगा कैसे बन सकता हूँ ?'

'दरोगा तो पढ़ा होता है !!'

और फिर भाग्य भी तो है ! तकदीर क्या मामूली बात होती है। चलते-

चलते सुखराम रुक गया। दरोगा जी को बैठे पाया। वह सलाम करके खड़ा हो गया। सामने चन्दी बनिया बैठा था।

दरोगा जी ने कहा : 'हाँ भई पढ़।'

बनिये ने पढ़ा : 'हजूर राई तोला भर, जीरा तोला भर और हल्दी छटाँक भर', और इसी तरह उसने समाप्त किया—'हजूर तारीख़ १७ और ४ आने की बुरी बत्तु।'

दरोगा जी ने कहा : 'और पढ़।'

बनिये ने फिर पढ़ा और सारे हिसाब के अन्त में ४ आने की बुरी बत्तु फिर गिना दी।

दरोगा जी ने सिपाही से कह दिया था कि रोज़ मोदी से परचून और पसारठ का सामान ले आया करे और सिपाही महीने के अन्त में बनिये को लाकर हिसाब पढ़वा देता था। पहला महीना आज बीत गया था। जब आठ दिन का हिसाब बनिया पढ़ गया तो दरोगा जी चौके। बोले : 'यह चार आने की रोज़ बुरी बत्तु क्या है कम्बख्त !'

सिपाही ने कहा : 'हुजूर, मैं आपको तकलीफ़ न देकर रोज़ इस बनिये से ही चार आने माँग ले जाता था।'

दरोगा जी ने कहा : 'मगर यह है क्या ?'

बनिये ने दोनों कान पकड़ लिये और बोला : 'हुजूर माई-बाप हैं।'

दरोगा जी कड़के : 'अबे बताता क्यों नहीं !'

बनिये ने जोर से थूका जैसे घिन लग आई हो और काँपकर कहा : 'बुरी बत्तु (वस्तु) हुजूर गोत्त (गोश्त)।'

एक ठहाका लगा। दरोगा जी ने कहा : 'लगा साले को जूते। हम तो खाते हैं, साला उसे थूककर बुरी बत्तु कहता है !

बनिया घिघियाने लगा।

सुखराम जब चला तो उसे नये विचार आने लगे।

बड़े लोग इतना लड़ते नहीं। क्यों ? हम एक दूसरे के छुरा घुसेड़ देते हैं। वे लोग डरते हैं। क्या वे डरपोक हैं ? हाँ। पर मालिक तो वे ही हैं। हुकूमत तो उनके ही हाथ में है। सुखराम तो उनके सामने कुछ भी नहीं है ? जिन्दगी भर उसे यों ही रहना है।

सुखराम फिर आगे नहीं सोच सका। उसे केवल अपने तम्बू के पास होने

वाले नटों के झगड़े एक-एक करके याद आने लगे। वे लोग चोरी के माल के पीछे लड़ते हैं, औरतों के पीछे लड़ते हैं। सुखराम उनकी तरह क्यों नहीं है? क्योंकि वह कभी उनमें मिलकर एक नहीं हो सका है।

यह तो ठीक नहीं है। आपस में लड़ना क्या अच्छी बात है? और फिर कितनी ज़रा-ज़रा-सी चीजों के पीछे होती है ये लड़ाई।

नट ही तो हैं साले!

नट! और सुखराम का ठाकुर जाग उठा। सचमुच वह क्यों बह गया है? वह क्यों आज तक इनसे दूर नहीं हो सका है? वह क्यों इन्हींके बीच में फँसा पड़ा है! उसने तो इस तरह की कोई चोरी भी नहीं की। वह ठाकुर जो है। वह ठाकुर जो है।

'फिर हमें क्यों गिरफ़्तार किया जाता है?' उसने बुड़बुड़ाया।

किंतु उसे किसीने भी उत्तर नहीं दिया।

उसने फिर कहा: 'हम जरायम पेशा हैं। हमारी कोई इज्ज़त नहीं है। कोई आसरा नहीं है, कोई हमारा मददगार नहीं है। अगर है तो भगवान होगा, मगर भगवान आदमी के बीच में बोलता नहीं। मान लो अगर यह मान लिया जाये कि उसने रुस्तमखाँ को बीमारी दे दी है, तो क्या यह जुलम खतम हो गये? नहीं। और प्यारी को किसलिये भगवान ने इतना भयानक दण्ड दिया है। वह तो इतनी बुरी न थी। लेकिन क्या सिपाही के बैठ के उसने हुकूमत का नशा नहीं किया??

हमारे पास जमीन नहीं, कुछ नहीं।

आस्मान के नीचे सोते हैं, धरती हमारी माता है।

हम घास की तरह पैदा होते हैं। रौंदे जाते हैं।

हमारी औरतों को पुलस के सिपाही दूब समझकर चर जाते हैं। और फिर हमारे पास क्या है?

कुछ नहीं।

घूम-फिरकर सुखराम जहाँ से चलता वहीं आ जाता। वह जीवन के कठोर सत्यों को परख तो लेता था, लेकिन मुक्ति की राह नहीं जानता था। और जानता भी कैसे? उसका चिंतन छटपटाने लगता। अपनी ही सीमाओं पर विद्रूप करने लगता। वह फिर सोचने लगा।

बांके कितना नीच है?

और सुखराम को बाँके पर गुस्सा आने लगा। उसकी हिम्मत न पड़ी कि अकड़ता। मैं आज उसे दिखा न देता अपना हाथ। वह साला कायर है। उसके बारे में सुखराम को घृणा से उबकाई आने लगी। कमीना! अपने को बड़ा आदमी समझता है। होगा अपने घर का। सुखराम क्यों दबेगा उससे। वह हाथ देता कि थूथड़ा लटक जाता।

साँड बना डोलता है। अपने को तीसमारखाँ समझता है। उसने सोचा होगा कि यह भी दब जायेगा यों ही। आँखें किस तरह निकाल-निकालकर घूरा था उसने।

और प्यारी ने उसका सहारा लिया था!

क्या प्यारी इतनी गिर गई है?

कमीने का संग होगा तो क्या वह अन्धी नहीं हो जायेगी? उस गरीबनी को पिटवा रही थी।

सुखराम को अफ़सोस हुआ उसने बाँके की ज़रा ठुकाई क्यों न उड़ा दी उसी वक्त? ठीक हो जाता हरामज़ादा!

पर बाँके अकेला ही तो नहीं है। वह तो रुस्तमखाँ के बल पर ऐंठता है। रुस्तमखाँ का पिट्ठू है वह! और रुस्तमखाँ के पीछे सारी सरकार है। सुखराम डर गया।

अब वह चमरवारे में आ गया था।

चमरवारा गांव के बाहर के हिस्से में था। इसके बाद फिर भंगियों के सूहर डोलते ही दिखाई देते थे। वहाँ भंगियों की बस्ती थी। चमार ढेढ़ कहलाते थे, पर भंगियों से उतनी ही नफ़रत करते थे, जितनी ऊंची जात वाले चमारों से। चमार ज्यादातर दिन में घरों के बाहर काम पर थे। उनमें से कई तो खेतों पर काम करने जाते थे।

उनके घर छोटे-छोटे थे, घिरावदार थे, छप्पर उनके घरों पर काले पड़ गये थे और देखकर ही अन्दाज़ होता था कि यह हिस्सा कितना दरिद्र था। कच्चे दगरों पर मोटे पेट के नंगे बच्चे धूलि में खेल रहे थे। चमरियाँ मोटे कपड़े का रंग उड़ा लहँगा पहनतीं और उनके माथे पर मोटी फरिया होती।

जब सुखराम वहाँ पहुँचा उसने देखा सन्नाटा छा रहा था। राह पर कुत्ते सो रहे थे। शायद वे इन्सान की दुनिया की रात भर हिफाज़त कर चुके थे। गांव के कुत्ते भी इन्सानों की जात की तरह जाति-भेद मानते हैं, तभी वे किसी

दूसरे मुहल्लों के कुत्ते को नहीं आने देते।

छोटे-से मन्दिर के पास अन्धा बूढ़ा एक चमार एक छोटे-से खटोले पर पड़ा था। उसकी देही झुर्रियों से भर रही थी और काली चमड़ी सिकुड़ी हुई थी। उसके गले में मोटे-मोटे गुरिये थे। वह एक मैली-सी धोती काँछे हुए था। और खाट के पाये के सहारे उसका नारियल रखा था। नीम की हल्की छाया में वह ऊंघ गया था।

दुपहर का सन्नाटा नीम के पत्तों से खेल रहा था और घरों के निकले हुए ओटों पर फैलता हुआ कोठों में घुस जाता। दीवारों पर बने सोना सखन कुमारों के अतिरिक्त कहीं-कहीं गेरू का हाथी भी बना हुआ था और पीपल के चार पत्तों का पेड़ भी चित्रित था।

कहीं-कहीं बिटौरे भी चित्रों से सजे हुए थे। उनके कंडे कोई चुरा न ले जाये इसलिये उन पर चित्र बना दिये गये थे। कहीं-कहीं कांटेदार बाड़ें भी लगाकर कूड़ा डालने की जगह बना दी गई थी, जिसकी शायद कभी भी सफ़ाई नहीं होती थी और इसीलिये ऊँची जातों वाले चमरवारे का नाम गन्दी जगह के लिये प्रयुक्त किया करते थे। दरवाजों की छोटी-छोटी ऊँचाइयों में से घरों के भीतरी भाग दिखाई देते। वह लिपी हुई कच्ची धरती और दीवारों की नुमायश थी। इन्सान की सारी ज़िन्दगी उन्हीं घरों में बीत रही थी और रहने वाले उनसे बाहर निकलने की कल्पना भी नहीं करते थे। वे उसे ही शाश्वत सत्य समझते थे।

एक बँगला बीचोबीच बना था। गांव में पंचायत वहीं जुड़ती थी और दूर-दूर से आकर चमार उसके मंचे को बाहर निकालकर उस पर पंचों को विराजमान कर देते और सामने बैठ जाते, फिर हुक्का चलता। चमारियाँ घूंघट काढ़कर पीछे खड़ी रहतीं या बैठ जातीं और पंचायत में फुसफुसाकर एक दूसरी से बातें करतीं। पंचायत समाप्त होने पर ज़ोर-ज़ोर से गाली देकर आपस में लड़तीं। उस समय गाली का भेद कोई नहीं कर पाता। वे मर्दों की-सी गालियां देतीं। बच्चे उस समय हू-हुल्लड़ करते और लाचार बूढ़े जो पड़े रहते, पड़ी जगह से शरम और हया की दुहाई देकर उन सबको रोकने का कोलाहल उठाते और परम्परा यों ही लड़खड़ाती हुई हल्ला बन जाती। शाम को जब मरद लौट आते, तब वे अपनी-अपनी बीबियों से मार-पीट करते, या उससे लाड़-दुलार करते। फिर दिन में औरतें एक दूसरे की निन्दा करके चुगली करने को आ

इकट्ठी होतीं । सुखराम जब वहाँ पहुँचा तो राह में उसको देखकर बाहर बैठी औरतों में बातें चल पड़ीं । जवान औरतों ने घूंघट खींच लिये । पर बेटियों ने नहीं किया । वे तो गाँव की छोरियाँ ठहरीं ।

'ठहरो देवर !' एक पैंतालीस साल की औरत ने टोका ।

'क्या है ?' सुखराम ने पूछा ।

'नैक यहाँ आओ ।'

सुखराम नहीं बढ़ा ।

उसने कहा : 'डरो मत ।'

'इसीसे बच गई आज ।' दूसरी ने कहा ।

औरतें सुखराम को घूरने लगीं । उनकी आदत होती है कि वे पराये मरद के सामने ज़बरदस्ती शर्माने लगती हैं, चाहे वह उनमें दिलचस्पी ले या नहीं ले ।

'क्या बात है ?' सुखराम ने पूछा ।

पर उसको जवाब नहीं दिया गया । वे आपस में ही बातें करती रहीं । एक ने कहा : 'सिपाही अकड़ गया था ।'

'अकड़ा तो बाँके था ।'

'यह कौन था जो बीच में बोलता ?'

'अरी गरीब गरीब का साथ न देगा ?'

'दिये, कौन बिना मतलब किसीका साथ देता है ।'

सुखराम ऊबा । उसने कहा : 'अरी गैल छोड़ो !'

'ठहर जा ।' आवाज़ आई । मुड़कर देखा । उसके पीछे अब कुछ दूर पर खड़ी धूपो थी ।

'कौन धूपो ?' उसने कहा ।

'हाँ रे । डर क्यों गया ?'

'डरूँगा क्यों ?'

औरतों को दिलचस्पी आई । उन्हें लगा कोई रहस्य खुलने वाला है । धूपो ठहरी विधवा । कौन जाने क्या बात हो ।

धूपो ने कहा : 'सुनो बहिनियो ! आज इस सुखराम करनट ने मेरी रच्छा की ।'

'तो ये करनट है !' एक ने हिकारत से कहा ।

'हाँ है,' धूपो ने कहा। उसके स्वर में स्नेह और विश्वास ने ताना-बाना बुनकर एक नया वस्त्र तैयार किया था। उसकी आँखों में प्रगाढ़ ममता थी।

वह पास आ गई।

सुखराम ने कहा : 'तेरे लगी तो नहीं ?'

'क्यों न लगेगी सुखराम ?' उसने पूछा।

सुखराम इसका उत्तर नहीं दे सका।

धूपो ने कहा : 'एक बात पूछूँ ?'

'पूछ।' सुखराम ने शंकित स्वर में कहा।

बोली : 'तेरी लुगाई है वह ?'

'कौन ?' एक और औरत ने पूछा।

'वही प्यारी।'

'हाय किसकी प्यारी ?' लुगाइयों ने ठट्ठा किया।

'पहले इसकी थी, अब सिपाही की है।'

'दईमारी हरजाई है ?'

'तुझे लाज नहीं आती।' धूपो ने सुखराम की आँखों में झाँका।

सुखराम इसका उत्तर नहीं दे सका। परम्परा यही कहती थी कि स्त्री-पुरुष की संपत्ति है।

एक स्त्री ने कहा : 'दबती न होगी इससे !'

और फिर वे सब घूंघटों में और घूंघटों के बाहर हँसीं। एक ने कहा : 'जिसके जूते में बल नहीं उसकी लुगाई ऊपरचट्ट न होगी तो किसकी होगी ?'

'पर ये कुछ नहीं बोलता !'

'बोलेगा क्या ? जगत-जहान में जानी बात है !'

'नटों की इज्जत नहीं होती ?'

'अरी नटनी की इज्जत की बात भली चलाई। रंडी की इज्जत क्या है ?'

'तभी तो ये लोग नीच हैं।'

सुखराम ने कहा : 'कौन नीच है, कौन ऊँच है, यह कौन नहीं जानता। मेरी राय में तो जनम से आदमी नीच नहीं होता। करम से होता है। सब बराबर हैं। एक जगह से जन्म लेते हैं, मरकर एक ठौर जाते हैं।'

'हाय मैया ?' धूपो ने गाल पर हाथ बजाये—'यह तो पंडित हो गया।

अरे नटवा ! बड़े ज्ञान की हाँक रहा है। मतबल की कह। लुगाई पराये के बैठा के कथा बाँचने आया है ?'

एक ठहाका लगा। सुखराम ने खिसियाकर कहा : 'मैंने तो इसलिए कहा था कि दुनिया तुम्हें भी नीच समझती है। तुम सब नीच हो।'

'नीच नहीं हैं हम करनट। नीच जात हैं। बस। सो तो भगमान ने बनाया है। करमफल से जनम मिलता है और अपने पाप-पुन्न से मानुस-जनम बढ़ता है। ऊँची जात मिलती है।' एक पचपन साल की औरत ने कहा, जिसके कंधे पर उसकी नवासी चढ़ी हुई थी। नवासी की नाक बह रही थी और मैल उसके आँसुओं के सूखने पर गालों पर जम गया था।

सुखराम सोचने लगा।

धूपो ने डाँटा : 'काहे छेड़ती हो दारियो ! एक तो तुम्हारा भला करे, उस पै तुम उसे खरी-रोटी सुनाओ !'

'तौ तू उसे घर ले जाके रोटी खिला दे न ?'

'चटनी मुझसे ले जइयो।' दूसरी ने हँस के कहा।

'अरी तेरी तो चटनी बनाऊंगी मैं।' धूपो ने मुस्करा के कहा : 'खबरदार जो कुछ कहा। भलामानुस है।'

'हाँ जी लुगाई नहीं मानती तो क्या करे ?'

धूपो ने कहा : 'और तू किसीके संग होले तो तेरा ही वह क्या कर लेगा ?'

'कुछ नहीं' एक और ने कहा : 'अब तू राँड़ हुई, तैंने एक का संग न किया, तो तेरा किसीने क्या कर लिया ?'

उसने एक पर ज़ोर दिया। धूपो झेंपी, खिसियाई और चुप हो रही। फिर कहा : 'मेरा क्या है ? ढलती उमिर है।'

'बाँके से तौ पूछ दारी।' किसीने छेड़ा।

एक आगे बढ़ आई और सुखराम से बोली : 'जीजा ! एक बात पूछूँ ?

'पूछ।'

'तैंने धूपो को बचाया, कहीं तेरी नीयत तो नहीं बिगड़ी इस पै ?'

सुखराम ने गम्भीरता से कहा : 'धूपो मेरी बहन है। जहान की साच्छी है, लुगाई की है तौ धरम से, कहके। छिनाला मैंने, कोई कहे, कभी किया हो।

हम नीच जात हैं। हज़ार पाप करते हैं, करने पड़ते हैं, और हमसे कराए जाते हैं, पर मैंने ऐसा नहीं किया।'

'बड़ा धरमात्मा है।' एक ने कहा।

'धरम मार की बात, तभी तो लुगाई वहाँ बिठा दी है।'

औरतें हँस पड़ीं।

सुखराम इस चोट से आहत हो गया। परन्तु वह कुछ कह न सका। बात पक्की थी। यह बात और थी कि नटों के नेम ही और थे!

'इतने दिन में बीरन मिला तो करनट!' एक स्त्री ने व्यंग किया।

'भाग की बात है।'

'धूपो का छप्पर अब फटा।'

'अब तो तू खुस है?'

धूपो ने कहा: 'सहज नहीं छोड़ूंगी दारियो। कह लो। पर यह मेरा बीरन है। जो बचाये सो बीरन। कोई जात हो उससे क्या?'

'घर ले जाके मुंह मीठा नहीं करायेगी बीरन का।'

'मुंह नोंच लूंगी तेरा!' धूपो ने पलटकर कहा: 'समझ रखियो। हँसी-छेड़ की और बात है। ऐसा बदला लूंगी जो याद करेगी। तुझे और प्यारी को एक धार पै मारूँगी।'

सुखराम ने कहा: 'तू माफ़ करना नहीं जानती?'

'क्यों?' धूपो ने कहा।

'प्यारी ने तेरा क्या बिगाड़ा है?'

'दैया! उसीने तो मुझे पिटवाई है।'

'मैं समझा दूंगा उसे।'

स्त्रियाँ हँस पड़ीं। कहा: 'अभी तेरा समझाना-बुझाना चल रहा है जीजा?'

'अब जीजा क्यों कहती है? धूपो तो यहाँ की बहू है। बहू का भैया तो साला लगेगा न?'

वे फिर हँसीं।

'प्यारी पै मुझे रोस नहीं।' सुखराम ने कहा।

'क्यों?' धूपो ने पूछा।

'वह बेवकूफ है।'

'कैसे मूरख है? बच्ची है?'

'तभी तो दो बन्दर नचा रही है।' किसीने कहा।

'औरतबानी की अकल ही कितनी।' एक अधेड़ स्त्री ने कहा : 'तू ठीक कहता है भइया। ठीक कहता है।'

सुखराम ने याचना की दृष्टि से देखा जैसे उसके घायल हृदय को आश्रय मिला हो। इस समय स्त्रियों ने व्यंग नहीं किया। अधेड़ स्त्री को काटना सहज न था। वह झगड़ालू भी थी और बुलन्द आवाज़ पीहर से लेकर ही आई थी। उसने फिर कहा : 'बैयर की हैसियत उसकी सेज से होती है। वह वहाँ सोती है। सो उसका दोस इसे क्यों देती हो ? न सब लोग भले होते हैं, न सब लुगाइयां। जिसका जैसा करम वैसा आचरन। फल सब भोगते हैं।'

• उस बात में शताब्दियों का भुला देने वाला अन्धकार था। किसीने उसे काटा नहीं। हवा में गंभीरता व्यापने लगी थी।

सुखराम ने धूपो से कहा : 'सच कह बहन ! प्यारी को छमा कर दिया न ? तो फिर तुझे किस पै गुस्सा है ?'

'बता दूं ?'

'हाँ, बता दे।'

'पर फ़ायदा।'

'मैं तेरी मदद करूँगा।'

'बाँके पर !'

'पर···'

'क्यों डर गया ?'

'नहीं। सोचता हूँ उसके पीछे सिपाही है।'

धूपो ने रास-मण्डलियों के खेल देखे थे। बोली : 'भगवान ने दरौपदी की लाज बचाई थी। बीरन बने थे। याद है ! भगवान ने दूसरी बार रावण की लंका जलाई थी।'

'पर वे भगवान जो थे।'

धूपो के नेत्र जलने लगे। बोली : 'दईमारा, मुझे वह दुनिया में मरद बिना अकेली जानता है।'

'तो कर ले न किसीको।' एक स्त्री ने राय दी।

'अरी जा !' धूपो ने कहा—'जूंआ के डर से क्या लहँगा छोड़ा जाय है ?'

'अच्छी बात है ।' सुखराम ने कहा : 'तू कहेगी तो यही होगा । मैं उसकी खाल बेचने आऊंगा किसी दिन ।'

'मैं उधेड़ूंगी उस मरी हत्या को ।' धूपो ने कहा और घिन से थूक दिया ।

औरतें हँस दीं ।

इस समय बूढ़ा गिल्लन हार से आ गया था । उसे देख बहुएं सटकीं । उसने कहा : 'क्या बात हुई ?'

'कुछ नहीं,' घूँघट काढ़ के धूपो ने कहा ।

सुखराम ने कहा : 'आज बाँके ने धूपो पै हाथ उठाया था ।'

'कहाँ ?'

सुखराम ने बताया । तभी जवान खचेरा आ गया ।

'अरे तुम अन्धे हो !' बूढ़े ने कहा : 'किससे टकरा रहे हो ? अब तो जमाना बदल गया है । जब हम छोटे थे तो इतनी बेगार देते थे !! अब तो तुम लोग सिर उठाते हो । कहीं कुछ होने को है ?'

खचेरा ने कहा : 'वा दादा ! होने को क्यों नहीं है ? काम करेंगे, दाम न लेंगे ?'

'बेटा, तुम्हें जनम से ही भगवान ने नीच बनाया है ।'

'काहे से नीच हैं । बुरा काम करते हैं कुछ ?'

'भंगी काहे से नीच हैं ?'

'मैला उठाते हैं ।'

'तुम मुर्दे की खाल नहीं खींचते ?'

'हम खींचते हैं, ठीक है । जो हम न खींचें तो बामन, ठाकुर हमारे चमड़े के चर्स से पानी कैसे पियें, दुनिया जूता कैसे पहने ?'

'जो भंगी मैला न उठायें तो कोई सड़ाँध से बच सकेगा ?' बूढ़े ने तर्क दिया ।

खचेरा उत्तर न दे सका । बोला : 'वो और बात है ।'

'सो कैसे ?' बूढ़े ने कहा : 'उसकी मिचमिची-सी आंखों में एक बुझती हुई उम्र की लपट थी जिसे बरौनियों की काली-काली राख ने ढँक-सा लिया था । उसका सिर घुटा हुआ था । वह कुछ झुक गया था । उसने कहा : 'अब दुनिया पहले-सी सुखी नहीं रही । आदमियों की नीयत फिर गई है । सबके मन में आग जला करती है । अब बिरादरी में पैसा पुजता है, पहले सब एक थे । अब तुम बड़ों को मूरख कहते हो, पहले हम उनकी इज्जत करते थे ।'

खचेरा ने कहा : 'पर दादा ! हम इत्ता काम करते हैं, और वे हमारी औरतों को छेड़ते हैं। हम बेगार दे लेंगे, पर बैयर पर जुलम नहीं सहेंगे।' 'अरे तो कोई इज्जत थोड़े ही लेता था। बड़े आदमी सदा से छोटों को पिटवाते रहे हैं। लाला ! तेरा बाबा तो मशहूर था। जब बड़े जमींदार के पास जाता था तो अंटी में रुपये लगाकर ले जाता था। भेज (लगान) मांगने पर कभी आपसे नहीं देता था। कहता था जूते लगवा दो, ले लो, नहीं तो मेरी फ़सल आगे खड़ी न होगी। जमींदार के पांव पकड़ के घिघियाता था, सगुन मत बिगाड़ो महाराज ! जमींदार तब जूता उसके सिर से छुलवा देते। तब वह हँसी-खुसी रुपये गिन देता। इसीसे तब धरती सोना उगलती थी। राजा का हक था। राजा लेता था। जूते के जोर से लेता था। हम अपने आप नहीं देते थे। कहते थे पहले साबित कर कि तू राजा है। वह कर दे तो पाने का हक़दार होता था। अब वह सब कहाँ है।'

राजाराम ने हाँ में हां मिलाई। बोला : 'तब जो बड़े आदमी थे वे अब हैं ही कहाँ। अरे मेरे बचपन में ही जमींदार के घर में सवा सौ जवान थे। खाते-पीते थे, मस्त थे। आठ आना महीना मिलता था। इसारे पै जान देते थे। अब जमींदार ही खाने के भूखे हुए। कुल तीस नौकर हैं। तब नगाड़े बज के भोर कराते थे, अब कहाँ हैं वह ठाठ ! पहले गद्दी होती थी तो सात गांव के लोग भेंट लाते थे अब कहां वह बात ?'

राजाराम कोई साठ एक बरस का था। पर पाठा था।

सुखराम चल पड़ा। मन में तरह-तरह के विचार उठ रहे थे। पुरानी दुनिया कुछ और थी। नयी दुनिया कुछ और है। सब कुछ क्यों बदलता जा रहा है। अब अगर सब बदल जायेगा और राजा न रहेंगे तो सुखराम अधूरे किले का मालक कैसे बनेगा ? कहते हैं गवरमेन्ट में राजा नहीं है, हाकिम का राज चलता है।

थोड़ी ही दूर गया था कि उसके पास से एक लड़का भाग चला।

'अरे क्या हुआ ?' सुखराम ने पूछा।

उसने कोई उत्तर नहीं दिया। बल्कि वह दोनों हाथों से अपना मुँह भी छिपाये हुए था। सुखराम का माथा ठनका। यह क्यों भागा ऐसे ? कहाँ जा रहा है ! उसने रुककर बीड़ी सुलगाई। सामने हनुमान जी की छोटी मूरत एक दीवार के आले में थी। उसे सिर झुकाया।

मोड़ पर पहुँचते ही सामने बांके मिला । उसको देख सुखराम समझ गया । वह लड़का इसे ही खबर देने भागा था । इधर गांव का भाग विरल रूप से ही बसा हुआ था । सुखराम ने बीड़ी फेंक दी और भौं उठाकर बाँके की ओर देखा । बाँके शेर की तरह खड़ा था । उसके हाथ में लम्बा लट्ठ था । सुखराम ने देखा, वह मुस्कराया । बांके जल उठा ।

उसने लठ्ठ उठाकर कहा : 'तो तू पहले ही से लट्ठ ले के तैयार होके आया है ?

'कौन नहीं जानता कि डरपोक आदमी हमेशा नजर बचाके हमला करता है ।' सुखराम ने कहा : 'गांव में कुत्ता है, सियार है, बैल है, इनको ठीक करने को सब हाथ में लट्ठ पकड़ते हैं ।'

'तो मैं कुत्ता हूँ !' बाँके ने खिसियाकर कहा ।

सुखराम ने कहा : 'मैंने नहीं कहा ।'

'तो अब कह ले ।'

बाँके आगे बढ़ा ।

'बाँके सम्भल जा' सुखराम ने लट्ठ सम्भालकर कहा : 'तेरी खैर नहीं होगी । जानता रह ।'

फिर लट्ठ पर लट्ठ पड़े ।

बाँके ने कहा : 'आज जायेगा कहाँ !'

'जाऊँगा नहीं बेटा, भेजूंगा, तुझे जम लोक ।' सुखराम ने पलटकर कहा ।

बाँके दबा और पीछे हटा । उसने पलटकर देखा । सुखराम का लट्ठ कंधे पर पड़ते-पड़ते बचा । एक आदमी बढ़ा ।

'घेर लो ।' बांके चिल्लाया ।

हरहराकर उसके लठैत यार कूद आये । सुखराम अब बचाव के पैंतरे बदलने लगा । वह तेज़ी से कूद जाता ।

सुखराम ने कहा : 'तू कायरों की लड़ाई लड़ता है । एक-एक करके क्यों नहीं आ जाते !'

बाँके ने कहा : 'राजा क्यों फौज बनाते हैं ।'

'अरे तू राजा हो गया कुत्ते !'

'संभल देख ! '

बाँके ने लट्ठ घुमाया । सुखराम ने उसके साथी को आगे कर दिया । साथी

गिरा। सुखराम हँसा। उस समय एक मालिन उधर से निकल रही थी। उसने देखा तो चिल्लाई : 'अरे बचाओ-बचाओ ! हत्यारों ने एक को घेर लिया है ! बचाओ, बचाओ ! मार डाल रहे हैं !'

उसकी पुकार सुनकर कुछ औरतें आ गईं।

बाँके ने कहा : 'ले !'

लट्ठ पर लट्ठ बजा। सुखराम ने उसे लात दी। बाँके गिरा। तभी चार लट्ठ बीच में बढ़े। सुखराम ने उनको लाठी पर रोक लिया। औरतों में खुशी की लहर दौड़ गई। मालिन चिल्लाई : 'वाह-वाह ! कैसा मारा है।'

बाँके के नेत्र अपमान-से क्रूर और विकृत हो गये। वह उठ खड़ा हुआ। मालिन चिल्लाई : 'अरे रहने दे। पहले धूल तो झाड़ ले।' औरतें हँस दीं। उसने फिर हमला किया, पर सुखराम ने वह ज़ोर का हाथ मारा कि बाँके की लाठी टूट गई। उसके माथे से पसीना बह आया। बाँके पीछे हटा। पर सुखराम के सामने फिर सात लठैत आ गये। बाँके गुस्से में दांतों से नीचे का होंठ काट चुका था। लहू आ गया था। सातों ने सुखराम को घेर लिया था। सुखराम पसीने से तर था। उसमें गज़ब की फुर्ती थी। वह बाघ की तहर उछलता था। और दो के पेट में लात मारते हुए उछल के जो उसने तीसरे के सिर को लाठी की चोट से फाड़ा तो औरतों की टकटकी बँधी रह गई। एक तो सुखराम नट, चाहे जैसा लचक जाये, फिर उसकी ओर स्त्रियों की सुहानुभूति, और बाँके पर क्रोध, वह क्यों न इतनी हिम्मत कर जाता। तीन के गिरते ही जो चार थे वे कमर के नीचे मारने की कोशिश करने लगे। तब सुखराम ने वेग से लाठी घुमाई और एक की लाठी पांव से दबाकर दूसरे की पहुँची तोड़ दी। वह गिरा। दो बचे।

मालिन चिल्लाई : 'अरे वा ! क्या मरद है ! बलिहारी जाऊँ। नौन-मिर्च उतारूँ। हाय-हाय कैसा मरद है। दईमारे पांचों के ठट्ठ फाड़ के पापड़े बेल दिये।'

बाँके चिल्लाया : 'जाने न पाये ! घेर लो !' एक गिरे हुए का लट्ठ उसने उठा लिया। और गरजने लगा : 'ख़बरदार जो चला गया !'

मालिन ने छाती पीटकर कहा : 'अरे जा कायर। एक को घेर लिया सबने। फिर भी सेर को सवा सेर मिला है।'

सुखराम ने लट्ठ घुमाके दिया तो बाँके की कमर पर पड़ा। अर्रा कर बैठ

गया। औरतें चिल्लाईं : 'और बोल !'

पर अब गिरे हुए लठैत उठ खड़े हुए थे। अब सुखराम फिर बचाव पर आ गया। नीचे गिरा हुआ आदमी चुपचाप चला गया था। इस समय वह लौटा तो उसके साथ पांच लट्ठबन्द और थे। सुखराम ने देखा तो उसकी हिम्मत टूटने लगी। तभी एक औरत चिल्लाई : 'हाय कढ़ीखायों को सरम नहीं। मरे पुरखों की फौज भी बुला ली होती।'

मालिन गाली देने लगी : 'अरे अपनी अम्मा के सारे यारों को ले आया ! एकाद तो छोड़ आते !'

'सबका सराध एक संग ही कराओगे ?'

पर वे चिंतित थीं। इतने आदमियों के सामने आखिर सुखराम कब तक टिक सकता था। परन्तु स्त्रियों के आश्वासन ने उसमें अपूर्व बल भर दिया था। वह बराबर लड़ता जा रहा था। यहाँ तक कि बाँके की आंखें फट गईं। औरतों ने इशारा किया और एक लड़का भागा।

बाँके ने इशारा किया। तीन लठैत पीछे हो सुखराम की पीठ की तरफ़ जाने लगे। एक औरत चिल्लाई : 'अरे नाहर ! तेरे पीछे गीदड़ चले।'

सुखराम चकरघिन्नी की तरह टूटा और उन तीनों को पीछे भागना पड़ा। बाँके अब जन-सहानुभूति खो चुका था। वह चिल्लाने लगा : 'धिक्कार है ! तुम इतने लोग भी एक को नहीं घेर सके। एक चोट तक नहीं खाई उसने ?'

सुखराम ने हँसकर कहा : 'बस बेटा रो दिया ?'

थोड़ी ही देर हुई चमार आने लगे। हो-हल्ला होने लगा। बाँके चकराया। सुखराम ने झपटकर हाथ मारा। बाँके का लट्ठ उड़ गया, उसके हाथ से छूट गया। वह चिल्लाया : 'छोड़ दे ! तेरी गौ हूँ, तेरी गौ हूँ।'

तभी चमार पास आ गये। मालिन चिल्लाई : 'आ गये ! सुखराम के आदमी आ गये। सुखराम के साथी आ गये।'

चौंककर सुखराम ने उस ओर देखा। उसका ध्यान बँट गया। बाँके ने खिसियाकर इशारा किया। उसके साथी भागने की फिकर में थे। तभी उन्होंने मौका देखा और वे चुपचाप झपटे। इससे पहले कि सुखराम संभल सके, उसके कन्धों और सिर पर एकदम सात लट्ठ पड़े।

सुखराम गिर गया। बाँके और उसके साथी भागने लगे, पर चमार पास

आ गये थे। लट्ठों पर लट्ठ बजे। अब बाँके के साथियों की हिम्मत टूट गई थी। वे घबरा रहे थे, पर नजात नहीं थी। चमारों के साथ धूपो थी।

मालिन चिल्लाई : अरे कायर भागे।'

धूपो चिल्लाई : 'घेर लो, घेर लो। मेरे बीरन को मारा है, उसने मुझे बचाया। मेरी लाज तुम्हारी लाज है।'

चमार चिल्लाये : 'घेर लो !'

कोलाहल बढ़ने लगा।

चमारों ने घेर लिया। अब लठैतों को घेर लिया गया और भीड़ के भिंचाव के कारण लठैत भिच्ची में आ गये और उन्हें लट्ठ चलाने तक की गुंजायश नहीं रही।

धूपो चिल्ला रही थी : 'मेरे बीरन को मारा है। दुहाई है ! दुहाई है !'

चमारों को बाँके पर क्रोध था ही। उन्होंने उन सबको खूब मारा। बाँके को तो सबने मिलकर पंचायती माल बना लिया। जो देखे सो दे और कसके धुनना शुरू किया। बाँके घिघियाय और चिल्लाय। उसके साथी तो पिट-पिटकर लहू-लुहान होकर भाग गये, पर बाँके को नहीं जाने दिया गया। धूपो आ गई। बोली : 'भरो इसके मुँह में मट्टी।'

चुनाँचे बाँके के मुँह में मिट्टी भर दी गई और धूपो ने उसके मुँह पर ठोकर दी।

'बोल उठायेगा हाथ।' एक चमार ने कहा।

'अरे तोड़ दे साले के हाथ।'

बाँके के हाथों को खचेरा ने उमेठ दिया। वह दरद से चिल्ला उठा।

'पकड़ पांव इसके और कह मैया, माफ कर !' खचेरा चिल्लाया।

बांके नहीं बढ़ा तब एक ने कसके पीठ में लात दी। दूसरे ने जो लात दी तो आँख के पास लगी। वह लुढ़का। और चमारों ने उसे धूपो के पांवों पर डाल दिया। वह दर्द से बेहोश-सा हो गया।

तब सबका क्रोध कुछ कम हुआ।

मालिन चिल्लाई : 'अरी उसे तो देखो !'

धूपो ने देखा सुखराम के सिर से लहू की धाराएँ बह रही थीं। बुक्का फाड़ के रो उठी—'बीरन···'

गिल्ला ने डाँटा : 'क्यों रोती है, जीते को रो रही है ?'

बुढिया सुग्गो आई। वह मशहूर थी कि कहीं मिर्च मूंड बांध जाये तो सुग्गो जद अनटोके अपने बाल खोल खेत में टोटका करे तो सारी खुल जाये। उसने कहा : 'मरा नहीं है।'

'बच जायेगा न ?'

'जरूर।'

'खाट लाओ खाट।'

दौड़कर एक खाट लाई गई। उस पै उसे लिटाया। जब वे चले तो पचास चमार लट्ठबन्द आगे बढ़ आये।

बाँके को होश आया। वह सरकने लगा। किसीका उस पर ध्यान न था। वह उठा और भाग गया। मालिन चिल्लाई : 'अरे सांप जी गया ! फिर काटेगा।'

'अबके जला देंगे। काटके तो देखे।' खचेरा ने कहा।

खचेरा मूर्ख था। पर नया खून था। उसे गाँव के चतुर चौकस चौधरी लोग हमेशा मड़ी पर चढ़ाकर मुकद्दमों में फँसवा देते थे और उसे बिरादरी के लोगों तथा अन्य लोगों से लड़वाके खूब उससे पैसे खाते थे। पर वह सब कुछ होने पर भी आदमी बुरा न था।

एक आदमी ने कहा : 'अरे रुको। जब तक पहुँचोगे सारा लहू निकल जायेगा। पहले पट्टी तो बांध दो।'

'रेशम जलाके बांध दो।'

किसी नई बहू ने अपनी फरिया दे दी। अभी नयी थी। चमारों ने कहा : 'पंचायत दे देगी इसे।'

वह मुस्काई। कहा : 'अरे देखो। जैसी मैं बहू, वैसी जेठी (धूपो) बहू। जैसे उसकी इज्जत, वैसे मेरी इज्जत। मेरा कमेरा ला देगा मुझे।'

उसका पति जो क्षणिक स्वार्थ में डावाँडोल हो गया था बोला : 'हाँ, हाँ ! जला दो इसे।'

फरिया जली। रेशम ने जलते में बदबू दी।

'असली नहीं है।' एक ने कहा।

'असली रेशम हमारे घर आता ?' उसके पति ने कहा : 'यह तो इसका हठ था, सो मैंने कैसे न कैसे करके ला दी।'

राख बुझाके घावों पर लगाई गई। खून का तेज़ी से निकलना बन्द हो गया।

'रुक गया !'

खुशी की लहर दौड़ गई।

'अब इसे इसके घर पहुँचा दो। वहाँ इसके अपने लोग होंगे।'

'चलो उठाओ।'

खाट उठा ली गई। पचासों लट्ठबन्द अब खाट के संग-संग आगे-पीछे चले।

औरतों की कांय-कांय होने लगी। मालिन अब नायिका हो गई और उसने जो सुखराम के कमालों का वर्णन प्रारम्भ किया तो औरतों की छातियां हुमकने लगीं। दिल उमँगने लगा। मर्दों की आँखों में कुछ-कुछ ईर्ष्या के भाव व्यक्त हो गये, पर उनका हृदय अभिभूत था। वे मानते थे कि इतने आदमियों को झेल जाना मामूली बात कदापि नहीं थी। मालिन तो फर्राटे से बयान कर रही थी।

खबर दौड़ी। मंगू आया। वह बजार में था। उसके साथ चार आदमी थे।

'कौन सुखराम ?' मंगू ने पूछा।

'हाँ सुनते हैं, घायल हो गया।'

'किसने किया ?'

पर उत्तर मिलने के पहले ही वह भाग चला। रास्ते में चमारों से जा मिला। रोका और उसने कहा : 'लौट जाओ भइया। मैं ले जाऊंगा।'

'कौन मंगू !' एक ने कहा।

'अरे आ गये इसके बिरादरी के नातेदार।'

'चलो छुट्टी हुई।'

'संभाल के ले जाना।'

'तुम फिकर न करो।'

'बड़ा खून निकल गया है।'

'कोई बात नहीं।'

चमार लौट गये। चलते वक्त खचेरा ने कहा : 'बड़ा नाहर है यह।'

'मैं जानता हूँ,' मंगू ने कहा : 'नटों की नाक है।'

'कभी किसीकी चोरी न की इसने', दूसरे ने कहा।

"सौना है सौना।' एक ने कहा।

उनकी आँखों में पानी आ गया था। उन्होंने आँखें फेर लीं। खचेरा चला गया था।

मंगू और उसके साथियों ने खाट उठा ली।

'कहीं मर न जाये यह।'

'कई थे वे लोग।'

'अब तो राम-सहारा है।'

'अरे वह तो आखिरी है ही।'

सुखराम बेहोश पड़ा था। नट बतराने लगे—'कही बाँके के आदमी फिर न टूट पड़ें।'

मंगू ने कहा : 'अबके तो एक था, अब तो चार हैं।'

'मरते दम तक लड़ेंगे।'

'पर वह तो खूब पिटा है।'

'कहते हैं उसकी आँख फूट गई।'

खून से खाट की बान तक लीक आ गई थी।

'अरे!' मंगू ने कहा।

'क्या हुआ?'

'लहू बन्द नहीं हुआ।'

मालिन कहती तो थी कि चूक गया। इसका ध्यान बँट गया, इसने किसी-को वैसे हाथ थोड़े ही धरने दिया था।

'शेर है, तभी तो मैंने इसके सामने सिर झुकाया था।' मंगू ने कहा : 'इसका दिल भी बहुत बड़ा है। रामा की बहू इसीकी बदौलत मेरी हुई नहीं तो मेरी तो दुनिया ही सूनी हो गई थी।'

जब वे पहुँचे तब कजरी बैठी लहँगा सी रही थी।

वह आज मगन थी। नया कपड़ा देखकर हरसा रही थी। इतने दिन बाद नये कपड़े पहनने की नौबत आई थी। और यह उसके कमेरे ने खरीद के दिये थे।

स्त्री को जब पति प्रेम से कुछ खरीदकर देता है तब वह बहुत प्रसन्न होती है। वह वस्तु अपनी कीमत के कारण नहीं, उसके पीछे होने वाले प्रेमी-हृदय, सौहार्द्र के कारण अत्यन्त प्रिय हो जाती है। वह उस रक्षक की सौगात नहीं

होती, स्त्री का उस पर हक़ होता है। और अपने अधिकार की पूर्ति देखकर किसे आनन्द नहीं होता ? जैसे बच्चा बिना हिचकिचाए अपने मां-बाप से ज़िद करके चीजें लेता है, तब क्या वह नहीं जानता है कि वह अपनों से ही अपना अधिकार मनवा सकता है । बाहर वालों से तो वह ज़िद नहीं करता। पति और पत्नी का सम्बन्ध अपने शारीरिक सम्बन्ध के कारण इतना प्रिय नहीं होता, एक दूसरे पर बलिहार जाने वाली भावना की शक्ति के कारण वह कितना पवित्र और महान् हो जाता है ! उसमें सब तरह के दुख झेल जाने की अदम्य क्षमता होती है।

वह सोच रही थी।

प्यारी करेगी क्या ?

उसका पिया अब कजरी को नये कपड़े दे !! हाय दारी ! सुखराम को देख के रोयेगी। थूथड़ा नोंच लूंगी उसका।

और कजरी प्रसन्न हो उठी। एक तो अपने घोड़े की तेज़ दौड़ अकेले में देखना, और दूसरे उसी घोड़े को दूसरे के घोड़े के आगे निकल जाते देखना, दोनों में कितना भेद है। एक में आत्मसन्तोष है, दूसरे में स्पर्धा का अहंकार भी तो है।

इस समय वह गृहणी का गर्व लिये बैठी है। पाप की कमाई नहीं, उसके पति की कमाई है । इसमें कितना गौरव है । स्त्री इसमें अपनी मर्यादा समझती है।

कजरी सोचती है : 'जब सुखराम लौटेगा तो छिपा देगी यह सब। अभी से नहीं दिखायेगी उसे। जान ही लेगा तो चौंकेगा कैसे !'

और कजरी कल्पना कर रही है। सुखराम कहेगा, चल प्यारी से मिल आयें। वह थोड़ा मना करेगी। फिर मान जायेगी। और फिर नये कपड़े पहनेगी । सुखराम अपनी भरी-भरी आंखों से देखेगा। हाय दारी ! कैसे खड़ी रहेगी वह बन-ठनके उसके सामने। लाज न आयेगी उसे मरी ! घूंघट कर लेगी तुरत।

और सुखराम कहेगा : 'कजरी ! तू तो बड़ी अच्छी लग रही है।'

कजरी कहेगी : 'हाय चलो तुम्हें सरम नहीं। वहाँ जेठी पूछेगी तुम्हें अबेर क्यों हुई तो कह दूंगी तेरा खसम मुझे छेड़ता था। कैसे आ जाती मैं जल्दी।'

कजरी हँसी । अकेले में भी वह प्रसन्नता से खिलखिला पड़ी। तब मजा

आ जायेगा। प्यारी सफेद पड़ जायेगी। होगी तो दारी मलूक ही। नहीं तो ये बलमा ऐसे भोले न थे, जो अभी तक चिपके रहते। पर खूब जलेंगी। जलें मेरी जूती से। मुझे डर किसका। मैं क्यों न पहनूंगी ये नये कपड़े! कपड़ों की खातिर मैंने किसी खसम को तो न छेड़ा। अब वह भी कैसा?

और उसने आँख मूँदकर कल्पना की। सुखराम!! पुरुष! पराक्रम!! परन्तु उसके सामने झुका हुआ। जैसे एक शेर उसके पास आकर पालतू हो गया हो। वह विभोर हो उठी।

तभी कोलाहल सुनाई दिया।

१६

मंगू और उसके साथियों ने खाट उतार दी।

मंगू ने पुकारा—'कजरी।'

'अरे कौन है?' कजरी ने पूछा।

'बाहर आ ज़रा।' उसके गले से भर्राया स्वर निकला।

'वहीं से कह न? मैं कपड़े सी रही हूँ।'

मंगू ने अत्यन्त दुख से कहा: 'बेला बीती जा रही है। जल्दी बाहर आ।'

कजरी बाहर आई। सब चुप खड़े थे।

कजरी ने देखा।

पूछा: 'क्या बात है?'

खाट के आगे वे लोग खड़े थे। वह एकदम खाट देख न सकी।

'अरे बोलते क्यों नहीं?' कजरी ने कहा और उसे आश्चर्य हुआ। मंगू ने अपने साथियों की तरफ़ देखा। उन सबने सिर झुका लिए।

'अरे चुप क्यों हो?' कजरी झल्लाई: 'मरों के मुंह किसीने सी दिए हैं कि जीभ ऐंठ गई है जो बोल भी नहीं कढ़ता। ऐसे चुप खड़े हैं जैसे बाप फूंक के आये हैं।'

वह समझी नहीं थी। तब मंगू ने इशारा किया पीछे की ओर। वह बढ़ी। खाट पर कोई चादर से ढँका पड़ा था। चादर ख़ून से भींग रही थी। कजरी के मन में आशंका जाग उठी। कौन है यह !! वही तो नहीं !!!

वर्ना यह लोग इसे क्यों लाते ?

उसने चादर हटा दी। सुखराम अब भी बेहोश था। अब वह उतना पीला नज़र नहीं आ रहा था, जितना रेशम जला के भरने के पहले दीखता था। कजरी की आँखें फट गईं। उसने उसके होठों पर हाथ फेरा। फिर आँखें छुईं। मरा नहीं था। सांस चल रही थी।

'किसने किया यह ?' उसने कठोर स्वर से पूछा।

मंगू आगे आया। कहा : 'घबराती क्यों है ?'

पर उसने नहीं सुना। कहा : 'मैं क्या पूछती हूँ !'

'सब बताता हूँ। सब बताता हूँ।'

एक नट ने कहा : 'बतावा-बतूवी फिर हो लेगी। नैकस, तू जाके चंदन को ले आ। तुरत पट्टी बंधनी चाहिए, वर्ना ठीक नहीं होगा।'

'ठीक बात है।' दूसरे ने कहा : 'लुगाई फिर रोने लगेगी। उसमें मौके की अकल कहाँ !'

नैकस भाग चला। तब मंगू ने बताया :

'बांके और उसके आदमियों ने !' कजरी से कहा।

'हाँ।'

'तू सच कहता है ?'

'अरी क्यों मूरख बनती है।'

'तुमने बचाया नहीं ?'

'मैं बजार में था।'

कजरी ने होंठ काटा : 'बांके !' उसके मुंह से निकला। उसकी आँखों से जैसे चिनगारियाँ निकल रही थीं।

'बाँके के साथ कई लोग थे।' साथ के नट ने कहा।

'बाँके !' कजरी ने फिर दुहराया।

'अरी बाँके-बाँके बके जा रही है।' मंगू ने कहा : 'कुछ इसे भी तो देख।'

कजरी चौंकी। उसने सुखराम का मुँह काँपते हाथ से छुआ। जैसे वह डर रही थी। वह ऐसी स्तब्ध थी जैसे उस पर वज्र गिर गया हो।

मंगू ने कहा : 'जरा अपना हाथ तो देख अब !'

कजरी को तब ज्ञान हुआ । उसने हाथ खोलकर देखा । मंगू की तरफ़ देखकर दयनीय स्वर में उसने कहा : 'इसका कित्ता खून बह गया है !'

और तब वह रोई । उसका वह हृदय-विदारक करुण क्रन्दन हाहाकार करता हुआ सबके हृदयों को हिलाने लगा । यह रोदन आत्मा की गहराइयों में छिपे सौंदर्य्य का तप-तपकर गल-गलकर गिरने वाला रूप था । इसमें सांसारिक जीवन के आकर्षण की अखण्ड शक्ति थी, वही जो जीवन की स्वाभाविक मुक्ति है । मंगू उसके रुदन से काँप उठा । आज वह उस क्षण कितनी असहाय बन गई थी ! उसकी हिचकी आज उखड़ रही थी, वह कितना प्यार उँडेले दे रही थी, मुक्त, दोनों हाथ खोलकर अपने सर्वस्व पर अपनी सत्ता का अहं मिटा रही थी । अथाह वेदना आज सुहाग का मोह बनकर मानवीय आदर्शों की बेल को अपने जीवन के अमरत्व से सींच रही थी । उस आँसू, उस रुदन, उस हाहाकार में मनुष्य के हृदय के सारे पर्दों को फाड़ जाने वाली शक्ति थी । वहे ऐसे रोई जैसे अपनी कल्पना का महल ढलते देखकर कोई चीत्कार कर उठा हो । वह आवाज़ ऐसे पुकारने लगी जैसे घोंसले पर बिजली गिरते देखकर शून्य में फटफटाते पक्षी ने आहत रोर उठाई हो ।

मंगू की आंख भींग गई । कहा : 'रो नहीं कजरी ।'

कजरी ने कहा : 'रोऊँ नहीं मंगू !!'

'रो ले री, रो ले ।' रामा की बहू ने कहा । सब नट आ गये थे । चर्चा चल पड़ी थी ।

'हम बाँके को देख लेंगे ।' एक ने कहा ।

तभी चंदन मेहतर आ गया । वह सुन आया था । उसके आने पर कजरी उठकर खड़ी हो गई । उसने कातर दृष्टि से चंदन को देखा और उसके पांव पकड़ के कहा : 'तू मेरा बाप है चंदन ! अपनी बेटी का सुहाग बचा दे ।' वह रो पड़ी ।

चंदन ने कहा : 'अरी मरी क्यों जाती है । अभी देख तो लूं जरा ।'

रामा की बहू ने कजरी को हटा लिया । कजरी उसके कंधे पर सिर धरे खड़ी रही । चंदन ने देखा । नब्ज़ देखी । कहा : 'कोई डर नहीं है । जरूर बच जायेगा ।' उसके कहने की देर थी कि कजरी ने चंदन का पांव छू लिया । तम्बू में दौड़ी गई । जो पैसे थे इकट्ठे किये । फिर उनमें से दो रुपये निकाल

लाई और कहा : 'तू मेरा बाप है। मैं तुझे क्या दूंगी। जो तू देगा उसका मोल सात-सात जनम तेरी नौकरानी रह के चुकाऊँ तो न चुके। यह ले ले काका, फिर मेरा कमेरा ठीक हो जायेगा तो तेरे घर मिठाई भेजूंगी।'

'कोई बात नहीं बेटी।' चंदन ने कहा : 'अब तू परे हट। मुझे दवा बांधने दे।'

चंदन अपना काम करने लगा। कजरी दूसरे वस्त्र लाई। सुखराम को तम्बू में साफ़ खाट पर लिटाया गया। धोकर वह खाट चमरवारे में पहुँचा दी गई।

चंदन चला गया। धीरे-धीरे सब भीड़ छँट गई। सुखराम कुलबुलाया। रामा की बहू ने पानी पिलाया। वह आँख मूँदकर सो रहा।

कजरी की सांस लौटी।

'कित्ते थे ?' उसने पूछा।

'कई थे।' मंगू ने कहा।

'आज तू न होता तो मैं तो मर ही गई थी मँगू।' उसने उसके पांव छूकर कहा। वह नहीं बता सकती थी कि सुखराम के लिये वह कितनों के पैर छू सकती थी।

'अरे क्या करती है ?' मंगू ने कहा : 'तेरा मरद ही है यह, या मेरा भी कुछ है ? मेरा उस्ताद है।'

मंगू ने बोड़ी सुलगाकर कहा : 'कजरी ! यह नाहर है।'

'अरे नहीं।' कजरी ने दांत निकाल दिये। उसका सुख छिपा नहीं।

रामा की बहू ने कहा : 'अब रपट तो करा दो थाने में।'

'क्या होगा ?' मंगू ने कहा। उसके स्वर में एक व्यथा तो थी, परन्तु उसमें लापरवाही बहुत थी, जैसे यह बेकार की बात है।

'अरे क्या चुप रह जायेगा ?' वह चौंकी।

'दरोगा बाँके की ओर है। जानती है न ?' मंगू ने पूछा।

कजरी ने कहा : 'दइया ! यह तो घायल है।'

मंगू ने कहा : 'वही लुगाइयों वाली बात। बांके घायल नहीं है ?'

'सो तो है।' रामा की बहू, यानी अब मंगू की बहू ने कहा।

मंगू ने कहा : 'वह जरूर थाने गया होगा। रुस्तमखाँ तो ठेठ उसीका आदमी है। उसीके बल पर तो वह अकड़ता है।' उसकी बात ने कजरी की अग्नि को

और भी भड़का दिया था। तब मंगू ने कहा : 'हस्पताल ले जाते तो डाकटर रिस्वत मांगता। जब तक उससे रुपयों की तय होती, तब तक तो इसका दम निकल जाता। और तुमने तो इसका खून भी बंद करवा दिया।'

'तेरी जीव जल जाये फूटे मुँह के।' कजरी ने काटा।

रामा की बहू ने कहा : 'और यही क्या जरूरी था कि वह फिर भी ठीक ही लिखता। वह तो रिस्वत मांगता। बुधुवा की क्या तुम्हें याद नहीं है ?'

'याद क्यों नहीं है ?' मंगू ने कहा : 'वे गरीबों की बातें नहीं हैं।'

'तो कोई रास्ता नहीं ?' कजरी ने कहा।

'अभी तो नहीं है।'

'तब।'

'मामला ठंडा पड़ दे।'

'फिर ?'

'अरी फिर मैं भी नटनी का जाया हूँ।' कहकर मंगू हँसा। रामा की बहू ने कजरी के सिर पर हाथ फेरा और कहा : 'घबराती क्यों है। तू सोचती होगी तू अकेली ही है ? क्यों ? इसका बदला लेना चाहिये न ? ज़रा इसे ठीक हो जाने दे। पहला मुकाम तो ये है। फिर मंगू और सुखराम दो हैं। दो। समझी ? और मैं और तू दो हैं।'

'अरे बाँके कित्ता-सा है !' मंगू ने इशारा किया कि वह उसे यों ही छुरा भोंक देगा।

'अरी बड़ा जालम है ये भी।' रामा की बहू की आवाज़ में गर्व था : 'ठहरी रह।'

'मैं नहीं ठहरूँगी।' कजरी ने कहा।

'तो क्या करेगी ?' मंगू चौंका : 'थाने जायेगी ?'

कजरी ने कहा : 'मंगू तू एक काम करेगा ?'

'काम फिर करूँगा। पहले यह बता। थाने गई तो दरोगा पिटवायेगा, बंद कर देगा और फिर तू लुगाई ! सहज न छूटेगी। और फिर इसकी देख-भाल कौन करेगा ?'

'अरे मेरी तो सुनता नहीं।'

'सुन ले न !' रामा की बहू ने कहा।

'क्या ? कह !' मंगू बोला।

'मैं जाती हूँ।'

'कहाँ ?'

'अभी नहीं बताऊँगी।'

'और तू न लौटी तो तुझे ढूंढेंगे कहाँ ?'

'मैं आप आ जाऊँगी।' कजरी उठ खड़ी हुई। उसने एक कटार आंचल में छिपा ली। वह बिल्कुल शांत थी। उसने तम्बू के द्वार पर आकर कहा : 'ओ बहन ! तू जइयो नहीं। इसको देख। मैं आती हूँ।'

'पर कहाँ जाती है ?' मंगू ने टोका।

'टोक नहीं। मैं ऐसी जगह जाती हूँ जहाँ मुझे डर नहीं।'

'तू जानती है ?' रामा की बहू ने पूछा।

'मुझे भरोसा है।' उसके स्वर में विश्वास था।

'तेरी मर्जी।' मंगू ने सिर हिलाया और हथेली घुमा दी।

कजरी चली। कहाँ जा रही है। पर उसे वहाँ पहचानता ही कौन है ? कोई नहीं। ऐसी अनजानी कितनी ही लुगाइयाँ उस गैल चलती हैं। मुंह ढँक लेगी और क्या ?

शाम आने लगी थी। गायें लौट चुकी थीं। दगरों की धूल अब धीरे-धीरे शान्त होने लगी थी। मन्दिरों में झालर और घंटे बजने लगे थे। फूलवाड़ी अंधेरे को पहले हरियाली में बसा रही थी और उससे बह-बहकर छायाएं काली-काली-सी नीचे उतरी आ रही थीं। वह सफ़ेद महल के पीछे के दगरे से उतर आई।

और फिर वह अन्त में रुस्तमखाँ के द्वार पर ठहर गई।

पहले डर लगा। फिर जी कड़ा किया और भीतर घुस गई।

प्यारी उस समय बाहर आई थी और लौटकर भीतर जा रही थी। अब उसका बुखार उतर चुका था। वह शान्त थी।

उसने देखा धुंधलके में एक औरत भीतर आई है। समझी नहीं। ये कौन हो सकती है ? क्या रुस्तमखाँ ने कोई नया इन्तज़ाम अभी से कर लिया है ? उसे विक्षोभ हुआ। आगन्तुका और निकट आ गई थी।

दोनों ने एक दूसरी को देखा।

नटनी !!

प्यारी का माथा ठनका।

पूछा : 'तू कौन है ?'

कजरी ने कहा : 'तू प्यारी है न ?'

'हाँ, क्यों ?'

'मैं कजरी हूँ।'

'कजरी !!!' प्यारी के मुँह से निकल ही तो गया : 'तू यहाँ ?'

'हाँ, क्यों ? डर गई ?'

'डरूँगी और तुझसे ?' उसने घृणा से कहा।

'मुझसे क्यों डरेगी भला। तू बड़ी आदमिन है।'

'अच्छा मुँह मत लग।' प्यारी ने कहा : 'काम क्या है ये बता।'

'बता दूँगी रानी।' कजरी ने कहा : 'नैक हिया कड़ा कर ले।'

'क्यों ?'

'बात तेरी मरजी से हुई है न ?'

'मैं समझी नहीं।'

और कजरी को क्रोध आ रहा था। वह इतनी दूर से आई है। और यह औरत उसे डांट रही है ! उसका विक्षोभ उसके भीतर उफनने लगा। प्यारी ने देखा—कजरी सुन्दरी थी। और कजरी ने देखा—प्यारी आकर्षक थी। दोनों ओर से घृणा घुमड़ रही थी। परन्तु कजरी का हृदय पानी भरा बादल था। प्यारी सुलगते काठ-सी धूंआ दे रही थी। दोनों की पैनी दृष्टियां टकराईं और उससे जो आग निकली वह साकार रूप बनकर सुखराम की याद बन गई। वह केन्द्र ढूंढकर अतल समुद्र में डूब गई।

'जैसा सुनती थी वैसी ही है।' कजरी ने कहा।

'क्या सुनती थी तू ?'

'जो वे कहते थे।' कजरी ने कहा।

'कौन !'

'तेरा खसम !' कजरी ने कहा !

'और तेरा कौन है वह ?'

'अरे कोई हो, तुझे मतलब !'

प्यारी को गुस्सा आया। पूछा : 'कहती क्यों नहीं। क्यों आई है ?'

'आई हूँ कि तेरी प्यास बुझ गई ?'

'क्या मतलब ?'

'ओहो, बनती तो यों है जैसे जानती नहीं। मैंने सब सुन लिया है। तूने पिटवाया था न धूपो को ? उसने रोका था। उसका तूने ऐसा बदला लिया ?'

'कैसा बदला कजरी। धर्म सौगन्ध मुझे बता दे।' उसका स्वर थर्रा गया था।

'बाँके ने सुखराम को घायल कर दिया।' कजरी ने कहा : 'बाँके ने कई आदमियों को लेकर उसपर हमला किया। वह खूब लड़ा, पर बिचारा अकेला था। इन्होंने धोखे से मार दिया। और वह बेहोस पड़ा है, तब से, कहाँ जाऊँ, क्या करूँ ?' कजरी रो पड़ी। प्यारी के दांतों ने उसके नीचे के होंठ पर गड़कर खून निकाल दिया। वह बड़ी मुश्किल से अपने को रोक सकी।

'क्या कहा ?' उसने फिर पूछा।

'मैं सच कहती हूँ।' कजरी ने कहा।

'फिर लहू रुका कि नहीं ?'

'रुक गया। अब तो पट्टी बंधवा दी है मैंने।' कजरी ने आर्द्र स्वर से कहा।

'बहुत लहू बहा है !' प्यारी ने कांपते कंठ से पूछा।

कजरी ने हाथ फैलाकर भयातुर होकर कहा—'सेरों बह गया अलल-अलल। इतना लहू बहा है कि कह नहीं सकती।'

प्यारी स्तब्ध खड़ी रही।

कजरी कहती रही : 'पहले तो मैं डर गई।'

प्यारी ने नहीं सुना।

कजरी कहती गई : 'मुझे लगा, सब उजड़ गया, पर नहीं, नहीं, भगवान ने सुन ली।'

कजरी रोई। उसकी हिचकी बंद ही नहीं होती थी। दुख अब फिर इकट्ठा हो गया था। एक सुनने वाला मिला तो सब उगल गई। पूछा : 'तूने ऐसा क्यों किया प्यारी ! तेरा खसम ही तो था ! गुस्सा था तो मुझे कतल कर देती। वह तो बिचारा बड़ा भोला-भाला आदमी है। उससे भी तूने बैर कर लिया !'

प्यारी द्वार की देहली पर सिर फोड़ने लगी। कजरी समझी नहीं। झट,

भट, भट करके सिर लगा, पर चौखट काठ की थी। एकदम फटकर सिर से खून नहीं निकला।

कजरी घबराई। उसने उसे पकड़ लिया। प्यारी फिर अपना सिर पटकने को छूटने का प्रयत्न करने लगी।

'क्या करती है ?' कजरी ने कहा।

'मुझे मर जाने दे।' प्यारी ने कहा : 'तू मुझे जालम समझती है। अगर वह भी यही सोच लेगा तो मैं जीकर भी क्या करूँगी इस दुनिया में ? मुझे मर जाने दे, अगर मेरे मरने से वह जी उठे तो मैं सुहागन हो जाऊंगी कजरी, मुझे छोड़ दे।' उसने रोते हुए करुण कण्ठ से कहा : 'छोड़ दे, मैं पापन हूँ।'

कजरी ने नहीं माना।

उसने कहा : 'तू बैठ।'

प्यारी बैठ गई। दोनों हाथों में सिर पकड़ लिया और सोचने लगी। उसने धीरे-धीरे कहा : 'अच्छा ! लेकिन उसने तो कुछ नहीं कहा ?'

'नहीं।' कजरी ने कहा।

'मैं क्या करूँ ?' प्यारी ने अपने आपसे कहा। वह जैसे बहुत ज्यादा थक गई थी। और वह सोच में पड़ी हुई भूली-सी दूर देखती रही। हठात् उसमें एक विश्वास-सा जागा। उसने सिर उठाया। कजरी चौंकी। उसके मुख पर एक चमक आ गई थी। कजरी के कन्धे पर हाथ धरकर प्यारी ने उसी तरह आकाश की ओर देखते हुए धीरे से कहा : 'तू जा कजरी।'

कजरी ने सुना। विश्वास न हुआ।

'जा ? कुछ नहीं किया तूने। रंडी !' घृणा और क्रोध से विकृत मुख से कजरी ने कहा। उसको लगा जैसे प्यारी की आत्मा मर चुकी है जो सब कुछ सुनकर भी उस सबको पी गई है ! यह प्रेम करती है अपने सुखराम से ? यही है इसका प्रेम ! यही है इसका उसके लिये दर्द ! कितनी बेवफ़ा औरत है।

प्यारी ने उसके मुख पर पटाक चांटा मारा। उसका हाथ जैसे अनजाने ही उठ गया था। वह सह नहीं सकी थी। इसकी मजाल कि मुझसे यह ऐसे शब्द कह जाये ! इसका इतना साहस कैसे हुआ ? जानती नहीं कि प्यारी कौन है ?

कजरी ने उसका मुँह नोच लिया। दोनों को ही अपनी-अपनी जगह गुस्सा था। और प्यारी के मन में क्रोध था कि यही है वह जिसने मेरे सुखराम को

छीन लिया है। यही है वह जिसने मेरे बाग को उजाड़ दिया है। और कजरी को लग रहा था प्यारी कमीनी औरत है जिसमें हया और गैरत नहीं, जो एक पतित स्त्री है, जिसकी भावनाओं की भी हत्या हो चुकी है, जो इस योग्य ही नहीं कि उससे किसी प्रकार की भी बात की जा सके।

दोनों में मार-पीट बढ़ गई। कजरी इस समय प्यारी से निश्चय ही अधिक स्वस्थ थी। उसने प्यारी को दबा लिया मगर प्यारी खिसियाई हुई थी। उसने उसके बाल पकड़कर खींचे। कजरी की आँखों में पानी आ गया। प्यारी का मुख क्रोध से तमतमा रहा था। इस शोरगुल की आवाज़ भीतर भी पहुँच गई जिसे सुनकर रुस्तमखाँ निकला।

रुस्तमखाँ कजरी को नहीं पहचानता था। पहले तो वह समझ नहीं सका। पर प्यारी को कमज़ोर पड़ते देखकर वह भर्राई हुई आवाज़ में आगे बढ़कर चिल्ला उठा : 'पकड़ो इस हरामजादी को।'

उसकी आवाज़ सुनकर कजरी काँप उठी। प्यारी में ताकत-सी आ गई। परन्तु उसने झपटकर कजरी को अपने दांये हाथ से पकड़कर अपनी शरण में लेते हुए कहा : 'खबरदार !'

रुस्तमखाँ चौंका। कजरी और भी अधिक।

'हाथ न लगाना इसे।' प्यारी ने कहा।

'यह कौन है ?' रुस्तमखाँ ने पूछा।

'कोई हो तुम्हें मतलब ?' प्यारी ने हाँफते हुए कहा।

कुछ लोग आ गये थे।

रुस्तमखाँ के मन में क्रोध था। बोला : 'बेवकूफ ! तू तो इससे पिट रही थी !'

'मेरी मरजी ! मैं पिट लूंगी। पर लुगाइयों के बीच तुम क्यों बोलते हो ?'

सब ठिठक गये।

'तो फिर !' रुस्तमखाँ ने कहा : 'धूपो के वक्त यह क्यों नहीं कहा था ?'

'वह भी मेरी मरजी।' प्यारी ने कहा : 'वह चमरिया थी, यह मेरी बिरादरी की है। नटिनी है। इसकी मेरी बात घर की है।'

रुस्तमखाँ इसका जवाब नहीं दे सका। ग्रामीण तर्क में और नागरिक तर्क में भेद होता है। लोग बोले : 'ठीक कहती है।'

कजरी समझी नहीं।

रुस्तमखाँ भीतर चला गया। लोग दूर हो चले। फिर भी दो-एक आदमी खड़े रहे और अब आपस में बातें करने लगे।

एक ने पूछा : 'ये है कौन ?'

'क्यों ? तू क्या करैगा जान के ?'

पूछने वाला चकराया। दूसरे लोग हँस दिये। कजरी इस समय मुस्करा दी।

'क्या लोग हैं।' प्यारी ने कहा : 'चल री उधर।'

कजरी ने कहा : 'जाने दो, माफ़ करो।'

दोनों हँस दीं। लोग झेंपे। अजीब बात हो रही थी। यह तो दोनों दूध-पानी-सी घुल-मिल गईं।

कोने में लाके प्यारी ने कहा : ' तू जा। मैं बाँके से बदला लूंगी।'

'क्या करेगी ?'

'जो कर सकूंगी।'

'मुझे भरोसा नहीं होता।'

'मेरी सकत पर कि नीयत पर।'

'सकत पर।'

'अभी तूने देखा ही क्या है ?'

कजरी ने कहा : 'तू जेठी है। मैं तेरे पांव छूती हूँ।'

प्यारी प्रसन्न हुई। कहा : 'तू छोटी है। तू मुझसे लड़ेगी तो क्या मैं अपना घर लुटा दूंगी ?'

'मेरे हाथ टूटें, तुझ पै उठे। मेरी आँखें फूटें जिन्होंने डाह की। अब समझी, तूने उसे कैसे लट्टू कर रखा है अपने पर। दारी तू बड़ी वो है। मैं तेरी क्या बराबरी करूंगी !' कजरी ने मगन होकर कहा। उसके स्वर में ममता थी।

प्यारी ने कजरी को छाती से लगा लिया। दोनों एक दूसरी की ओर देखती रहीं। उन नयनों में कितनी गहराई थी, कितना प्रसार था। जैसे दोनों हाथ फैलाकर आकाश धरती पर झुककर टिक गया हो और धरती घूमती हुई आकाश की ओर उठी आ रही हो। कजरी का हाथ पकड़कर प्यारी ने स्नेह से कहा : 'तू अब जा। वह अकेला होगा। उसके पास रहियो। उसे अच्छा कर दीजो भला ! देख, ठीक से देख-भाल करियो, नहीं तो मार-मार के खाल उधेड़ दूंगी।'

कजरी ने स्नेह की बात को समझ लिया। परन्तु उसे यह अधिकार सहज ही स्वीकार नहीं हुआ। इसका मतलब तो था कि कजरी का अपना कुछ नहीं। वह तो देख-भाल करने के लिये है और प्यारी ही स्वामिनी है। उसके मन ने स्वीकार नहीं किया। उसने तिनककर उसको घूरकर उत्तर दिया : 'अरी नहीं तू ऐसी देख-भाल वाली थी। चली न आती छोड़ के !'

प्यारी समझ गई कि चोट ठीक बैठी।

उसने कहा : 'सो क्या हुआ !'

कजरी ने कहा : 'तुझे फिकर ही होती तो उसका संग-साथ छोड़ देती तू ? कभी नहीं लाड़ो।'

'मैं ही न आती तो डायन तू उसे छू लेती।' प्यारी ने फिर उसे तोला।

कजरी इसका उत्तर सहज ही नहीं दे सकी। यह तो सच था। अभी भी तो सुखराम के मन में गाँस थी। उसे कजरी क्या उसके भीतर से निकाल-कर दूर कर देने में समर्थ हो सकी थी ? उसने एक पराजित-से पर उद्धत स्वर में जवाब दिया : 'भाग किसने देखा है ?

प्यारी को अपने बल का अनुमान हुआ।

उसने कहा : 'भाग की बात ही है जो तू आ गई।'

'तू तो भाग से ऊपर है ?'

'हूँ तो नहीं, पर अब डाँवाडोल हूँ।'

'तो मेरा भाग देख जल रही है ?'

'अरी बड़ी भाग वाली है तू ?' प्यारी ने कहा।

फिर दोनों का वैमनस्य जाग उठा। और जिस तरह मन में मिठास आई थी, वहाँ अब खटास आ गई। पर वह अब वाह्य थी क्योंकि गहराई में वह नहीं रही थी।

कजरी ने व्यंग्य किया : 'देख मेरा मरद कैसा है, और ये तेरा कैसा है ?'

अब प्यारी आहत हुई। उसने पानी-पानी होकर कहा : 'यह मेरा मरद नहीं है। मेरा बंदर है।'

'अरी जा।' कजरी ने चुटकी ली : 'तू इसकी बंदरिया बनके नहीं रही है ?'

प्यारी की आँखों में आँसू आ गये। यह सचमुच उसके मन के घाव को बेदरदी से लोहे की कील से कुरेद दिया गया था। तो यह वह तेल मे भींगी हुई रूई की बाती थी, जिसमें आग बनकर कजरी लग गई और सुखराम के मन के

दिये में नया ही उजाला हो गया ? वह और कोई उत्तर नहीं दे सकी।

'रोती क्यों है ?' कजरी ने पूछा।

'रोती तो नहीं।' प्यारी ने आहत स्वर से कहा : 'छोटी है, छोड़े देती हूँ।'

उसके स्वर में ममता थी, या ईर्ष्या, या अधिकार, या उपेक्षा, वह क्या था, यह कजरी नहीं समझ सकी। पर आँसू निर्बलता के प्रतीक थे। स्त्री के जिन आँसुओं से पुरुष पिघलता है, स्त्री उनमें विजय प्राप्त करती है। वह खुद जिस हथियार को तलवार की तरह आँखों की म्यान से निकालकर गालों पर चमकाती है, वह क्या उसके दाँव-पेंच नहीं जानती ? कजरी को सुख हुआ। कहा : 'नहीं तो सूली लगवा देती ?'

'मैं कहती हूँ तू जा !' प्यारी ने मुँह छिपा लिया।

कजरी मुस्कराई। कहा : 'जाती हूँ। रो के भेजेगी ? और वह आयेगा तो उससे मेरी चुगली करेगी। उससे मुझे पिटवायेगी तू ?'

प्यारी हँस दी। कहा : 'तू बड़ी चंट है।' फिर कहा : 'अरे, अंधेरी घिरी आ रही है। अब तू जल्दी जा।'

'जाती हूँ।' कजरी ने कहा : 'रस्ते में किसीने छेड़ा तो ?'

'तू डरती है ?'

'क्यों नहीं डरूंगी ? एक तू ही जवान है ? कहीं किसी सिपाही की मुझ पर आँख पड़ गई तो ?'

प्यारी फिर चोट खा गई। कहा : 'परमेसुरी अब तू जा। डरती भी है, और जाना भी चाहती है। मैं क्या करूँ ?'

'अपने लिये नहीं डरती जेठी ! फिर उसके पास कौन रहेगा ?'

'मैं जाऊँ ?' प्यारी ने उलाहना दिया।

'और जाके बीमारी दे आऊँ ?' कजरी ने कहा।

प्यारी का मन छार-छार हो गया। वह क्या करे ? सच ही तो कहती है। अब वह क्या इस योग्य रही है ? नहीं। सुखराम को वह अपनी जैसी अवस्था में पहुँचा दे !

कजरी की विजय हो गई थी। अब उसने उसका हाथ पकड़कर कहा : 'जेठी !'

प्यारी ने हाथ छुड़ा लिया। कजरी मुस्कराई। कहा : 'जेठी ! तुझे मैं ले जाऊँगी। तेरे संग बड़ी जोर की रहेगी। उसे भी अच्छा कर दूंगी और तू भी

अच्छी हो जायेगी ? अरी क्यों घबराती है । समझ ले, दो बहन हैं हम तुम, सौत हो गई तो क्या हुआ ? तू लड़ाका है, मैं भी लड़ाकी हूँ ।'

'तेरी डाह तुझे अंधा बना रही है ।' प्यारी ने कहा : 'मैं फिर सुन लूँगी । इस बखत उसके पास जाना जरूरी है । तू जानती है मैं नहीं जा सकती, फिर तू क्यों बखत बरबाद कर रही है ?'

'कोई डर नहीं है ।' कजरी ने कहा : 'वह ठीक हो जायेगा अब, पर बाँके की बात याद है न ?'

'याद है । उसे तू याद क्या दिलायेगी ?' प्यारी ने गर्व से कहा ।

कजरी ने उसकी आँखों को देखा । अब उनमें एक चमक थी । उसे देखकर कजरी मन ही मन डर भी गई, पर बोली नहीं । देखकर झुक गई । और कजरी बाहर निकली ।

प्यारी भीतर चली गई । अब कजरी का मन उछल रहा था । देख ली सौत ! है तो पानीदार । पर कुछ फिकर नहीं है । अज्ञात का भय कितना भयानक होता है ! पहले उसके मन में कितना अधिक डर था, अब वह क्यों नहीं है ?

रास्ते में चमरवारे में पहुँची तो सुना वह औरतें खड़ी आपस में बतरा रही थीं । कभी वे सब एक साथ बातें करने लगती थीं तब कांय-कांय के अतिरिक्त कुछ भी सुनाई नहीं देता था । पर बीच-बीच में सुखराम का नाम सुनाई देता था । कजरी को कौतूहल हुआ । रुककर सुनने लगी । जाने क्या बात हो रही है । एक तो स्त्री जाति ही दूसरे की बात सुनने की शौकीन होती है फिर गांव की स्त्री को तो इसके बिना चैन ही नहीं आता । लड़कपन में मर्द भी इसी आदत का शिकार होता है, पर फिर उसकी आयु के साथ उसका अहं बढ़ता जाता है और वह दूसरों के बारे में इतनी सुनने की आवश्यकता का अनुभव नहीं करता, जितनी अपने बारे में । कजरी ने देखा औरतों में बड़ी हलचल थी ।

एक ने कहा : 'ऐ भट्टू ! इत्ते लोगों ने खड़े-खड़े घेरा उसे, मगर मजाल कि लाठी देह पै लगने दी हो । यों फिरकनी-सा बन गया बीच मैदान में । देखने को लगता कि अब दो टूक हो जायेगा, पर वह लचक मारता कि आँखें संग काढ़ के ले जाता, मैं तो हिरानी-सी रह गई । दैया रे दैया !'

दूसरी ने कहा : 'अरी ! परके लाठी चली तो दोनों ओर के ज्वान योंई भहरा-भहरा के गिरे । सौगंध है, वैसी लड़ाई देख के घिन हो गई । आज तो

कोई बाँके को देखता। होय कैसी-कैसी दाँती भींच-भींच के खिसियाया, पै एक न चली।'

उसने अश्लीलता से हाथों से इंगित किया, जिसे देखकर औरतें जोर से हँस पड़ीं।

तीसरी बोली : 'और फिर आदमी भला है। अपना मतबल नहीं था।'

दूसरी ने कहा : 'आय राम ! गाम की बहू की इज्जत की बात ठहरी। ईमान का मानुस कैसे चुप रह जाता ?'

'अरी ! नहीं होते सब ऐसे', तीसरी ने कहा : 'अपने खेत छोड़ दूसरे का भले जिनावर चर जाये, लोग कहैगा, भई हम काहू की आतमा न दुखाएँ अपने जान कुछ भी हो।'

पहली ने काटा : 'वह बीर है भाइली ! बीर है !'

'बेसक।' दूसरी ने कहा।

तीसरी ने कहा : 'मुझसे मालिन बोली थी।'

'वह तो वहीं थी।'

'हाँ उसने सब देखा।'

'बजमारी ऐन मौके पै जाने कहाँ से आँखें ठंडी करके चली गई। मैं तो देख ही नहीं पाई।' यह कोई और थी और उसके स्वर में सच्चा अफ़सोस-सा था।

कजरी की छाती फूल गई। जी किया रो पड़े। पर अपने को रोका। फिर भी हँसी होठों पर थिरकने लगी। अब मन तो मानता ही नहीं। अपने को रोके तो कैसे। आखिर रोक न सकी। आगे बढ़कर पूछ ही तो बैठी : 'किसकी बात करती हो ?'

औरतें चौंकीं।

'अरे कोई नटिनी है।' एक ने कहा।

'तुझे क्या ?' दूजी ने पूछा।

'बता दो भैना।' तीसरी ने कहा।

'अरी सुखराम को जानै है ?' एक ने पूछा।

'न जानैगी ये ?' एक और ने कहा : 'वह तो इसीकी बिरादरी का है।'

'तुझे क्या लगी मचको ?' किसीने पूछा।

'हाय वह मेरा मरद है।' कजरी ने लाज से मुँह ढँक लिया।

'ऐ डड !!' स्त्रियों में दुख की लहर दौड़ गई।

'बड़ा घायल हुआ है वह।'

'जानूँ मैं।' कजरी ने वहा : 'कोई डर नहीं है। बच जायेगा।'

'तुझे कर लिया है उसने ?' एक बोली।

कजरी ने कहा : 'नहीं, मैंने कर लिया है उसे।'

'वह तो एक ही बात है।' और स्त्रियाँ ठठाकर हँस पड़ीं। वे कजरी के उस गौरव के अनुभव की ओर ध्यान नहीं दे सकीं, जो कर्त्तृत्व अपने हाथ में लेकर उसकी प्रशंसा चाहता था। कजरी कहना चाहती थी कि वह उसका अपना चुनाव था।

कजरी को बेसुधी-सी छा गई थी।

'वह बड़ा मरद है।' उसने विभोर स्वर में कहा।

'हाय दैया।' एक औरत ने कहा : 'क्या कह रही है। तुझे लाज नहीं आती। कहीं ऐसी बात कही जाती होगी ?'

वह क्या कह रही थी, और हठात् उसका क्या अर्थ लगाया गया, वह स्पष्ट नहीं समझी। परन्तु औरतों ने फिर अट्टहास किया। तब कजरी की समझ में आया और वह घूंघट खींचकर हँसते हुए बोली : 'हाय बेसरम ! क्या बकती हो ? मैं क्या ये कह रही थी ?'

औरतों की चुहल शुरू हो गई थी। वे बकने लगीं और गांव की परम्परा के अनुसार असाहित्यिक शब्दों का प्रचार भी हुआ और कजरी को उसमें आनन्द आया।

'तेरे बड़े भाग नटिनी।" एक ने कहा : 'तैने भर पाया।'

'हाँ जीजी। मुझे अब कोई हिर्स नहीं।'

औरतों में ईर्ष्या पैदा हुई। एक स्त्री कहती है कि वह पूर्ण तृप्त है, यह क्या कुढ़ने की बात नहीं है ? जात की नीच, रहने को घर नहीं, पर मन इतना बड़ा है ?

पर कजरी को इस समय यह सब नहीं व्याप रहा। इस समय वह इन छोटे दायरों के ऊपर है। वहाँ तक यह सब लोग पहुँच ही नहीं सकते।

और प्रेम के अभिन्न गौरव की आस्था उसके मन में अब अपना विकास करने लगी। अपना प्रभुत्व व्याप्त करने लगी। उसके स्पर्श में एक अद्‌भुत चेतना जाग रही थी।

कजरी लौटी तो पाँव उड़ रहे थे।

जब डेरे पहुँची तो अन्धेरा-सा था। रामा की बहू वहाँ नहीं थी। हृदय धक-से रह गया। बिल्कुल सन्नाटा छा रहा था। क्या हुआ ? रुक गई। भीतर घुसने की हिम्मत नहीं पड़ी। पर कब तक रुकी रहती। आखिर साहस करके घुसी। उसकी हल्की पगचाप सुनकर खाट पर कोई हिला। और अन्धेरे में ही कजरी ने सुना कोई धीमे पर दृढ़ स्वर से पूछ रहा है—

'कौन ?'

कजरी ठिठक गई। वह सुखराम का स्वर था। तो वह होश में आ गया था ! एक मुर्दा ज़िन्दगी फिर करवट बदलकर उठी तो उसे देख सारा जहान खुशनुमा बनकर अब अंगड़ाइयाँ लेने लगा। कजरी का हृदय आनन्द से स्तब्ध हो गया।

'मैं हूँ।' उसने कहा।

उसकी आवाज़ धीमी और सहिष्णु थी। वह अपनी सत्ता का अस्तित्व जैसे दुहरा रही थी। अपने प्रेम की परिधि फिर जैसे उसके चारों ओर खींच रही थी।

सुखराम ने धीमे से कहा : 'आ गई !' फिर कहा : 'आ जा, यहाँ आ जा मेरी कजरी !'

वह रो पड़ी। उसने उसके पाँव पकड़ लिये। सुखराम उसके सिर पर बाँया हाथ फेरने लगा।

'रो नहीं कजरी।'

'नहीं रोऊँगी।'

'आज मैं बच गया।'

'छिः क्या कहता है।'

'सच कह तू डरती न थी ?'

'डरती तो थी।'

'कि कहीं मर न जाये ?'

उसने सुखराम के मुँह पर हाथ रख दिया।

'तू मुझे रुलाता है।'

'औरत का दिल बड़ा नरम होता है। तेरा भी है।'

'सबके लिये नहीं, पर तेरे लिये मुझे जाने क्या हो जाता है, मैं समझ ही नहीं पाती।'

'क्या हो जाता है तुझे ?'

'तू ठीक हो जायेगा।' कजरी ने कहा—'बलमा !'

उसने संकोच छोड़कर पुकारा। उस शब्द का गीलापन सुखराम को छू गया। वह समझा, पर उसे सिर्फ़ उसकी अव्यक्त-सी अनुभूति हुई। वह यह नहीं समझा कि वह आत्मा से आत्मा ने बात की थी। उसमें केवल एक हुमक-सी व्यापी और सत्ता का उन्माद बनकर वह हँसी, और फिर उसे कुछ अजीब-अजीब-सा लगा।

सुखराम ने अपने क्षीणस्वर से उसको आश्वासन देते हुए हाथ फिराकर कहा : 'हाँ कजरी ! तू है तो मैं नहीं मरूँगा।'

कजरी को ऐसा लग रहा है जैसे उसने बात नहीं की है, एक बड़ा भारी सत्य कहा है, ऐसे जैसे पत्थर पर लकीर खींच दी है। मनुष्य ऐसी प्रतिज्ञा करता है, परन्तु वह नहीं जानता कि उसका अभी इस बात पर अधिकार नहीं हुआ है, परन्तु समवेदना संबल चाहती है और संबल-प्राप्ति आत्मविश्वास की चरमोन्नति है।

उसके सीने पै सिर रख के कजरी ने कहा—'तेरे बिना मैं कैसे जिऊँगी।' और उसने ऊपर हाथ उठाकर कहा : 'हे भगवान् ! जात में नीच बनाया, मैं कुछ नहीं माना। मेरे करम का फल था। मैंने पाप किया है, उसका बुरे से बुरा दंड भोग लूंगी, पर एक भीख मांगती हूँ। मेरी अर्थी उठे तो भी मेरा सुहाग बना रहे। मैं इसके पीछे दुनिया में बची न रह जाऊँ।'

'क्या कहती है कजरी।'

सुखराम ने बात बदली : 'तुझे कैसे मालूम हुआ सब ?'

'मंगू ने कहा था।'

'उसकी बहू यहीं बैठी थी।'

'मैं छोड़ गई थी उसे। वह कब गई ?'

'पता नहीं। मैं सो गया था।'

'तुझे नजर नहीं लग गई होगी ?' कजरी ने कहा।

'सो कैसे ?' सुखराम ने पूछा।

'लुगाइयों का बस चले तो तुझे खा जायें।'

सुखराम झेंपा । कहा : 'क्या बकती है ?'

'अरे बकती हूँ ? दारी ऐसी छाती फुला-फुला के तेरे गुन गा रही है ।' कजरी ने कहा ।

'कहाँ ?'

'क्यों लगा न सुनने ? मैं तो पहले ही डर रही थी ।'

'ऐसा हाथ दूंगा सुसरी के । कहती है आप, और टोकती है आप ।'

'क्यों न कहूँगी । पराई औरतें तुझमें दिलचस्पी लें तो मैं सुनूंगी नहीं ? पर तू कैसे उनकी ओर बोलेगा ?'

'मैं किसकी तरफ़ बोला हूँ री !'

'तेरा क्या है ? तू पहले प्यारी का था, अब मेरा हो गया । अब कोई और आयेगी तो उसका हो जायेगा ?'

'तू ऐसा कहती है ?' सुखराम ने कहा : 'प्यारी तेरे नाम को कोस-कोस के पानी पीती होगी । वह नहीं बुरा मानती होगी तेरे आने से ?'

'क्यों, मैंने उसे क्या दुख दे दिया है ?'

'नई आने वाली तेरे बारे में भी यही कहेगी ?'

'कौन आने वाली है ?' कजरी ने चौंककर पूछा ।

'कोई हो !'

'दारी आके तो देखे डेरे में । नलियां न हिला दूं ।'

'और प्यारी जो तेरे से यही करे तो ?'

'करके तो देखे ।'

'तो चित्त भी तेरी, और पट्ट भी तेरी । और वह भी तब, जब सूत न पौनी, कोरी से लठालठी ।'

दोनों हँस दिये ।

मन हल्के हो गये ।

'बाँके का खून पियूंगी मैं ।' कजरी ने कहा ।

'पी लीजो, पानी पिला दे पहले ।'

कजरी झेंपी । इतनी सस्ती टाली गई थी ।

कहा : 'तुझे मेरा विस्वास नहीं । तुझसे पिट लेती हूँ तो तू समझता है, मैं सबसे दब जाऊँगी ? बोदी है ?'

'तू दबी है मुझसे ? मुझे दबा रखा है तूने उल्टा ।'

'क्या बकते हो ?' कजरी ने लजा के हाथ नचाके कहा : 'इत्ता लम्बा-चौड़ा आदमी है, और मुझे दोस देता है !'

सुखराम हँस दिया। कजरी उठी और रोटी ले आई। कहा : 'भूख तो लगी होगी ?'

१७

रात हो गई थी गहरी और गहरी। हवा चलने लगी थी, जो दूर तक के झुरमटों में मटरगश्ती करती, पेड़ उसकी ठंडी पकड़ से बचने के लिए फरहराते और पत्ते इधर-उधर छुपने का यत्न करते। दूर आस्मान में तारे हल्के-हल्के से झलमला रहे थे। गीदड़ों की हुआँ-हुआँ कर्कश स्वर से गूंजती। फिर भूरा भौंकता, फिर कभी घोड़ा सुमों से धरती को रूंढता। और फिर वही काली निस्तब्धता ऐसे द्वार में से गिरने लगती जैसे वह डेरा नहीं, एक स्याही की बड़ी दबात थी।

सुखराम ने कहा : 'कजरी !'

कजरी लेटी हुई कुछ सोच रही थी। आवाज़ सुनते ही चौंककर उठ बैठी। पूछा : 'क्या है ? पानी लाऊँ ?'

'नही मेरे पास आ !'

उस आवाहन का सामीप्य कजरी के तार-तार को छू गया। और उस निकटता की भावना ने उसकी नींद को दूर भगा दिया। उसे लगा वह उससे दूर रहकर कुछ भूल कर उठी थी।

कजरी पास आ गई। कहा : 'मैं तो यहीं थी। सोचा शायद तू सो गया है, इसीसे जग न जाये कहीं।'

वह यह प्रमाणित करना चाहती थी कि नहीं वह दूर नहीं थी। वह उससे दूर हो ही नहीं सकती। फिर पूछा : 'क्यों बुलाया था ?'

'ऐसे ही !'

कितना स्नेह था उन दो शब्दों में।

'अब चैन है ?' कजरी ने पूछा ।

'हाँ, पहले से अच्छा हूँ ।'

बाहर आहट हुई । कजरी बाहर गई । सुखराम ने सुना बाहर दो व्यक्ति बातें कर रहे थे । वह उनकी बात नहीं सुन सका क्योंकि स्वर दबे हुए थे ।

पूछा 'कौन है ?'

'आई !' कजरी ने कहा ।

सुखराम ने धीरज धारण किया ।

रामा की बहू आई थी । कजरी उसे देखकर कुछ रिसाई । उसने उससे उचाट-भरे स्वर में पूछा : 'कैसे आई ? तू छोड़ के कहाँ चली गई थी ?'

'अरी मैं बैठे-बैठे उकता गई । सोचा कुछ मतबल का काम ही कर लाऊँ ।'

'क्या कर लाई ?'

रामा की बहू ने हाथ बढ़ाया । कजरी ने गौर से देखा । रामा की बहू दबे स्वर से बोली : 'यह तीतर लाई हूँ ।'

'तीतर ! रात को !!'

'हाँ ।'

'कहाँ से ?'

'जंगल से !'

'इस रात में जंगल गई थी !!!'

'खिला दे । खून बढ़ेगा !'

कजरी का मन गद्‌गद हो उठा । उसने दोनों हाथों से उसके गाल छुए, जैसे स्नेह टपका पड़ रहा था । वह इस अंधेरी में जंगल में से तीतर मारकर लाई है, यह क्या सहज काम है !! हृदय घायल था ही, अब तो पानी-पानी हो गया । स्नेह की शक्ति की तो कोई सीमा ही नहीं ।

'हलुआ मिल जाता तो अच्छा होता ।' रामा की बहू ने कहा : 'पर हमारे घर कहाँ होगा । सो ही मैंने सोचा था । वह उस बखत सो रहा था । तो मैं चली गई थी ।'

'अरी तू क्यों बताती है ऐसे ?' कजरी ने झेंपकर कहा : 'मैं क्या कोई यों थोड़े ही पूछती थी !'

'अच्छा देख ! भून के दीजो ।'

कजरी की आंखों में नमी आ गई ।

रामा की बहू चली गई। कजरी ने भीतर आकर भून के खिलाया। गद्‌गद स्वर से उस समय रामा की बहू के गुन गाये। सुखराम भी कृतज्ञ हुआ।

कजरी सोचने लगी।

'क्या सोच रही है ?' सुखराम ने पूछा।

'कुछ नहीं।'

'सच बता, तुझे मेरी कसम।'

'सोच रही थी, तेरे लिए हलुआ कहाँ से लाऊँ ?'

'चिंता न कर। कल मुझे जंगल ले चलियो। मैं आप अपना इलाज कर लूँगा।'

'कल तू चल लेगा ?'

'अरी कल तक तो काफ़ी बल आ जायेगा मुझमें।'

'हाय मुझे आग लग जाये।' कजरी ने कहा : 'कहीं तुझे मेरी ही नजर नहीं लग जाये।'

'अगर तेरी ही नजर मुझे न लगेगी कजरी, तो फिर मुझे देखेगा कौन ?'

'अरे तुझे देखने वाले तो पचासों हैं, पर मुझे तेरे बिना कौन देखेगा ?'

बात मुड़ गई।

'बाँके का मैं खून करूँगा।' सुखराम ने कहा।

'फाँसी लग जायेगी।'

'तो क्या चुप बैठा रहूँ ?'

'तू चला जायेगा तो मेरा क्या होगा ?'

सुखराम चिंता में पड़ गया। क्या उसे इस प्रेम ने बांध नहीं दिया था ? मनुष्य का मूलभूत सुख क्या है ? भूख, प्यास, यौनतृष्णा को मिटाना। परन्तु इन्हीं को समाज की व्यवस्था जकड़ती है। यह मूलाधार एक-से ही रहते हैं, इनके वाह्य बदलते हैं। परन्तु सुखराम यह कैसे समझे ? और सचमुच यदि मनुष्य इनको ही छोड़ दे तो जीवन में आनन्द ही क्या है ? आनन्द !! और जो समस्त बंधन हैं ? इन भूखों को मिटाने के लिये आदमा अपने को समाज से अलग तो नहीं कर लेता ? इन्हीं के लिये समाज है। अतः जो मूलाधार है, वही उसका वाह्यरूप भी है।

कजरी ने कहा : 'तू अकेला तो नहीं है ?'

'पर कजरी यों तो वह पीस खायेगा।'

'उसका भी परबंध करेंगे ।'

'सो कैसे ?'

'जैसे मंगू ने कहा था ।'

'क्या ?'

'थोड़े दिन बाद·····'

वह बात पूरी न कर सकी । सुखराम ने कहा : 'नहीं, नहीं कजरी ! पुलिस सबको पकड़ ले जायेगी । कौन नहीं जानता अब मेरी उसकी दुश्मनी है ? फिर तेरी बेइज्जती करेंगे ।'

'मेरी कौन-सी इज्जत है जो ! दुनिया मुझे मानती ही क्या है ? मैं वैसे पापन हूँ मेरे बलमा ! तेरी भलमनसाहत ही है कि तू मुझे भी इज्जत देता है !'

'मजबूर की मजबूरी से फायदा उठाकर उन्होंने तुझ पर जुलम किया है कजरी । पाप मन से होता है । मन से तो तूने पाप नहीं किया ?'

कजरी ने कहा : 'नहीं सुखराम ! पाप पाप है । औरत का पाप कोई माफ नहीं करता । नहीं तो यह रीत क्यों बनती ?'

'ठीक कहती है ।' सुखराम ने कहा : 'पर कहीं कुछ ठीक नहीं है जरूर । मेरा मन बार-बार यही कहता है ।'

दोनों चुप हो गये । वह मौन नहीं था, वह एक संघर्ष था, जिसकी अभिव्यक्ति अपने अज्ञान के कारण अवरुद्ध हो गई थी । सुखराम उस गुत्थी को सुलझाना चाहता था । जिधर बढ़ता था, उधर ही संस्कारों के बंधन मकड़ी की तरह घेरकर जाला बुनने लगते थे ।

'मैं गई थी ।' कजरी ने कहा । और सुखराम की ओर घूरकर देखा जैसे वह उस पर होने वाली प्रतिक्रिया को देख रही थी । सुखराम समझा नहीं । उसने जिज्ञासा से देखा और वह कुछ चौंका भी क्योंकि कजरी ने बात को रहस्यमय ढंग से शुरू किया था । उसके मन में कुछ आशंकाएं जाग खड़ी हुईं । उसने धीरे से कहा : 'कहाँ ?'

कजरी के मुख पर एक शरारत थी, जैसे उसे परख रही है और जैसे डाली पर लगा फूल आपसे आप एकदम खिल जाये कि भौंरा चक्कर में पड़ जाये, कजरी ने वैसे ही, हठात् हँसकर सुखराम की ओर से मुँह फेरकर एक मस्त स्वर में कहा : 'रुस्तमखाँ की चहेती के पास ।'

सुखराम को लगा जैसे वह धरती पर नहीं है । पुकारा : 'कजरी !'

'क्यों पुकारते हो, पास ही तो बैठी हूँ।' उसने फिर मुस्कान को रोककर कहा।

'तू गई थी ?' सुखराम ने दुहराया।

वह उसे अपनी भरी-भरी आँखों से देखती रही, जैसे आँखें नहीं थीं, जाल थीं, जिन्होंने सुखराम को चारों ओर से फाँस लिया था और अब जाल खिंचने लगा था। सुखराम विह्वल-सा पड़ा था।

उसे विश्वास न हुआ।

पूछा : 'कब गई थी।'

'जब तू बेहोश पड़ा था।'

'तभी रामा की बहू को छोड़ गई थी ?'

'हाँ।'

'सच!' सुखराम ने कहा और फिर अपनी आँखें फाड़कर वह उसकी ओर घूरता रहा, ऐसे देखता रहा जैसे कजरी के भीतर से, बाहर से वह आर-पार देख सकता था। मानों उसके भीतरी भावों को भी वह ऐसे देख पा रहा था, जैसे उसके अंगों को, मानो भाव भी साकार बन गये थे, और वे सब उसके अपने थे !

'कजरी।' सुखराम ने भर्राए स्वर से कहा। कजरी ने देखा उसका ग्लपयित कंठ शब्दों को उगलने में असमर्थ-सा हो गया। वह स्नेह ऐसा था जैसे हरसिंगार ने अपनी गरिमा न झेल सकने के कारण अपनी डालियों से फूल बरसा दिये हों।

वह रो दिया।

कजरी आगे आई।

कहा : 'रोता क्यों है ?'

सुखराम ने उसका हाथ पकड़ लिया और अवाक देखता रहा और फिर धीमे से बुरबुराया-सा बोला : 'तू गई थी ?'

उन तीन शब्दों का अर्थ था एक व्यक्तित्व, एक स्नेह की पराकाष्ठा की अभिव्यक्ति, एक अतीत का भास्वर अनुभव, और तीनों में जो समर्पण था वह एकमात्र भाव बना—वह भाव था विजय, उन्निद्र, जीवन्त···जाग्रत···

'हाँ तू नहीं मानता। उससे पूछ लीजो।' कजरी ने कहा।

सुखराम को इससे अधिक क्या गवाही मिल सकती थी। उसका सिर कजरी की महानता के सामने झुक गया।

'क्या सोच रहा है ?' कजरी ने टोका।

'कुछ नहीं।'

'मुझे बता दे।'

'कैसे मिली वह ?'

'क्यों तुझे चैन नहीं आ रहा है ?' वह मुस्कराई।

'कजरी, मेरी अच्छी कजरी।' सुखराम ने कहा : 'मुझे बता दे।' और उसने प्रार्थना-भरी दृष्टि से देखा।

कजरी ने सुनाया। उसने जो समझा था, कह सुनाया। मैं गई थी। वह चौंकी। पहले अकड़ी। मैंने भी खूब सुनाई। मैंने कहा, तूने पिटवाया है उसे। सौत सिर फोड़ने लगी। मैंने कहा बदला ले। बोली क्या करूँ। मैंने डाँटा, तो मुझसे लड़ी। उसका वह आ गया मुआ। पर सौत ने बचाया। फिर मैं चली आई।

कजरी के सुनाने में सुखराम क्या समझा क्या नहीं पर वह खुश हुआ। उसे यह सान्निध्य, यह आपसी वैमनस्य का अन्त अच्छा लग रहा था। कहा : 'तो वह व्याकुल हुई थी।'

कजरी के छुरी-सी लगी।

बोली : 'हुई थी।'

'रोई होगी।'

'बुक्का फाड़ के।'

'फिर तूने मनाया होगा !'

'मेरी फरिया तो उसके आँसू पोंछने में इतनी गीली हो गई कि वहीं निचोड़ के सुखा दी, दूसरी उससे मांग के पहन आई हूँ।'

सुखराम शिथिल हो गया।

'तू हँसी करती है कजरी। इस बखत भी हँसी करती है।'

'इस बखत तो हँसी करूँगी ही। अब तो तू ठीक हो रहा है।'

'तू गुस्सा हो गई है ?'

'मैं गुस्सा क्यों होऊँगी। तुझे मुझसे क्या ? यह तो न पूछा कि तू गई, तेरी इज्जत तो नहीं बिगड़ी वहाँ, सौत ने डाँटा तो नहीं, तुझे डर तो न लगा होगा

वहाँ, सो कुछ नहीं, मर्दुआ पूछता है. वह कैसी थी ? रोती थी तो आँख से ढुलके आँसू का कमल बनता था या नहीं ?'

सुखराम ने देखा दीवार थी, और वहीं थी ।

'बुरा न मान कजरी ।' कजरी से उसने याचना के स्वर में कहा ।

'अरे बड़ा भोला है तू मैं जानती हूँ । घूम-फिर के उसे लाने के लिये, मेरे मुँह से कहाना चाहता है तू ? सौत बड़ी अच्छी है !!'

सुखराम ने व्यंग को समझकर भी तरह दे दी और कहा : 'तेरी निभ जायेगी उससे ?'

'मेरी तो तुझसे निभेगी ।' कजरी ने कहा : 'तेरे पास एक घोड़ा है, भूरा कुत्ता है, वह भी रह लेगी । मेरा क्या है ? कुत्ते को रोटी, और घोड़े को घास डालती हूँ, उसे भी दो कौर डाल दूंगी ।'

सुखराम उसके परिवर्तन को समझा गया । बोला : 'अरी तू भी उसीके स्वर में बजने लगी । मैं उसकी असलियत जानना चाहता था । अब तू जो कहती है, उससे मेरा भरम दूर हो गया । जब उसने तेरा दिल ही हिला दिया तो सचमुच बड़ी व्याकुल होगी ।'

कजरी का मन किया उसके मुँह पर चाँटा मार दे । पर वहाँ पट्टी बंधी थी । रोने लगी ।

सुखराम ने कहा : 'अरी क्यों रोती है उसके लिये ?'

कजरी का मन घायल हो गया । आज उसने सुखराम का यह नया रूप देखा था । छलिया सब समझ रहा है, पर बात कैसी बना रहा है, जैसे बड़ा भोला हो !

'तू बड़ी पत्थर है वैसे ।' सुखराम ने अपने अक्ष्से कहा : 'तू समझती होगी, मैं कुछ समझ नहीं रहा हूँ और जान-अनजाने ही तेरी तरफ़ सब कुछ धकेल रहा हूँ । अरी मै सब समझता हूँ कि यह रोने-धोने किसके हैं । प्यारी की ओर जायेगी, बतरायेगी, पर तुझे तो एक बात है । मैं कुछ न कहूँ । और फिर मेरे लिये लौनी जाने कैसे हो जाती है । हे बिधना ! तिरिया-चरत्तर कौन समझे ! भला कोई बात है ! जिस ऊंट के नकेल डली होती है, वह भी राह के पेड़ों के पत्तों को खाता-चबाता जाता है, पर बेटा सुखराम, तुम्हें वह भी हक नहीं । चले जाओ सीधे । खबरदार जो कहीं इधर-उधर देखा, नहीं तो लाड़ी रोने बैठेगी ।'

[illegible]

वह सब दूर हो गया। वह जैसे कुछ हुआ ही नहीं था। अब रात और घनी हो गई थी, हवा चल रही थी। ऐसा लगता था जैसे कोई बड़ा मज़बूत लम्बा-चौड़ा आदमी बहुत कसे कपड़े पहने अपने अंगों को हिलाते में हांफ-सा रहा हो।

'दरद होता है ?' कजरी ने पूछा।

'सिर में नहीं है।'

'चंदन है अच्छा हकीम।'

'रूखड़ी जानता है वह।'

'और कंधे में पीर है ?'

'थोड़ी-थोड़ी।'

'तुम सोओगे नहीं।'

'अभी संझा बाद तो जगा हूँ।'

'पर तुम्हें ज्यादा बात नहीं करनी चाहिये। लोग कहते हैं।' कजरी ने कहा, जैसे उसे स्वयं इस बात पर विश्वास नहीं था। उसने स्वर बदलकर व्यंग से कहा : 'दई मारे पाँच थे।'

'कितने ही थे।'

'तुझे खबर न थी ?'

'मुझे शक तो हुआ था, लाठी ले ली थी !'

'फिर।'

'सबने हमला किया।'

'तो तुझे शक ही हुआ था तो उस बखत न आता तो कौन तेरी नाक कटी जाती थी !'

'तू क्या समझे, यह मर्दों की बात है।'

'अरे नहीं तू बड़ा मरद है। ऊंट पहाड़ के नीचे आया नहीं।'

'एक-एक करके आ जाते सामने।' सुखराम ने बिना सुने कहा।

'अच्छा तू दो-चार को मार डालता, फिर ?'

अब सुखराम उत्तर न दे सका। उसे यह बात अच्छी नहीं लगी। उसने विषयांतर किया। पर कजरी अप्रभावित रही।

सुखराम ने उस दिन की प्यारी और रुस्तमखाँ की बातें सुनाईं। कजरी ने सब सुना। और कहा : 'एक बात का वादा करेगा ?'

'क्या ?'

'तू करे तो कहूँ ।'

'पहले सुन तो लूं ।'

'अच्छा तौ तू अब मेरी पहले सुनके वचन भरैगा ? तुझे मुझ पर इतना भी विस्वास नहीं । मुझे कुछ नहीं कहना है ।'

सुखराम ने कहा : 'कजरी ! हम गरीब कमीन हैं । हम लोग कर भी क्या सकते हैं । सब कुछ हमसे अलग है । मैं यह सब क्यों सोचता हूँ, तू जानती है ?'

'नहीं ।'

'मैं अधूरे किले का मालिक हूँ ।'

करजी ने दूसरी बात को टाल दिया और कहा : 'तू होगा कमीन, मैं तो नहीं हूँ ।'

'नहीं कज़री । नहीं कहने से तो काम नहीं चल जाता ! गांव की ओर देख । किसान होता है ? गरीब है, भूखा है, पर उसे भी बौहरा उधार देता है, उसकी भी इज्जत है । हम सबसे गये-बीते, कुत्तों से भी बदतर हैं । हम नट क्यों हैं कजरी !'

'क्योंकि हमने नटनी के पेट से जनम लिया है ।'

'हमने ऊँची जातों में जनम क्यों न लिया ?'

'यह तो भाग की बात है ।'

'मानुस देह पायी है हमने, तो फिर हम पर इतने जुलम क्यों होते हैं ?'

कजरी ने कहा : 'जुलम ! किस पर नहीं होता ? पुलस पर, बौहरे पर, जमींदार पर ! बाकी किसे चैन है ? और जो जुलम करता है, वह कहता है, पेट के लिये करता हूँ, बीबी-बच्चों के हेत करता हूँ । सुखराम, दुनिया में पेट जुलम करता है । और जहाँ दो दाने इसमें पड़े तो देही गरमा जाती है, फिर तो उड़ने की सूझती है । जो कुछ है, ऐसा ही देखती आई हूँ । पहले भी ऐसा ही था । आगे भी ऐसा ही रहेगा । पता नहीं, यह सब क्यों होता है ? पर क्यों भी हो, कैसी भी हो, रहना है तो रहेंगे ही । मरद सब कुछ कर सकता है, औरत तो नहीं कर सकती ? तू अच्छा हो जा । हम परदेस चले चलेंगे । मुझे एक नया जूता चाहिये, यह वाला तो अच्छा नहीं है । मुझे कुर्री मिला था ! देख के हँसता था । कहता था : कजरी, मेरे बखत ऐसी जूती नहीं पहनी तूने, अब कैसे पहनती है ? मैंने कहा तू तो बेसरम था, अब मैं वैसी नहीं रही । वह

कहने लगा : भगवान ने सांप-बिच्छू-बघेर को जिसमें बसेरा दिया है, ऐसे हम जंगल हैं, उसीकी लकड़ी तू कुल्हाड़ी का बेंट बनेगी ?' मैं चली आई।'

कजरी उठी और मटके में से ढूंढकर कुछ लाई। उसने कुछ निकालकर कहा : 'ले।'

'क्या है ?'

'सिगरेट है।'

'तू लाई है ?'

'हाँ, आज दुपहर ले आई मैं।'

दोनों पीने लगे।

सुखराम ने कहा : 'तूने पहली रात पिलाई थी।'

कजरी शरमा गई। कहा : 'हाय तुझे सब याद है ! मैंने कहा न था तू तोता है, सब तुझे याद हो गया।'

मन हल्के हो गये।

'तू जा।' कजरी ने कहा।

और फिर सुखराम सो गया। कजरी उसे एकटक देखती रही। वह अब दूसरी सिगरेट पी रही थी। आज सिगरेट पीने मे मज़ा आ रहा था। वह ज़ोर से कश खींचती और ढेर-ढेर धूंआ ऊगल देती। सुखराम की आँखें बन्द थीं। भूरा डेरे के द्वार पर आकर बैठ गया था। वह जाग्रत था। कजरी पाटी के ऊपर हाथ धरे बैठी थी। घोड़ा शांत खड़ा था, सो गया था। उसकी कोई हलचल सुनाई नहीं दे रही थी। अन्धेरा आवाज़ करता था, डेरे पर भर्र-भर्र करता था, और फिर हवा भागने लगती थी।

सबेरे आँख खुली। सुखराम ने देखा, उजाला-सा हो गया था। पास के पेड़ पर चिड़िया चहचहा रही थी। समस्त वसुन्धरा पर आलोक का मंथर जागरण, एक नवीन स्फुरण भर रहा था। अब भूरा द्वार पर ही सो रहा था। घोड़े की खूंद प्रारम्भ हो गई थी क्योंकि मक्खी जग चुकी थी, जिसे वह पूंछ से उड़ाता था। सुखराम की चेतना लौटी। और उसने मुड़कर देखा। देखा तो आँखें टँगी रह गईं।

खाट की पाटी पर सिर धरे वह सो गई थी। कजरी वही उठँग गई थी। सुखराम ने जगाया नहीं। उसे लगा वह थक गई थी और वहीं झपकी ले गई थी। पर अधिक समय नहीं लगा। जैसे बगल में मां अपने बच्चे को लेकर सोते

में भी बच्चे की एक मामूली लम्बी सांस सुनकर ही जाग उठती है और एक बार चारों ओर देख लेती है, उसी प्रकार उस समय कजरी अपने आप जाग उठी और उसने आँखें खोल दीं। सुखराम को लगा जैसे कजरी की आँखें नहीं खुलीं, सूरजमुखी खुल गया था।

'तू सोई नहीं कजरी।'

कजरी ने एक अंगड़ाई ली और सशब्द मुख से ढेर-ढेर हवा छोड़ते हुए कुत्ते की तरह अंग-अंग को कुलबुलाया, आँखें मींड़ीं और फिर सिर ढंककर बैठ रही। और फिर जैसे उसे याद-सा आया, उसने सुखराम की ओर देखकर पूर्ण विश्वास दिलाने वाले स्वर में सिर हिलाकर मुस्कराते हुए कहा : 'क्यों क्या हुआ। मैं तो सोई। खूब सोई।'

वह फिर हँस दी। सुखराम को लगा वह दबा नहीं था, उठ गया था। वह खाट पर पड़ा था, पर कजरी की रात के जागरण में वह नींद के पर्दों के पार उतर गया था। वहाँ जहाँ केवल चेतना का अधिकार है, तन्मयता का ओज है।

कजरी मुस्करा रही थी। कितनी अतंद्र थी वह। निश्छल और मादक, पुलकित। उसकी पलकें भारी थीं। वह फिर भी स्फुरित थी। क्योंकि इकाई की सार्थकता उसके निजत्व में बिंदु बनकर उसकी अपनी आत्मस्वीकृति में नहीं है, वह है उसके सिंधुत्व में, उसके लय में, उसके महापद्म की-सी संख्या बनने में, जहाँ नील और शंख के व्यापकत्व के परे, दल इतने असीम हो जाते हैं कि उनका कहीं अंत ही नहीं होता। वे चाहे जितने बन सकते हैं, उनका सौंदर्य्य कभी भी समाप्त नहीं होता क्योंकि वे कितने भी क्यों न बन जायें उनकी पुनरावृत्ति उनकी कोमलता का प्रसार ही होती है।

'मैं बड़ा सुखी हूँ कजरी।' सुखराम ने विभोर स्वर में कहा। अब वह कुछ कहना नहीं चाहता। मनुष्य की यह संतृप्ति उसकी वेदना के कटकर गिरने पर होती है। एक उसका समाज-पक्ष है, एक व्यक्ति-पक्ष है। सुखराम का व्यक्ति इस समय समाज की समस्त विषमता में भी संबल का अभिमान कर रहा है।

'क्यों ?' कजरी पूछती रही।

क्यों का अर्थ है कि मैं जानती हूँ, तू मेरी ही बात मुझे फिर सुना दे क्योंकि मैं लहर हूँ, तू किनारा है, मुझे यह बता कि जब मैं तेरे पास आती हूँ, तब तू मुझे चाहता है या नहीं ?

सुखराम ने गम्भीर स्वर से कहा : 'मैं क्या कहूँ, मैं नहीं जानता, कुछ

नहीं जानता। मुझे तू मिली है। बस और कुछ नहीं ?'

अभिलाषा का अंत अपनी पूर्णता में नहीं है, वह तो आदान-प्रदान से आता है। यह संसार मूलतः यातना नहीं है, दुख नहीं है। वह तो एक बड़ी सुन्दर रचना है, जो दिन-दिन निखार लाती चली जा रही है। जैसे शैशव से यौवन तक सुन्दरता का विकास होता है, यह सब वैसा ही है। इसमें यातना बनाई है मनुष्य की विषमता ने। इस संसार में प्रकृति जो दुख लाती है, वह बार-बार सुख की पूर्णता को विकसित करने के लिये। किन्तु मनुष्य ने इस तरह अपने को बन्धन में बांध लिया है कि वह प्रकृति के संहार को अभी तक अपने मनोरम चित्र के अनुकूल बनाने का समय ही नहीं पा सका है। यहाँ माँ बेटे पर जीवन वार कर उसे मनुष्य बनाती है। वह स्नेह किसने तोड़ने की शपथ खाई और कौन उसमें सफल हो सका, यह सारा संसार अपने आधार रूप में प्रेम है, आकर्षण है, नवीन सृजन है। उसीके न होने पर यहाँ अभावात्मकता की अनुभूति जाग्रत होती है।

कजरी ने कहा : 'मैं रात कहते-कहते भूल गई थी। वचन दे कि तू लड़ाई, मार-काट नहीं करेगा। सच, मुझे वह सब भाता नहीं।'

'मैं जानकर तो कुछ नहीं करता ?'

'जानती हूँ। पर उनसे बचकर रहें तो कैसा हो ?'

'उनसे बचकर कोई रह सका है ?'

कजरी चिन्ता में पड़ गई। कुछ देर बाद उठकर वह जंगल चली गई। सुखराम उठकर बैठ गया। अभी तक जोड़-जोड़ दुखता था। पर कल का-सा नहीं। उठकर चला। अरे वह तो चल लेता है। तब क्या डर है ? दूर कजरी आती हुई लगी। जल्दी से खाट पर आ लेटा। वह देखेगी कि चल रहा है तो ताना कसेगी कि चल दिया क्या। बुरा मानेगी। बीमारी और अशक्ति में मनुष्य चाहता है कोई उसकी सेवा किया करे। उससे सहानुभूति दिखाया करे।

कजरी डेरे में घुसी तो उसके हाथ में हिरनी का छोटा-सा बच्चा था।

'बड़ी मुसकिल से पकड़कर लाई हूँ।' कजरी ने कहा।

'अरे यह तो ज़िन्दा है।' सुखराम ने कहा। वह उठ बैठा। अचानक द्वार पर देखा। हिरनी खड़ी थी। निर्भय भी थी, अपने लिये। शंकित थी, अपने छौने के लिये। उसकी आँखें बड़ी-बड़ी, निर्मल, गहरी और अटूट वेदना की अनुरक्ति का उनमें उजागर सम्मोहन ! कितनी याचना है उनमें, वह जैसे पशु

नहीं है; ममता का मानवीय रूप उन आँखों में जीवंत है, वह सृष्टि के मूल आकर्षण का प्रतीक बनकर भाषा के परे अभिव्यक्त हो रहा है । हृदय तक पहुँचने वाली अव्यक्त ध्वनि जैसे गहन अतलांत में से अखण्ड होकर उठ रही है। वह निर्धूम गरिमा साधनाओं की युगांत व्यापी समाधि का अन्तिम जयलाभ है, जो आज समस्त यातनाओं का तपःपूत स्वरूप है । वह दोनों हाथ खोलकर पुकार उठने वाली तन्मयता है जो पूछ रही है कि संसार में यह अपहरण की निष्ठुरता किसलिये सृजन की चेतना पर कुठाराघात करती चली आ रही है। दूर-दूर तक महकते हुए कुसुमों के पराग पर उड़ने वाले भौंरों की लोलुपता को देखकर जैसे वसंतश्री अपनी अनिंद्य महिमा में नतशिर होकर पूछ उठी है कि तुम क्यों आज अपनी सत्ता की विषमता को भूल नहीं जाते ? हृदय का उद्वेग अदम्य समर्पण हो गया है, बलिदान की गाथा आज जैसे जौहर की लपटों से सुहागिनों के मंगल-गीत वापिस मांग रही है, और समस्त व्यवधानों के परे जननी अपनी ममता के लिये महाकाल के सामने ऐसे देख उठी है, जैसे एक दिन सावित्री ने सत्यवान को ले जाते हुए महिषारोही यम को रोक दिया था ।

'छोड़ दे इसे कजरी ।' सुखराम ने दीन स्वर से कहा । वह उस हिरनी की आँखों की तरफ़ देखने में असमर्थ हो गया था । कितनी भींगी हुई करुणा थी उनमें ! कितना अजस्र उफान-भरा स्नेह था उन पुतलियों में । जिनमें से उसका मन आर-पार दीख रहा था ।

'क्यों ?' कजरी ने कहा । वह चौंक उठी थी : 'बड़ी मुसकिल से तो पकड़ाई में आया है । इसकी खाल बेच दूँगी । और बड़ा अच्छा रहेगा यह तेरे लिये ।'

'देख ! इसकी मां आई है !' सुखराम ने उसकी बात न सुनते हुए कहा । कजरी ने मुड़कर देखा । हिरनी खड़ी थी । उस समय हिरनी ने कजरी की आँखों में देखा । स्त्री, शाश्वत जननी, को दूसरी शाश्वत जननी, महामाता ने देखा ।

कजरी ने बच्चा छोड़ दिया । बच्चा डरा हुआ-सा था । वह बढ़ा और माँ के पास चला गया । फिर उसने शरीर फरफराया, जैसे दासता के स्पर्शों को हवा में बहाये दे रहा हो । हिरनी ने अपने बच्चे को सूंघा । वह सकुशल था । हिरनी को विश्वास हो गया । बच्चा फिर जैसे सशक्त हो गया । सुखराम चुप देखता रहा । कजरी को बड़ा अच्छा लगा, वह माँ-बेटे का मिलन कितना

सन्तोषी था, कितना पूर्ण था ! ऐसे ही अनेक खण्ड-पूर्णों की पुनरावृत्ति से एक पूर्ण बनता है, जो अपने भीतर समस्त सुख को आत्मसात कर लेने की चरम सामर्थ्य रखता है।

हिरनी बढ़ आई। बच्चा उसके साथ था। अब जैसे दोनों को कोई डर नहीं था। कजरी समझ नहीं सकी। सुखराम अवाक् था। अब यह भाग क्यों नहीं जाती ? अब तो इसे पकड़कर नहीं रखा है। वह बड़ी-बड़ी काली आँखों से देखती हिरनी एक-एक पग धरती पास आ रही है। उसके नेत्रों में विश्वास के नक्षत्र जग उठे हैं, जैसे अन्धेरे आकाश में तूफान के पथ-प्रदर्शक काले मेघों को फाड़कर निकल आये हों।

उसने कजरी का हाथ चाटा। कृतज्ञता ! यह वाणी के क्षुद्र बन्धनों में नहीं पड़ी है। यह चेतना का चेतना से वार्त्तालाप है। सृष्टि की आत्मा का संवेदन है। अब भय कैसा ! अब जैसे दोनों एक दूसरे के पास आ गये हैं, इतने पास कि दोनों के व्यवधान दूर हो गये हैं। अज्ञान, ईर्ष्या और हिंसा का ही भय था, वह स्नेह के द्वारा ऐसे दूर हो गया है, जैसे अन्धेरे घर में किसीने अपने हृदय में स्नेह के बल पर आग लगाकर उजाला कर दिया हो।

कजरी रो पड़ी। और यह आँसू कितनी करुणा और आनन्द का सम्मिश्रण लिए हुए हैं। दोनों ओर की तन्मयता एक हो गई है ! राग से रागिनी मिलकर झूमने लगी है, यह अमर संगीत के प्रवहमान मुखरित आनन्द का प्रारम्भ है, कजरी की आँखों से बहते हुए आँसू कितने हर्षों के कलों को अपने भीतर समाये हुए हैं। और हिरनी कितनी तन्मय, मुग्ध, अपने आपको भूली हुई खड़ी है। सुखराम देख रहा है, उसे लग रहा है जैसे यह दुनिया कोई और है, जिसमें सुख ही सुख है, प्रेम ही प्रेम है, यह सब कितना अच्छा है, कितना कोमल है और इसमें कितनी अधिक शक्ति है।

सुखराम ने कहा : 'देखती है। दया से दुनिया मिलती है। जिनावर है।'

वह और कुछ कह नहीं सका। कजरी ने मुड़कर उसकी ओर देखा और आँखें पोंछ लीं। वह मुस्करा दी।

कहा : 'बिचारी !'

हिरनी चली गई थी।

आज एक नयी बात हो गयी थी। सुखराम कजरी और हिरनी की आँखों के बारे में सोच रहा था।

कजरी चिन्ता में पड़ गई थी। सुखराम ने देखा हिरनी धीरे-धीरे जंगल के छोर पर पहुँच गई थी और वहाँ से कुलाँच मारकर भीतर पेड़ों में छिप गई। पर कजरी चुप बैठी रही।

'क्या हुआ ?' सुखराम ने पूछा।

'एक बात सोचती हूँ !' कजरी ने कहा।

'क्या भला ?'

'तू तो बनिया की-सी बात करता है ?'

सुखराम हँसा। उसके हास्य में व्यंग्य था।

'क्यों !' कजरी ने पूछा।

'तू मुझसे पूछती है कजरी', सुखराम ने हाथ हिलाकर व्यंग्य से कहा : 'बनिया पानी छानकर पीता है बावरी, पर लहू अनछाणा पीता है।'

दोनों हँसे। उनकी आवाज़ सुनकर घोड़ा हिनहिनाया।

'घास डाल आई ?'

'अरे मैं तो भूल ही आई !'

'देख बुला रहा है।'

'तू ऐसी दया की बात करता है। हम फिर खायेंगे क्या ?'

'तूने भी तो दया की थी !'

'क्या करूँ ! उसकी आँख देख मैं डर गयी। जैसे कह रही थी कि तू क्या माँ न बनेगी !'

'सब भगवान देखेगा बावरी।' सुखराम ने कहा।

कजरी ने पूछा : 'भगवान यही देखेगा कि बाँके और उसके साथियों को भी देखेगा !'

'उनको मैं जो देखूंगा।'

'तुझे कसम है मेरी, जो फिर गया।'

सुखराम हँसा। कजरी चिढ़ी हुई-सी चली गई।

लौटी तो बटेर मार लाई।

आग सुलगाकर भूनी।

इस समय दया किसीको नहीं थी। न ऐसा कोई सवाल उठ रहा था, न कोई शंका ही थी।

कजरी कह रही थी : 'रामा की बहू मंगू के साथ बजार गई है। मुझसे

मिलकर ही नहीं गई। सारे डेरों में खामोशी है।'

'क्यों ?'

'आज मेला है न पहाड़ी पर।'

'हम चलते तो कमा लाते।'

'जरा सकल तो देख ले शीशे में !'

'मैंने क्या ये कहा कि अभी चली चल !'

कजरी नौन ले आई।

कहा : 'खा ले।'

सुखराम ने खाई। पूछा : 'तू खायेगी नहीं ?'

'तू पहले खाले।' कजरी ने कहा।

सुखराम ने खाकर कहा : 'बड़ी स्वाद की है।'

और हाथ पकड़कर कजरी को बिठा लिया और कहा : 'तू भी खा ले। तुझे सौगंध है।'

दोनों ने खाई। पानी पिया। फिर सन्तोष से आँखें नचाईं। और दोनों ने तृप्ति के अन्तिम प्रदर्शन के रूप में उंगलियाँ चाटीं और फिर उपसंहार स्वरूप दोनों ने डकार ली। दोनों हँसे।

इसी समय बाहर खड़-खड़ हुई।

'अरे कौन है ?' सुखराम ने कहा।

'मैं हूँ उस्ताद। मजा आ गया।' बाहर से आवाज़ आई। कजरी ने कहा : 'वही है।'

मंगू आया। बोला : 'बजार में बड़ा शोर है।'

'क्यों ?'

'ऐसी खबर उड़ रही है कि···'

कजरी ने चिढ़कर कहा : 'अच्छा पहले भोंक ले, फिर बता दीजो।'

मंगू बोला : 'लुगाई में अकल नहीं होती, सुखराम ! तूने इसे बहुत सिर चढ़ा रखा है। मैं होता तो जूती के नीचे दबा के रखता।'

कजरी ने कहा : 'निकल यहाँ से चल।'

'क्या हुआ ?' मंगू ने हँसकर कहा : 'सुन तो काली मैया।'

सब हँस दिये।

'क्या हुआ क्या ?' कजरी ने पूछा।

'मजा आ गया।' मंगू ने कहा : 'बाँके मारा गया।'

'मारा गया !!' दोनों चौंके।

'पता नहीं चला अभी।' मंगू ने कहा : 'किसने मारा यह नहीं पता।'

'तो क्या खून कर दिया ?' सुखराम ने कहा।

'अजी नहीं। वह क्या सहज मरेगा ?'

'तो झगड़ा हुआ होगा ?'

'मरा तो पहले ही था।'

'वह लड़ा भी क्या होगा। क्या कहते हैं लोग ?'

'बाँके को किसीने छुरी गोद दी।'

कजरी ने सुना तो आँखें फट गईं। और आश्चर्य से मिला हुआ कौतूहल अब जाग उठा। पूछा : 'फिर ?'

'फिर कुछ नहीं मालूम।'

'तूने पूछा नहीं ?'

'पूछता किससे ?'

'पुलस में सनसनी होगी ?'

'मुझे लगी नहीं।'

'बाँके को पुलिस से जाहिर रिश्ता क्या ? वह तो रुस्तमखाँ का आदमी है। वह खुद बीमार पड़ा है।' सुखराम ने कहा।

मंगू ने पूछा : 'कैसी तबियत है।'

'ठीक है।'

'शाबास उस्ताद ! मैं होता तो कभी का सुरग चला गया होता !'

कजरी खिलखिल हँसी।

'क्यों ?' मंगू चिढ़ा।

'तू और सुरग जायेगा ?' कजरी ने हाथ उठाकर कहा।

'तू तो जायेगी ?' उसने व्यंग किया।

पर कजरी हारी नहीं। कहा : 'जहाँ ये (सुखराम) जायेगा वहाँ मैं जाऊंगी।'

'ओक्खो !' मंगू ने कहा—'देखा उस्ताद ! कैसी पँडाइन की-सी बतरा रही है। नटिनी ठहरी सुरग जायेगी !'

'क्यों ?' सुखराम ने कहा—'अजामिल सुरग गया था, ब्याध गया था, तो मंगू क्यों नहीं जा सकता ?'

'देखो उस्ताद ! फिर तुम लुगाई की तरफ़ बोलने लगे। जादू ही ऐसा होता है।'

'तभी तो,' कजरी ने कहा : 'सबेरे-सबेरे बजार गया ले के उसे ! रात जूती लगाई होगी उसने, यह ला दे, वो ला दे। पूछ, मैं कभी इससे कुछ कहती हूँ।'

सुखराम ने कहा : 'अब बता दूँ कजरी !'

'अरे चुप रह तू !' कजरी ने कहा : 'अब उधर मिल गया।'

यों दिल्लगी होती रही। जब मंगू चला गया तो कजरी ने कहा : 'तूने सुना !'

'क्या ?'

'बाँके को किसीने गोद दिया।'

'हाँ।'

'समझा कुछ ?'

'नहीं तो !'

'गधा कहीं का। यह काम मेरी सौत का है।'

'तुझे कैसे मालूम ?'

'मैं नटिनी हूँ। नटिनी की जात मुझसे पहँचानी न जायेगी ?'

'यह हो सकता है ?' सुखराम नें अविश्वास से कहा। उसे जैसे छोर पकड़ने में देर लगी। फिर वह रुका और कहा : 'तो वह मुझे चाहती है कजरी ?'

'अरे तो अहसान करती है कुछ ? मरद अच्छा हो तो लुगाई की चाकरी देख के भी कोई अचरज करता होगा ?'

'तेरी कसम, तुम दोनों लड़ोगी तो बहुत।'

'अच्छा !!' कजरी ने कहा : 'मैं ही तो लड़ाका हूँ।'

'वह क्या कम है तुझसे ?'

'दारी क्या ठहरेगी मेरे सामने।'

'यही तो कहता हूँ मैं भी।'

कजरी रूठी।

'क्या बात हुई ?' सुखराम ने कहा।

'मेरे तो करम फूटे।'

'क्यों ?'

'तेरी तो मुझे थाह ही नहीं मिली।'

'लड़ती रहना। मुझे तो चुप रहने में लाभ है।'

'अरे जा।' कजरी ने कहा : 'धिक तुझे ! तू बैठ के लड्डू खायेगा जो तुझसे दो भी न दबेंगी !'

'मेरे बाबा के पांच थीं।'

१८

बाँके गुस्से से भरा हुआ था। आज उसका अभिमान चूर-चूर हो गया था। आज तक कभी ऐसा नहीं हुआ था। लोग उससे दबते थे। वह भयानक आदमी समझा जाता था। उससे एक बार रूपा दरजी अकड़ा था तो उसने उसकी टाँगें तुड़वा दी थीं। बाद में मुकद्दमा चला। बाँके साफ़ बच गया। उसकी उस्तादी से उस पर जुर्म साबित करने वाले गवाह ही डर के कारण जो कहना चाहते थे उससे उल्टी बात कर गये थे। उसका प्रभाव था क्योंकि वह पुलिस के पालतू लोगों में था, जिनके ज़रिये पुलिस के पच्चीस काम चलते थे। बाँके उन आदमियों में था जो जूते के बल पर दबते थे और अपनी कमज़ोरी का बदला दूसरे की कमज़ोरियों से चुकाता था। वह खून-कमीन था। इस समय की पिटाई ने उसकी हरमज़दगी के सांप को फुफकारों से भर दिया।

वह सीधा रुस्तमखाँ के पास पहुँचा। उसे और कहाँ जाने की सूझती। सीधा तर्क था। उसकी राय में सुखराम का संबंध प्यारी से था। और प्यारी के लिये रुस्तमखाँ ज़िम्मेदार था। और यह उसकी राय में रुस्तमखाँ की ज्यादती की हद थी कि उसकी ऐयाशी के नतीजे में वह एक करनट और चमारों से पिटे, सारा गांव उसके मुँह पर थूके ! जिसके नाम से सब लोग, बड़े कहलाने वाले लोग, रास्ता काट जायें, उसे इन नीचों से मुँह की खानी पड़े ? उसका मन कर रहा था कि किसी तरह वह सुखराम को कुचल कर रख दे। एक-एक चमार की खाल उधेड़वाकर, चमरियों से ज़िना करे और उनके घरों में आग लगवाकर तूफ़ान चलाये।

रुस्तमखाँ लेटा था। उस समय उसने आँखें बन्द कर रखी थीं और शिथिलकाय पड़ा-पड़ा वह कुछ सोच रहा था। बीमारी में मनुष्य का हृदय

दृढ़ नहीं होता। वह तरह-तरह की कल्पनाएं किया करता है। और भय उसमें बढ़ जाता है क्योंकि रोग उससे लड़ता है और उसकी सारी शक्ति रोग से लड़ते-लड़ते ही समाप्त हो जाती है, बाकी वह सुख के भविष्य के विषय में लगा देता है।

बुखार उतर गया था। इससे उसको सुकून था, मगर सुस्ती और भी ज्यादा थी। और सारे दर्दों के इस समय शान्त हो जाने से उसमें एक उदासी की जगह, एक विश्रांति की भावना थी। वह चादर ओढ़कर चुपचाप लेटा था। चारों तरफ सन्नाटा था। शाम आ रही थी। दिया तक नहीं जला था। अभी-अभी वह भीतर आया था क्योंकि प्यारी से मिलकर कोई चली गई थी। वह जाने कौन औरत थी। कमज़ोरी व्याप रही थी। अतः वह अपने अपमान पर अधिक ध्यान नहीं दे पा रहा था।

प्यारी ने दिया जलाया। उसे फिर कमज़ोरी लग रही थी। वह कोठे में जाकर पड़ रही। एकदम ठंड-सी लगने लगी। पहले तो लगा अब दम ही कलेजे में आकर इकट्ठा हो गया है, पर धीरे-धीरे उसकी हालत सुधरने लगी।

रात हो गई थी। अब अंधेरा कोठों के भीतर से निकलकर आंगन में आ गया और न जाने कहाँ से अब बाहर भी ढेर-ढेर इकट्ठा हो गया था। प्यारी के हाथ का पौरी में रखा दीपक उस सारे अंधेरे को टिमटिमाकर देख लेता और अपने भीतर से निकलती रोशनी की हल्की चादर को फैलाता-सा, सिमेटता-सा, खुद कांपने लगता। बाहर के रास्ते पर अब लोगों की चहल-पहल कम होती जाती थी।

प्यारी को अभी हरारत थी। नीचे आवाज़ सुनी।

'बाँके !'

'उस्ताद !!' और फिर फफकने की आवाज़ गूंजी।

'अबे क्या हुआ !!'

फिर कोई रो उठा।

प्यारी ने सुना तो आ गई।

बाँके उसे देखकर रोना भूल गया। उसे अपने ऊपर लज्जा हुई। एक औरत के सामने रोना उसे मंज़ूर नहीं था।

'क्या हुआ ?' प्यारी ने पूछा।

'कुछ नहीं', रुस्तमखाँ ने उसे टालने को कहा। पर बाँके के लिये यह विष

हो गया। उसने चिढ़कर कहा : 'कुछ नहीं ! मैं इत्ता कह गया और तुम्हारे मुँह से निकला है कुछ नहीं !!'

'रो साले ! औरत के सामने रो !' रुस्तमखाँ ने कहा।

प्यारी मुस्कराई। कहा : 'बता मुझे तू। क्या बात हुई ?'

बाँके ने कहा : 'तेरा वह है न ?'

'मेरा कौन है ?'

'खसम तेरा !'

प्यारी व्यंग्य से रुस्तमखाँ की ओर देखकर हँस दी।

रुस्तमखाँ के आग लग गई। डांटके बोला : 'ठीक से बोल बाँके !'

'अब तुम भी फिर गये मुझसे उस्ताद !' बाँके ने घृणा से मुख विकृत करके कहा। जैसे इससे बड़ा विश्वासघात कोई नहीं हो सकता !

'क्यों भला !' प्यारी ने कहा : 'तू जुए की नाल लाये, रूपोली कोरिन पै तैंने फंद डाला तो गँडसे की चोट मार गई जालिम। तू सात दिन कराहता रहा। समरत अहीर की भैंस लेके दूध पी-पी के तूने लौटाने की बात की, तो याद है न तेरे मुँह में धूल भर दी थी उसने ! गोरखी माली की बहन पै तैंने हाथ उठाया था तो वह जूते खाये कि तू लोटन कबूतर हो गया था। पिट के आया है मिट्टी के शेर !'

'मैं तेरा क़तल कर दूँगा !' बाँके ने फूत्कार किया।

प्यारी हँसी। कहा : 'कतल कर दूँगा। अभी दो-चार करके आ रहा है न ?'

'मालूम है सुखराम को मैंने किनारे लगा दिया।'

उस समय रुस्तमखाँ समझा यह रोयेगी। पर वह हँसी और कहा : 'उसे किनारे लगा आया तो यहाँ आके क्यों मझधार में डूब गया ? तू तो कमीना कुत्ता है, कुत्तिया का जाया !'

'देखो उस्ताद !' बाँके चिल्लाया।

रुस्तमखाँ ने कहा : 'साले अब क्यों घिघियाता है। मैंने पहले ही कहा था भौंके मत। तब तो साला भेड़िया बन गया था गीदड़ ! औरत से शेखी बघारता है और वहाँ साला रोके भागा है। और फिर जब तू मार ही आया तो यहाँ क्यों रोया आकर, क्या तेरा यहाँ कोई बाप मर गया था !'

'कौन जाने !' प्यारी ने मुस्कराकर कहा।

'तू कहाँ था !' रुस्तमखाँ ने कहा।

'मैं···मैं···' बाँके अटका।

'अब फिर मर गई नानी।' प्यारी ने कहा।

'तू क्यों···' बाँके ने कहा।

'अब मैं नहीं बोलूँगी कबूतरी के।' प्यारी ने कहा : 'कुछ कहेगा कि यों ही गुटरगूं करता रहेगा।'

रुस्तमखाँ ठठाकर हँसा।

प्यारी ने कहा : 'अच्छा तू जा रहा था।'

'फिर ?' रुस्तमखाँ ने कहा।

'फिर हम सबने घेरा, उस्ताद !' बाँके ने कहा : 'पकड़ के साले को मारा !'

'तू अकेला था ?'

'नहीं हम कई थे।'

'वह अकेला था ?'

'हाँ उस्ताद।'

'फिर ?'

'मारा उसे।'

'फिर रोता क्यों है ?'

प्यारी ने कहा : 'सांड है तो क्या, है तो गौ का पूत।'

'चमारों ने दग़ा की वर्ना उसकी तरफ़ से क्या डर था ? उसे तो हम मार ही चुके थे। उन्होंने घेर लिया। लट्ठबंद थे, और कई थे। धूपो ने मेरे मुंह में मिट्टी भरवा दी।'

उसकी आँखों से चिन्गारियाँ निकलने लगीं। प्यारी मुस्करा दी। पर इस समय वे दोनों नहीं देख सके।

'बड़ी हिम्मत हुई है उनकी ?' रुस्तमखाँ ने कहा।

उसके स्वर में आशंका थी। पर वह जैसे सोच नहीं पा रहा था।

प्यारी ने पूछा : 'धूपो के इशारे पर वे लोग थे ?'

बाँके ने कहा : 'धूपो ने सुखराम को बीरन कहा और उसका बदला लेने को लोगों को उकसाया।'

प्यारी को धूपो पर गुस्सा था। पर अब वह बाँके को देखकर गल गया था। इस समय धूपो के प्रति उसमें स्नेह जाग उठा। वैसा ही जैसे अपनी नन्द को मुसीबत में देखकर अच्छे हृदय की स्त्री में उत्पन्न होता है। वह कल्पना

करने लगी। सुखराम को उसने बीरन कहा। आखिर क्यों ? क्योंकि सुखराम ने उसे अपना ज़रूर कहा होगा ! देखे की बात जो है कि सुखराम ने धूपो को बांके से पिटते हुए छुड़ाया था।

बाँके ने सुखराम का खून बहाया था ! यह प्यारी के भीतर भरने लगा। कजरी से की हुई बातें अब याद आने लगीं। उसने कहा था कि प्यारी को बदला लेना है। पर वह बदला कैसे ले सकेगी ? इसने सुखराम के ऊपर हमला किया था। उस तरफ़ तो जैसे इसका ध्यान ही नहीं, न रुस्तमखाँ ने इस बात पर ध्यान दिया कि यह भी बुरा था।

क्या वह इसे छोड़ देगी ?

क्या वह बाँके को छोड़ देगी ?

नहीं !!

शब्द फिर टकराया नहीं, नहीं !

प्रतिशोध लेना होगा। आँखो में चित्र दौड़ने लगे। दूर से कल्पना दिखाने लगी। सुखराम बेहोश था। वह आगे की बात तो नहीं जानती थी। कजरी की बात याद थी कि ख़तरा नहीं है। वही तो एक संबल था। वही तो उसको ढांढस दिये हुए था। और उसीके बल पर अब तक वह बाँके को छेड़ती रही है। सुखराम का खून बह गया है। वह जंगल में निराश्रित एक स्त्री के सहारे पड़ा है और यहाँ यह भेड़िये फिर खूनी साज़िश कर रहे हैं ! क्या यह इन्सानियत है ? नहीं नहीं·····

प्यारी को चक्कर-सा आ गया। किवाड़ पकड़ लिया, पर उसने शीघ्र ही अपने को संभाल लिया। इस बीच में वे लोग अपनी बातों में लगे रहे अतः उसके मन की बात को वे लोग समझ नहीं सके। रुस्तमखाँ ने मुड़कर कहा : 'अरी तू सो क्यों नहीं जाती जाकर, थक जायेगी।'

'चली जाऊंगी।' उसने कहा।

'तू अब चाहता क्या है ?' रुस्तमखाँ ने पूछा।

बाँके ने सिर पकड़ लिया। फिर पूछा : 'यह मुझे ही बताना पड़ेगा ?'

'नहीं तो अब मुझे इलहाम होगा ?'

'कह ही दूं।'

'तू कहे तो पहले शीरनी बँटवा दूं।'

'छेड़ लो उस्ताद। वक्त की बात है।'

'अबे कौन-सा वक्त तेरा था जो हमारा न था। अलबत्ता ये बता कि जो हमारा वक्त था, वह क्यों हमेशा तेरा बनके रहा था ?'

'मैं बहस नहीं करता, सुखराम को हथकड़ी डलवा दो।'

रुस्तमखाँ ने प्यारी की तरफ़ देखा। वह देखना उसकी चाल थी। वह खुद इस समय इस विचार से सहमत नहीं था क्योंकि सुखराम उसका इलाज कर रहा था और सुखराम की मृत्यु का अर्थ था अंततोगत्वा उसकी अपनी मृत्यु, और वह भी तड़प-तड़पकर। इस समय उसे पहले के मुकाबले में चैन भी था।

प्यारी ने कहा : 'मुझे क्या देखते हो ?'

'तू बता। यह क्या कहता है ?'

'यह कहता है, तुम सुनते हो।'

'पर मैं तुझसे पूछता हूँ।'

'मैं तो रोकती नहीं, पर न्याब की बात करो।'

'वह क्या ?'

प्यारी ने बाँके की ओर देखा और पूछा : 'तूने हमला किया था ?'

'किया था।' बाँके ने कहा।

'फिर ?'

बाँके कह नहीं सका।

प्यारी ने ही पूछा : 'तू अकेला नहीं था न ?'

'नहीं।'

'तूने तो अपना ज़ोर उस पर अजमा लिया।'

'हाँ।'

'फिर ?'

बाँके दूसरी बार इस फिर का उत्तर नहीं दे सका।

प्यारी ने पूछा : 'सुखराम घायल हुआ।'

'हुआ,' बाँके ने कहा।

'फिर क्यों उससे बदला चाहता है ?'

'मैं भी तो घायल हुआ हूँ।'

'तो तू क्या जानता नहीं है कि तू पहाड़ से टकरा रहा है ?'

'उसे बता दिया आज।'

'तो अब तेरी चूड़ी क्यों खनक रही है जो घिग्घी बाँध के हिमायती के पास आकर दुम हिला रहा है ?'

प्यारी का तर्क था। गाँव में बहस इसे ही कहते हैं। पर बाँके भी गाँव-वाला था। उसने उसी परम्परा में अपनी बात को ही बेमतलब ही सही, पर बार-बार कहकर उसी पर अड़े रहने की टेक सीखी थी, वह कह उठा—

'पर सुखराम ने तो मुझे मारा !'

'बराबर की हो गई।' रुस्तमखाँ ने फैसला दिया।

'सो कैसे उस्ताद !' बाँके ने पूछा।

बात बिल्कुल साफ़ थी। पर बाँके की राय में बराबर की बात तब होती, जब उसकी मूंछ ऊपर ही उठी रह जाती।

प्यारी को और कुछ तो सूझा नहीं। उसे तो केवल अपने सुखराम की रक्षा का ध्यान था। सो उसने उसे बहुमत से भिड़ाकर अटका देने में ही कल्याण समझा। कहा : 'चमारों ने अड़ंगा डाला। उनसे बदला ले।'

'बस !' बाँके ने कहा।

'और उनसे पूछ।' प्यारी ने कहा।

रुस्तमखाँ तैयार नहीं था। उसने बात टालने को ही कहा : 'अरे तेरी आँख में भी चोट आई है ?'

बाँके ने आँख पर हाथ रखा। इतनी सूजी थी कि बंद हो गई थी। बांया हाथ दरद कर रहा था। अंग-अंग में अब दरद महसूस हुआ। अब तक वह जोश में था, अतः क्रोध ने उसे पागल बना दिया था। पर एक बात ने उसे वस्तु-स्थिति का परिचय करा दिया। और जितनी ही उसने अशक्ति अनुभव की, उतनी ही उसकी खीझ बढ़ती गई।

उसने कहा : 'तो बोलो उस्ताद !'

रुस्तमखाँ कुछ कहना चाह कर भी जल्दी से सोच नहीं पाया। उसे सोचते देखकर बाँके को गुस्सा आया।

क्षण भर रुक रुस्तमखाँ ने कहा : 'ठीक है। प्यारी ठीक कहती है। तू ऐसा ही कर।'

बाँके ने कहा : 'तो उस्ताद ! तुम्हारे लिये मैंने इतने करम किये ?' उनका बदला यह मिला ! मैंने तुम्हारे लिए नजीरखाँ की बेवा बहिन को फँसाया,

तुम्हारी ख़ातिर मैंने उसका हमल गिरवाया, तुम्हारे वास्ते मैंने उसके बच्चे को ठिकाने लगाया !'

प्यारी ने आँख फाड़कर पापों को सुना। रुस्तमखाँ का चेहरा सफ़ेद पड़ गया। पर बाँके आवेश में कहे जा रहा था : 'तुम्हारे हुकम पर मैंने चरनसिंह ठाकुर के घर में सेंध लगाई, तुम्हारी बात का मोल समझकर मैंने जुए के अड्डों से रुपया वसीला, तुम्हारी एक निगाह के लिये कलार भीकम की तिजोरी को तोड़ा।'

बाँके आवेश में था। उसने फिर कहा : 'जिसने तुम्हारे लिए गोला गूजर के घर में कमल चौधरी की भैंस बांधकर उसकी चोरी की झूठी गवाही दी और उसकी हवालात में जाकर उसके बदन पर बूरे का पानी छिड़का और चीटों से उसे कटवाया, जिसने रात-रात भर इस बात की चौकीदारी में गुज़ार दी कि तुम पराई औरतों के संग छिनाला कर सको, जिसने तुम्हारे लिए मनसुखलाल किसान के भरे खलिहान में आग लगा दी और जिसके बच्चे तड़प-तडपकर भीख मांगते रहे, जिसने चमारों की हाट में तुम्हारे लिये लूट मचवा दी क्योंकि चमारों ने तुम्हें रिश्वत देने से इंकार किया था, तुम उसीको आज यह थोथा जवाब दे रहे हो !'

रुस्तम गुस्से से काँप रहा था। प्यारी आश्चर्य से देख रही थी। और रुस्तमखाँ चिल्लाया : 'ख़बरदार जो बोला। साले बड़ा सिंहजी बनता है ! हलक में हाथ डालकर ज़बान खिंचवा लूंगा कमीने कुत्ते ! ज़रा-सी तपिश पाते ही भाफ की तरह भड़क उट्ठा ! हरामज़ादा सूहर का बच्चा। आज तक तैंने जो बद-माशियां की हैं उनसे तेरी हिफाज़त की ! मैंने कि तेरी अम्मा के किसी यार ने ? अहसानफ़रामोश ! नाली के गंदे कीड़े ! मैं न होता तो तू जेल में चक्की पीस-पीसकर दुहरा हो गया होता। आज जो हाथ उठा-उठाकर तू मेरे सामने बोल सका है, इन हाथों में पटसन बँटते-बँटते गट्ठे पड़ गये होते !'

वह अपनी आवाज़ चढ़ाकर उसे दबा चुका था। उसका दूसरा ध्येय था प्यारी पर अपनी शराफ़त की झिल्ली चढ़ाना। पर प्यारी का मन घृणा से तिक्त, महातिक्त हो चुका था। इस समय उसने बहुत ही चतुराई से कहा : 'क्यों इस दोगले के मुंह लगते हो ? यह क्या है जो इसे तुमने कुत्ते की पूंछ की तरह नहीं समझा ! बीमार हो। आराम करो। यह तो असल में तुम्हारा दुश्मन है। चाहता है तुम बीमारी में ही काम करो और फिर पड़ रहो। ताकि इसका

मुझ पर दाँव चल जाये। मैं कहती थी जाने दो, जाने दो। आज कहती हूँ, इससे कह दो, मुझे अगर इसने बुरी नीयत से कभी अकेले में देखा तो अच्छा न होगा।'

रुस्तमखाँ पागल-सा उठ खड़ा हुआ।

उसने कहा : 'क्यों बे ! ये बात है ? तूने सोचा होगा कि यह तो बीमार है ही, और सुखराम जेल में पहुँच जाये, फिर प्यारी मेरी है ?'

उसने एक लात बाँके के घायल हाथ में दी, बाँके चिल्लाकर गिर गया। वह रोने लगा। प्यारी नें रुस्तमखाँ को पकड़ा और कहा : 'मैं कहती हूँ तुम क्या करते हो ? यह इस लायक नहीं कि तुम इसे पांव से भी छुओ। हरामी, तुम्हारा नमक खाता है, तुम्हारे ही ऊपर बुरी आँख रखता है।'

रुस्तमखाँ ने कहा : 'प्यारी तू जा ! सो जा।'

'तुम तो सो जाओ।'

'मैं भी सोऊँगा।'

प्यारी ऊपर आ गई। कुछ देर बाद उसे लगा नीचे धीरे-धीरे बातें हो रही थीं। उसे आश्चर्य हुआ। यह क्या ? आखिर रहा न गया। खिड़की से मुंडेर पर उतरी और धीरे-धीरे वहीं पहुँची और ऊपर से सुनने लगी। उसे यह देखकर परम विस्मय हुआ कि दोनों जघन्य अब मित्रों की तरह बातें कर रहे हैं।

कान लगाकर सुना।

रुस्तमखाँ कह रहा था : 'अबे, मैं उसकी बात से फ़ौरन समझ गया था। तिरिया चरत्तर दिखा रही थी। हरामज़ादी अब पारसाई पर उतरी थी।'

प्यारी ने दृढ़ता से पत्थर पकड़ा। वह इस कदर चौंक गई थी।

बाँके ने कहा : 'उस्ताद !' और फिर गद्‌गद होकर कहा : 'उस्ताद !'

रुस्तमखाँ ने कहा : 'पर तू भी उल्लू का पट्ठा है।'

'क्यों ?'

'पहले मान जा, बहस न कर !'

'अच्छा उस्ताद मानता हूँ। मैं उल्लू का पट्ठा, मेरा बाप भी उल्लू का पट्ठा था।'

रुस्तमखाँ ने कहा : 'उसके सामने तू वह सब क्यों बक गया ?'

'गलती हो गई उस्ताद,' उसने एक कान पकड़ा, दूसरा हाथ भी कान की

तरफ़ बढ़ाया पर दर्द के मारे कराहकर रह गया, और हाथ को सहलाने लगा। उसके मुख पर नयी आशा दिखाई दे रही थी।

प्यारी ने फिर सुना।

'ताज़ा मामला है। चुप हो जा।' रुस्तमखाँ ने कहा। फिर वह सोच में पड़ गया। बाँके ने अत्यंत उत्सुकता से पूछा : 'फिर ? फिर क्या करूँ उस्ताद ?'

रुस्तमखाँ ने कठोर स्वर से हाथ का इशारा करते हुए घृणा से कहा : 'समझा ? फिर किसी दिन सुखराम पर हाथ साफ़ कर लीजियो। कानों कान खबर भी न होगी।'

प्यारी के रोंगटे खड़े हो गये। पसीना चुचा गया। क्या आदमी इतना कमीना भी हो सकता है ? क्या वह इतनी गहराई तक भी गिर सकता है ?

'समझा ?' रुस्तमखाँ ने कहा।

'हाँ उस्ताद।'

'देख ! आजकल वह मेरा इलाज कर रहा है।'

'कर तो रहा है।'

'ज़रूर फ़ायदा करेगी वह दवा, आदमी इस मामले में तो जानकार है। उसने वादा किया है, और मुझे लगता है मैं अच्छा भी हो जाऊंगा। मगर उसका मुझे डर नहीं है। मुझे तो इसका खुटका है। यह छिनाल भी तो उसे भूली नहीं है।'

'तुमने सिर चढ़ा रखी है।' बाँके ने कहा। और कुछ रुककर उसने फिर पूछा : 'उस्ताद अब तो ये भी बीमार है ?'

'है तो।'

'फिर इसे निकालो। मैं कोइ नई ला दूंगा !'

'अबे, इसीकी बदौलत तो वह मेरा इलाज कर रहा है !'

प्यारी चुपचाप खड़ी रही। गिरती तो संभव है सिर फट जाता, क्योंकि नीचे पत्थर की पटियाँ बिछी थीं। उसने नीचे देखा। इच्छा हुई इस घृणित संसार में जीने से भी लाभ ही क्या ? मर क्यों न जाये ? पर नहीं, यह लोग भयानक हैं। बाँके अभी तक कमीनी बातों का जाल बुन रहा है। उसे तो जीना ही होगा।

रुस्तमखाँ ने कहा : 'उस धूपो के पीछे पड़ा है। दो बच्चों की माँ है।'

प्यारी के कान खड़े हुए।

बाँके ने कहा : 'बात ही ऐसी है उस्ताद ।'

'बेकार परेशान है तू ।'

'उस्ताद रहा नहीं जाता मुझसे । औरत ना कर दे यह सुनना मेरी ताकत के बाहर है ।'

उसके स्वर में घृणित वासना ऐसे बोल रही थी जैसे बिच्छू अपना डंक मार रहा था । रुस्तमखाँ ने बड़ी भलमनसाहत से समझाते हुए उससे नर्म आवाज़ में कहा : 'पर उसमें कुछ हो भी तो ।'

बाँके की हँसी सुनाई दी । और फिर उसने एक गुंडेपन से एक आँख से देखते हुए कहा : 'उस्ताद उसमें ना तो है । न-न करती को कुचल के बाद में, उसे देखके हँसने में बड़ा मजा आता है ।'

उस वाक्य को सुनकर प्यारी के रोम-रोम में आग लग गई और उसे ऐसा लगा जैसे वह जली जा रही थी । वह उस विकराल कुरूपता की पराकाष्ठा को देखकर डरी नहीं । उसने दाँत पीसे और पत्थर पर ही उसकी मुट्ठियाँ तन गईं और पेशी-पेशी घृणा से कठोर-सी हो चली । उसकी आँखों में खून छलक आया । खून ! उसकी इच्छा हुई कि वह बाँके को काट-काटकर फेंक दे ।

रुस्तमखाँ ने कहा : 'तो साली को कभी जंगल में घेर लीजो । आजकल अरहर खड़ी है ।'

प्यारी ने इसे भी सुना और उसने मन ही मन कहा : 'एक दिन तुझे भी देख लूंगी । मैं भी नटिनी हूँ ।'

तभी रुस्तमखाँ ने कहा : 'तू घर न जाना ।'

'क्यों ?'

'अबे ख़तरा है ।'

'फिर क्या करूँ ?'

'बाहर का दरवाज़ा बंद कर ले और छप्पर में सो जा । वहाँ ।'

बाँके ने कहा : 'उस्ताद !'

'क्या है बे ?'

'मरा जा रहा हूँ ।'

'बहुत चोट आई है ?'

'तुम्हारे पाँव पकड़ता हूँ ।'

'क्यों आखिर !'

'एक श्रद्धा मिल जाता।'

'थोड़ी-सी बची रखी है उस आले में, जा ले ले।'

फिर लगा अब वे अलग होंगे। प्यारी उसी रास्ते से अपने कोठे में लेट रही। रुस्तमखाँ भीतर कंबल लेने आया तो वह उसे सोती हुई मिली। उसने निश्चय करने को धीरे से पुकारा : 'प्यारी !'

वह न बोली।

'सो गई।' वह बुरबुराया और उसने जोर से आवाज़ दी। प्यारी जैसे हड़बड़ा कर उठी।

'कुण्डा चढ़ा ले।' उसने कहा।

रुस्तमखाँ बगल के कोठे में चला गया और प्यारी ने कुण्डा चढ़ा लिया। कुछ देर बाद उसने खिड़की से देखा। बाहर छप्पर में बाँके खाट पर बैठा पी रहा था और अपने जख्मों पर शराब मल रहा था। और कभी-कभी कराह उठता था।

प्यारी उसे खड़ी-खड़ी देखती रही। अपमान का गुबार उठने लगा और फिर सुखराम के शरीर से टपकता हुआ लोहू उसकी आँखों के सामने समुद्र की तरह हिलोरें लेने लगा। प्यारी को लगा सारी दुनिया उस लहू से भींगकर लाल हो गई है। कजरी कह रही है : 'प्यारी बदला ले। तेरे सामने मौका है ! इसे चूक न जा।'

सुखराम घायल लेटा है !! वह बदला नहीं ले सकता, न उस पर कोई शक कर सकता है। कजरी बैठी है पास !!! उसके ऊपर किसीकी आँख नहीं जा सकती !!! और वह दूर है !!! वह खुद सुखराम से दूर है !!

हृदय हाहाकार कर उठा।

दूर है !! दूर है !!! क्यों !! रुस्तमखाँ की वजह से ! इसी कमीने की वजह से। वह तो रोक नहीं सकता !! वह चली जायेगी !! वह सुखराम के पास ही जायेगी ! पर क्या ऐसे ही चली जायेगी ? नहीं !! वह बदला लेगी !! और इस कमीने आदमी को सदा के लिये मिटा देगी जो पाप का भरा हुआ घड़ा है !! प्यारी इसमें से आती दुर्गंध को सूंघती है तो उसका भेजा सड़ने लगता है !!! वह उसे सह नहीं सकती !!

प्यारी की रगों में लहू तेज़ी से दौड़ने लगा। कनपटियाँ गर्म हो गईं। वह आज इसे मिटा देगी !!

कल सबेरे इसकी लाश पर सब थूकेंगे ! कौन जान सकेगा कि यह काम उसने किया है !! वह सिपाही के पास है !! उस पर कौन शक करेगा !!

आधी रात हो गई थी। प्यारी खिड़की से उतरी। उसने धीरे से एक पांव निकाला। फिर दूसरा। फिर मुँडेर पर खड़ी हो गई। उसके मुँह में दाँत भिचे हुए थे। उसने कुछ दूर मुंडेर का सहारा लिया और आगे बढ़ी। फिर वह जब कोने पर आ गई तो दीवार छोड़ दी और झुककर उसने सामने छप्पर पकड़ा और उस पर धीमे से पांव जमा लिया। अब एकदम गिरने का तो भय नहीं था। वह धीरे से आहट लेती रही। बाँके सो रहा था। सामने का द्वार बन्द था। रुस्तमखाँ भीतर था। प्यारी छप्पर से भूलकर नीचे उतर गई। अन्धेरे में खड़ी रही। जब उसे विश्वास हो गया कि कोई नहीं देख रहा है तब दीवार के सहारे-सहारे आगे बढ़ी। वह नितान्त दृढ़ थी। यह नहीं कि उसमें किसी प्रकार का भी भय हो।

उसने आंचल में हाथ डाला और कुछ चीज़ बाहर निकाली। और अब उसके हाथ में कटार थी। वह एक बार बाँके की ओर देखती, फिर अपनी कटार की ओर।

उसने सांस रोक ली और चारों ओर देखा। कुछ नहीं। आकाश में धुंधले तारे टिमटिमा रहे थे। अंधेरी लोट-लोटकर काली हो गई थी और एक डरावना छा रहा था।

बाँके सो ही रहा था। वह थक गया था। इस समय उसे सामने देखकर प्यारी को लगा कि जीवन की बहुत बड़ी कुरूपता उसीके हाथों समाप्त हो जायेगी। बाँके ने करवट ली। वह डर गई। हृदय धड़क उठा। वह एकदम दीवार से सट गई।

वह दो क्षण चुपचाप खड़ी रही। आहट लेती रही। कोई आवाज़ नहीं आई। तब वह निश्चिन्त हुई। फिर उसमें साहस भर आया। फिर उसकी घृणा उसे उत्तेजित करने लगी। वह अब केवल एक ध्यान की ओर केन्द्रित होती जा रही थी, जैसे उसके शरीर का रोम-रोम प्रतिहिंसा की मूर्तिमान ज्वाला बन गया था।

फिर वह झपटी। अब वह क्रोध और आवेश से भर रही थी। उसने कटार वाला हाथ ऊपर उठा लिया और झपटकर उस पर वार किया। मुट्ठे तक छुरा उसके हाथ में घुस गया। वह चिल्लाया और प्यारी ने उसके मुँह पर हाथ

धरकर ज़ोर से दबा दिया और इससे पहले कि वह अँधेरे में पहचाने या उठे उसने उसकी आँख पर अपना घुटना मारा और छुरा खींचकर निकाला और कसके एक हाथ मारा और बाँके अँधा हो गया और फेन-सा उसके मुँह से निकल आया। अब वह चिल्लाया नहीं। उसमें मुड़ने का भी दम न था। प्यारी ने फिर छुरा गड़ाकर बाहर खींच निकाला, और तीसरा हाथ मारा।

पर तीनों वार दर्द वाले कंधे में लगे। वह अंधेरे में यह नहीं जान सकी। वह यही समझी कि काम हो गया है। अतएव उसने छुरा उसीके कपड़े में पोंछ दिया। पर वह मूंठ तक भींगा था। रक्त टपकना बन्द हो गया तो छुरा उठा लिया। पहले ही वार में बाँके नींद में चिल्लाकर बेहोश हो गया था। अतः वह उसे पहचान ही नहीं सका। बाँके की सांस फँसी-फँसी-सी चल रही थी। उसने देखा कि वह दम तोड़ रहा था और प्यारी को फिर वहाँ भय-सा लगा।

प्यारी भागी। दीवार के सहारे आ गई और फिर इधर-उधर देखकर छप्पर पर चढ़ी। फिर कोठे की खिड़की में आई और भीतर उतर आई। आते ही पहला काम यह किया कि छुरा पोंछा और उधर जहाँ लकड़ियाँ, कण्डे और कूड़ा पड़ा रहता था, उनके भीतरी भाग में उस कपड़े को फेंक दिया।

और ओढ़कर सो रही।

बाहर रुस्तमखाँ का स्वर सुनाई दिया : 'अरे कौन है ?

कोई नहीं बोला।

फिर पुकारा : 'यहाँ कौन बोल रहा था अभी ?'

प्यारी ने सांस रोक ली।

'कोई नहीं है।' रुस्तमखाँ ने कहा : 'दरवाज़ा बंद है। साला नींद में भी लड़ रहा है।'

दरवाज़ा बंद होने की आवाज़ आई।

प्यारी उठी। उसने खिड़की से देखा। खाट पर बाँके पड़ा था, यहाँ से साफ़ दिखाई दे रहा था। उसमें तनिक भी यह भाव नहीं था कि उसने मनुष्य की हत्या की थी। उसे तो यही लग रहा था कि उसने किसी बड़े क्रूर, विकराल, जघन्य, बर्बर पशु की हत्या की है, जिसे मार डालने में किसी भी प्रकार का दोष नहीं था।

फिर वह सोचते-सोचते खाट पर लेट गई। आज शरीर फूल का-सा था।

अब वह बीमारी नहीं लग रही थी। उसने इतने दिन में जैसे अपने पापों का प्रायश्चित्त कर दिया था। कंजरों के साथ पली हुई उस ख़ानाबदोश करनटनी को आज बहुत दिन बाद ऐसा लगा कि वह स्वतन्त्र हो गई है। उसे कोई डर नहीं है।

उसे स्वयं इस पर ताज्जुब हो रहा था कि उसने इस सफ़ाई से कटार चलाई कैसे। आज जाने कितने दिन बाद ऐसी नौबत आई थी। आखिरी बार उसने जब कटार चलाई थी तो भी वह कई बरस की बात है। तब इसीला जिंदा था। मनको हँस दी थी। कुछ नहीं, एक गुड़ की भेली के पीछे किसी नटनी से लड़ाई हो गई थी। वह उसे चुराकर खा गई थी। उस दिन बड़ी मुश्किल से बीच-बचाव हुआ था। सुखराम ने सुना था तो पूछा था, कहीं लगी तो नहीं। बस और कुछ नहीं। सच तो यह है कि यह पहले था ही सीधा। प्यारी इस बात को सोचने लगी कि कजरी के साथ उसकी कैसे पटेगी।

अच्छा बाँके तो मर गया!

अब!!

सबेरे रुस्तमखाँ को पता चलेगा तो चौंकेगा! कहीं मुझे न पकड़े!

सो कैसे पकड़ेगा? मैं संग न फँसा दूंगी। मैं तो ऊपर सो रही हूँ। कुण्डी भीतर से बंद थी। मैं बीमार भी हूँ।

न जाने और भी ऐसे ही वह क्या-क्या सोचती रही कि उसे नींद आ गई और आज जैसे वह घोड़े बेचकर सोने वाले सौदागर की तरह सो गई थी। उसे एक सुपना तक नहीं आया।

रात का अंधियारा अब उसकी खिड़की पर हवा के झोंकों के साथ आ रहा था। सुनसान पर कुत्ते भौंकते थे और सनसनाती हवा दूर-दूर तक कांपती हुई-सी फैल जाती थी।

रुस्तमखाँ भी सो रहा था। उसकी नींद टूटी थी और बुख़ार के बाद की कमज़ोरी ने उसे ऐसा गिराया कि वह बहुत गहरी नींद में बेहोश-सा लेट गया। चारों ओर प्रशान्त अन्धकार था। और कुछ नहीं। नितान्त नीरवता के साम्राज्य में एक शब्द भी सुनाई नहीं देता था।

दो घंटे बाद शायद बाँके को होश आया। दर्द के मारे वह मरा जा रहा था। गला सूख गया था। हलक में से आवाज़ नहीं निकल रही थी। कुछ देर पड़ा रहा। जब प्यास बहुत तेज़ हो गई तो वह रुक नहीं सका। अपने साबुत

हाथ का बड़ी मुश्किल से सहारा लेकर वह लड़खड़ाकर उठा, हालाँकि इतने में ही उसका प्राण आकर कण्ठ में एकत्र हो गया, क्योंकि पुरानी चोट पर नयी चोट ने गज़ब ढा दिया था। वह चला। उसे लगा वह चक्कर खाकर गिर पड़ेगा। बड़ी ही मुश्किल से वह धीरे-धीरे घिसटता हुआ किसी तरह आगे बढ़ा और उसने द्वार खड़खड़ाया।

रुस्तमखाँ सो रहा था। और बाँके के लिए मुसीबत थी कि हाथ ठीक से नहीं उठते थे।

भर्राये स्वर में पुकारा : 'उस्ताद ! उस्ताद !!'

उस आवाज़ के कीड़े दरवाज़ों की संधों से घुस गये और रुस्तमखाँ के कानों में ऐसे जा घुसे, जैसे वे उनके लिये बने हुए पुराने बिल थे।

रुस्तमखाँ जाग गया। उसे डर लगा। यह कौन आवाज़ है, आज तक इसे सुना नहीं। वह काँप गया।

'कौन है ?' उसने पूछा।

बाँके ने अपने भर्राये स्वर से ही कहा : 'खोलो दरवाज़ा, तुम्हारा बाँके हूँ। मैं हूँ बाँके।'

बाँके का स्वर दूसरा था। रुस्तमखाँ कमज़ोर था ही। उसे विश्वास नहीं हुआ। अतः उसने टालने के लिये लेटे ही लेटे उसके घाव पर नमक छिड़का : 'क्या है बे ? सोता क्यों नहीं ?'

बाँके के आग लग गई। एक तो पीड़ा और फिर यह विचार कि उठकर दरवाज़ा खोलने में कष्ट होगा इसलिये टाल रहा है। उसने चिढ़कर कहा : 'मरा जा रहा हूँ उस्ताद ! कोई छिप के मार गया मुझे तो।'

'कौन मार गया ?'

'अब यह मैं क्या जानूं ? कोई तुम्हारा ही आदमी रहा होगा।'

'क्या बकता है ?' रुस्तम ने डाँटा : 'मेरा आदमी ! होश में है कि साले लात दूं बाहर आकर ! बहुत शराब पी गया लगता है। सो जा ! जा !'

'बकता हूँ, यहाँ दम निकला जा रहा है···' बाँके धम से बैठ गया और कहने लगा : 'दो लात तुम भी दे लो,' वह रो रहा था—'मैं तो मरूंगा ही, यहीं जान दे दूंगा। तुम्हारे ही दरवाज़े से मेरी ल्हास निकलेगी।'

रुस्तमखाँ डर गया। उसे लगा सचमुच कुछ गड़बड़ हो गई है। लाचार बुरा मानता हुआ उठा। अभी तक उसके हृदय में बाँके के रोदन से तनिक भी

समवेदना पैदा नहीं हुई थी। और नींद बिगड़ने का उसे बड़ा मलाल था। आख़िर लालटेन लेकर निकला।

बाँके ने उसके पांव पकड़ लिये और रोया : 'मुझे क्यों मरवा दिया तुमने ? मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था। बदला लेना था तो अभी ! तुमने इस कदर जुलम किया है मालिक।'

'क्या है बे ?' रुस्तमखाँ चौंककर हट गया। फिर कुछ रुककर, बात समझकर, रोशनी कन्धे के पास ले जाकर उसने गौर से देखा। बाँके भयभीत-सा खड़ा हो चुका था। उसका शरीर कभी-कभी डर से कांप उठता था।

बाँके के कंधे पर गहरे निशान थे।

'अबे ये तो तीन निशान हैं ?' रुस्तमखाँ ने कहा।

बाँके रोया।

'रोता क्यों है ? मर्द होकर रोता है ?'

'उस्ताद इस मर्दानगी से औरत होना अच्छा था।'

'पर हर बार कटार बेदरदी से उलटी खींची गई है और उसमें काफ़ी जख़्म चौड़े हो गये हैं।'

'उस्ताद मुझे तुमने इसीके लिये रोका था !'

'अबे क्या बकता है यह ?' रुस्तमखाँ ने चौंककर कहा।

'फिर कौन आया था ?'

'ज़रूर कोई आया है ?'

रुस्तमखाँ आंगन में ढूंढ आया।

'कौन है उस्ताद !'

'कोई नहीं।'

'दरवाज़ा भी तो बन्द है। कोई आता भी कहाँ से ?'

'यही तो मैं भी सोचता हूँ।'

'उस्ताद तुम सोचते रहना। अब तो तुम्हारे यहाँ की खाटें भी कटारें झोंकने लगीं। मरवा दिया तुमने।' वह फिर कायरों की तरह रोने लगा। वह सचमुच उस ज़ालिम से डर गया था।

सुबह देखा। प्यारी की तरफ़ के छप्पर में कुछ भी नहीं था। जहाँ से वह जल्दी में चढ़ी थी, फूंस खिंच आया था।

'इसका मतलब है हमलावर इधर से आया था !' रुस्तमखाँ ने कहा।

उस तरफ़ चमरवारा था।

बाँके ने दूसरे हाथ से मूँछों पर हाथ फेरा और कहा : 'जरा हाथ ठीक हो; ले तो एक-एक को·····'

वह गुस्से के मारे कह नहीं सका।

प्यारी आज उठी तो देह हल्का था। उसका मन प्रसन्न था। जैसे ताज़ी-ताज़ी बाड़ी को खा जाने वाली सेही को मारकर किसान को आनन्द आता है और दूसरे दिन वह अपनी सब्जियों को देखता है, देखता है कि सेही की अनुपस्थिति में उसकी सब्ज़ी कितनी बढ़ गई है, उसी प्रकार प्यारी ने आंगन में खिड़की से देखा।

वहाँ कोई नहीं था। उसे आश्चर्य्य हुआ। हो सकता है रुस्तमखाँ भीतर ले आया हो। पर मरे को उठाने से फायदा ही क्या ?

उसने मुँह धोया और नीचे उतर आई। देखा कोठे में बाँके बैठा था। रुस्तमखाँ गंभीर था। दोनों को चुप देखकर प्यारी ने कहा : 'क्या हुआ ?'

'देख !'

प्यारी ने देखा ! बाल-बाल बच गया था। वह चौंकी। कहा : 'हाय किसी बड़े निरदयी की लाग है।'

'कोई चमरवारे का आदमी था।' बाँके ने कहा : 'देख वह छप्पर·····'

प्यारी अब काँप उठी। वह समझ गई कि निरदोषों पर वज्र गिरेगा।

१९

गोली खतम होने को आ गई। और रुस्तमखाँ की तन्दुरुस्ती पहले से कहीं अच्छी हो गई थी।

उसने कहा : 'तू कैसी है ?'

प्यारी ने कहा : 'अच्छी हूँ। तुम कैसे हो ?'

फायदा तो मुझे भी है।

'फिर और क्यों नहीं मँगवाते किसीको भेजकर ?'

'भेजूँ किसे ?'

प्यारी ने कहा : 'अरे इतने आते-जाते हैं। किसीसे कह दो। हुकम टाल थोड़े ही सकता है।'

'पर मैं सोचता हूँ वह भी तो घायल है।'

'तो क्या हुआ।' प्यारी ने कहा : 'गोली बनाने में क्या लगता है। मैं वहाँ थी, तब तो यों ही बना-बना के बाँटा करता था लोगों को। मैं देखती न थी तब ?'

रुस्तमखाँ ने कहा : 'तब ठीक है, मैं देखता हूँ।'

'तुम समझते नहीं, इस इलाज में लगातार दवा पहुँचने का ही गुन है !'

'सो तो मैं जानता हूँ।'

'अरे खाक जानते हो, अभी कहते थे आदमी नहीं है।'

प्यारी की मीठी-मीठी बातों में रुस्तमखाँ चक्कर में आ गया। वह समझ नहीं सका।

चक्खन आ गया था।

'क्यों चक्खन' प्यारी ने कहा : 'जमादार की तन्दुरुस्ती कैसी है।'

'बहुत अच्छी है।' चक्खन ने तारीफ़ में कहा।

प्यारी ने आँख से इशारा किया और बोली : 'लो देखो मैं न कहती थी चक्खन ! तुम्हारे जमादार दवाई नहीं खाते।'

'तुम्हें मेरे सिर की कसम है जमादार !' चक्खन बफ़ादार ने कहा। मुँह-जवानी हमदर्दी में वे गाँव में सबको हराते थे।

'तू चला जा चक्खन !' प्यारी ने दयनीय स्वर से कहा। अब वह अपनी दवा चाहती थी। जीवन के प्रति एक नया विश्वास आ गया था। सुखराम से मिलने का एक यही रास्ता रह गया था।

'कौन मैं !' चक्खन चौंका। उसे अब लगा कि वह गलती कर गया है। पर अब मौका हाथ से निकल चुका था।

'क्यों तू डरता है ?' प्यारी ने कहा।

'चला जाऊँगा। पर कहीं मारेगा तो नहीं।'

'मारेगा ?' प्यारी ने आश्चर्य से पूछा। जैसे चक्खन जैसा वीर और ऐसी ओछी बात कहे। भला प्यारी उसे कैसे मान ले। वह तो ऐसा सोच भी नहीं पाती !

'कमबख़त में राक्षस का-सा बल है।' चक्खन को अपनी जान की पड़ी थी। उसे इसके ताज्जुब से क्या लेना-देना था। वह अब अपने आगे-पीछे की सोच रहा था। सच तो ये था कि वह ऐसे ही काम को काम कहता था जिसमें कुछ लाभ होता दीखता था। परोपकार को वह सबसे बड़ी मूर्खता कहा करता था।

'तू भी तो यादौ छत्री है चक्खन!' प्यारी ने कहा। और उसकी ओर गहरी दृष्टि से देखा जिसमें हिकारत भरी थी। चक्खन सह नहीं सका। वह दृष्टि नहीं थी। चुनौती थी।

एक तो अहीर छत्री बन गया! फिर औरत की बात! मरद हज़ार कहे तो बन्दर भगाने न जायें। औरत का मौका आये तो चीते तक के सामने अड़ जायें! एक ही चोट काफ़ी रही। चक्खन खड़ा हो गया। बोला: 'मैं जाता हूँ।'

जब वह सुखराम के डेरे पर पहुँचा तो सुखराम सो रहा था।

'क्यों सुखराम यहीं रहता है।'

'हाँ।' कजरी ने पूछा: 'तुम कौन हो?'

'मैं चक्खन हूँ।'

'चक्खन हूँ!' कजरी ने कहा: 'तहसीलदार हो, दरोगा हो, लाट सा'ब हो कि नाम से ही मैं समझ जाऊँगी? क्या काम करते हो बताओ!'

'अरी मैं रुस्तमखाँ का भेजा हुआ हूँ।' चक्खन ने झेंप और खिसियाकर कहा।

'कौन रुस्तमखाँ,' वह जान-बूझ कर बनी।

'वही सिपाही, जिसकी आजकल सुखराम की बहू रखैल है।' उसने व्यंग किया।

'अरे तो!' कजरी ने कहा: 'पहले क्यों न कहा, तू मेरी सौत का नौकर है!'

'ऐं ऐं होश से बोल!' चक्खन ने कहा: 'नौकर होगा कोई और! मैं तो दवा लेने आया हूँ।'

'कैसी दवा?'

'रुस्तमखाँ ने मंगाई है।'

कजरी ने हाथ उठाकर डेरे के भीतर इशारा किया और कहा : 'वह सो रहा है ।'

'कौन ?'

'सुखराम !'

'अरी तो वह जगेगा नहीं ?'

'देर में सोया है ।'

'अरी चल चल, जगा दे उसे ! क्या जमाना आ गया है !' चक्खन ने कहा : 'तू कौन है ?'

'मैंने कहा तो, 'कजरी ने कहा : 'तेरी मालकिन की सौत हूँ ।'

कजरी उसके पास चली गई ।

'देख, फिर तूने वही कहा' 'चक्खन बोला : 'तुझमें बिल्कुल तमीज नहीं । कैसे बोलती है ।'

'अच्छा तो तू उनका काम क्यों करता है ?'

'वह मेरा दोस्त है ।'

'कौन है ? रुस्तमखाँ ! वह तो सिपाही है । उसकी-तेरी क्या दोस्ती ? तू क्या काम करता है ?'

'मैं यादौ छत्री हूँ ।'

'ठाकुर !!' कजरी ने कहा : 'बड़े भाग !'

अब चक्खन का साहस बढ़ा । उसने हाथ उठाकर कहा : 'भीतर जाकर उसे जगा दे !'

'तेरे बाप की नौकर हूँ जो !' कजरी ने कहा ।

'बाप रे बड़ी लड़ाका औरत है ।'

'औरत होगी तेरी लुगाई ! समझा । मुझसे औरत न कहियो ।'

चक्खन सकते की-सी हालत में पड़ गया । कजरी ने कहा : 'क्यों रे ! इधर-उधर का काम करता डोलता है, रुपया धेली, महीना में तुझे वहाँ मिल ही जाता होगा ? अरे कौन किसीसे बिना पैसे बात करता है, सब टुकड़ों के मुंहताज होते हैं ।'

'बोलती कैसे है ?'

चक्खन ने कहा तो और बैठ भी गया परन्तु इसमें उसे घोर अपमान लग रहा था । गांव वाले सुनेंगे तो कहेंगे कि नट के द्वार पर बैठा रहा । इतना

भी दबदबा नहीं रहा कि नट हुकम पर काम करते। और कजरी सामने अभी टेढ़ी खीर बनकर खड़ी थी।

वह जोर से बोला : 'मैं कहता हूँ···'

'चिल्लाय मत, जग जायेगा। बड़ी देर में सोया है।' कजरी ने और ज़ोर से कहा। चक्खन कायर आदमी। दब गया।

थोड़ी देर और बैठा रहा। कजरी डेरे में गई तो उसे ढांढस हुआ कि अब यह उसे जगा देगी। विचार आया कि बिना जोर-जबर के नीचों से काम निकलता ही नहीं। जब तक चुप बैठा था सुनती ही नहीं थी, अब डांटा तो गई भीतर। पर कजरी बाहर आ गई।

'तो मैं क्या बैठा रहूँगा ?' उसने कहा।

कजरी भीतर फिर चली गई। भीतर उसने डेरे के कोने में पड़ी घास इकट्ठी की और पीछे की तरफ़ से जाकर घोड़े को डाल दी। घोड़े पर हाथ फेरा और जब घोड़ा खाने लगा तो फिर सामने आ गई। चक्खन का बांध अब टूट गया। कजरी को देखकर कहा : 'तो क्या यहीं समाध लगा दूं।'

'चला जा। मैंने कब बैठने को कहा ?' कजरी ने उत्तर दिया और फिर भूरा की कठौती धोने लगी। भूरा ने कहीं दूर से अपना इन्तजाम होते देखा तो तुरन्त आ गया। मोटा और मज़बूत कुत्ता देखकर चक्खन ज़रा सोच में पड़ गया। कुत्ता आया और उसने चक्खन की बगल में खड़े होकर देखा और जैसे आगन्तुक का स्वागत किया, उसकी पीठ की तरफ़ सूंघा। चक्खन को लगा कि अब काटा। कुछ पीछे मुड़ने की खातिर बहाने के लिये चक्खन ने पीठ खुजाई और कन्धे के पीछे झांका। कुछ नहीं था। चेतना लौटी।

'मैं जगा लूं ?' चक्खन ने उठते हुए कहा। वह उठा तो इसलिये था कि कुत्ते के बवाल से बचे। परन्तु कजरी समझ गई। मन ही मन मुस्कराई। समझ गई बड़ा भारी पोच है। परन्तु बोली कुछ नहीं। कुत्ता और पास आया। चक्खन ज़रा और आगे बढ़ा। खीझकर बोला : 'तू तो कुछ सुनती ही नहीं।'

'तू समझा होगा अकेली हूँ ? तेरे जैसों के लिये तो मैं ही बहुत हूँ', कजरी ने उत्तर दिया।

'भूरा !' कजरी ने आवाज़ दी।

कुत्ता गुर्राया। उसके गले से भारी आवाज़ निकली। चक्खन बैठ गया। कजरी ने कहा : 'आ बेटा !'

भूरा पास गया। उसने रोटी के टुकड़ों को खाना प्रारम्भ किया। मोटे और बड़े कुत्ते को काम में लगा देखकर चक्खन को चैन आया। खा-पीकर कुत्ता फिर मटरगश्ती पर निकल गया।

चक्खन बैठा ऊब गया।

अब वह बुरबुराया : 'मैं पहले ही कहता था। पर वह मानती ही न थी। मुझे ही भेज दिया। सबेरे-सबेरे काम का बखत ! और यह मुसीबत !!'

असल में किस्सा यह था कि चक्खन अपने ढोर रात को खोल देता और वे ठाठ से खेतों को चरते। अगर कोई किसान उसके हर्‌या ढोर को किसी तरह पकड़ भी लेता और कांजी हौस छोड़ भी आता तो चक्खन रुस्तमखाँ की सिफ़ारिश ले जाता और ढोरमुंशी उसके जानवर छोड़ देता। आज सबेरे अपने दो ढोरों को छुड़वाने की सिफारिश करवाने आया था। वर्ना खामखाह एक रुपया ठुकता। इसलिये वह इतना चलने को भी तैयार हो गया था। अव्वल तो बेगार। और फिर काम भी मान ही लिया, तो नई मुसीबत।

कजरी ने आग में घी डाला।

पूछा : 'सबेरे-सबेरे निकला होगा।'

'और क्या ?' उसने कुढ़कर कहा : 'हमने कभी तहसीलदार का भी इंतजार नहीं किया।'

'अरे भूखा होय तो रोटी दूं।' कजरी ने कहा।

'अरी चल नटिनी ! तेरे हाथ का खाऊँगा मैं !'

'क्यों यहाँ कौन देखता है ?' कजरी ने कहा : 'मेरे संग तो लाला—बनिया-बामन-ठाकुर सब खा चुके हैं।'

'सच ?' चक्खन ने कहा : 'कौन-कौन ?'

'क्यों तू क्यों जानना चाहता है ?'

'अरे नहीं। ऐसे ही।' चक्खन ने कहा : 'मुझे क्या ? पर बुरी बात है। वहाँ धरम की बात करते हैं, यहाँ सब खायी जाते हैं।' उसने सिर हिलाया। कजरी मुस्कराई। कहा : 'तू ही डरता है।'

'सो कैसे ?'

'मैं कहती हूँ, अभी गरम-गरम ठोंकी है·····'

'नहीं, नहीं, राम, राम,' चक्खन ने कहा : 'वह तो बखत का फेर है। नहीं तो नटिनी की इतनी हिम्मत !!'

'हिम्मत की न पूछ।' कजरी ने कहा : 'यह तो मन की बात है। अब मन ही तो है। तुझी पै आ गया। तभी तो उसे जगाती नहीं।'

चक्खन की आँखें फट गईं। कहा : 'क्या कहती है ?'

'मैं कहूँ' कजरी ने लाज से घूंघट-सा करके कहा : 'मेरे संग उधर जंगल में चलेगा न ?'

'क्यों नहीं !' चक्खन हँसा।

'इसमें धरम नहीं जाता तेरा ?' कजरी ने मुँह खोला।

'अरी ये और बात है।' चक्खन ने कहा।

'क्यों ?' कजरी कुढ़ी।

चक्खन ने कहा : 'धरम तो कमर के ऊपर होता है।' और उसने विजय की दृष्टि से उसकी ओर देखा, जैसे स्त्री को पराजित करने में देर ही कितनी लगती है। परन्तु कजरी ने कहा : 'तेरी बहन-बेटी ने ही तुझे ये धरम सिखाया होगा !'

चोट मर्म पर पड़ी। चक्खन तिलमिला गया। कजरी मुस्कराई। चक्खन जवाब न दे सका। वह सकते की-सी हालत में पड़ गया था। कहे तो क्या कहे। पर अब बैठना भी असम्भव था। इतनी करारी चोट पड़ी थी कि उसकी अन्तरात्मा तक को झकझोर डाला गया था। उसकी जघन्यता इतनी नग्न थी कि वह उसे देखकर स्वयं ही लज्जित हो उठा था। उधर स्वार्थ था। दोनों ढोर उसकी ओर देख रहे थे। फिर सिपाही का क्या ठीक ! कहीं बिगड़ गया तो !! एक ले-दे के सहारा है, वह भी टूट जायेगा। इसी कशमकश में उसके कुछ क्षण बीत गये। तब वह अन्त में निराश होकर चिल्लाया : 'मैं जा रहा हूँ। समझी ! कह दीजो अपने खसम से कि मैं नहीं रुकता।'

'चला जा चिल्लाय मत !' कजरी ने कहा : 'वह तेरे बाप का नौकर नहीं है।'

'देख तू ठीक से बोल नहीं तो·····'

'नहीं तो तू मुझे सूली दे देगा न ?' कजरी ने कहा—'फिर तो चिल्ला के देख !'

सुखराम की नींद खुली। उसने सुना कोई चिल्ला रहा था : 'हरामजादी ! नटिनी ! तू समझती है, मैं तुझसे डर जाऊंगा ?'

'गाली मत दीजो मैं कहती हूँ।' कजरी का स्वर सुनाई दिया। वह स्वर कठोर था।

सुखराम उठा। बाहर एक आदमी खड़ा है। मुँह देखा। चक्खन था। सुखराम को हँसी आ गई। चक्खन गुस्सा है और मुँह चला रहा है और देखा कजरी हाथ में जूता लिये खड़ी है।

'अब के दे गाली!' कजरी ने कहा।

'तू ही तो बकती थी।'

'मैं कब बकी बोल···'

चक्खन चिल्लाया : 'मैं कहता हूँ·····'

'मैं कहती हूँ पुकारै मत।' कजरी ने कहा : 'वह सो रहा है। अच्छा नहीं होगा। कह दीजो अपने सिपाही से जेल में डाल दे। सह लेगे सब! समझा! हमारे पास जमीन-जैजात नहीं कि डर जायें। जान है तो जहान है। यहाँ है, तो यहाँ हैं, नहीं है तो कहीं और हैं। धरती अपनी नहीं, घर नहीं पर नींद अपनी है समझा! उसे हमसे कोई नहीं छीन सकता। गोली लेनी है तो पड़ा रह। नही लेनी है चला जा। हम खबर भेज देंगे कि गोली क्यों नहीं मंगाते। कोई आदमी क्यों नहीं भेजा आज तक!'

'और मैं जो आया हूँ!!' चक्खन ने पूछा।

'अरे कौन है?' सुखराम ने कहा।

वह बाहर आया। तो कजरी मुँह पर घूँघट डाल भीतर चली गई। चक्खन को लगा कि अब पिटा। उसने सुना तो था कि वह घायल हो चुका था। पर भय की तो सीमा नही होती। उसके पौरुष की अभूत गाथाएं सुनकर उसका दिल पहले ही कमज़ोर हो चुका था। अब कहीं नींद टूटने से तो बाहर नहीं निकला है? फिर भी जी कड़ा करके खड़ा रहा और कहा : 'मैं हूँ चक्खन!'

'कैसे आये भाई!'

चैन पड़ा। जान में जान आई। बोला : 'यह तुम्हारी औरत·····'

वह कह नहीं पाया था कि कजरी फिर बाहर टूटी—'फिर तूने मुझे औरत कहा?'

'देखो सुखराम! देखो···' चक्खन गिड़गिड़ाया।

सुखराम ने डाँटा : 'कजरी!'

कजरी भीतर आ गई।

कुछ देर बाद जब सुखराम भीतर आया तो उसने देखा कजरी खाट पर पड़ी-पड़ी हँस रही थी।

'अरी क्या बात है आज ! क्यों हँस रही है।' उसने पूछा।

'हँसूँगी नहीं ?' उसने धीमे से कहा, 'बड़ी देर से मैंने इससे बक-बक की है।'

'क्यों भला !'

'कहता था जगा दे !'

'तूने जगा क्यों न दिया !'

'सो क्यों जगा देती !' कजरी ने हँसकर कहा : 'ऐसा-ऐसा खिसियाया है कि कह नहीं सकती।'

'तू बड़ी मक्कार हो गई है।'

'तेरी कसम ! तैंने बना दी हूँ।'

'मैंने ? यह भी मेरा कसूर है।'

'बिल्कुल ! जब से तेरा संग हुआ है, मुझे डर ही नहीं लगता। चाहे जिससे अकड़ जाने की इच्छा होती है।'

जब सुखराम ने फेंटा सिर पर धरा, तो वह चौंकी।

'क्या बात है।' उसने पूछा।

'अरी वह आया है न ?'

'तो तू जंगल जा रहा है दवाई लैन ?'

'हाँ। न जाऊँ ?'

कजरी ने उत्तर नहीं दिया। उसके मुख का आल्हाद ऐसे हट गया जैसे किसी पत्थर तोड़ने वाले की सख्त उंगलियों ने गुलाब की पंखुड़ी को मसलकर फेंक दिया हो। उसकी आँखों में विषाद की गहरी छाया उतर आई और फिर उसमें एक तरलता कांप उठी। सुखराम ने देखा। वह रो रही थी।

'क्यों रोती है ?' उसने पूछा।

कजरी ने मुँह छिपा लिया। अभी वह जिस खाट पर पड़ी-पड़ी अकेली हँस रही थी, वहीं वह पड़ी-पड़ी रो रही थी। अचानक ही आकाश में निकला हुआ इन्द्रधनुप ढँक गया और काले-काले बादल घुमड़ आये। सुखराम को आश्चर्य्य हुआ। फिर पूछा।

परन्तु कजरी ने उत्तर नहीं दिया। उसके मन में कचोट थी। वह स्वतंत्रता

की भावना खो गई। उसे महसूस हुआ कि वह निरीह थी। उसका संबल ही निरीह था। क्यों ? क्या वह डरता है ? डरे क्यों नहीं ? स्त्री और बच्चा अपने को एकदम आज़ाद समझ सकते हैं, पर वह तो अपनी ज़िम्मेदारी नहीं भूल सकता। अगर वह भी बड़े लोगों को जवाब दे उठे, तो उसे तो कोई दया करके छोड़ नहीं देगा।

किंतु यही तो वह सब नहीं था जिसने उसे रुलाया था। न जाने कहाँ एक छोटी-सी ईर्ष्या की अनी थी जो हृदय के भीतर गड़ी हुई कसमसा रही थी। उसीके कारण तो जा रहा है अन्यथा वह जाता ही क्यों ? पर क्यों न जाये वह ? जाता है तो जाये, अपनी भी उसे चिंता नहीं। वह अपने से ऊपर रखता है उसे ? यानी मैं तो कुछ हूँ ही नहीं।

सौत का यह प्रभुत्व उसकी आत्मा को झकझोर उठा। उसको लगा वह निराधार है। उसका अपना कोई नहीं है। कोई नहीं है। सब होने वाले झूठे हैं।

'चला जा, लौट के न अइयो', कजरी ने कहा। उसके स्वर में असीम यातना थी। सुखराम ने सुना तो उसके दिल पर धक से चोट हुई। यह क्या हुआ। वह देख ही रहा था कि उसमें कितना परिवर्तन कितना शीघ्र आया था। क्या वह स्वयं उसके लिये जिम्मेदार नहीं है ! उसीके कारण तो यह सब हुआ है। उसका मन भीतर ही भीतर व्याकुल हो उठा।

'क्या कहती है कजरी !' उसने अचकचाकर पूछा।

'क्या कहती हूँ ? तू नहीं समझता ?' कजरी ने प्रतिवाद किया : 'मैं क्या अपने लिये कहती हूँ ? आखिर तुझे अपना कोई खयाल नहीं ?' कजरी की बात में कितनी सचाई थी ! सुखराम इसका अन्दाज़ा नहीं लगा सका। कजरी ने ही फिर कहा : 'मैं अपने स्वारथ की बात ही कहती होऊँ सो बात नहीं है। तू ही क्यों नहीं सोचता, क्या तू इस लायक है कि इस हालत में जंगल जाकर अपना काम अपने आप कर आये।'

'कल भी तो गया था !' उसने कहा।

'तू गया था। पर साथ में मंगू था, बहू थी, मैं थी। तू अकेला तो न था ?'

कजरी की बात ठीक थी। सुखराम कुछ देर को चुप हो रहा। बाहर

चक्खन घबरा रहा था। सुखराम ने धीरे से कहा—'कजरी ! मैं क्यों जाता हूँ, जानती है ?'

कजरी ने मुँह फेर लिया। वह मान था। युगों से पति-पत्नी के प्रेम का एक आनन्द बनकर यह झूठा युद्ध रहा है, जिसमें जानबूझकर लड़ा जाता है, और फिर अपने मुँह से कहने को, बार-बार उसी बात को दुहराने के लिये जैसे स्वांग रचा जाता है। बुरा मानना हो मान जाओ, अपनी बला से—यह भाव उसमें नहीं रहता। उसमें यह है कि तुमने ऐसी बात कही ही क्यों जो मुझे अच्छी न लगी ! परन्तु यह मान नहीं था।

कजरी ने देखा, सुखराम कुछ और कहना चाहता है।

सुखराम ने कहा : 'वह बीमार है !'

बस ! और कुछ नहीं। कजरी की कल्पना ठीक निकली। उसीके लिये जा रहा है यह। यह उसके सामने अपने को कुछ नहीं गिनता, यानी मुझे कुछ नहीं गिनता। मेरी सत्ता क्या है ? उसके सिलसिले में ही कजरी की अहमियत है, बीच में से कहीं से शुरू होती है, और बीच में ही कहीं जाकर खतम हो जाती है। प्यारी ही आदि है, वही अन्त है, सुखराम उसका एक माध्यम है।

'प्यारी बीमार है।' कजरी ने कहा, 'जानती हूँ, तुझे उसकी बड़ी फिकर है। पर जितना ध्यान तुझे उसका है, उससे थोड़ा भी अगर·····'

वह कह न सकी। रो पड़ी। अपने लिये वह अपने आप कैसे कहे, जब उसका कलेजा ही उस पर ध्यान नहीं देता !

सुखराम पास आ गया। कहा : 'कजरी !'

'क्या है !!'

'मुझे तेरा क्या ध्यान नहीं।'

कजरी चुप हो गई है।

'मुझे उसका इलाज करना है।'

'तो कर।'

'तू नाराज है।'

'क्यों होऊँगी। यह तो अच्छा ही है। कल को अगर मैं बीमार पड़ गई, तो मन से भले ही नहीं, पर दिखावे को तू यह सब मेरे लिये भी करेगा ही।'

'क्यों क्या तुझे मुझ पर भरोसा नहीं ?'

'नहीं ।' कजरी ने कहा ।

सुखराम देखता रहा ।

कजरी ने कहा : 'चल । मैं चलती हूँ तेरे साथ ।'

'कहाँ ।'

'जंगल ।'

'क्यों चक्खन है तो सही ।'

'अरे यह पहले भाग जायेगा ।'

फिर कजरी ने कहा : 'चक्खनसींग ।'

चक्खन ने कहा : 'क्या है ?'

'जंगल चल रहे हो ? मैं चलूंगी भला ।'

चक्खन झेंपा । डरा भी । बोला : 'मैंने क्या कहा है सो !'

'तो क्या मैं कुछ कहती हूँ ।'

बाहर आ गये । तीनों चले ।

कजरी ने कहा : 'क्यों चक्खन ! इसे लौटा दूं ?'

चक्खन काँप गया । सुखराम ने गूढ़ दृष्टि से उसे देखा । वह घबराया । बोला : 'मैं यहीं बैठा रहता हूँ । तुम लोग लौट आओ ।'

'क्यों ?' कजरी ने कहा : 'तू क्यों नहीं चलता !'

'मैं यहीं ठीक हूँ ।'

'अरे चल भी ।' कजरी ने कहा : 'यह बड़ा भयानक है । अभी चाहे तो यहीं कतल कर दे ।'

'राम-राम !' चक्खन ने कहा : 'हाय ! हाय ! मर गया !'

और बैठ गया ।

'अरे क्या हुआ ?' सुखराम ने कहा ।

'भइया', चक्खन ने कहा : 'मुझसे चला नहीं जाता, बड़ी जोर की मोच आ गई है । हाय घर तक कैसे पहुँचूंगा ?'

कजरी ने कहा : 'अरे यह तो मामूली-सी बात है । कह तो कहाँ दरद है ।'

उसने झूंठे को ही कहा : 'यहाँ ।'

कजरी ने कसके उसके टखने में लात दी । चक्खन लोट गया । सुखराम

को हँसी फूटी। पर वह दाब गया। कहा : 'अब तो मोच ठीक हो गई होगी ?'

'अभी दरद है।' चक्खन ने कहा।

'तो कजरी फिर से उतार।'

'नहीं परमेसुरी!' चक्खन ने घिघियाकर कहा : 'अब उतरी ही समझ।'

'क्यों चक्खनसींग', कजरी ने कहा : 'धरम कहाँ से कहाँ तक होता है ?'

'चोटी से ऐड़ी तक।' चक्खन ने कहा।

'चल उठ।' कजरी ने कहा : 'अब मत छेड़ियो किसीको। कोई नहीं मारे डालता है तुझे। जल्दी चल।'

सुखराम पूरी बात तो नहीं समझा। पूछा : 'क्या बात क्या है ?'

'कुछ नहीं, ऐसे ही', चक्खन ने कहा। और दयनीय दृष्टि से कजरी को देखा।

कजरी ने कहा : 'जंगल आ गया। जल्दी दवाई ले ले। फिर चल।'

धूप बढ़ गई थी।

जंगल से लौटे तो सुखराम ने कहा : 'कजरी !'

'क्या है ?'

'इसे पीस दे पहले। गोली बना दूं।'

'ला ! दोनों दे दे।'

कजरी ने रूखड़ी ली और कहा : 'चक्खन ! एक काम करेगा ?'

उसकी मीठी आवाज़ सुनकर चक्खन बोला : 'कहके तो देख !'

'देख ! मेरा हाथ घिरा है।' कजरी ने कहा : 'जरा घोड़े के आगे घास सरका आ।'

चक्खन फिर मारा गया। लाचार गया। लौटा तो कजरी ने कहा : 'चक्खन तू बड़ा अच्छा आदमी है। मैं ही मूरख हूँ जो तुझ जैसे भले आदमी को मैंने इतनी खरी-खोटी सुनाई।'

'अरे क्या कहती है ?' चक्खन ने कहा।

'तू मुझे मांफ कर दे चक्खन ! नहीं तो मुझे मन में गाँस गड़ती रहेगी। तुझसे मैंने काम और करा लिया ! तुझे बुरा लगा होगा ?'

'बिल्कुल नहीं।' चक्खन ने कहा : 'तू भी कैसी बात करती है। काम तो तूने बताया ही नहीं !'

'अच्छा तो एक डोल पानी खींच ला न कुएं से ?'

चक्खन चला गया। फिर मन में खिजाया। सुसरी ने फिर काम पर लगा दिया। पानी लाकर रखा तो कहा : 'ले बस !'

'अरे तौ तू बुरा मानता है।'

चक्खन रूठा हुआ था। बोला नहीं।

'मैं तो जानती थी।'

'क्या !'

'तू गुस्सा है। तूने मुझे अभी माफ़ नहीं किया।'

चक्खन ने कहा : 'अब तुझे कैसे समझाऊँ।'

कजरी ने रूखड़ी पीस के सुखराम के लगा दी।

'यह क्या ?' चक्खन ने कहा : 'तूने वह वाली नहीं पीसी !'

'हाय कैसा आदमी है।' कजरी ने कहा : 'ज़रा सबर नहीं। इत्ता चल के आया है उसका तुझे खयाल ही नहीं।'

'पर वह क्यों न पीसी ?'

'अरे तो बढ़-बढ़कर बोला है फिर ! ऐसा ही बड़ा ख़ैरख़ाह है तो तू ही न पीस ले। धरी है सामने। मुझे तो बहुत काम है। काम हम करें वाहवाही तू लूटे।'

वह भीतर चली गई। लाचार चक्खन ने रूखड़ी पीसी। सुखराम मुस्कराता रहा और वहीं बैठकर हुक्का पीता रहा।

भीतर से कजरी निकली। चक्खन पीस चुका था।

'बड़ी देर हो गई।' कजरी ने कहा।

चक्खन ने देखा और कहा : 'हाय मैं तो मर गया !'

चक्खन की व्याकुलता देखकर सुखराम ने गोली बनाना प्रारम्भ कर दिया। और जल्दी ही बना दीं। जब चक्खन चलने लगा तो कजरी ने टोका 'सुनौ ठाकुर सा' ब !'

'क्या है ?'

'रोटी खाते जाओ।'

चक्खन भाग चला। सुखराम ने डाँटा : 'क्या बकती है।' वह हँसकर भीतर चली गई। और कुछ देर में ही रोटी ले आई।

कजरी सोचने लगी।

'क्या सोचती है ?' सुखराम ने पूछा।

'कुछ भी नहीं ।'

'तुझे कसम है, बता दे ।'

'सोचती हूँ तू प्यारी के लिये इस हाल में भी गया था ।'

'नहीं जाना चाहिये था ?'

कजरी ने उत्तर नहीं दिया ।

'यों सोच', सुखराम ने कहा : 'कि मैं बैद बन के गया था । सबको चंगा करना धरम है कजरी ।'

'मुझे धरमातमाओं से डर लगता है ।'

सुखराम हँसा ।

कजरी ने नकल की—ह हह·····

सुखराम खिसिया गया । पूछा : 'क्यों हँसता है ?'

'हँसती हूँ कि रोती हूँ । अकल के मट्ठे ! अगर तुझे कुछ हो गया तो मैं कहाँ जाऊँगी, क्या करूँगी ? प्यारी मुझे रोटी दे देगी ? तू तो उसके पीछे डोल, मैं तेरे पीछे-पीछे डोलूँ । तैंने मुझे अच्छा बेवकूफ बना रखा है । साबास रे छैला ! भला मैंने तुझे चुना ।'

'तू क्यों डरती है कजरी !' सुखराम ने कहा : 'मैं जानता हूँ ।'

'क्या जानता है ? तेरे लिये मैंने किया ही क्या है जो तू उसका जोर मानेगा ।'

'वाह ! ये तू क्या कहती है । तैंने मेरे लिए क्या न किया ?'

'क्या किया है बतइयो ।'

'कुर्री को छोड़ा कि नहीं !'

वह हँसी, फिर लज्जा से उसका मुख आरक्त हुआ और फिर वह फूटकर रो पड़ी । यह उसका अपमान हुआ था ।

'अरे मैंने तो दिल्लगी की थी ।' सुखराम ने कहा ।

कजरी नहीं बोली । पर आँसू पोंछ लिये ।

फिर उसने कहा : 'अच्छा तुझे अपने पर घमण्ड हो गया है ?'

'कैसा ?'

'तू समझता है कि तू ही है सब कुछ ! बड़ा मलूक बनता है ?? अकल के मट्ठे ! तेरी मलूकाई भी तब तक है, जब तक मैं आँख की अंधी हूँ । समझ रख । मैं चली जाऊँगी तो जानता है क्या होगा ?'

'क्या होगा।'

'जो मेरे आने के पहले हुआ था। प्यारी जैसी लुगाई ही तेरे लिये ठीक है, जो नकेल भी डाले रहे, और उल्लू भी बनाये।'

सुखराम ने हाथ उठाकर कहा : 'दया कर परमेसुरी। दया कर। मैं हार गया। मैं हार गया। अब रोटी तो खा लेने दे।'

वह मुंह फेरकर बैठ गई। खा-पीकर सुखराम उठा तो खाट पर लेट गया। आई और पांव पकड़कर बैठ गई।

'क्या बात है ?' सुखराम ने कहा। और पांव खींच लिया। कजरी फिर रोने लगी। सुखराम ने कहा : 'आखिर रोती क्यों है ?'

वह रोती रही। बोली नहीं। फिर उसने घिग्घी बांधकर कहा : 'मन करता है तुझे छुरियों से गोद-गोद के मारूँ।'

सुखराम ने उसका सिर अपनी छाती में छिपा लिया।

२०

फागुन आ गया। नयी ऊष्मा पुलकित हो उठी। चारों तरफ़ एक नवीन जीवन का संचार हो गया। रुंधे हुए पर्वतों पर अब पत्थर तक अपनी सूनी परिधियों पर नये-नये स्पंदनों से विभोर हो उठे। और मैदानों पर उनकी वासना का ताप छा गया। फगनौटी झकोरे ले-लेकर चलने लगी। लहर खिंच गई। पीपल पर लाल-लाल पत्तियाँ निकल आईं। पांवों के पास से हवा ने उसके सूखे पत्तों को दूर-दूर उड़ा दिया और नया पेड़ ऐसा हिल-हिलकर चमचमाने लगा कि खिरनी लजा गई। उसने कहा कि देखो मुआ कैसा इतरा रहा है, कल तक नंगा-नंगा रो रहा था। और हाय ऐसे ही फागुन भी बीत ही गया।

चैताई की आने वाली बहार भी कैसी जादूगरनी है कि एक बार अपने गर्म-गर्म सांस छुला दिये कि बूढ़े-बूढ़े-से पेड़ों पर भी जवानी फूट पड़ी, और अपने नर्म-नर्म पत्तों को हिला-हिलाकर कसमसाने लगे। और अब कौए नहीं, पत्तों के रंग में रंग मिलाकर खेलने वाले तोते उनमें बैठते, फिर पांत बांधकर

टाँय-टाँयकर उड़ जाते, और फिर उसी हरियाली में जाकर खो जाते, लय-से हो जाते।

पीली कम्मर का भौंरा नटों के छोरे पकड़ते फिरते। भौंरा जाड़े भर पेड़ों के कोटरों में छिपा रहता। अब जो निकलता तो गुन-गुन गुंजार करता, फूलों की प्यालियों से नया-नया रस लेता और परागों में लोटकर विहार करता, और फिर अपने गीतों में प्रिया की पगध्वनि को गुंजरित कर उठता।

मधुमक्खियाँ निकल आई थीं। फिर नया कहना सुना रही थी। बज़-बज़ करतीं, एक दूसरे के पीछे भागतीं, और किसी बहुत बड़े पेड़ की डाली पर बड़ा-सा छत्ता तैयार करने में लग जातीं। उनके आस-पास से तितलियाँ उड़ जातीं और पंख फरफराकर इशारे कर जातीं।

रात को ढोल बजते। गांववाले मिल-जुलकर गीत गाते। कड़ी टूटने के पहले ही हे हे करके फिर गीत की लय पकड़ लेते और उनका गीत गहरे पानी पर तैरती भारी नाव की तरह छपक-छपक करता और बहने लगता। फसलें तैयार खड़ी थीं। सरसों के खेत हँस रहे थे। जौ के रेशमी खेतों में अब पकन शुरू हो गई थी। गेहूँ कांधों तक आता था। और अरहर के ऊँचे-ऊँचे खेतों में एक सुनहली छाया धीरे-धीरे शाम को उतरती, रात के अन्धेरे में डूब जाती। ढेर-ढेर कांस के किनारे रखे पूले अब मैले पड़ गये थे।

हवा प्यारी-प्यारी चलती और अंगों को एक नयी तड़प दे जाती, जैसे वह एक कसौटी थी जिस पर घिस-घिसकर जवानी में वासना का निखार आता। नये-नये फूलों की गंधों पर बेल की नयी गंध कांपती और फलहीन बेरों के पेड़ों में फरफराती। और फिर फुलवारी में अजीब-अजीब समा खिलता।

गांवों में काम बढ़ गया था। खेती का इंतज़ाम था। अब गर्मी बढ़ी है। अब फसल पकेगी। रखवाली का काम बढ़ गया है। चोरों की बाढ़ आ रही है। उधर देव उठने से कहीं ब्याह रचे जा रहे थे, कहीं सुहागिनें रात-रात गाती थीं, और अब जो क्वारे लड़के डगर पर चलते थे तो उनके कांधे उमंग से भर उठते थे। आँखों का ज्वार छोरियों के कानों पर जाकर टकरा रहा था। जंगल बगर गये, बाग हुमक उठे, मानुस की तो बात ही क्या।

बाँके तन्दुरुस्त हो गया था। रुस्तमखाँ और प्यारी भी ठीक हो गये थे। एक नया जीवन ही मिला था, जिसकी उन्हें आशा भी नहीं थी।

प्यारी अब नई हुमस में थी। उधर नीम पर निंबौली आती थी, इधर

प्यारी को सुखराम की याद आती। आस्मान में बादल आते और सफ़ेद-सफ़ेद से चिलककर झूमा करते। ठंडी-ठंडी हवा मन को सांत्वना देती।

उसकी चाह थी अब सुखराम आये। वह उसे देखे। कैसी लगती है वह! उसमें क्या बिगड़ा है। कुछ नहीं। बिल्कुल ठीक ही है। और क्या वह अब भी अच्छा नहीं हुआ होगा। अब न आने का तो उसने बहाना बना रखा है। जान-बूझकर नहीं आता। कजरी ने नहीं आने दिया होगा? पर वह सचमुच नहीं आया था। और बसन्त के फूलते ढाँक उसे जब छत से दिखाई देते, तो लगता कि सारी धरती घायल हो गई है, सुलग रही है। रात को ढेर-ढेर तारे देखती है तो अच्छा नहीं लगता। हवा हिये में लगती है, तो सूना-सूना लगने लगता है। क्या है जो चैन नहीं आता! उधर मोगरा महकता तो सांस को बांध लेता, रात की रानी की गन्ध आती तो बिस्तर पर बैठ जाती और फिर गुलाब की पंखुड़ियों को सबेरे देखती तो उन पर पड़ी ओस की बूँद को चमकती हुई पाकर, उसकी बड़ी-बड़ी आँखों में आँसू छलक आता। सारी हरियाली उसे घुमड़ते हुए धूँए-सी लगती। जी करता, सब तोड़ दे, सब गिरा दे और चली जाए। तितलियों की तरह भागती फिरे। छोंकर तक में रंग बदल गये, क्या इस जीवन में रंग नहीं बदलेगा! और मोरों की तरफ़ देखती तो भरे-भरे रंगीन पंखों सतरंगीनी बिछा देते कि पहाड़ों की-सी शाम याद आती, उनकी नीली गर्दन जब दबती तो श्यामला वसुन्धरा की स्फुरित उमंग नाचने लगती, पर सब कुछ काटे खाता। वह नहीं आया। और नये-नये नींबू निकल आए, बबूल तक फूट आये, और आक तक में कँपकँपी आने लगी, पर प्यारी का मन वैसा ही रह गया। पीले-पीले कपड़े पहनकर कनेर के पास खेलती जवान औरतों की ठिठोलियाँ भी मन्द पड़ गईं। चूड़ियों की झनक भी रोज़ की बात पड़ गई। और ठुमकते अंगों की बेताबी भी अपनी बेकली को छोड़ चली, गीत गुंजार बनकर डूब चले, पर वह नहीं ही आया।

चक्खन दवा ले आता। उसे ही प्यारी और रुस्तमखाँ खा लिया करते। उधर अभी सुखराम के पांव में चलते में कुछ दरद बाकी था। चक्खन प्यारी को बताता था। कजरी खूब मालिश करती है। सुखराम कहता है—'जोर से मल।' 'और कित्ती जोर से मलूँ दैया रे! घोड़े का खरैरा ले आऊँ?' वह कहती।

प्यारी सुनती तो मन मसोसकर रह जाती। उनकी वह रस-भरी बातें

उसके दिल को दरार दे जातीं। वह उसे बहुत-बहुत चेष्टा करके भरने की कोशिश करती। उसे कजरी से इतनी जलन नहीं थी। दुख था अपने दूर होने का, अपने अभाव का। वह देखती। पीपल की ऊँची से ऊँची फुनगी पर लंगूर चढ़ जाता और चुन-चुनकर कोंपलें खाता। इतनी ऊँचाई पर भी चढ़कर वह गिरता नहीं। पर जब प्यारी का मन वहाँ चढ़ता तो वह भहराकर गिर पड़ता।

सबसे बड़ी विषमता थी तन की और मन की। मन अब तन से डांवाडोल हो उठता, पर परिस्थिति के बंधन थे। वह ऐसी थी जैसे फूल के खिलने पर किसीने कह दिया था कि झूम मत। वह फूल कैसे कहे कि मैं अपने आप नहीं झूमता, मुझे कोयल की मद-भरी पुकार कँपा देती है।

वह दिन-दिन बैठी सोचती रहती। रुस्तमखाँ से जैसे उसे अब कोई सम्बंध ही न था। वह उससे घृणा करती। अब वह सारा दोस सुखराम पर ही रखती थी। क्यों वह आकर मुझे नहीं ले जाता? रुस्तमखाँ अब फिर शराब की हेंल्की चुस्कियाँ लेने लगा था। जब वह थाने से आता तो प्यारी बीमार बन जाती। बाँके अक्सर उसके पास आता और दोनों आपस में बातें किया करते।

उस दिन रुस्तमखाँ और बाँके में बातें हो रही थी। प्यारी को कौतूहल हुआ। छिपकर सुनने लगी।

'क्यों उस्ताद, अब तो बिल्कुल ठीक हो गये हो?'

'मुझे तो ऐसा ही लगता है।'

'तुम्हारी ये ठीक हो गई।'

रुस्तमखाँ ने कहा : 'हो ही गई लगती है सुसरी।'

'क्यों कैसे उखड़े-उखड़े बोल रहे हो?'

'औरत है बेवफ़ा।'

'मैंने पहले ही कहा था। नटनी है। नटनी का क्या भरोसा। तुम भी बसा बैठे।' बाँके ने कहा : 'अब भगा दो न?'

'नहीं अभी उसमें दम है बाँके। पहले वह बात तय कर।'

'मैं तैयार हूँ।'

रुस्तमखाँ ने इशारा किया और कहा : 'अभी ठहर जा ज़रा।'

'क्यों?'

'अच्छा तू धूपो से शुरू कर।' रुस्तमखाँ ने कहा : 'पर एक बात है। किसी-को पता नहीं चले।'

'नहीं, इसका तो मैं ध्यान रखूँगा।'

'और मुझे तेरी एक बात पसन्द नहीं।'

'क्या ?'

'पहले देख ज़रा वह भीतर यहीं है कि ऊपर है ? मुझे उससे डर लगता है।'

प्यारी ने सुना तो आड़ में हो गई। फिर वह सोचने लगी। धूपो !! उसकी तो आफ़त आयेगी ही। पर प्यारी करे भी तो क्या ? सुखराम तो आता नहीं। और आये भी तो उसे प्यारी क्यों बतायेगी ? फिर किसी झंझट में फँसना पड़ेगा। दुनिया में सैकड़ों लोग हैं, सैकड़ों लुगाइयाँ हैं। सबका ठेका थोड़े ही ले लिया है।

दुपहर का समय था। धूप अब बैठने लायक नहीं रही थी। प्यारी अपने कोठे में बैठी थी। नीचे चक्खन था। कुछ आवाज़ सुनाई दी : 'अरे ठीक हो गये ?'

'हाँ भइया। अब कोई बात नहीं।'

प्यारी को कौतूहल हुआ। खिड़की के पास जा खड़ी हुई। रुस्तमखाँ जा रहा था। प्यारी ने देखा—सुखराम आया था।

रुस्तमखाँ चलने लगा।

'ठीक हो गये ?' सुखराम ने कहा।

'हाँ बिल्कुल।'

'नहीं कसर रह गई है अभी', सुखराम ने सिर हिलाकर कहा।

'अच्छा फिर बात करूँगा', उसने जाते हुए कहा। वह चिंता-ग्रस्त था।

पीछे कजरी थी।

तब तो सचमुच ले आया है। अब कौतूहल तो था नहीं मिल तो पहले ही चुकी थी। पर उन दोनों की जोड़ी खूब फबती थी। कजरी बड़ी अच्छी लग रही थी। कपड़े नये थे। सुखराम की तन्दुरुस्ती अब पहले से भी अच्छी लग रही थी। जाने क्यों प्यारी को लगने लगा कि वह खुद अच्छी नहीं है। और वह रस-हीनता की भावना पर विजय नहीं पा सकी। उसे एक प्रकार की निराशा हुई और चोट मे भाव रिक्त हो गये।

मन को धक्का लगा। उसे लगा वह कमज़ोर हो गई है।

बीमार बनकर लेट गई।

कजरी और सुखराम ऊपर आये।

'कौन है !' प्यारी ने कहा।

'अरी मैं हूँ।' सुखराम ने कहा।

'कौन ? तू ?' प्यारी ने बैठकर कहा : 'अच्छा ! मैं तो समझी थी तू यहाँ है ही नहीं।'

'क्यों ?'

'कभी आया ही नहीं।'

'जानती नहीं तू, मैं चोट खा गया था।'

'खबर तो पड़ी थी। पर इतने दिन लग गये तुझे ?'

अभी तक उसने जान-बूझकर कजरी पर ध्यान नहीं दिया था। कजरी ने इस पर चिंता नहीं की थी। वह इधर-उधर देखकर कोठे का मुआयना करने में लगी हुई थी। सुखराम ने और प्यारी ने दोनों ने ही इस चीज़ को देखा। उसके भोलेपन पर सुखराम मुस्कराया। प्यारी उस मुस्कराहट को देखकर खीझ उठी और उसने सुखराम की ओर घायल दृष्टि से देखा, जैसे तू मुझे यों सता रहा है ! परन्तु सुखराम ने उस ओर से आँख हटा ली और कहा : 'कजरी !'

कजरी चौंकी। कहा : 'क्या है ?'

'क्या देख रही है ?'

'कुछ नहीं।' कजरी ने झेंपकर कहा।

'देख यह तेरी जेठी है।'

'पाँव लागूं !' कजरी ने व्यंग्य से कहा और प्यारी के पाँवों को ठकुरानियों की नकल पर घुटने तक सहलाया, ऊपर से नीचे, तीन-चार बार। प्यारी का चेहरा झेंप से सुर्ख हो गया। पर क्या करती, कहा : 'भाग बढ़ें। सुहाग रहे। दूधों नहाये, पूतों फले।'

फिर प्यारी ने सुखराम से कहा : 'बैठ !'

सुखराम धरती पर बैठ गया। कजरी खड़ी रही।

'यह है तेरी कजरी।' प्यारी ने कहा।

'क्यों कैसी है ?'

'अच्छी है।' प्यारी ने कहा।

कजरी ने हँसकर माथा ढाँक लिया।

सुखराम ने कहा : 'देखा तूने ??'

कजरी ने मुँह फेर लिया। वह प्रसन्न थी। बोली : 'क्या कहता है तू। मुझे लाज आती है।'

प्यारी ने भौं चढ़ाई, माथे पर बल पड़ गये और उसने सुखराम की ओर सिर हिलाया। पर सुखराम विचलित नहीं हुआ। बोला : 'बैठ जा कजरी ! खड़ी ही रहेगी ?'

'अरे मैं तो भूल ही गई थी कहना।' प्यारी ने कहा।

'मैं तो बिना कहे ही बैठ जाऊँगी जी' कजरी ने कहा। उसमें जैसे कोई शंका नहीं थी। निश्चिन्त थी। मस्त थी। ऐसा लगता था जैसे सारे फागुन-चैत उसीमें आकर इकट्ठे हो गये थे।

'आ मेरी सौत यहाँ बैठ।' प्यारी ने खाट पर बैठने का इशारा किया।

परन्तु कजरी सुखराम के पास बैठ गई। उसने प्यारी की बात को सुनकर भी जैसे उस पर ध्यान देने की आवश्यकता नहीं समझी। वह तो अपने मन की करेगी। उसकी प्रत्येक अंग-भंगिमा से प्रकट होता था कि वह प्यारी की उपस्थिति से बिल्कुल प्रभावित नहीं है। उसका यह व्यवहार प्यारी को अच्छा नहीं लगा।

'क्यों वहाँ क्यों बैठी तू,' प्यारी ने आर्त्तस्वर से कहा। उसके शब्दों में आतुरता तो थी, परन्तु उससे भी अधिक था अपमान के अनुभव का प्रकटीकरण, कि तूने मेरी उदूलहुक्मी किस कारण की है, और वह भी मेरे ही घर में ! मेरे ही सामने !!

'मेरी जगह इसीके पास है।' कजरी ने दाँत निकालकर कहा।

'ठीक बात है' प्यारी ने कहा। सिर हिलाया। जैसे कहना चाहकर भी कह नहीं रही है। वह मन की घुटन उस समय सुखराम से छिपी नहीं रही। प्यारी की दृष्टि में वह बड़ी थी, उससे उच्च थी, परन्तु कजरी ने वनफूल की भांति सिलमा-सितारों की उपेक्षा कर दी थी।

'अरी तू बड़ी बातून है।' प्यारी ने हँसकर कहा। वह जैसे बात को मज़ाक में टाल देने की चेष्टा करने लगी। सुखराम ने सोचा, चलो यह अच्छा हुआ। वर्ना दोनों अपनी-अपनी जगह पत्थर हैं। परन्तु कजरी को चैन नहीं आया। उसने अपने सिर का कपड़ा ठीक किया और पांवों के बिछियों को कुछ ठीक करने के बहाने दिखाते हुए उससे कहा : 'गरीब आदमी हैं। तुम

ठहरीं मालकन। हम यहीं ठीक हैं। खाट पर बैठूंगी तो सोभा थोड़े ही लगेगी। डेरे पर भी धरती ही है, सो यहाँ आकर आदत क्यों बिगाड़ूं। ये वचन दे कि वहाँ भी बिठाये रहेगा तो बैठ जाऊँ। नहीं तो फायदा ही क्या ? अपना मन ही छोटा होगा ?'

प्यारी चिढ़ी। कहा : 'वहीं बैठ। तेरी मरजी ! मैं क्या करूँ ? तुझे मुझ पर भरोसा ही नहीं।'

'भरोसा नहीं होता तो उस दिन कैसे चली जाती। तुमने कहा सो मैं मान नहीं गई थी !'

सुखराम ने बीड़ी जलाई। उसने धूंआ छोड़ा और अब उसे उन दोनों की बातचीत में मज़ा आया। उसने सोचा कि पहले हो लेने दो। आखीर में देखी जायेगी। सो ऐसा बैठ गया जैसे बड़े भारी सोच में डूब गया था। उसके मन में दोनों को जाँचने की जिज्ञास जाग्रत हो गई थी।

प्यारा ने कहा : 'सुखराम ! छोटी के भाग सदा बड़े।'

'जेठी के भाग किससे कम हैं ?' कजरी ने कहा।

'मेरा क्या है ? हूँ नहीं हूँ।'

'न होके तो यहाँ तक ले आई।'

'क्यों ? आना अच्छा नहीं लगता ?'

'अच्छा नहीं लगता तो बिना बुलाये अकेली क्यों आती पहले ?'

'वह और बात थी।'

'वह भी उसीकी बात थी, जिसकी बात आज है।'

प्यारी ने सुखराम की ओर देखा और व्यंग्य से उससे कहा : 'देख रही हूँ सब ! कैसे कपड़े हैं। मुझे तो तैंने नहीं बनवाये।'

'तूने कभी मांगे थे ?' कजरी ने कहा।

प्यारी फँस गई। उसने सुखराम की तरफ़ देखा, पर उसने ढेर सारा धूंआ मुँह के सामने उगल लिया था। उसका मुँह दिखा नहीं। कजरी को प्रसन्नता थी। जो उसने सोचा था, वही हुआ। प्यारी ने चोट की : 'मांग के पहने तो क्या पहने ?'

यह प्रमाणित हुआ कि कजरी ने मांग के पहने हैं। कजरी कुछ क्षुब्ध हुई। कहा : 'अपनों से मांगना तो मांगना नहीं होता। जो मांगने में हिचक जाये, समझो उसने पराया ही समझा है।'

प्यारी तिलमिला गई। तभी कजरी ने कहा : 'हम तो ऐसे कपड़े कभी-कभी पहनते हैं बीबी ! तुम तो नित पहनती हो !'

'उससे क्या ?' प्यारी ने कहा : 'बात तो बनाने की थी।'

'तो क्या जिसने भी बनवा दिये वही क्या बड़ा वो हो जाता है ?'

कजरी ने रुस्तमखाँ की ओर इंगित किया था। प्यारी समझ गई और हिल उठी। वह दोनों ओर से हार गई थी। उसकी इच्छा थी कि सुखराम बीच में बोले, पर वह तो बिल्कुल चुप बैठा था, जैसे है ही नहीं। यह उसे बहुत खटका, उसे लगा वह कजरी की तरफ़ है, न बोलकर उसका साथ दे रहा है। मेरे सामने लाकर बिठा दी है, यों तो मुझ पर अहसान कर दिया और रही बात संग की, सो वह छोटी की ही ओर है। परन्तु उसने उधर से दृष्टि हटा ली और कहा : 'क्या हो जाता है, सो तो मैं नहीं जानती, पर इसमें भाव तो बना ही रहता है।'

'भाव की कहती हो, मैंने भाव-तोल की बात तो नहीं की जेठी।'

प्यारी को गुस्सा आया। पर पी गई। कहा : 'करती भी तो उससे लाभ क्या होता। वह तो समरथ के काम हैं, हर किसीके नहीं।'

कजरी ने टक्कर दी : 'तभी तो मैं ऐसी गैल नहीं चलती जहाँ अपने गधे की लादी अपने आप ढोनी पड़े।'

'और वह भी' प्यारी ने पैंतरा बदला : 'जब अपनी जगह गधा ही ले ले।'

कजरी लगा हार जायेगी। उसने कहा : 'ऐसा तो छोड़ के ही चलती हूँ, मानुस की खोज सहज नहीं होती जेठी।'

बात पलट गई। सुखराम ने देखा वह अभी भी अड़ी हुई थी। वह आज तक इस तरह की जली-कटी सुन नहीं सका था। उसे बड़ा आनन्द आ रहा था, जैसे दोनों हाथों में दो फुलझड़ियां जलाकर कोई बालक निकलती चिन्गियों को देखकर प्रसन्नता से देखता रह जाता है।

प्यारी हिल उठी। कहा : 'जिसे खोज के मानुस समझा है, क्या जाने वह मानुस न हो।'

'अब यह तो तुम ही बता सकती हो ! मैं ऐसा क्या जानूं।' कजरी का तैयार उत्तर था। प्यारी आर्त्त हो उठी। उसने फिर सुखराम की ओर देखा, पर वह इस समय गर्दन झुकाए सिर खुजा रहा था। उसे सुखराम पर बड़ा गुस्सा आ रहा था। पर कजरी ने उसकी आँखों को ताड़ लिया था। कहा :

'जेठी ! बादल का क्या भरोसा ! वह तो हवा के होके रहे हैं।'

'तो हवा भी किसकी होके रही है छोटी ! आई बह गई। टिक के नहीं रहती।' प्यारी ने कहा।

'यही तो मैं कहती थी कि दगा दे जाती है। बड़ा सहारा लो, फिर दूसरे की बगिया में जा के झूमती है।'

प्यारी छटपटा उठी। कजरी ने और चोट दी : 'हवा तो उतनी ही अपनी जो साँस में चली जाये।'

'चली जाये तो भली। पर हमने तो सबको साँस छोड़ते ही देखा।'

कजरी ने हँसकर कहा : 'छोड़के फिर खींची तो क्या न आई ?'

प्यारी को न सूझा। वह उठी और बोली : 'मैं अभी आती हूँ।'

कजरी ने कहा : 'कहाँ जाती हो ? बैठो। इतने दिन में तो आई हूँ। फिर भी ऊब गईं। कहो तो चली जाऊँ ?' और यह कहकर सचमुच वह उठी।

'क्या करती है ?' प्यारी ने हाथ पकड़कर कहा : 'तू जाये तो तुझे मेरी कसम।' कजरी बैठ गई। प्यारी भी बैठ गई। तब मुस्कराकर प्यारी ने कहा : 'भूल ही गई थी। तेरे महावर लगा दूं यही सोचकर उठी थी।'

अब कजरी ने सुखराम की ओर देखा। उसे शरम आई। पर सुखराम ने उससे भी आँख बचा ली। प्यारी ने भी यह देख लिया। कहा : 'क्यों अब जाऊँ ?'

'राम-राम, क्या कहती हो ?' कजरी ने पराजित होकर कहा।

प्यारी ने छेड़ा : 'लाज आती है ?'

कजरी ने कहा : 'तुम जब छेड़ती ही हो तो मैं क्या करूँ। मैंने क्या ऐसा कहा था ?'

प्यारी को आनंद आया। उसने व्यंग से उसे बेधने के लिये फिर कहा : 'क्यों तेरे मरद ने कहा था मुझसे तो, मैं क्या अपने आप जान गई थी !'

कजरी इस बात से बहुत झेंपी। परंतु उसने अपने आपको संभाल लिया और कहा : 'तुम कहती हो तो माने लेती हूँ। पर एक बात पूछती हूँ। मेरे मरद से तुम्हें क्या ?'

प्यारी इस उत्तर के लिये तत्पर नहीं थी। उसे इस प्रश्न में अपने समस्त अधिकारों को छीना जाते हुए देखकर एक चुनौती-सी लगी और वह आत्म-

रक्षार्थ अपनी समस्त लज्जा छोड़कर एकदम भभकती हुई-सी कह उठी : 'वह मेरा भी तो है।'

क्षणभर के लिये सुखराम और कजरी के नेत्र मिले। प्यारी ने इसे देख लिया। लाज से पानी-पानी हो गई। अपनी ही सौत से उसे आज यह क्या कहना पड़ गया था ?

'फिर अपना कहती क्यों नहीं ?' कजरी ने मुस्कराकर कहा।

प्यारी का मन अब भी हल्का नहीं हुआ। उसे लगा जैसे कजरी उस पर दया कर रही थी। उसे यह स्वीकृत नहीं हुआ। उसने बात बनाने को कहा : 'कहीं तुझे बुरा न लगे।'

कजरी हँसा। उसके स्वर में बड़ा बड़प्पन था, बल्कि उसने अभिमान तक को छू लिया था। उसका यह रूप देखकर स्वयं सुखराम तक चौंक उठा।

'भली कही' कजरी ने कहा : 'मेरे बुरे का ही तुझे बड़ा ध्यान है न ?'

'क्यों तू मेरी छोटी नहीं है ?'

कजरी इस अचानक के स्नेह की टक्कर को झेल नहीं सकी। आखिर प्यारी ने अपने बड़प्पन से उसे पराजित कर ही दिया। और कजरी चाहकर भी इसका उत्तर नहीं दे सकी।

सुखराम हँसा। कहा : 'बस यों ही चलती रहेगी ? या इसका कभी अंत भी होगा ?'

'मैं तो कुछ नहीं कहती।' कजरी ने कहा : 'तू भी उसकी ही ओर बोलने लगा ?'

'मैं तो चुप बैठा हूँ।'

प्यारी हँसी। कहा : 'कुछ भी हो कजरी, हक तो मेरा ही पहला है। तू तो पिछाँही खेती है।'

'गधा भी पिछाड़ी ही चलाता है।' कजरी ने मुस्कराकर कहा।

'सो तो चलवा ही रहा है बैठा-बैठा।' प्यारी ने सुखराम को देखकर कहा।

'बाँसुरी के दो छेदों से कभी एक-सा सुर नहीं निकलता।' सुखराम ने कहा।

'अच्छा तो तू सांस फूंक के मजा ले रहा था अभी तक ?' कजरी ने कहा।

'मै समझी थी तुझे ये समझा-बुझा के लाया है।' प्यारी ने कहा।

'ये मुझे क्या समझायेगा', कजरी ने कहा : 'तुम्हें ही भर गया होगा पहले ।'

'अरे बाप रे !' सुखराम ने कहा : 'दोनों मिल गईं । अब मैं बुरा फँसा ।'

दोनों लजा गईं ।

'तुम बीमार हो ?' कजरी ने कहा ।

'हाँ !' प्यारी ने उत्तर दिया ।

'क्या हुआ है ?'

'ऐसे ही ।' उसने उपेक्षा से कहा ।

'बड़े आदमियों की तो तबियत खराब ही रहती है । यहाँ घूमना-फिरना तो होता नहीं होगा ?'

'कुछ नहीं ।'

'फिर बताओ हाथ-पाँव न चलेंगे तो रोटी पचेगी कैसे ? जिस रोटी को निगलने को दाँत कटाकट करने पड़ते हैं, वो क्या वैसे ही हजम हो सकती है !'

'यह तो भाग की बात है । मुझसे आराम से क्या और लोग नहीं रहते ?'

'तो उन्हें बचपन की वैसी ही आदत होती है । अब हम हैं, पर पत्थर तोड़ा की बराबरी तो नहीं होती, जो जेठ दुपहर में पहाड़ पर बैठकर धूप में पत्थर कूटा करता है !'

प्यारी सोचने लगी । कजरी सच कहती थी । उसने कहा : 'मैं भी यही सोचती हूँ !'

'फिर सोचकर करती क्या हो ?'

प्यारी ने सुखराम की ओर देखा ।

कजरी ने कहा : 'तुम्हारी वो बीमारी तो गई ?'

प्यारी का चेहरा सफ़ेद पड़ गया । लाज से आँखें नीची हो गईं । उसने हाथों में मुँह छिपा लिया पर फिर भी रो ही पड़ी । इतनी लज्जा उसे कभी नहीं आई थी । यह ग्लानि थी । सौत के मुँह से एक दिन यह सवाल सुनना पड़ेगा यह उसे कभी भी उम्मीद नहीं थी । परन्तु उसने आँखें पोंछ लीं और सिर उठाकर कहा : 'नटिनी हूँ न ? आई चली गई ।'

'तुम तो ऐसे कहती हो ।' कजरी ने सान्त्वना दी : 'जैसे यह नटिनी को ही होती है । अरे मुझे हो जाती तो क्या ये मुझे छोड़ देता ?'

सुखराम ने कहा : 'अरे यह तो होता ही है। इन्सान है, हारी-बीमारी लगी ही रहती है, इसके लिये रोना-धोना क्या ?'

प्यारी का मन हल्का हो गया। मुस्कराई।

कजरी ने कहा : 'तुमने समझा होगा मैंने बुरी नियत से कही थी।'

'समझी तो यही थी।'

'अब तो नहीं सोचती।'

'नहीं।' प्यारी ने ममता से उसकी ओर देखा। कजरी को वह दृष्टि अच्छी लगी।

'पहले तो तू बीमार नहीं रहती थी।' सुखराम ने प्यारी से कहा।

'तब वह तेरे पास थी। तू मान मना लेता था न तब ?' कजरी ने कहा। 'अब कौन है उसका ? विचारी ! तेरे लिये तड़प-तड़पकर रह जाती है।'

प्यारी ने कहा : 'मुझसे बात कर। उसे क्यों बीच में लाती है ? वह क्या कुछ कह रहा है ? आपसे बनती नहीं तो उसे खदेड़ती है। मुझसे अपनी जलन मिटा ले छोटी। वह तो विचारा चुप बैठा है। कहे देती हूँ। खबरदार उससे कुछ न कहियो।'

कजरी ने उसका व्यंग्य भी देखा और स्नेह भी देखा। उसे लगा वह आपसी झगड़ा है जो ऊपर तक नहीं जा सकता। परन्तु उसे यह समाधिकार बुरा लगा।

'क्यों न कहूँगी ? मेरा वह है। तू नहीं।' उसने हठात् कहा।

यह आकस्मिक परिवर्त्तन था। बल्कि कजरी भी जल्दी में कह गई थी। वह भी यह कहना नही चाहती थी। परन्तु तीर हाथ से निकल चुका था। अब वह कर भी क्या सकती थी। अधजल गगरी कभी न कभी छलककर बाहर भी जा गिरती है।

प्यारी को चोट पड़ी। गुस्सा आया। कहे निकल जा यहाँ से। परन्तु यह कह नहीं सकी। अपमान पी गई। पूछा : 'तू मेरी कोई नहीं ?'

'हूँ क्यों नहीं ?' कजरी ने झेंपकर कहा।

'ये तेरा ही है !' प्यारी ने पूछा।

'तेरा भी तो है।' कजरी को कहना पड़ा।

'फिर अभी तो कहती थी कि तू मेरी कोई नहीं है। कैसे कहा तेरे मुँह से यह बोल। मैं जवाब माँगती हूँ।'

'धरती उसकी जो जोते, वैसे राजा लगान वसूल करता है बन्दूक के जोर पै। सो तू कर ले। मैं क्या रोकती हूँ !'

फिर दोनों ने एक-दूसरी की ओर देखा। उस दृष्टि में एक रहस्यमय आदान-प्रदान हुआ।

सुखराम ने कहा 'बस !'

'और क्या ?' प्यारी ने कहा : 'अच्छी है। मुझे पसन्द आई।'

'तुझे कैसी लगी ?' सुखराम ने कजरी से पूछा।

कजरी ने कहा : 'तुझे क्या ! सीधे बांये हाथ से कभी पंजा लड़ा है ! दोनों के अंगूठे एक हा ओर झुकते हैं।'

प्यारी चुप हो गई। मुस्करा दी।

सुखराम ने कहा : 'सच कह प्यारी बीमार है !'

'नहीं।'

'तू मुझसे छुपाती तो नहीं !'

'नहीं।'

वह मुस्कराती रही। पूछा : 'विसवास नहीं हुआ क्या !'

'हो गया। फिर क्यों पड़ी है !'

'देखती थी, तुम दोनों पूछते हो या नहीं।'

कजरी ने कहा : 'चलो। रहने दो।

सुखराम ने हँसकर कहा : 'कजरी पूछती अच्छा है।'

दोनों हँस दीं।

चलने की बात हुई। कजरी ने उठकर कहा : 'तो अब हम जायें ?'

सुखराम भी उठ खड़ा हुआ। परन्तु प्यारी उठी। उसने कजरी का हाथ पकड़ लिया और ज़िद करके कहा : 'कहाँ जा रही है अभी से तू। ये कौन है जो तुझे ले जाये। कुछ खाके नहीं जायेगी ? मैं वैसे न जाने दूंगी !'

'मैं नहीं खाऊँगी।' कजरी ने कहा।

'क्यों नहीं खायेगी तू ?'

'मैं अपना खाऊँगी, कै अपने मरद का।'

'मैं तेरी कोई नहीं ?'

'तू तो है, ला अपना खिला। ये तो तू पराये का ही तो खिलायेगी ?'

'पराया सही, पर है तो मेरी कमाई ? और तू अपना खाने की कहती है, सो तू ही कहाँ से ले आती ?'

कजरी ने कहा : 'अच्छा, अच्छा छोड़ । हाथ है कि लोहा है । बड़ा जोर है तुझमें जेठी ।'

'जोर है ? अब तो मुझमें बल ही नहीं रहा ।'

'किसी दिन लड़के देख लेना,' सुखराम ने कहा ।

'अरे तू ले आ न ?' प्यारी ने कहा । 'कुछ मीठा मुह करा दूँ इसका ।'

'तू न जइयो' कजरी ने कहा ।

प्यारी ने कहा : 'मैं कहती हूँ जा । उसका मुँह क्या देखता है !'

सुखराम ने कहा : 'जाता हूँ कलमूंडियो लड़ती क्यों हो ?'

सुखराम चला गया ।

दोनों बैठ गईं । बाहर दुपहर का सन्नाटा छा रहा था । कभी-कभी दूर बाज़ार का कलरव-सा हल्के स्वरों से हवा पर मचल जाता और अपनी उत्सुकता के कारण कोनों के अँधेरे से अठखेली करने लगता । कोठे में साधारण सामान था । कजरी उसे देखती । वह उससे प्रभावित नहीं हुई थी । वह सोच रही थी कि इस सबमें ऐसा क्या सुख है जो प्यारी ने यहाँ आकर रहना पसन्द किया । उसने सोचा शायद वह अभी इस सबका सुख समझती नहीं है । क्योंकि वह कभी ऐसी जगह रही नहीं है, क्या जाने इसीसे यह सब अभी रुचि के अनुकूल-सा प्रतीत नहीं होता । उसके अपने झोंपड़े में इसकी तुलना में अधिक स्वतन्त्रता है । परन्तु उसे ऐसा लगा जैसे यहाँ बैठी है तो लगता है वह घर में बैठी है । वहाँ बैठती है तो लगता है घर उसके चारों ओर खड़ा है । पहली अवस्था में मनुष्य परिस्थितियों से दबा हुआ है, दूसरी अवस्था में वह उनका स्वामी है । यह सब छोड़ने में मनुष्य अटक सकता है, वह सब छोड़ने में रुकने का सवाल ही नहीं उठता । इस सबको बनाने के लिये पैसा चाहिये, उस सबको बनाने के लिये मेहनत चाहिये । और यही दोनों का भेद है । यह अवस्था कर्ज़ा चुकवाती है, वह अवस्था अपना कर्ज़ा उतार देती है ।

प्यारी उसे कनखियों से देख लेती थी और सोचने लगती थी । सुखराम के जाने के बाद यह सन्नाटा छा गया है । प्यारी फिर से बात शुरू करना चाहती है । पर क्या कहे वह ? यह वह सोच नहीं पा रही है । अभी तक तो कटाछनी चली । पर अब कजरी से उसे ऐसा कुछ भी कहना ठीक नहीं है, जिससे कजरी

को बुरा लगे। वह उसके रूप को देख रही है। अच्छी है। और फिर उससे जो उसका सम्बन्ध जुड़ा है वह कितना विचित्र है। पर उससे प्यारी को घृणा क्यों नहीं होती ? वह स्वयं इसे सोच नहीं पा रही है। है तो यह सौत ही। और सौत तो आटे की भी अच्छी नहीं होती। फिर भी हृदय कैसा आकर्षण अनुभव करता है !

प्यारी ने कजरी की ओर घूरकर देखा और जैसे उसने बात करने का मसाला ढूंढ़ लिया। कजरी प्रस्तुत हो गई और उत्सुकता से देखने लगी।

'तू उसे आने नहीं देती ?' प्यारी ने कहा।

'मैं क्यों रोकूंगी उसे ?' कजरी ने कहा।

'फिर वह क्यों नहीं आता ?'

'उसका मन न करता होगा।'

'यह कैसे हो सकता है ? वह तो यहाँ तुझे ले आया। जरूर तू मुझसे झूठ कहती है।'

'आप पूछ लीजो उससे।' कजरी ने फिर कहा। प्यारी को संदेह हुआ। उस निश्चयात्मकता में उसके प्रेम के आधार हिल गये। परन्तु उसे फिर भी संशय बना ही रहा। उसने सोचा। क्या यह हो सकता है ? क्या कजरी उसे चिढ़ाने के लिये ही तो यह नही कहती ?

'तू मुझे यह जताती है कि वह तुझे ज्यादा चाहता है ?' प्यारी ने कहा। परन्तु उसके स्वर में करुण याचना थी जिसे वह किसी भी प्रकार छिपा नहीं पाई थी। सचमुच उसके मर्म पर आघात हुआ था। क्या सुखराम ही यहाँ नहीं आना चाहता था !! फिर आया ही क्यों है ?? मुझे जलाने।

कजरी विजयिनी की तरह हँसी।

प्यारी सोच रही थी। तभी वह कभी मुझे संग ले जाने की बात नहीं करता। यों आता है, उठता-बैठता है तो क्या ? पर फिर उसने इलाज जो किया है। उससे क्या है ? वह तो बहुतों का इलाज करता है। नहीं, नहीं, पर वह मुझे चाहता है। कहा : 'कजरी तूने पहले क्यों नहीं बताया ?'

'क्यों ? बोलती क्यों ?' उसने पूछा।

'मैं भूल में थी कजरी।' प्यारी ने दूर देखते हुए कहा।

'कैसी भूल जेठी ?'

'जेठी न कह, प्यारी कह। मैं तेरी कोई नहीं हूँ। जानती है। फिर मुझे क्यों सताती है ?'

'मैंने क्या कह दिया है ऐसा ?' कजरी ने कहा।

'कुछ तो नहीं।' प्यारी ने आंखें पोंछीं।

'तू आप पाले के बाहर आके छू गई और चीं बोले तो मैं क्या करूँ।' कजरी ने कहा। 'तुझमें अकल नहीं ! मूरख रोने बैठ गई। अरे मैं तो दिल्लगी करती थी। अगर वह न आना चाहता, तो मुझे लाता ? एक बात पूछूँ प्यारी ?'

'पूछ।' उसने लजाकर कहा।

'तू उसे बहुत मानती है ? है न ?'

प्यारी ने लाज से सिर झुका लिया। और मुँह फेरकर धीरे से कहा : 'कजरी। अब मैं समझ गई। तूने बातों से ही उसे छकाया है।'

'किसे ?'

'सुखराम को।'

'वह तो बड़ा भोला है !!'

'उसमें अकल ही कहाँ है।'

'उसने मुझे छकाया मैं छक गई जेठी। वह तो ऐसा चतुर है कि मैं कह नहीं सकती तुझसे।'

दोनों बैठ गईं। दो दृष्टिकोण अब पास आ गये थे।

'मैं तो उसे नचाती थी पहले।' प्यारी ने कहा।

कजरी ने कहा : 'अब नचा के देखियो ! कैसा चालाक हो गया है।'

'सच ?' प्यारी ने कहा। उसे विश्वास नहीं हुआ।

'तैंने देखा नहीं, कैसा हमें लड़ाके हँस रहा था।'

'अरे दैया ! तू ठीक कहती है। अरे ! मैं आई।'

प्यारी उठी। चूड़ियां लाई।

'यह क्या है ?'

'तेर लिये ली थीं।' प्यारी ने कहा : 'ला मुझे हाथ दे।'

कजरी के मुख पर संकोच आया।

'क्यों सकुचती है ?' प्यारी ने पूछा।

'थोड़ा डर लगता है।'

'क्यों ?'

'यह अच्छी जो है।'

'तो क्या तेरे लिये बुरी वाली लेती ! कैसे तेरे गोरे-गोरे-से तो हाथ हैं। दुनिया में छोटी की ही कदर होती है। मेरी तो तब तक है, जब तक तेरी सेवा कर सकूँ। मैं तो तेरी चाकरी करूंगी।'

'हाय जेठी ! मैं तो तेरी बांदी हूँ। तू क्या कहती है। मुझे लाज आती है।'

चूड़ियाँ पहनाई। देखीं। कजरी ने भी देखी और आंचल में छिपाने लगी।

'क्यों छिपाती है।'

'वह आता होगा न ?'

'तो ?'

'देखेगा।'

'तो क्या कर लेगा ? वह कहे तो लौटा लूंगी।'

'नहीं तुम समझीं नही।' उसने झेंपकर कहा।

प्यारी हँसी। कजरी ने प्यार से देखा।

'तुझे मुझसे घिन नहीं ?' प्यारी ने कहा।

'नहीं।' कजरी ने कहा।

'क्यों ?'

'क्या जानूँ ?'

'अब लगी बड़ी भोली बनने।'

'सच मैं नहीं जानती जेठी।'

'पर तू नहीं जानना चाहती कि तू मुझे कैसी लगती है।'

'नहीं।'

'क्यों ?' अप्रतिभ होकर प्यारी ने पूछा।

'मैं जानती जो हूँ।'

'क्या ?'

'तुम मुझे चाहती हो।'

'तुझे कैसे मालूम ?'

'तुम मुझे मीठा खिलाने को मँगाती हो। चूड़ी पहनाती हो। फिर भी मुझे डर रहने की कोई गुंजायस है ?'

उसकी बात में सरलता थी। प्यारी प्रसन्न हुई। और कहा : 'और जो मैं ये

कहूँ कि यह सब दिखावा है तो तू क्या करेगी ?'

कजरी ने कहा : 'तुम झूंठ कहती हो ।'

'क्यों ? कोई सौत को चाहती होगी ?'

'चाहती क्यों नहीं ?' कजरी ने कहा, पर वह सकते की-सी हालत में पड़ गई । कजरी को अस्थिर जानकर प्यारी ने उसका हाथ पकड़कर कहा : 'कैसी अच्छी लगती है तू ।'

कजरी लजाई ।

'तुमसे तो अच्छी नहीं हूँ ।'

प्यारी हँसी । कहा : 'अच्छा !'

दोनों हँस दीं । बहुत-सा स्नेह आया, बैठ ही गया । चार आँखों में बिछा, मन में उतरा, रग-रग में पुलक हुई । बड़ी शांति फैली । और फिर विश्वास खेलने लगा, घुटनों पर चलते बालक की तरह, आनन्ददायी, सुखदायी···

'तू मुझे चाहती है कजरी ?'

'बहुत तो नहीं, पर चाहती हूँ ।'

'तू मुझे यहाँ से ले चलेगी ?'

'तुझे तो वह ले जायेगा कि मैं ?'

'क्यों ? तू चाहे तो वह छोड़ देगा ?'

'मैं ऐसा चाहूँ तो मुझे मौत आय ।'

'तू अच्छी है, कजरी ! बड़ी भोली है ।'

'लगी बनाने मुझे । मैं भोली हूँ तो तू कौन है ?'

'मैं तेरी जेठी हूँ ।'

'तुझे मैं जरूर ले चलूँगी ।'

दोनों गले मिलीं ।

कजरी ने कहा : 'हाय उससे न कहियो ।'

'क्यों ?'

'कि हम तुम मिल गई हैं अब ।'

'तू कहेगा तो मैं कहूँगी ।'

सुखराम ने कलाकन्द लाकर धर दिया । और कहा : 'अच्छा भई, यह भी अजीब बात रही ।'

कजरी ने पूछा : 'कौन-सी ?'

'यहाँ सुलह हो गई है ।'

'तू गया सो ही लड़ाई बन्द हो गई ।'

'खा', सुखराम ने कहा : 'लड़ाई जैसे मेरे पीछे ही है ।'

'और है ही क्यों ?'

'क्या बेवकूफ़ है ! भला ये भी कोई बात है ? तू चाहे तो मैं अभी चला जाऊँ ?'

'खायेगी नहीं', प्यारी ने कहा : 'मैं खिलाऊँगी ।'

'मैं नहीं खाती,' कजरी ने कहा : 'ये बोलता कैसे है ?'

'कैसे बोलता हूँ ?'

'कजरी ठीक कहती है ।' प्यारी ने कहा । सुखराम ने आँख अधमिची करके सिर हिलाया । प्यारी की ओर देखा, फिर कजरी की ओर । प्यारी ने उठाकर कजरी के मुंह में कतली रखी ।

कजरी खाती रही, प्यारी खिलाती रही ।

'अरी', सुखराम ने कहा : 'यह सब खा जायेगी, कुछ अपने लिये भी तो बचा ले ।'

कजरी ने कहा : 'तू न खायेगी । सच कहता है, मैं सब खा-पीकर चट कर जाती ।'

'खाले, मुझे अच्छा लगता है ।' प्यारी ने कहा : 'तुझे खिलाते में सुख होता है ।'

'अरी रहने दे वह सुन रहा है ।' कजरी ने कहा ।

'सुनकर जलेगा बिचारा' प्यारी ने कहा ।

'इसका खेल खतम जो हो गया ।' कजरी ने उत्तर दिया ।

सुखराम का दिल उछल रहा था ।

'कोई नई मुसीबत ?' सुखराम ने कहा ।

'नयी तो मैं हूँ,' कजरी ने कहा : 'अब मैं ही मुसीबत लगने लग गई न ? मैंने पहले ही कहा था जेठी । इसका कुछ भरोसा नहीं । तुम्हारे रहते मुझे ले आया । अभी जाने कितनी पलटन लायेगा ?'

'ठीक कहती है', प्यारी ने कहा : 'लुगाई जो करती है मजबूर होकर, पर मर्द जो करता है सो मस्त होकर, उसको कोई रोक नहीं ।'

'न कोई भरोसा है जेठी ।'

'ठीक है जी।' सुखराम ने कहा : 'दिल का क्या किसीने ठेका लिया है ?'

'ऐसा भी बजारू न बन।' प्यारी ने कहा।

कजरी ने कहा : 'नसैनी पर चढ़कर कोई चले, और ऊपर का डंडा धोखा दे जाये तो उसका पाँव कहाँ टिके ?'

'नीचे के बाँस पर।'

'तो मैं वही हूँ।'

प्यारी ने कहा : 'यह है बड़ी बातून। जरा-सी है, पर देखो तो कैसी सरौते-सी इसकी जीभ चलती है।'

सुखराम ने कहा : 'तेरी पट गई इससे ?'

'बिल्कुल नहीं।' कजरी ने कहा।

सुखराम ने कहा : 'अच्छा अब चलेगी कि यहीं रहेगी ?'

कजरी उठ खड़ी हुई। दोनों गले मिलीं। सुखराम ने देखा। अभी कुछ विश्वास नहीं हुआ।

उसने देखा प्यारी के नेत्रों में आँसू थे।

'रोती क्यों हो ?' कजरी ने कहा।

'ऐसे ही।' प्यारी ने कहा।

कजरी ने सुखराम से कहा : 'देखा तूने, जेठी रोती है।'

'क्यों ?' सुखराम ने कहा।

'कहती है, मैं यहाँ कब तक रहूँ ?'

'यह तो आप आई थी।'

'भूल किससे नहीं होती ?'

'तू ले चलना चाहती है ?'

'हाँ।'

'तो ले चल।'

'पर वह सिपहिया जो है !'

'सो तो है ही।'

'फिर ?'

प्यारी ने कहा : 'उससे नहीं कहना ये कुछ।'

'मैं कहूँगा।'

'अभी तू बीमार बनी रह।' कजरी ने कहा।

प्यारी ने उसके सिर पर हाथ फेरा। कहा : 'सो न डर।'

सुखराम ने कहा : 'क्यों अब तो तुझमें सक नहीं रहा न ?'

प्यारी ने खीझकर कहा : 'सता ले मुझे तू।'

सुखराम हँसा। कजरी ने कहा : 'बुरा न मान जेठी। मैं सब ठीक कर लूँगी।'

'अब कब जाओगे ! जाकर याद भूल जाना कोई तुमसे सीखे।'

कजरी ने कहा : 'मैं तो इसे रोज़ याद दिलाती थी।'

सुखराम ने कहा : 'अब नहीं आयेंगे। ऐसे मैं इसे हर बार यहाँ लाने को नये कपड़े कहाँ से लाऊँगा। बड़ी ज़िद् करती है ये।'

वे हँस दिये। कजरी झेंप गई। प्यारी ने ही स्नेह से कहा : 'छोटी भी तो है।'

'अच्छा अब चलूँ।' कजरी ने कहा।

प्यारी ने कहा : 'फिर आयेगी न ?'

'बुलाओगी तो सौ बार आऊँगी।'

चलती बेला कजरी ने मुस्कराकर कहा : 'अब की बार महावर रचना न भूलना।'

२१

शाम हो गई थी। ढोर लौटने लगे थे। उनके पैरों से उठी धूलि अब नाक में घुसने लगी थी। जगह-जगह धुंआ उठ रहा था और कसैलापन फैला रहा था। उतरता अंधेरा झीनी चादर डाल चुका था, जिसमें से निकलकर उड़ते हुए पक्षी ऐसे लगते थे जैसे किसी जाल से बचकर निकले जा रहे हों। और मंदिरों के घंटे बजते हुए उस वातावरण को अब और भी बोझिल बना रहे थे।

धूपो दीना भड़भूंजे की बहू से भीतर बातें कर रही थी। दोनों की बात का जैसे कोई अन्त ही नहीं था। धूपो अब प्यारी और बाँके को भूल चुकी थी। बाँके को पिटवाकर उसकी प्रतिहिंसा मिट चुकी थी। जीवन अब फिर

सुस्थिर-सा चलता चला जा रहा था। बातों में जब कुछ देर हो गई तभी दीना आ गया। दीना की बहू ने सिर ढँक लिया।

दीना बाहर ही बैठ गया। उसके साथ कुछ आदमी भी थे। दीना बच्चों का भी दोस्त था। क्योंकि किस्से-कहानी सुनाया करता था। उसके चौंतरे पर वे भी अपना यथोचित स्थान पाते थे।

उनकी बातें सुनकर धीरे से बहू ने कहा : 'बस अब बैठ गये। रोटी-पानी की कुछ फिकर ही नहीं।'

धूपो को अपने पति की याद हो आई। उसने कहा : 'ऐ भाभी ! नैक बाहर वालों से भी मिल लेने दिया कर।'

बहू ने कहा : 'बस ! यहाँ रोटी ठंडी हुई जा रही हैं।'

दीना कीर न था, न मलाहा। वह मुसलमान था। बाहर जाँत-पाँत की बातें हो रही थीं। उसने कहा : 'सुनो मैं किस्सा सुनाता हूँ।'

दीना ने कुछ प्रार्थना-सी पढ़ी और जो अपने स्वर को खींचकर कहना प्रारम्भ किया तो सब पर जादू-सा छा गया।

धूपो को मजा आया। बोली : 'ऐ भाभी ! मैं भी सुनूँगी।'

दीना की बहू मुस्कराई। कहा : 'सुनाता तो ऐसा है कि उठने नहीं देता। सुन ले। बैठ जा न !'

'हाय पर अबेर हो जायेगी !'

'क्या देर होगी ऐसी !' वह उस पर अपने पति के हुनर का असर डालकर अपना रोब डालना चाहती थी। अतः उसने उसे रोका। परिणाम-स्वरूप धूपो बैठ गई। दीना की बहू भी काम छोड़कर उसके पास ही आ बैठी।

बाहर समा बँधा हुआ था। सबके मुँह पर उत्सुकता थी।

दीना कह रहा था : 'कुदरत का खेल देखिये, क्यों न यमन के बादशाह की तबियत करती है कि वह मक्का को हज्ज करने जाय। वह अपने लड़के को लेके चला, और सा'ब क्योंकि लड़की को लेके जाने का रिवाज नहीं, सो उसे वह क्यों न घर ही छोड़ जाये ? वह तो गया उधर, और इधर उसके वज़ीर की नीयत बिगड़ गई, मचल गई; क्यों ? क्योंकि शहज़ादी कैसी मलूक है, कित्ती खूबसूरत है कि जिसका बयान नहीं। हँसती है तो फूल झड़ते हैं। जिधर देखती है उधर उजाला हुआ जाता है और कमर है उसकी कि छल्ले में से निकल जाये, पर नेक इतनी कि आँखों में सील झलका करे। और भाइयो !

वज़ीर उससे जाके कहता है कि भई शहज़ादी, तू हमारे पास आ। वह कहती है कि तू मेरे महलात से अपने महल में जा। मैं तुझे जवाब भिजवा दूंगी। उस बखत तो वह चला आया, मगर हुस्न के चोट खाये को चैन कहाँ, उसके तो ज़हर बुझ गया है, सो हवस साँपन-सी लफलफा के फुफकार मारती है, और दिल अब हाथों बल्लियों उछाल रहा है। क्या करे वह, क्या नहीं करे, यों सोचते में उसकी अकल पर चढ़कर शैतान कहता है कि जठ और काबू कर। वह क्या आपसे झुककर आयेगी ? आखिर रात आती है, चंदा निकलता है तो वज़ीर को शहज़ादी का मुँह दिखाई देता है, सो क्यों न वह राह आये जिसमें वजीर उसके महलात की तरफ़ बढ़ चले और उधर क्यों न तिखण्डे पैबैठी शहज़ादी उसे अपने दरपन में देख करके न सोचने लगे कि भाई अब मैं करूँ तो क्या करूँ। बाप तो दूर, भाई तो उसके साथ, मैं अकेली, जात औरत की, पर ऐसे जो मैंने पत गँवा दिया तो फिर बेकार रहना है, क्योंकि खुदा क्या नहीं देखता, सो फाटक तो करवा दिये बन्द और नौकरों से कहके ऊपर से पत्थर गिरवा दिये। बस वजीर पै गिरे वे पत्थर, तो क्यों न वह चुटीला हो जाये, और अपने घर आ पड़ रहे।

कुदरत की बात कि बादशाह और शाहजादा क्यों न तभी लौट आयें। वजीर बड़ी खिजमत करता है। बादशाह कहता है कि मेरे मंतरी ! तेरी यह क्या हालत हुई है बोल। मंतरी कहता है, हुई को भूलो मेरे बादसाह ! क्या करना है। पर वह कैसे मान जाये, तो मंत्री बोला कि तेरी लड़की का चलन खराब है तो हज़ूर मना किया था तो पिटवाया मुझे।

आहा बादसाह होते कच्चे कानों के, खुशामद के पाबन्द, मंतरी होते बिच्छू के डंक, सो कुँवर को हुकम मिला जाके उस लड़की के टुकड़े कर दो जिसने हमारी नाक कटवाने का जतन किया।

वह कुँवर चला। पर दिल नहीं मानता।

घूपो का हृदय मग्न हो गया था। कैसी कहानी सुनाता है।

'भाभी !' उसने कहा : 'आदमी बड़ा इलमदार है।'

'दिमाग है दिमाग।' उसकी बहू ने कहा।

'बेसक !' घूपो ने स्वीकार किया। उसकी इस स्वीकृति से दीना की बहू को बड़ी तृप्ति हुई।

और दीना अब हाथ उठाकर कह रहा था—'चलता है तो पांव नहीं उल्टे। कैसे उठें ? कुंवर को याद आती है। भई बचपने में हम खेले हैं। तो पहले मैं देख तो लूँ कि यह ठीक बात है क्या ? पहुँच कै देखा तो शहजादी पाक बस्तर बैठी कुरान शरीफ़ पढ़ रही है, और उसके पहुँचने के बखत उसके मुंह से निकलता है—इज्ज़ते मन सहतवां और ज़िल्लते मन सहतवां। गोया मतलब क्या कि हे अल्लाह तू ही इज्ज़त का देने वाला है, और तू ही ज़िल्लत का भी देने वाला है। अहा कैसी बात सुनी कि कुँवर का दिल रोने क्यों न लगे। वह कहे कि तू मुझे पापिन नहीं लगती, पर शहज़ादी कहती है तू बाप का हुकम मान, मुझे चाक कर दे। वह मुझ पर शक करता है। बीरन, मेरी बात मान। शहजादा कहता है कि नहीं। और कहता है कि ला मुझे अपना काम करने दे। और आलीशान, बड़ी कीमती लकड़ी का एक बकस लेके उसमें उसे बैठा के नद्दी में छोड़ दिया। लड़की बह निकली क्योंकि बकस में करामात है कि डूबेगा नहीं, उठेगा नहीं, दरिया पर चल बहेगा।'

धूपो की आँखें खुली-सी रह गईं। कैसा आश्चर्य था। वह कल्पना कर रही थी कि शहज़ादी बक्स में क्या सोचती हुई बही चली जा रही होगी। डूबती उतराती, बहती—

दीना की बहू ने लम्बा सांस छोड़ा। धूपो ने मुड़कर देखा। वह शान्त बैठी थी। धूपो फिर सुनने लगी।

दीना ने खाँसा और फिर कहा—

'और उधर देखिये कि चीन का बादशाह खबर भेजता है कि मेरा कुँवर जवान हुआ है, सो हे यमन के बादशाह ! तू अपनी लड़की भेज दे। हम शादी रचायेंगे। क्या कुदरत की बात न मानिये कि इधर चिट्ठी गई, उधर क्यों न बकस बहता हुआ नदी से चीन पहुँचा और क्यों न चीन के शहजादे का शिकार खेलते हुए उधर आकर उस बक्स को देखना हुआ।

उसने इशारा किया। चटापट मलाहों ने कूदके संदूक निकाला। बुढ़ई बुलाये। सो खाती की सदा की आदत है कि कुछ बनाने के पहले कुल्हाड़ी को ले के ठोककर देखते हैं। जो बकस ठुका तो भीतर से आवाज़ आई : नैक हौले-हौले, संभल के।

यह तो खाती का सुनना हुआ और डर के मारे उसका सिर पर पांव रख-

के भागना हुआ। कुँवर ने जो संदूक तुड़वाके देखा तो आसिक हो गया और सहजादी ने देखा तो मन ही मन रीझ के आँखें झुका लीं। कुँवर सोचता है कि ऐल्लो ! हम तो यमन जा रहे थे। चलो लाख-पचास हजार रुपये बचे। लड़की खुद घर आ गई। यों महलों में ले जाके निकाह पढ़वाया और चैन से रहने लगे। उसका नाम ! लड़की के पेट से एक लड़का भी हो गया।'

घूपो इस कल्पना पर प्रसन्न हुई। कहा : 'चलो अच्छा हुआ।'

दीना की बहू ने कहा : 'किस्मत की बात है।'

'सो तो है ही। भला बताओ।'

'अरे क्या थी, क्या हो गई।'

'यों न कहेगी भाभी कि क्या हुई और फिर क्या हो गई।'

'अरी मैं इसीसे तो कहती थी।'

दोनों की बात खतम नहीं हुई थी कि बाहर लोगों की आवाज़ आई—'अहाहा ! क्या बात कही है।'

दीना ने गौरव से चारों ओर देखा और सिर की टोपी को ज़रा और आगे की तरफ़ झुका लिया और दो-चार जो खड़े थे उन्हें हाथ से बैठ जाने का इशारा किया और उनको जगह ढूँढते देखकर अपने पास वालों से उसने इशारे से कहा कि जगह कर दो।

बच्चों के चेहरों पर प्रसन्नता थी, आश्चर्य्य था। कुछ के मुँह फट गये थे। वे अवाक् सुन रहे थे। उन्हें कथानक की क्षिप्रगति अपने साथ बहाये ले जा रही थी।

दीना पटाखे भी बनाता था और भाड़ भी भूंजता था। गाँव में उसको बहुत लोग पसंद करते थे क्योंकि ठाल का वक्त उसके यहाँ खूब आसानी से कट जाया करता था। और दीना की ऐसी रईस तबियत थी कि अतिथि को चिलम पर चिलम पिलाता जाता था, पर ऊबता नहीं था। उसकी इस आदत से उसकी बीबी परेशान थी, लेकिन दीना है कि टेव ही नहीं छोड़ते।

उसने कहा : 'अब देखिये ! कुदरत की बात है। उधर शाहजादा एक दिन कोरीवारे में जाता है तो वहाँ एक कोरी से एक कोरिन यों बतरा रही है कि शाहजादा ठिठककर सुनने लगा। कोरिन कह रही थी कि सुन मेरे समधी ! जो तू बादसाहों का-सा ब्याह करना चाहे तो कल्ल कर ले, पर जो बिरादरी वालों का-सा करना चाहै, तो मैं तो तब ही करूँगी जब मेरी कुहनी मुँह में आ जायेगी।

और यह बात कुँवर के मन में गँस के रह गई। देखिये ! बादशाह का कुँवर क्यों तो उधर जाये और क्यों ये सुने कि उसे चिंता व्याप जाय, और लौटे तो वह मन ही मन सोचने लगे कि भाई कुँवर ! यह कोरिनियाँ ने क्या गजब के अलफाज बोल दिये। यह तो दरयाफत करने लायक बात है। बस उसने जाके खटपाटी ले ली तो सब हाजिर हो के पूछने लगे कि कुँवर सा'ब बात तो बताओ। जो उसने बताई तो फौरन हुकम हुआ कि कोरी और कोरिन दरबार में हाजिर किये जायें। अब कोरी और कोरिन थर-थर काँपे कि भई बादशाह जाने क्या कर डालेगा। कुँवर बोला कि भई डरो मत, पर ये बताओ कि येह तुमने क्या कई कि बादसाहों-सा करो तो अब कर लेओ, पर जो बिरादरी-सा करो तब कुहनी मुँह को आ जाये ! कोरी-कोरिन बोले कि हजूर ! मारो चाहे छोड़ो। पर साँच को आँच कहाँ। बात तो यही है। बादसाहों के ब्याह में तो छोरी घर बैठे आ गई। सो न रुपैया उठा, न धेला। निकाह पढ़वा लिया, चट काम हो गया। बिरादरी में तो ब्याह होय तो क्या न होय ?

वे कहके चल दिये। कुँवर जाके यमन की शाहज़ादी की तस्वीर देखता है तो वही सूरत है, जिससे निकाह पढ़ा था, तो कहता है कि मन्त्री ! तुम इसे इसके बाप के पास ले जाओ और हम इससे अब ब्याह-बरात से ब्याह करेंगे। शाहज़ादी अपने बच्चे को ले के चली तो राह में अब देखिये कि कुदरत का खेल है, मन्त्री की जात ही खराब, वह बड़ा बदमास, उसकी नीयत बदल हुई। और जो तम्मू गड़े, तो बोला कि शहजादी मेरे मन की हवस पूरी कर। शहजादी ने कहा : मुझे बाप के घर पहुँच जाने दे तो मैं जवाब दूँगी, पर लश्कर तो हट के पड़ा था, वजीर बोला नहीं अभी कर। सो नजर बचाके, शाहजादी लपक-के तम्मू में ऊपर चढ़ गई। वजीर बोला : कै तो नीचे आ, नहीं मैं तेरे इस बालिक को मारता हूँ। वह बोली : पत मेरे हाथ है जालम। मारना-बचाना अल्लाह के हाथ है। सो तू भले ही मार ले। वजीर ने, हाये-हाये, बच्चे को कतल कर दिया। और अंधेरे में शहजादी फट तम्मू से बाहर कूद के जंगल में दुबक गई। लश्कर पलटन में ढुंढार मची, पर कोई न मिला, तो सब लौटे और वजीर ने जाके कह दिया कि हजूर ! वह तो बदनीयत औरत थी। अपने बच्चे को खा गई डायन। जाने कहाँ चली गई।

ओहो ! कुँवर के गम की थाह नहीं। बड़ी उसे चाह थी उसकी, सो ऐसा

धक्का पहुँचा कि दिल हीरे-सा तड़का। और गुस्से में सवार, यमन के बादशाह के पास भेजे कि हम तेरी लड़की ब्याहने आते हैं, कै तो तैयार रह, कि जंग करेंगे। यमन का बादशाह चक्कर में पड़ा। वजीर ने देखा, कौन-सा वजीर! वही जिसके मारे शहजादी काठ के संदूक में बहाई गई थी, मौका पा गया बोला, हुजूर आपकी मेरी बेटी में फरक ही क्या। मेरी लड़की ब्याह दें हुजूर। सो यमन के बादशाह ने मंजूरी दे दी। अब जो बरात की तैयारी हुई तो चीन की राजधानी में हल्ले गूंजने लगे, पर शहजादी पहुँची सो फकीर का भेस बना लिया और शहर बाहर एक मंदर में रहने लगी। आते-जातों से बाबा डंडौत, बाबा बंदगी, बाबा राम राम की तो, खबर-कुँवर तक भी पहुँची सो वह भी वहाँ पहुँचा।'

आस्मान में तारा निकल आया था। झाड़ियों की उठी हुई टहनियों के पीछे वह ऐसा लग रहा था जैसे कोई चमकदार मच्छर किसी मसहरी के पीछे कुलबुला रहा हो और अपना रास्ता निकाल सकने में असमर्थ हो गया हो।

धूपो ने उसे नहीं देखा। अब तो उसका ध्यान केन्द्रित था। उसे क्या मालूम था कि अंधेरा अपनी पर्त्तें गहरी करने लगा था। बाहर लोगों का जमाव था ही। और दीना की बहू बगल में बैठी कह रही थी : 'हाय अल्ला! क्या से क्या हो गया?'

'अरी ये ही खेल हैं इस दुनिया में।'

'देख तो क्यों कर पार होती है।'

'और डूब गई तो?'

पर दीना की बहू को इतना अंदाज़ था कि कथा होगी सुखांत ही। दीना ने पैंतरा बदला और जैसे तर्राये स्वर से कहा :

'कुदरत की बात, क्यों न शादी की खबर उस फकीर के भी पास पहुँचे कि सबेरे होये, कुँवर आये तो वह लड़की, अब फकीर बनके बोले कि बाबा सा'ब रात हमने एक ख्वाब देखा।

कुँवर कहता है—कि साईं सा'ब कुछ हमें भी बताओ।

फकीर कहता है कि अरे कि नहीं भई। ख्वाब-ख्याल की बात है, कहीं लग न जाये दिल बात है, सो यह तो यों ही रहने दो।

पर कुँवर कहता कि नहीं साईं सा'ब। बतानी ही होगी।

तौ फकीर कहता है कि भाई तू मानता नहीं तो सुन कि हमने यों देखा कि

एक बादशाह अपनी लड़की को छोड़ हज्ज करने चला। लड़की पै वजीर फिदा हो गया। लड़की न मानी तो बादशाह के लौटने पर उसने झूंठ चुगल करके लड़की को बदनाम किया तो लड़की के भाई ने उसे काठ के बकस में रख बहा दिया और उधर एक शाहजादा क्यों न पहुँच जाये जो लड़की को निकाल के उससे निकाह करले। बस। अब इतना ही रहने दे क्योंकि ख्वाब-ख्याल की बात है, कहीं दिल न लग जाये बात है, सो यह तो बस अब यों ही रहने दो बाबा सा'ब !

पर कुँवर के तो खिचके चुभी है, वह कहता है कि नहीं साईं सा'ब ! और सुनाओ।

'कि नहीं बाबा सा'ब अब इत्ती ही रहने देओ।'

'कि नहीं साईं सा'ब !'

तो जब यों दो-दो हुई और कुँवर ने जिद्द करी तो फकीर कहता है—कुदरत की बात है। एक कोरिनिया के कहने पै कुँवर ने लड़की को बाप के घर भेजा और रास्ते में लड़की पै मंत्री की नीयत बदल गई और वह पत बचा के भागी, उसने बच्चा माड्डाला। बस ! अब रहने दो बाबा सा'ब। क्योंकि ख्वाब-ख्याल की बात है, कहीं दिल न लग जाये बात है।

तो कुँवर ने कही कि साईं सा'ब आपको मेरी बरात में चलना होगा ही। और कहो।

'बस बाबा सा'ब।' लड़की ने कहा—'अब हम रमते जोगी। खैर तू कहता है तो चले चलेंगे।'

चुनाँचे बरात चढ़ी। वजीर की लड़की आई तो फकीर कहता है कि यमन की शहजादी से तस्वीर मिला के तो देख !

ओहो ! क्यों न कुँवर तस्वीर मिला के देखता है। हत्तेरे की। यह नूर कहाँ ? यह हुस्न कहाँ ? कहाँ ये दूध का धोया-सा रंग, कहाँ वह काजल-सी जुलफ ! हाय-हाय ! यह क्या हुआ ? वह पछाड़ खा के गिरा। सो लोग कहने लगे कि साईं सा'ब यह क्या हुआ। भभूत डाल के मंतर पढ़ो। यह तो इकला कुँवर है। मा-बाप की छाती फट जायेगी, कुछ करामात दिखाओ। और देखिये, कुदरत का खेल कि फकीर कहता है कि उठ। सो पत का जोर है कि कुँवर उठके बैठके कहता है मैं कहाँ हूँ।

और साईं का भेस उतार के शहज़ादी कहती है मुझे पहचान·····देखा

तो चेहरा खिल उठा। निकाह पढ़वाया, ढोल-तासे बजे, फिर लेके लौटा तो वह-वह पटाखे छूटे.....'

शायद दीना अब इस कल्पना में मग्न था कि उसके ही हाथ के पटाखे छूट रहे थे और इस कदर माल बिक रहा था कि दीना मालामाल हो गया था, रुपयों का ढेर लग गया था। उसने क्षण भर को आँखें मींच लीं और जब खोलीं तो देखा सब मुग्ध-से थे।

और दीना ने कहा—गाने ही-सा गाया—

गोरी ढोला मिल गये पूछें कुसल कि छेम।
पत की कथा सुनात हूँ, पत नारी कौ नेम!

२२

शाम ढल रही थी। उस वक्त सूरज की किरनें लम्बी-तिरछी होकर चली गई थीं। आखिर अपने घर जा रही थीं। सुखराम बाहर बैठ गया।

'तू भीतर जा।' उसने कहा।

'मैं अकेली जाऊँ?' कजरी ने चौंककर पूछा।

'उसमें हरज क्या है?' उसने निश्चिन्त स्वर से उत्तर दिया।

'पर तू ही यहाँ क्या करेगा?'

'अरे लुगाइयों में मेरा क्या काम?'

कजरी भीतर चली गई। प्यारी आ गई।

प्यारी ने कहा: 'मेरी कजरी!' वह बड़ी प्रसन्न हो उठी थी।

'हाय आ तो रही हूँ।' कजरी ने लजाकर कहा।

'मैं तो लेने आई हूँ तुझे।' उसने मुग्ध होकर कहा।

'चलौ रहने दो।' स्नेह ने स्नेह को संभाल लिया। और हाथ में हाथ डाले हुए मुस्कराती हुई दोनों भीतर चली गईं।

रुस्तमखाँ बाहर से आया था। देखा द्वार के पास सुखराम बैठा है।

'सलाम हुज़ूर!' सुखराम ने कहा।

'सलाम। अच्छा है भाई।'

'दुआ है सरकार को।' सुखराम ने कहा। रुस्तमखाँ चारपाई पर बैठ गया।

'बैठ जा सुखराम।' उसने कहा।

'हाँ बैठा हूँ।' सुखराम ने कहा। और वैसे ही हुक्के से चिलम उठा ली और उसे कण्डों में से भर लाया। फिर पहले पी-पीकर सुलगाया और जब ढेर-सा धुंआ निकला तो हुक्के पर चिलम रखकर रुस्तमखाँ की तरफ सरका दिया। रुस्तमखाँ ने चिलम को फूंका और निगाली मुँह से लगाई।

'क्यों सरकार अब कैसी तबियत है।'

'मैं तो ठीक ही हूँ।'

'नहीं सरकार।' रुस्तमखाँ की आँखों में घूरते हुए उसने कहा : 'अभी ठीक नहीं है। महीने भर में लौट आयेगी।'

'लौट आयेगी ?' रुस्तमखाँ थर्रा गया।

'ठीक है।' सुखराम ने कहा : 'अगर यकीन नहीं तो फिर देख लेना।'

'तो फिर क्या करूँ ?'

'साल भर अलग रहना सबसे।'

'शराब से भी ?'

'नहीं उसपर रोक नहीं।'

'तू आदमी हुनर का तो है।' रुस्तमखाँ ने कहा : 'इस म्याद को कम नहीं कर सकता।'

'आप कर सकते हो।'

'सो कैसे ?'

'नीयत साफ़ रखना।'

रुस्तमखाँ खिसिया गया। परन्तु उसको चारा नहीं था। पर उसे उसकी बात में सन्देह अवश्य हो गया। पहले तो कहता था कि जल्दी ठीक हो जाओगे। हो न हो उसने जानबूझकर ही यह पख लगाई होगी।

कुछ देर बातें करके वह भीतर चला गया।

पुकारा : 'कजरी।'

उसने पूछा : 'क्या है ? तुमने उससे कहा।'

'अभी नहीं। रंग दे दिया है।'

रुस्तमखाँ ने उठकर सुना वह कह रहा था : 'मानेगा नहीं, लगता है।'

'ये माने इसका बाप !'
रुस्तमखाँ लौट आया । वह समझ गया था ।
सुखराम ने कहा : 'कजरी मैं आता हूँ ।'
'कहाँ जायेगा ?'
'बजार, सामान ले आऊँ ।'
'बहुत देर बाद न अइयो, कहीं बैठ गया वहाँ बातों में ।'
'हाँ हाँ, चुप रह !' उसने कहा ।
कजरी लौट गई ।
प्यारी ने पूछा : 'कौन था ?'
'सुखराम था ।'
'क्या कहता था ?'
'तुम्हारी पूछता था ।'
'ऊपर नहीं आ सकता था वह ?'
'जाने की कहता था ।'
'क्यों जल्दी क्या है ?' प्यारी ने कहा ।
'घर पहुँचेंगे नहीं ?'
'यहीं बैठने में देर हो जायगी ?'
'पराया घर नहीं है क्या ?'
प्यारी रूठी । कजरी समझ गई । कहा : 'मैं ताना नही मारती ।'
'तो क्या कहती है ?'
'सच कहती हूँ । तुम बताओ यहाँ तुम आज़ाद हो ?'
प्यारी ने स्पष्ट कहा : 'नहीं ।'
'मैं जानती थी, तब मैंने गलत कहा ।'
'नहीं ।'
'फिर तुम क्यों रूठीं ?'
'मुझे ले चलो ।' प्यारी ने कहा ।
'उससे बात कर लें पहले ।'
'रुस्तमखाँ से ?'
'वह न माना तो ?'
'सुखराम जाने ।'

कजरी का उत्तर सुनकर वह सोच में पड़ गई।

अब उसे लगने लगा कि वह बहुत बड़ी भूल कर गई है।

चक्की से पीसते जाओ, पीसते जाओ, हज़ारों के पेट भर देगी, पर उसी-का पाट उठाकर गले में डाल लो, गर्दन तोड़ देगा। यही हाल प्यारी का हुआ। उसे बहुत कोफ़्त हुई। कहा : 'मैं क्या सोचती थी, क्या हो गया ?'

कजरी नहीं समझी। पूछा : 'क्यों ?'

'यह मरा, जी का जंजाल हो गया।'

जैसे फिर वह अपने आप बड़बड़ाने लगी : 'कौन कहता है मैं चुप रहूँगी। नहीं। वह मुझे रोकने वाला है कौन ?···मैं तो नटनी हूँ···नटनी ! कौन रोक सकता है···

उस समय वह अवरुद्ध कपाट जैसे खुलने लगे। शरीर के भीतर जगह-जगह जेलखाने थे, जिन पर भावों की भीड़ ने हमला किया, स्वार्थों के पहरेदार आगे आये, दोनों में मुठभेड़ हुई, स्वार्थ रौंद दिये गये और जेलखानों के दरवाजे अर्रा-अर्रा कर टूटने लगे।

'क्या कहती है ?' कजरी ने पूछा।

प्यारी बड़बड़ाती रही : 'मैं आप आई थी···आप जाऊंगी। जेल में डाल देगा उसे ? डाल दे। मेरा क्या करेगा ? कतल कर दूंगी हरामी का···'

प्यारी को जैसे आवेश था।

उसने कहा : 'तू तो तैयार है ?'

'हाँ।' कजरी ने कहा। 'पर डरती हूँ।'

'क्यों ? मैं सौत हूँ, इससे ?'

'नहीं, ये रोकेगा।'

'नहीं, नहीं रोकेगा ये।'

'मैं नहीं मानती।'

'मत मान, पर मैं कहती हूँ।'

'तुम कहती हो, वह क ा कहेगा ?'

'कुछ कहे !'

'और जो रोकेगा तब ?'

'मैं रुकूँगी कब ?' प्यारी ने कहा। उसके स्वर में ऐसा घोर विश्वास था कि कजरी चौंक उठी। वह नितांत निर्भय दिखाई दे रही थी। जैसे तूफान में

से निकला हुआ पक्षी आकाश में विजयी स्वर से चिल्लाकर उड़ रहा हो और महाशून्य के वक्ष पर डैने चला रहा हो। आज उसके नीचे समुद्र है, पर वह बिल्कुल विचलित नहीं है।

'रोकेगा तो ?' कजरी ने संदेह से पूछा। और वह इसके साथ ही इसके आगे-पीछे की सारी बातों को सोच रही थी। झगड़ा ही उसकी आँखों के सामने आकर खड़ा होता था। उसकी समझ में नहीं आता था कि कैसे इस सबका अंत मिल सकेगा।

'बाँदी तो नहीं हूँ।' तभी प्यारी ने कहा। उसकी आँखें तीखी दृष्टि से सब कुछ जैसे बेध देने की चेष्टा कर रही थीं।

'सो उसकी मजाल' कजरी ने कहा।

'मैं सेंध लगाके भाग जाऊँगी।' प्यारी ने कहा।

परन्तु यह सेंध का नया प्रयोग था। जिसे सुनकर धीमी और मीठी आवाज़ में खिलखिलकर कजरी हँसी।

'क्यों हँसी क्यों ?' प्यारी ने पूछा।

'भला बताओ' कजरी ने कहा : 'कोई बात है ! अब तक चोर सेंध लगाकर माल ले जाते थे, अब माल ही चोर की दीवार में सेंध लगाने लगा।'

प्यारी भी हँसी। पर वह माल का नाम सुनकर झेंप गई। उसने बहुत लज्जित स्वर से धीरे से कहा : 'बड़ी वो है तू !'

'सच जेठी ! तुम्हें कैसे छोड़ देगा वो !' कजरी ने कहा : 'मैं मरद होती तो तुम्हें कभी नहीं छोड़ती।' वह फिर हँसी।

'तू बड़ी चमको है।' प्यारी ने कहा।

'देख लेना। बस यही झगड़ा है।'

'तो मैं अपना मुँह झुलस लूँगी। फिर तो न देखेगा कोई मेरी ओर !'

'फिर सुखराम देख लेगा ?' कजरी ने पूछा।

'क्यों नहीं ?' प्यारी ने उत्तर दिया।

'ओ हो' कजरी ने कहा : 'जैसे वह दूसरी मट्टी का बना है।'

'नहीं कजरी उसका दिल और है।'

'होगा जेठी। पर मरद मरद ही होता है। अरे जब हमारा दिल अच्छे की खोज करता है, तो वह अच्छी क्यों न ढूंढे !'

दोनों हँस दीं।

'अच्छा' प्यारी ने पूछा : 'बुरी शकल का आदमी क्या करे ?'

'भगवान ने क्या बुरी औरतें नहीं बनाईं ?' कजरी ने पूछा।

'तुझे अपने रूप का घमंड है कजरी ?'

कजरी ने केवल समर्पण की दृष्टि से देखा। वह कुछ नहीं कह सकी। उसी समय रुस्तमखाँ आया।

प्यारी ने अपने को संभाला। अस्त-व्यस्त बैठी थी, ठीक से बैठी। और उत्सुकता से उसकी ओर देखा। रुस्तमखाँ ने कहा : 'क्या कर रही है ?'

'बात करती थी !'

'किससे ?' और रुस्तमखाँ ने मुड़कर देखा। उसे अपनी ओर देखते हुए पाकर अदब के लिये कजरी ने घूँघट काढ़ा पर वह एक झलक देख ही गया। रुस्तमखाँ की तृष्णा को कचोट पहुँची। वह पूरी तरह देख सकने में असमर्थ रहा, इसका उसके दिल में मलाल रह गया। पहले तो टालने का यत्न किया। पर वह कमजोर तबियत का आदमी था। आख़िर रहा न गया।

'कौन है यह ?' उसने पूछा।

कजरी ने सिर नहीं झुकाया था। घूंघट में से देख रही थी सामने की दो उंगलियों की दरार में से। वह इन दोनों का पारस्परिक संबन्ध देखना चाहती थी। वह उस आदमी को देखना चाहती थी, जिससे प्यारी को इतनी घृणा थी।

'कजरी है।' प्यारी ने कहा।

'वह कौन ?'

'मेरी सौत !' प्यारी ने दृढ़ता से कहा।

रुस्तमखाँ कट गया। तो यह स्त्री अपने को अभी तक सुखराम की ही स्त्री मानती है, गोया वह कोई है ही नहीं। उसने चोट की : 'सुखराम के नाते, कि मेरे !'

'अपना मुँह देख ऐने में,' प्यारी ने कहा : 'लाज नहीं आती तुझे ?'

रुस्तमखाँ उसके उस कठोर उत्तर को सुनकर सकपका गया। सारी ऐंठ हल्की पड़ गई। झेंपकर कहा : 'अरे तू तो नाराज़ होती है। मैं तो मज़ाक करता था।'

'उसके लिये मैं क्या नहीं थी ?' प्यारी ने कहा।

रुस्तमखाँ ने तिरछी आँख से कजरी को देखा और चला गया। इस समय

उसके दिल पर गहरी चोट पड़ी थी। वह जानता था कि यह स्त्री मेरा प्रभुत्व औरों की तरह कभी भी स्वीकार नहीं कर सकती। और यह उसका सोचना सत्य भी था। स्त्री कभी अपने पति के रुआब में नहीं रहती। इज्जत करती है, सब तरह से सेवा करती है, अगर वह विद्वान होता है, तो उसकी कद्र भी करती है, पर वह सदा कंधे से कंधा भिड़ाकर चलने की बराबरी करती है, उसका प्रभुत्व नहीं मानती। और कभी वह स्वीकार नहीं करती कि उसका आदमी उसकी आज्ञा के बिना किसी भी स्त्री से आज़ादियाँ लेने की हिम्मत करे। परंतु रुस्तमखाँ का आहत हृदय इसका बदला चाहने लगा। उसकी कुरूपता अब साकार होने लगी। जैसे गंदे ढेर में सूहर अपना लम्बा मुँह डालकर बड़ी से बड़ी गंदगी को खोजते समय चबर-चबर करता हुआ, उस गंदगी में धँसते हुए उस सबसे अपने को ढँक लेता है, उसका कमीनापन उसी तरह फरेब की गलाज़त में धँस-धँसकर ढँकने लगा।

कजरी ने उसके चले जाने पर कहा : 'तुझसे भी इसका जी नहीं भरा।'

'क्यों ?' प्यारी ने पूछा।

'टेढ़ी आँख से देख गया है मुझे ! कह दीजो आँख टेढ़ी ही रह जायेगी।'

'नहीं तू ऐसी फूलनदई है।'

'सो कहाँ ? मुझे चाव नहीं।'

परंतु प्यारी की घृणा अब बढ़ गई थी। इतना कमीना आदमी है ये, बस यही उसके भीतर घूम रहा था। उसने और भी बुरे आदमी देखे थे, जिन्होंने उसके शरीर से खिलवाड़ किया था, पर कहीं न कहीं उनमें भी दर्द था, इंसानियत थी। और इन लोगों में ? कुछ नहीं। न भगवान का डर है, न आतमा का। किसी तरह की इन पर कोई रोक ही नहीं। और कजरी के अन्तिम वाक्य का एक व्यंग उसे चुभा। जैसे वह यहाँ सौक पूरे करने आई है। कैसे समझाये वह कि यहाँ आकर छली गई है। वह प्रतिहिंसा लेकर आई थी और उसने क्या किया ? कुछ नहीं। वह कैद में है। उसके हाथ-पांव नहीं चलते। वह कितने बुरे लोगों में आ गई है।

कजरी ने कहा : 'बुरा मान गई ?'

'नहीं तो।' प्यारी ने चौंककर कहा।

'फिर चुप क्यों हो गई।'

'ऐसे ही।' फिर उसने बात बदलने की खातिर मुस्करा दिया और कहा

कुछ नहीं। कजरी उसे देखती रही। कुछ देर यों ही बीत गई। तब प्यारी ने बात चलाने को कहा : 'कुछ खायेगी।'

'नहीं।' कजरी ने सिर हिलाया।

'अच्छा पान खा ले।'

'अच्छी न लगूंगी।' उसने बनकर कहा।

'क्यों ? देख तो कैसी पीक रचैगी तेरे ?' प्यारी ने पानदान खींच लिया और बैठकर हाथ पर पान साफ़ करने लगी। उसकी वह मुद्रा देखकर कजरी पर प्रभाव पड़ा। ऐसी बैठी है जैसे कोई बड़े घर की हो, ऊँच जात की। उसके मन में यह विचार कौंधकर समा गया। पर उसने उसे अपने से दूर फटकार देने के लिये उसी संकोच को क्रमशः रखकर कहा : 'अरे नहीं।'

प्यारी ने उस अर्द्ध नकारात्मक उत्तर की उपेक्षा करके उसकी ओर न देखते हुए, पान पर चूना लगाया और कत्था टटोलते हुए उसी स्वर से कहा : 'ऊँहूँ।' और हँसी। कजरी शर्मा गई। पान तैयार करके उसने हाथ बढ़ाकर सामने करके कहा : 'खा भी ले न ?'

कजरी ने पान ले लिया और सलाम किया। यह उसे आदत थी। उसने सदैव ही किसी ऊँचे दरजे के व्यक्ति से पान पाया था और उसके लिये उसे सलाम करने की मर्यादा रखनी पड़ी थी।

'मैं तो खा लूँ। पर···' वह कहते-कहते अटक गई। वह उस समय मज़ाक करना चाहती थी लेकिन प्यारी उस समय गंभीरता से अपने भविष्य के बारे में सोच रही थी। इस समय उसके मुँह से एक अडंगा सुना तो उसने उसे ही पकड़ पाया और कुछ चौंककर उससे पूछा : 'पर कैसी ?'

कजरी समझी सौत टटोल रही है। उसने मुड़कर मुँह पर आड़ करके मुस्कराहट दिखाने की चेष्टा करते हुए पहले तो मौन धारण किया और जैसे बहुत अटक रही है। कहा : 'वह छेड़ैगा फिर ?'

प्यारी समझ गई कि वह सुखराम के विषय में बात ले आई थी। उसने देखकर भी उसकी मुद्राओं का अर्थ नहीं समझा। उसे लगा वह व्यंग्य कर रही थी और वह उसके वैभव के प्रति था। उसने सशंकित होकर आंखें गड़ाकर उसकी ओर देखा और कहा : 'क्या कहेगा ?'

कजरी को हँसी आ रही थी। उसने एक दिन पान खाया था तो सुखराम ने छेड़ा था। वह उसी सुखद कल्पना में डूबी हुई थी। इस समय उसने ठिठोली

में ही कह दिया : 'यों कहेगा ही कि अब तू भी चली क्या ?'

प्यारी का मन झंकार उठा। कजरी का वाक्य उसके तीर-सा लगा। इसका मतलब यह हुआ कि सुखराम मन में उससे इस बात से नाराज़ अवश्य है कि वह एक दिन उसे छोड़कर चली आई थी ! तो फिर वह इसे कहता क्यों नहीं ? उसने सहमे स्वर में पूछा : 'ऐसा कहता है वह कभी।'

उसकी अब समझ में आ रहा था कि वह क्यों अभी तक उसे ले जाने की बात नहीं कहता है। परन्तु वह निश्चित नहीं हो सकी थी, तभी उसने अन्तिम प्रश्न किया था।

'क्यों नहीं।' कजरी ने उसी मस्ती से कहा।

प्यारी के हृदय से जैसे रक्त बह निकला और उसे लगा कि अब यह रक्त रुकेगा नहीं। वह व्यर्थ ही जान दे रही थी। अब सुखराम के संग जाकर भी क्या करेगी।

प्यारी सुस्त हो गई। वह सोच रही थी। क्या मैं यहीं रह जाऊँ ? नहीं। यह नामुमकिन है। फिर ? कहीं भाग जाऊँ ? कहाँ ? पर अगर मैं फिर भी उसीके पास रहूँ तो क्या कभी न कभी उसका गुस्सा दूर नहीं हो जायेगा ? हो सकता था, पर कजरी के रहते क्या ऐसा हो सकेगा।

'लाओ दे दो।' प्यारी ने हाथ बढ़ाया।

'क्या ?' कजरी ने पूछा।

'पान।'

कजरी समझी नहीं।

कहा : 'मैं नहीं देती। तुम बुरा मानती हो।'

'नहीं रहने दे।' प्यारी ने कहा। और हाथ बढ़ा ही रहा। कजरी ने हाथ देखा और मुख देखा।

'क्यों ?'

'वह तो बुरा मानता है न ?'

'अरी मैं तो दिल्लगी करती थी।'

'सच कह कजरी, तू मुझे तंग करती है।'

'तेरी सौगन्ध भाई।'

कजरी ने पान खा लिया।

उस समय शाम गहरी से घनी हो गई।

'हाय अंधेरी हो गई।' कजरी ने कहा।

'बत्ती कर देती हूँ।' प्यारी उठी।

'लाओ मैं कर दूँ।'

'काम न कराऊंगी तुझसे।'

'क्यों ?'

'तू नहीं समझती। यह पराया घर है।'

कजरी ने कहा : 'देखो जेठी, मैंने इसलिये थोड़े ही कहा था। पर मैं ताना नहीं मारती।'

वह लालटेन ले आई। चिमनी साफ की। तेल डाला। बत्ती उकसाई, जला दी। रोशनी फैली।

कजरी ने कहा : 'हाय राम ! कैसी जल उठी।'

प्यारी मुस्कराई।

कजरी ने कहा : 'जेठी, मुझे बताओ। ये कैसे जली ?'

'डेरे में जलायेगी क्या ?'

'हाँ जला लूँगी। सो न समझना।'

प्यारी ने हँसकर कहा : 'तो मंगा ले पहले।'

कजरी ने लालटेन उठा ली। गर्म नहीं हुई थी तब तक। कहा : 'नटिनी हूँ। समझ लो यह डेरे पहुँच गई। अब कहो।' फिर कहा : 'दैया ये तो जलने लगी।'

'धर दे, नहीं टूट जायेगी।'

'क्यों जेठी !' उसने रखकर कहा : 'हवा से बुझती तो नहीं होगी ?'

'नहीं बुझती।'

'बड़े दिमाग का काम है।' कजरी ने कहा : 'दुनिया में कैसी-कैसी चीज़ हैं। पर हमको नहीं।' और जैसे याद आ गया, बोली : 'दो बरस हुए मैं रजधानी गई। वहाँ मैंने राजा के महल को देखा बाहर से। रानी खड़ी थी वहाँ। आहा ! कैसी नरम और खूबसूरत थी। सच जेठी, मैं उसके सामने कर दी जाऊँ तो ऐसा लगे जैसे किसीने गोरी गैया के बगल में कीच में से निकली भैंस खड़ी कर दी हो। तो मैंने देखा बाहर ऐसे-ऐसे—' उसने हाथ फैलाकर बताया : 'हंडों में बत्ती जल रही थी, सतरंगी। मेरी तो टिकटिकी बँध गई। कैसी शान थी। रात में दूध का-सा उजेला छा रहा था।'

'वे बड़े लोग ठहरे।'

'सो तो है ही', कजरी ने कहा। फिर सिर हिलाया, जैसे वह अभी तक हंडे देख रही थी।

'कजरी, एक बात पूछूँ ?' प्यारी ने पूछा।

'पूछो।'

'तूने उसे बना किस तरह लिया ?'

'अरे चलो। कोई सुनैगा।'

'कजरी बता दे।'

कजरी हँसी। कहा : 'यह भी कोई पूछने की बात है ?'

'बता भी।'

मन ने मन को पहचाना।

प्यारी चिंता में पड़ी। उसने उससे फिर कहा : 'कैसे कजरी, बताती क्यों नहीं ?'

कजरी चुप रही।

प्यारी ने कहा : 'तब वह अकेला रहता था। तुझे तभी तो मिला था वो। तू उससे मिली कैसे ?'

'अरे मन आ गया और क्या ?'

प्यारी को सन्तोष न हुआ। पूछा : 'फिर ?'

'फिर ब्याह हो गया।' कजरी ने कहा।

प्यारी ने फिर डुबकी लगाई और सवन की तरह मछली के लिए चोंच डाल दी : 'तेरा आदमी कैसा था ?'

'क्यों पूछती हो ?'

'वैसे ही।'

'तो जो सोचती हो न ? वह सच है।' कजरी ने बड़े दृढ़ विश्वास में कहा : 'बहुत बुरा था।'

'तुझे मारता था।'

'नहीं, मुझे कमाना पड़ता था। शराब पीता था।'

'फिर !'

'फिर क्या ? यह नहीं पीता था क्या ? मैंने छुड़ा दिया।'

प्यारी ने कहा : 'मैं तो पीती थी। तू नहीं पीती ?'

'यही कभी कभा और क्या ?'

'तो तैंने इसे इसीसे चुना ?'

'फिर क्या ? मैंने सोचा कि यह अच्छा है और क्या ?'

'नट तो पीते हैं कजरी । इसमें बुरा क्या ?'

'बुरा तो वह जो बिरादरी न माने, वैसे सब अच्छा । पर मैंने कभी अच्छा नहीं पाया उसे । झगड़ा कराती है । मेरा पहला आदमी पीने के लिये बुरे से बुरा काम करने को तैयार हो जाता था । एक दिन एक के कफन के पैसे चुराकर शराब पी गया;' वह कह नहीं सकी । फिर कहा : 'मेरे पड़ोस में बचपन में एक चिकुवा खटीक भेड़ चराने आता था । एक दिन एक बगर कसाब के साथ आया । उनके संग हेकावाली दो कंजरियाँ थीं और एक दिल्ली का सरक-सरैयां खटीक था । शराब पी और खूब लड़े । हेकावाली कंजरियाँ भाग गईं और सरक सरैयां मारा गया । चिकुवा और बगर कसाब को फाँसी लगी । अब देखो । हेकावाले कंजरों का क्या ठिकाना है ? मेहतर का भी वे झूंठा खाते हैं ।'

'सच' प्यारी ने कहा : 'यह कम्बखत है ही ऐसी चीज ! पर मुँह से एक बार लग जाये तो छोड़ी नहीं जाती ।'

'एक सिकलीगरनी कहती थी : चाकर, तिरिया, चबैना, मुँह लागें तो दोस, सो सच ही है, ऐसी ही ये शराब है ।'

'कजरी तेरा बाप था, वह नहीं पीता था ?'

'मेरी मां भी पीती थी ।'

'फिर तैंने कैसे छोड़ दी ।'

'बचपन से ही ऐसी हूँ ।'

'मुझमें तुझ-सी अकल नहीं कजरी ।'

'अकल मुझमें कहाँ ? अकल तो ब्याह के बाद मरद देता है । कुर्री न दे सका । इसने दी । फिर ये तो खून से राजा ठहरा ।'

'तू मानती है उस बात को ? उससे लाभ है कुछ ।'

'लाभ न हो, पर बात तो मानने की ही है । क्या यह ठीक और नटों-सा है ? और नटों में इतनी अकल और इतनी सराफत कहाँ ?'

'अरी ये तो पोच ही है । मार-पीट कभी नहीं करता था ।'

'ऐसा मारता है' कजरी ने कहा—'कि फिर हाड़ दुखने लगते हैं ।'

'अरी चल सौत', प्यारी ने कहा : 'आँखें निकाल लूंगी जो नजर लगाई है।'

'तुझे कभी मारा है उसने।'

'बस एक बार।'

'तो वह तुझे चाहता नहीं।'

'तेरा मुँह जला दूंगी।'

'जला दे साँच को आँच क्या ?'

'तेरी समझ में तू उसके मन की है, मैं नहीं हूँ ?'

परन्तु कजरी ने इसका उत्तर नहीं दिया। मुस्करा दी। और बात वहीं हल्की पड़ गई।

और नीचे रुस्तमखाँ अब उद्विग्न हो रहा था। आखिर मामला क्या है ? आज बाँके क्यों नहीं आया ? इस वक्त तक तो आ जाया करता था। एक चक्कर लगा ही जाता था। कोई गड़बड़ तो नहीं कर बैठा। पर वह पोच है। जो करेगा सो पहले पूछकर।

बाहर आंगन में देखा। भैंस पगुरा रही थी और कुछ नहीं था। द्वार के बाहर देखा। वही गाँव का सन्नाटा छा रहा था और कुछ नहीं। भीतर आकर बैठ गया। पर चैन नहीं आया। यह ऊपर आ बैठी है और फिर उसके सामने अप्रिय बातें हो गई थीं। उसने क्या सोचा होगा ? यही कि प्यारी रुस्तमखाँ को डाँटकर रखती है ?

तभी उसे खिलखिलाहट की आवाज़ सुनाई दी। किसी बात पर दोनों स्त्रियाँ जी खोलकर हँस उठी थीं। उसे लगा वे दोनों उसी पर ठठाकर हँसी हैं। जी किया धड़धड़ाता ऊपर चला जाये। उसे निकाल दे। पर फिर प्यारी !

और अजीब औरत है !!

सौत से प्यार !!

जरूर दाल में काला है। सुखराम कह भी तो रहा था कुछ। पख लगाने का क्या मतलब ?

रुस्तमखाँ फिर सोच में पड़ गया और दोनों हाथों में सिर थामकर बैठ गया। विचारों की तल्लीनता में वह यह नहीं सोच सका कि वह वास्तव में अन्धेरे में बैठा है। उसे तो कहीं भी उजाला दिखाई नहीं दे रहा था। वह थानेदार का मुँह लगा आदमी ! उसका दबदबा है और वह सब प्यारी ने ऐसे समाप्त

कर दिया, जैसे कुछ था ही नहीं ? कैसे हुई इसकी इतनी हिम्मत ?

और स्पर्धा का पिशाच अब रुस्तमखाँ के दिल में मरोड़े पैदा करने लगा, जिन्होंने उसे उद्‌भ्रान्त कर दिया।

'मेरे बारे में कुछ कहता था ?' प्यारी ने कहा।

'कुछ नहीं' कजरी भोली बन गई।

'कुछ नहीं ?' प्यारी चिढ़ी।

'हाँ कहता था प्यारी अच्छी है।' कहा जैसे याद आ गया हो।

'बस !' उसने सिर हिलाया।

'और क्या सुनना चाहती है तू ?' उसने कुरेदा।

'कुछ नहीं।' प्यारी बनी।

'तो फिर मेरा सिर क्यों खाती है।'

'तू जानती ही क्या है जो ?' उसने उस पर चोट की।

'मेरी बात वो मानता है बस इतना जानती हूँ।'

'वह तो बस तेरा चाकर है ?'

'सो मैं कहती तो मुझे तेरे द्वार लाता ?'

'दिखावे की बात है छोटी।'

'अब तुझे विस्वास ही न हो तो मैं क्या करूँ ?'

उसके स्वर में ईमानदारी थी। उससे एक आत्मीयता झलक रही थी और प्यारी को ढांढस बँधा।

बोली : 'दुनिया बड़ी खराब है कजरी। इसमें भरोसा कर लो तो लोग भरोसा नहीं करने दें।'

'सच कहती है तू। लुगाई को तो फूंक-फूंक के पांव धरना चाहिये। इसमें जात की भी बात नहीं।'

'सो तो है। कदर कहीं नहीं है। जनम लेने का दण्ड भरना है। मैं जानूं कैसी रहे जो एक दुनिया हो जिसमें लोग न हों।'

दोनों हँसने लगीं। कजरी ने कहा : 'ऐसा भी है एक मुलुक।'

'कौन-सा ?'

'कहते हैं कजरी बन में ऐसा ही है। जोगी कहते हैं।'

'किसीने देखा है ?'

'नहीं, मैंने तो नहीं देखा। पर वे ऐसा गाते हैं। तू पूछती है सो क्या वहाँ जायगी ?'

'तू चलेगी ?'

'अरे वह आया नहीं।' उसका उत्तर कजरी ने यह दिया।

'तू क्या जायेगी। घड़ी-घड़ी उसकी याद करती है।'

'चली भी जाऊँगी मैं। ऐसी नहीं फँसी हुई मैं। एक दिन मुझे क्या मरना न होगा।'

'आता होगा वह, काहे बुरी बात बोलती है।'

कजरी हरषा गई। कहा : 'झूंठ कहती हूँ ! कोई अपने संग कुछ ले गया है ? बड़े-बड़े राजा हैं, राज है, पर अकेले जाते हैं सब।'

'अबेर हो जायेगी।' प्यारी ने टालते हुए कहा।

कजरी ने कहा : 'मैं पहले सोचती था, पर एक दिन मैंने देखा एक लुगाई इधर हाथ पीले हुए उधर राँड हो गई। बस तब से डर बैठ गया है।'

'कैसा ?'

'अरे तुम बोले जाती हो ! वह तो आया ही नहीं !'

'हाय बजमारी। रोज तो रहती है। एक दिन की अबेर में जी उलटा हो गया', और धीरे से हँसकर प्यारी ने कहा : 'अभी बाबाओं की-सी बात कर रही थी। हाल क्या पाँमा पलट गया। मैं भी पहले शराब पीती थी तो सोचती थी बस आज पी लूं, अब पियूं तौ हराम। यह नशा भी शराब से किसी तरह कम थोड़े ही है !'

'हाय तुम बड़ी हो, तुम्हें लाज नहीं।' कजरी ने कहा। 'मैं तो सोचती थी क्या हो गया !'

'होगा क्या ? बैठ गया होगा कहीं।'

'पहले तो न बैठता था।'

'वह तो ऐसा बैठता था कि पहले दो-दो दिन में घर आता था। अब तूने उस पर जादू कर दिया है थोड़े दिन।'

'कह लो बड़ी हो। मैं क्या कुछ कह सकती हूँ ?'

'बोल ! बड़ी तो हूँ, पर सौत भी तो हूँ। बड़ी सीधी है न तू।'

रुस्तमखाँ बेचैन हो रहा था। यह बातें समाप्त होने को ही नहीं आ रही थीं और उसके मन में बहम हो गया था। वह जानना चाहता था कि आखिर

मामला क्या है जो अभी तक घुसफुस हो रही है। ऊपर जाना चाहता था पर हिम्मत नहीं पड़ती थी।

रुस्तमखाँ ने पुकारा : 'प्यारी।'

'आई', उसने कहा।

वह गई। रुस्तमखाँ ने उसकी ओर देखा। कोई परिवर्त्तन दिखाई नहीं दिया।

हुक्का भरा। जाकर रखा। हुक्के में दो दम मारे। कहा : 'तवा नहीं बदला!'

'बदल दिया। पीके देखो।'

'ये क्यों आई है?' रुस्तमखाँ ने पूछा।

'वैसे ही।'

'अब भेज दे उसे।'

'क्यों?'

'अरी कब तक बातें करोगी ऐसे?'

'जब तक मन चाहे।'

'अब रंग बदले हुए हैं।'

'मेरे कि तेरे!'

'तूने उसके सामने कैसे बात की?'

'कैसे की? तूने कैसे की?'

रुस्तमखाँ चौंका। बोला : 'तूने उसे सौत कहा था?'

'है तो कहूँगी नहीं?'

'तू उसकी बीबी है कि मेरी?'

'ब्याहता उसकी, रखैल तेरी।'

'शर्म नहीं आती तुझे?'

'अगर शरम ही आती तो आती तेरे पास? और अगर शरम का मेरी कोई मोल होता तो तू मुझे पकड़वा सकता था, यों कह सकता था कि आ जा नहीं तो तेरे उसे थाने डलवा दूंगा? अगर शरम है तो अपनी बिरादरी में ले जायेगा मुझे? वह तो तू मरद है सो तेरे पाप पाप नहीं, मेरे पाप पाप हैं? शरम अगर तुझमें होती तो घर बसाके नहीं रहता, दुनिया में यों छिनाला करता?'

'तूने नहीं किया ?'

'मैं कमीन, अनपढ़, नीचों में नीच, जात की नीच, बिरादरी के मेरे नेम नीच, पेट की भूखी, नंगी। तुझमें क्या कसर थी जो ऐसा किया। उस दिन तेरा चिट्ठा तेरे यार बाँके ने सुनाया था न ? जूआ पकड़े तेरा कानून, तू उसमें घूंस खा के मुटाये, फिर मुझे सरम की दुहाई दे रहा है बेसरम ! मैंने हजार किया पर मैंने ये तो न कहा कि मेरी भली लुगाइयों से होड़ है। जगत जानत है उतरी-फुतरी हूँ, पर तू तो अभी भला बना डोलता है ?'

रुस्तमखाँ क्रुद्ध हो उठा--कहा : 'आग से न खेल प्यारी।'

'तेल में भिगो के बँट दूंगी आग वाले ! आँखें दिखाता है मुझे ? तिरिया हठ न जगा। तेरी सारी फागुन चैत को सावन-भादों में बहा दूंगी। बन्द करवा दे। कोई फाँसी तो होगी नहीं। छूट के जने-जने से कहके तेरे मुंह पै थुकवाऊँगी।'

और वह बिना रुके पांव पटकती हुई ऊपर चली गई। रुस्तमखाँ चुप हो गया। चाल सोचने लगा। उसकी समझ में न आया।

पर प्यारी जब ऊपर पहुँची तो शान्त थी, जैसे कुछ नहीं हुआ था। मन में उथल-पुथल अवश्य मच रही थी। वह खुद सोच रही थी कि अभी तक सुखराम क्यों नहीं आया ? उसमें भय भी था, परन्तु ऊपर से दृढ़ बनी रही।

प्यारी लौटी तो कजरी ने कहा : 'आया नहीं !

'नहीं।'

'इत्ती देर कहाँ लग गई उसे ?'

'अरी तो मरी क्यों जाती है।'

'मैं अकेली कैसे जाऊँगी ?'

'जाने को तू अकेली आधी रात जा सकती है, पर उसे देखकर तुझे डर लगने लगा है। कहनावत मसहूर ही है कि गाड़ी देख के लाड़ी के पांव फूलने लगते हैं।'

'मुझे डर लगता है।'

'किसका ?'

'तेरे सिपाही का। अकेली गैल है। वैसे तो हम वहाँ जंगल में रहते हैं। जिनावर का डर नहीं मुझे मानुस का भय है।'

'मेरे रहते ? तुझे यहाँ डर है ?'

और फिर कहा : 'अरे भूल ही गई।'

'क्या ?'

'नीचे अन्धेरा है।'

'बत्ती धर आऊँ ?'

'तू नहीं, नीचे वह है। मैं जाऊँगी। नहीं तो फिर तुझे घूरैगा।'

कजरी ने प्रेम से देखा। प्यारी ने अन्धेरे में से दूसरे कोठे में से लालटेन निकाली। कहा : 'आ जा सीख ले।'

'तुम जलाओ। मैं देखूंगी।' वह पास बैठ गई।

प्यारी ने कहा : 'पहले मेरा हाथ भी जल गया था।'

प्यारी ने दूसरी लालटेन जलाई। नीचे ले गई। रुस्तमखाँ लेटा हुआ था। कहा : 'चलो याद तो आई।'

'वह आ गई है न ?' प्यारी ने कहा।

'गई ?' उसने पूछा।

'नहीं।'

'आज बड़ी सलाह हो रही है।'

'कैसी ?' प्यारी ने पलटकर कहा।

'नहीं। वैसे ही कहता था।' रुस्तमखाँ ने टाला।

प्यारी नहीं बोली। रुस्तमखाँ को गुस्सा आया। रुख फिर बदला हुआ देखकर चौंका।

'कब जायेगी ?' उसने पूछा।

'चली जायेगी अब।'

'आज बहुत बैठी।'

प्यारी मन में चिढ़ी। पर कहा : 'हाँ।'

'पर आखिर क्यों ?'

'उसका कमेरा नहीं लौटा है अभी।'

'कौन ?'

'सुखराम।'

'तो वह इसे लेके आया था ?'

'हाँ।'

'कहाँ गया वह हरामजादा।'

प्यारी ने शांति से कहा : 'फिर तो कह !'

रुस्तमखाँ सन्नाटे में आ गया। कहा : 'फिर कहूँ तो क्या कर लेगी ?'

'तुझसे तो कुत्ता भी भला।'

'क्या बकती है तू ?'

'कितनी बड़ी बीमारी से तेरा इलाज किया, फिर भी उसे गाली देता है ?'

'अच्छा ! तो तेरा मन डोल रहा है ?'

'सो न डरा, आज़ाद हूँ।'

'मुझे जानती है ?'

प्यारी ने ज्वाला-भरे नेत्रों से देखा। कहा : 'मुझे जानता है ?'

'नटिनी ! हरजाई !' वह व्यंग्य से हँसा।

प्यारी ने कहा : 'बस ?'

रुस्तमखाँ चिल्लाया : 'घर मेरा है।'

'और चिल्ला।' प्यारी ने कहा।

रुस्तमखाँ झल्ला उठा।

कजरी ने वह स्वर सुना। झगड़ा-सा लगा। पहले तो डरी। फिर दबे पांव वह नीचे चली गई। और छिपकर सुनने लगी।

रुस्तमखाँ ने कहा : 'मैं तुम सबको थाने में बन्द करवा दूँगा।'

प्यारी ने कहा : 'दांत टूट जायेंगे सूहर के बच्चा ! क्या समझा है तूने ? थाने में तू बन्द करवायेगा ? करवा के तो देख ! थाने तक पहुँच जायेगा ? लुगाई समझके अकड़ रहा है। पर तूने मुझे कभी देखा नहीं।'

और उसके हाथ में कटार चमक उठी। रुस्तमखाँ डर गया।

'गोद-गोद के मारूंगी। कुत्ता बना रह नहीं तो याद रख। मैं हूँ नटिनी। अगर प्यास लग आई तो लोहू पीके बुझाऊँगी।'

रुस्तमखाँ ने उसका वह भयानक रूप कभी नहीं देखा था। प्यारी गुस्से से काँप रही थी।

रुस्तमखाँ ने चाल खेली : 'अरे ! तू तो बिगड़ उठी। मैं तो वैसे ही कहता था।'

प्यारी ऊपर चली। कजरी पहले ही चढ़ गई। उसके आने पर कजरी पास गई।

'क्या हुआ,' कजरी ने कहा।

'कुछ नहीं ।'

'नीचे जोर-जोर से किससे बातें कर रही थी ?'

'सिपाही से ।'

'क्यों ?'

'सिर उठा रहा था कमीन । वहीं कुचल दूंगी । समझता है अकेली हूँ ?'

'अकेली ? और मैं कैसी हूँ ?'

'तू डरती नहीं ?' प्यारी ने कहा ।

'डर और नटिनी को ?' कजरी ने कहा ।

प्यारी कुछ लेने गई । और लाकर उसने कजरी को देकर कहा : 'यह अपने पास धर ले ।' फिर कहा : 'मेरे पास यह है ।'

देखा कटार थी । कजरी ने कहा : 'इसकी जरूरत आ गई ?'

'अभी आ जायेगी ।'

'क्यों ?'

'बात खुल गई ।'

'तूने जल्दी कर दी ।'

'नहीं कजरी देर हो गई है ।' प्यारी ने कहा और फिर द्वार की ओर शंकित दृष्टि से देखा । कजरी का मुख कठोर हो गया ।

२३

बाँके जब जूए के अड्डे से उठा तो जेबें नोटों से भरी थीं । आज वह खूब जीता था । उसका दिल खुश था । यारों की ज़िदें हुई, और कसमों के लंगर डाले गये, पर बाँके का जहाज़ अपने पाल खोल चुका था, अतः वह नहीं रुका ।

वह आज बड़े जोश में था । आज वह कैसे जीत गया इतना कि स्वयं अपने ऊपर आश्चर्य्य हो रहा था । उसे विश्वास नहीं होता था । आज, उसने सोचा, भगवान की उस पर कृपा अवश्य है । अभी वह इसी तरह मगन होकर चला जा रहा था कि उसके कान में आवाज़ आई : 'हाय लुगाई की जात !

कितने न जुलम सहे, पर पत के सहारे सब जीत गई। भाभी जिसमें पत नहीं उसका जीना हराम।'

बात घूपो ने कही थी। गली के नुक्कड़ तक दीना की बहू पहुँचाने आ गई थी।

'हाँ,' दीना की बहू ने कहा—'बाकी की तौ घर उजाड़ू होयँ।'

'अच्छा, तौ मैं चलूँ ?'

'अब अंधेरी हो गई।'

'बस जरा खेत गई और आई।'

'हो आ जा।'

घूपो चली। जलते हुए चिराग़ देर हो जाने के इशारे करने लगे थे। कुत्ते राहों पर चहलकदमी कर रहे थे। दूर दूकान पर कुछ लोग बैठे हुक्का पी रहे थे। घूपो रास्ता काट के गली में से निकली और घरों के पिछवाड़े होकर झाड़ियाँ पार कर गई और फिर कच्चा गढ़ आ गया, जो एक समय गाँव वालों की शत्रुओं से रक्षा करने के लिये बनाया गया था, पर जिसकी आज गांव की औरतें शत्रु थीं, और ढेर-ढेर मिट्टी इसीलिये कट गई थी कि उससे वे चौका-चूल्हा करती थीं।

सब तरफ़ नीरवता छा रही थी। गांव बाहर आते ही वह कसैला धूंआ एकदम ठंडक-भरी हवा में बदल गया। चैत की रात थी, अजीब सिहरन लिये हुए। घूपो को वह हवा अच्छी लगी और उस हवा में से एक सूरत पैदा हुई। वह उसका मृत पति था। पर वह विचार आया और चला गया।

जब वह दगरा पार करके खेत में घुसी तो उसे लगा कोई दूर चल रहा है। घूपो ने सोचा कोई मुसाफ़िर होगा। जल्दी-जल्दी घर जा रहा होगा। रात भी तो हो चली है। अरे वह अकेली है। उसे डर भी लगा, परन्तु फिर सोचा, डरने की बात ही क्या ? पहले क्या वह इस तरह कभी नहीं आई ? वह आगे बढ़ी।

और वह आदमी बाँके था, जो उसके पीछे-पीछे लगा-लगा चला आ रहा था। वह उतावला था। उसकी क्रूर वासना ने जीवन में कभी अपने स्नेह को आदान-प्रदान की सहिष्णुता से स्वीकार नहीं किया था, वह लुटेरे की प्रवृत्ति का आदमी था। वह आज तक जो कुछ करता था, उसकी राय में वह सब अपहरण करने पर ही उसे प्राप्त होता था अतः उसका हृदय कठोर हो चुका

था, जैसे उस पर पत्थर की पर्त्तें जम गई थीं जिनमें से कोई हरा पौधा पैदा नहीं होता था। धूपो को उसने एकान्त में देखा तो उसकी विभीषिका जाग उठी। उसके शरीर की कल्पना करते-करते वह भेड़िये की तरह पागल हो उठा, जो भेड़ को देखकर उन्मत्त हो उठता है।

बाँके धीरे से दूसरे रास्ते से जाकर खेत में उतर गया। पर अचानक खेत में खच-खच की आवाज़ आने लगी। बाँके को जूड़ी-सी चढ़ने लगी। उसने सोचा शायद यहाँ आदमी हैं। यह तो बहुत बुरा हुआ। इच्छा हुई लौट जाये, परन्तु जैसे भिट में से लोमड़ी ने सिर निकालकर देखा, उसी तरह टोह लेने के लिये उसकी पिपासा ने झाँका और कहा : आज का मौका फिर नहीं मिलेगा। अकेली पा गई है। और बेफिक्र चली आई है। कौन जाने कितने दिन में ऐसा वक्त आये। और फिर चैत की रात। हवा की बची-खुची फरफराहट। यह फिर गर्मियों की लू में बदल जायेगी। खेत कट-कटाकर मैदान पड़ जायेंगे। यह खेती भी पिछाहीं होने के नाते रह गई है। और पन्द्रह दिन तो उजाले पाख में ही निकल जायेंगे। वह अब ठंडे दिमाग़ से आगे-पीछे की सोचने लगा।

विचार आये। अरे वे आदमी थे कि ढोर! कहीं कोई साँड न घुस आया हो। और बाँके बेकार डर रहा हो। चलकर देख क्यों न लिया जाये? वह पास जाने लगा।

सामने दो आदमी-से लगे, जो उसे देखकर खेत की आड़ में हो गये।

बाँके ने धीरे से कहा : 'कौन है?'

खच्च-खच्च बन्द हो गई थी।

'तुझे क्या?' एक ने फुस-फुसाया।

'देख-देख।' दूसरे ने कहा।

'हम क्या डरते हैं?'

बाँके ने चौंककर कहा : 'कौन ठाकुर चरनसिंह और हरनाम!'

दोनों बाहर निकल आये। उनके हाथों में हँसिये थे। वे दोनों एक गरीब गडरिये किसान का खेत सफ़ा कर रहे थे। ठकुरात का दबदबा था। गडरिये का बाप मर गया था, बच्चा छोटा था, वर्ना उसे ही अपनी गैरहाजरी में खेत पर भेज देता। खुद सोरौं गया था, बाप के फूल लेकर। और बहू उसकी बीमार। सो खेत भगवान के सहारे पड़े थे। और ठाकुरों ने भगवान की कभी इतनी चिंता नहीं की थी। पेट के वे भी भूखे थे। शेर बनते थे, क्योंकि हर ठाकुर

अपने को सिंह कहता है, पुलिस में नौकरी करने की बात को अपने शेरपन की इन्तहा समझता है। यह दोनों शराबी थे, अपने से कमज़ोरों को सताते थे और प्यारी ने इन दोनों को जब चोट दी तो बराबर कर दिया था। तब से इनकी रुस्तमखाँ और उसके साथियों से दुश्मनी हो गई थी।

'हाँ, हम हैं।' एक सिंह ने कहा : 'तुझे सिपाही ने भेजा होगा ?'

'चला जा चुपचाप', दूसरे ने कहा : 'वर्ना काटकर फेंक देंगे।'

बाँके समझा। कहा : 'अरे क्यों बिगड़ते हो !'

और क्योंकि तीनों ही एक-एक तरह के गुनहगार थे, उन तीनों की आवाज़ें दबी हुई थीं। तीनों जानते थे कि पाप की आवाज़ को उठते ही हवा पकड़ लेती है और फिर एक-एक झोंका भी गवाह बन जाता है। बाँके को लगा अब काम असंभव हो गया। इन दो के रहते हुए कुछ नहीं हो सकता। उसे क्रोध आया। मन मसोसकर रह गया। तो वह चली जायेगी ? तब उसकी जघन्यता ने पाँसा फेंका। कहा : और बढ़। यहाँ से लौटना ठीक नहीं है। उसकी भीरुता ने पूछा : तो क्या करूँ ?

तब उसके अवसरवाद ने सिर उठाकर कहा : मौका बार-बार नहीं आता। मौका हीरे-मोती से भी अनमोल है। जो उसे चूक गया, वह कुछ भी नहीं पा सकता।

वह चलने लगा।

चरनसिंह ने मूँछों में से गरगलाया : 'कहाँ जाता है ?'

'थाने में ?' हरनाम ने कहा।

'जैसे तब तक तुम बैठे ही रहोगे यहाँ ?' बाँके ने धीमे स्वर से कहा।

दोनों आदमी पास आ गये। उन्हें बात दूसरी ओर मुड़ती हुई दिखाई दी।

'तू कहाँ जा रहा है ?' हरनाम ने कहा।

'क्यों ?' बाँके ने खेतों पर नज़र डाली : 'तुम क्यों जानना चाहते हो ?'

'तू सिपाही का यार नहीं है ?' चरनसिंह ने कहा।

'हूँ।' बाँके ने कहा : 'पर मैंने तो तुमसे कभी दुसमनी नहीं की।'

'तो क्या तू मौके पर उसकी ओर नहीं होगा ?'

'तुम सिपाही के यार होते, तो छूट पाते ?'

'नहीं।' हरनाम ने कहा :

बाँके ने कहा : 'प्यारी ने तुम्हें नुकसान पहुँचाया था। मैंने तो नहीं ?'

'नहीं।' हरनाम ने कहा। 'हम क्या जानें ?'

'पर तू इस बखत यहाँ क्यों है ?'

'मैं प्यारी की चहेती के पीछे आया हूँ।' वह झूंठ बोला।

'सो कौन ?' चरनसिंह ने पूछा।

'धूपो चमरिया।' उसने धीरे से कहा।

'झूंठा।' हरनाम ने कहा : 'धूपो ने तुझे पिटवाया था, उससे बदला लेने आया है, कहता क्यों नहीं ?'

'यह सच है, पर क्यों पिटवाया था ? मैंने रुस्तमखाँ के कहने से धूपो को पीटा था। धूपो का पिटना प्यारी को बुरा लगा। उसने अपने पुराने मरद सुखराम को इशारा करके रुकवा दिया। तब सिपाही के कहने से मैंने सुखराम पर हमला किया था।'

दोनों ठाकुर सोचने लगे।

'सुखराम के दिन गये,' बाँके ने कहा : 'प्यारी का भी डेरा उठा समझो। इस बखत मेरी मदद करो तो सिपाही से तुम्हारा याराना हो जायेगा और प्यारी से भी बदला ले सकोगे।'

'तो क्या धूपो का तू कतल करेगा ?' चरन ने पूछा।

'नहीं। और गहरी मार देना चाहता हूँ, जो औरत कभी नहीं भूलती, और फिर हमेशा के लिये सिर झुका जाती है।'

'धूपो राँड बेवा है। उसका कोई नहीं है न ?' हरनाम की शराफ़त ने आख़िरी कोशिश की थी।

बांके ने कहा : 'तू मूरख है। नटिनी की सहेली कभी भली हो सकती है ? और फिर आजकल तूने कहीं सुना है कि कोई औरत बिना मरद के रही है ? सोच के देख !'

'तो फिर क्या करना होगा ?' चरनसिंह ने समर्पण किया।

हरनाम ने कहा : 'जो तैंने दगा की तो ?'

बाँके ने कहा—'गांव थोड़े ही छोड़ दूंगा और तुम मर न जाओगे।'

'बता धूपो कहाँ है ?' चरनसिंह के पशु ने कहा—'है तो अच्छी।'

'खेत में उधर से आई है।'

'उधर तो कूंआ है, वहां रखवारे होंगे।'

'उधर नहीं', बाँके ने कहा—'उधर !'

'चलो ! उधर कोई नहीं ।'

तीनों बढ़े ।

एक ने कहा : 'काम खतरनाक है । जो कहीं बात खुल गई और काम भी न हुआ तो कहीं के न रहेंगे ।'

बाँके ने कहा : 'डरते हो तो लौट जाओ । मैं अकेला काफी हूँ ।'

'डरता नहीं । सोचता हूँ ।'

'सोचना-विचारना है तो सबेरे तक आ जाना ।'

तीनों रुक गये क्योंकि बाँके ने इशारा किया ।

'क्या है ?' चरनसिंह ने धीमे से पूछा ।

'वह रही उधर !' बाँके ने कहा ।

चरनसिंह बोला : 'अकेली है ।'

तीनों छिप गये ।

चरनसिंह ने कहा : 'पहले कौन जायेगा ?'

हरनाम ने कहा : 'बाँके तू जा ।'

'तुम पीछे से आओगे ?' बाँके खीझा ।

'तीनों संग जायेंगे तो राजी न होगी ।' चरनसिंह ने कहा : 'एक-एक का जाना ठीक रहेगा ।'

बाँके बढ़ा । पर दिल कांप रहा था । कायर का हृदय बड़ा कमीना होता है । वह हमला करता है और देखता है । अगर टक्कर की चोट आ बैठती है तो बस भागते ही नज़र आता है ।

धूपो वहाँ खड़ी थी ।

'कौन है ?' आहट सुनकर उसने मुड़कर कहा ।

'मैं हूँ बाँके ।' बाँके बढ़ा ।

'क्यों आया है ?' उसने दृढ़ स्वर से पूछा ।

बाँके भीतर ही भीतर काँप उठा । उस स्वर में एक पवित्रता थी, जिसे सुनकर दोनों ठाकुर भी थर्रा उठे । जैसे बिच्छू जैसे छोटे कीड़े को मारने के पहले भी आदमी कुछ सतर्क हो जाता है, वैसे ही वे भी उस अकेली स्त्री को देख हृदय में डाँवाडोल हो गये । उसकी आवाज़ ने उनको डराया । डर ने उन्हें निराशा दी । निराशा ने उन्हें क्रोध दिया और क्रोध ने उन्हें अंधा बनाया और उनके भीतर की वासना ने जैसे डंके पर चोट दी ।

'मैं कहती हूँ।' धूपो ने कहा : 'क्यों आया है ? चला जा अपनी गैल। अकेली न समझियो मुझे। तेरे लिये मैं अकेली बहुत हूँ। कमीन नहीं तो ! अंधेरी रात देखके चला आया।'

बाँके आगे बढ़ा।

'खबरदार !' धूपो की आवाज़ कड़क उठी।

बाँके ने कुछ नहीं कहा। झपटकर उसे पकड़ लिया। दोनों ठाकुर घबराये-से लगे। एक ने कहा : 'गधा है।'

'एकदम टूट बैठा।'

'पहले की लाग-डाट है इसकी।'

धूपो छूट के भागी।

बाँके ने कहा : 'ठहर सुसरी। जाती कहाँ है···'

उसने उसे फिर पकड़ा। धूपो ने चिल्लाने को मुँह खोला ही था, एक ठाकुर ने आगे बढ़कर उसका मुँह दबा लिया। धूपो ने उसका हाथ काट खाया। एक लात दी जो बाँके के लगी तो डगमगा गया। तभी तीसरे आदमी ने उसे पटक के दे मारा। खेत में गिरी। चोट-सी आई पर हरियाली में बहुत नहीं लगी। उठकर भागने की चेष्टा की। मुँह खोला ही था कि मुँह में कपड़ा ठुंस गया, फिर वे तीनों भयानकता से हँसे। धूपो ने अन्तिम चेष्टा की किन्तु वह छूट नहीं सकी।

◇ ◇ ◇

अंधियारा और घना हो गया और कोई भी तारा जैसे उसकी पत्तों को हटाने और काटने में असमर्थ हो गया। खेतों में हवा सनसनाने लगी। और दूर-दूर तक आकाश में भागती फिरती। याचना-सी कर उठती। और फिर जैसे आत्मयातना का चीत्कार करती हुई रोने लगती। खेत हिलते, और काँप उठते। उनकी अपनी सत्ता आज लज्जा से डूब रही। कूएं की उदासी निकलकर अब उसकी जगत पर पड़े चरस में भर गई। और चरस से पानी की जगह विवशता गिर रही। अब कौन उसे पिये ? कोई पक्षी नहीं उड़ता। कोई आवाज़ नहीं आती। और नीरवता जब स्थापित है तो समय अनंत हो गया है। उसकी परिधि का न विकास है, न कोई अन्त लगता है। एकदम ऐसा लगता है जैसे आस्मान एक चाकू है, लोहे का जंग लगा जिसने धरती को काट डालने के लिये अपने को तेज कर लिया है। उसके फलक से जो टकरायेगा वही दो टूक हो

जायेगा । शायद इसीसे सब भाग गये हैं, और गांव दूर है । वहाँ कोई आवाज़ नहीं पहुँच सकती । चाहे अन्तरात्मा पुकारे या वीभत्सा । धूंआ अब फैल चुका है । और कुछ नहीं । उसके बाद एक उन्माद है और वह यह कि छप्परों पर एक निस्तब्धता छा गई है । उसकी प्रतिस्पर्धा करता हुआ कभी-कभी, कहीं दूर, कहीं अज्ञात नेपथ्य में कोलाहल होता है, फिर डूब जाता है । उसके बाद पानी में डूबते पत्थर की तरह बुद्बुदों-से तारे निकल आते हैं । आकाश में एक कंपन होता है जैसे आँखें झपक रही हैं, चारों ओर आग-आग-सी दिखाई देती है, फिर बस गहरा, बहुत गाढ़ा अंधेरा-सा रह जाता है । । और फिर एक बहुत बड़ी लाश-सी दिखाई देती है, पड़ी हुई, चुपचाप । कुछ क्यों नहीं चल उठता, कुछ क्यों नहीं जग उठता । सब आज चेतन की जगह जड़ क्यों हो गये हैं ! क्यों सब कुछ मर गया है । जो ये खड़े हुए हैं, क्या ये सब देख सकते हैं ! उनसे पूछने पर वे स्वयं क्या उत्तर दे सकते हैं ? नहीं । फिर ये सब नष्ट क्यों नहीं हो जाते ? उनकी जब कोई सार्थकता ही नहीं तो फिर साक्षी बने-से क्यों लगते हैं !! यह सब विवशता की स्वीकृति है और मन का भय है । इसका ही शाश्वत अवरोध है । यह युगांत का बंधन है और अंधेरा अब और गहरा हो गया है । उसकी गहराई नहीं कट सकती । इस्पात को मोम की तरह बीच में से खंड-खंड किया जा सकता है, ठंडे इस्पात को पिघलाया जा सकता है, पर यह अंधकार हज़ार-हज़ार बरसों के अंधकार की तहों को अपने में समेटे ले रहा है, इसे कोई नहीं काट सकता ।

◇ ◇ ◇

जब वे तीनों भाग गये तो धूपो लहरा कर उठी । वह धूल से भर गई थी । अपमान और विक्षोभ की भीषणता ने उसे ग्रस लिया था । जैसे धार्मिक पुजारी अपने सामने ही पवित्र देव प्रतिमा को आततायी की ठोकर से गिरकर चकना-चूर होते देखकर भी कुछ न कर पा सकने से बावला हो जाता है, धूपो भी वैसे ही पागल-सी हो उठी । उसे चारों ओर अँधेरा-सा दिखाई दे रहा था । मन की अतलांत लहरों में एक ही जघन्यता का विष भर गया था । पाप !! अपमान फटा पड़ता था । वह सब वाह्य नहीं, पर समस्त गहराइयों से प्रतिहिंसा-प्रतिहिंसा पुकार रहा था । वह काँतर की तरह असंख्य पांव गड़ाने लगा, अंग-अंग में जलन भरने लगा । वह गुस्से से काँप रही थी । गुस्सा एक रस्सी की तरह था, जिसमें अपमान और विक्षोभ के बल पड़ते थे, और गुंथ-गुंथकर प्रतिशोध को

दृढ़तर करते जाते थे। वह निर्मम आक्रमण उसे ऐसे कुचल गया था जैसे किसी उन्मत्त सेना ने हरी-भरी राजधानी में कत्लेआम कर दिया था और अब धूल का कण-कण बदला लेने के लिये दहकता अंगारा बन जाना चाहता था। वह ऐसा क्रोध था जिसकी कोई अभिव्यक्ति नहीं, क्योंकि वह पातिव्रत को खंड-खंड होते हुए देख चुकी थी। वह दारुण यातना पिघले हुए सीसे की तरह उसके भीतर भर गई थी और उसके रोम-रोम से फूट निकलने के लिये लहू को गर्म करके जलाने लगी थी।

क्यों न पोखर-कूंए में डूबके मर जाए। कैसे जी सकेगी वह? किस तरह किसीको मुँह दिखा सकेगी वह? पर पाप फिर भी नहीं मिटेगा। और फिर सत्य ने गर्जन किया। और धूपो के मन में घुमड़न-सी उठने लगी, जैसे प्रचण्ड मेघराशि अपने खरतर वज्रों की प्रताड़ित हुंकार के साथ समस्त वसुन्धरा को आप्लावित करने को झूमती हुई भीषणता के साथ थपेड़े मारती हुई बढ़ी चली आती है।

जिस प्रकार एक दिन भरी सभा में नंगी की जाने वाली द्रौपदी ने अपने दारुण स्वर से चीत्कार कर-करके समस्त महापुरुषों के पौरुष को धिक्कार कर प्रतिज्ञा की थी कि वह तब ही अपने खुले बालों को बांधेगी जिस दिन वह कौरवों के लहू से उन्हें भिगो लेगी, वैसे ही धूपो ने प्रतिज्ञा की कि वह बाँके की बोटी-बोटी काटकर फेंक देगी।

लाज के लिये स्त्री दबकर रहती है, पर जब लाज ही लुट गई तो इस दुनिया में क्या रहा! लाज है तो दुनिया है। और लाज के लुटेरे से स्त्री को कितनी ज़बर्दस्त घृणा होती है, यह इसीसे स्पष्ट था कि वह साधारण स्त्री भयानक हो उठी! जैसे एक दिन रक्तबीज की सत्ता को निःशेष करने के लिये महाप्रचण्ड चामुण्डा ने पृथ्वी से आकाश तक मुख खोलकर उसको बार-बार चबा-चबाकर समाप्त कर दिया था, उसी तरह धूपो भी बाँके को जड़ समूल से नष्ट करने के लिये उठ खड़ी हुई। जैसे पाप-भरी लंका को धू-धू करके जलवाने के बाद माता वैदेही एक दिन स्वयं अग्नि में कूद पड़ी थी, उसी तरह धूपो भी आग में कूदने के लिये तैयार हो गई।

अपमान का विक्षोभ सिंह की भांति भय की चट्टानी गुहा में से सिर निकाल-कर कठोर गर्जन कर रहा था।

वह अपमान का भावना उसके भीतर ऐसी फूटी पड़ रही थी, जैसे जेठ की

उत्तप्त दुपहर में भयानक गर्मी से भरी धूल की आंधी बिखर जाने के लिये हरहरा उठती है।

उसके दिमाग़ पर चारों ओर से हथौड़ों का प्रहार हो रहा था। वह इस समय सब कुछ भूल गई थी। वह नीच जाति की स्त्री थी, परन्तु शताब्दियों से गौरव का वह संस्कार उसमें जीवित था, और वह उसीके अहंकार पर आज तक जीवित रह सकी थी, और आज वही संस्कार समुद्र की प्रचण्ड लहर की तरह घुमड़ने लगा था, ऐसा लगता था जैसे समुद्र अपनी मर्यादाओं को लांघ जायेगा।

अपमान, क्रोध, विक्षोभ के बीज अब प्रतिहिंसा का विकराल महावृक्ष बनकर उठ खड़े हुए थे। ग्लानि की आंधी चलने लगी थी, काली, अंधेरी और वह दुर्दमनीय वृक्ष अपनी हज़ार-हज़ार शाखाएं अनन्त आकाश में फैलाता चला जा रहा था, जैसे आज वह नहीं रुकेगा। जन्म-जन्मान्तर तक जीवित रहने की भावना ने इस एक जीवन के प्रति होने वाले मोह को क्षीण तन्तु की भांति तोड़ दिया, और वह निष्कंप दीपशिखा के समान जल-जलकर अपने जीवन को गलाने वाली, युगान्त की महावह्नि की प्रचण्ड ज्वाला की भांति महाशून्य में लपलपाती हुई-सी महासमुद्र तक को सोख लेने के लिये जैसे आज फिर बढ़ चली। मन के भीतर के चोर जब भागे तो मन की खुली धरती पर, उसकी लज्जा का ढेर बचा रह गया, पर अब वह उसकी राय में अस्पृश्य हो चुका था! उस समय अंधेरे आकाश, टिमटिमाते तारों और उजड़ी धरती पर वह ऐसे दिखाई दी, जैसे भयानक धूंए में उड़ते अंगारों के नीचे मूर्तिमान प्रतिहिंसा कायरता के शव पर खड़ी थी।

वह अदम्य स्वाभिमान था! वह स्त्री का अस्तित्व था जो उठ खड़ा हुआ था, वह अपमान ऐसे उसे दारुण यन्त्रणा देकर उसके हृदय को जलती आग पर सेक रहा था, जैसे वहीं नरक की समस्त परिधियाँ आकर एकत्र हो गई थीं, और तब धूएं का रौद्र अभिमान ज्वालामुखी की भांति फूट निकला, आग, आग फैलने लगी, चारों ओर झकझोर देने वाला दाह फैल चला, जिसमें संसार को हिला देने की शक्ति थी।

वह गाँव की ओर भाग चली। और वह भयानकता से चिल्ला रही थी, 'दुहाई है, दुहाई है!' गरज रही थी। उस समय उसके हृदय में भयंकर उन्माद था। उसके वस्त्र दौड़ते में खिसल गये। फट-से गये। वह धूलि में गिरी, और

जब उठी तो धूलि उसके चारों ओर लग गई थी।

और पागल भिखारिणी की-सी उस स्त्री के हृदय में जो प्रतिहिंसा का प्रलय गर्जन कर रहा था, उसका अनुमान करना उसीके बस की बात है जिसने समुद्र को आलोडित-विलोडित होते देखा है, या जिसने महिषासुर-मर्दिनी चामुण्डा की सिंहों पर चढ़कर भीषण राक्षसों से युद्ध करने की कल्पना की है, जिसमें सप्तलोक, और ब्रह्माण्ड काँपने लगे थे; वह भी जीवन के गौरव की गाथा थी, वह भी मनुष्यता की उसी अपराजित गरिमा की प्रतिध्वनि थी, जिसकी रोर आज धूपो के हृदय में जगमगा उठी थी। नारी की सत्ता अपने पूर्ण रूप में विकसित होकर प्रचण्ड निनाद कर रही थी, अपने अधिकार मांग रही थी!

धूपो गाँव पहुँची तो लोगों को लगा जैसे मूर्त्तिमती करुणा हा-हा खाती हुई बढ़ी आ रही है, परन्तु उसमें वात्याचक्र का-सा भीषण उद्दाम वेग है। वह चिल्ला रही थी। उसका दारुण आर्त्तनाद सुनकर लोगों के रोंगटे खड़े हो गये। वह ऐसी लुटी हुई-सी पुकार रही थी जैसे फूटते हुए ज्वालामुखी में से समुद्र तक को सुखा लेने वाला लावा निकलकर प्रचण्ड निनाद कर रहा था।

परन्तु उसके जीवन में एक नया विश्वास था। वह अभय थी। उसके मुख पर पाप नहीं था। जीवन्त पुण्य था, जैसे सत्य की मर्यादा के स्तर पर स्तर जमकर आज तपस्पूत स्फटिक की भांति निखर आये थे। गांव के अंधेरे में वह चीत्कार ऐसे कांप गया जैसे सौदामिनी, नीलकुहुक में रास्ता दिखाती हुई झंकारती हुई बढ़ती चली जाती है। और लोग उसके पीछे-पीछे ऐसे खिचे चले आये जैसे उसमें चुंबक था जो जीवन के भारी लौह को भी अपने साथ खींचे चला जा रहा था। उनकी समझ में नहीं आया कि यह निरभ्र आकाश में अचानक धूमकेतु कैसे उग आया, जो सबको अपनी भयानक शंकाकुलता से उत्पीड़ित किये दे रहा था।

वह सीधी चमरवारे में आई। उसका क्रन्दन हृदयों को दहलाये दे रहा था। उस अकाल भेरी-निनाद को सुनकर सब आगे बढ़ आये और धूपो धरती पर लोटने लगी। और कुररी की भांति विकल चीत्कार करने लगी। उसको देखकर स्त्रियों के भीतर दहशत जाग उठी। बच्चे स्तब्ध हो गये।

एक ने कहा : 'अरी क्या हुआ? क्या हुआ?'

पुकार उठी : 'क्या हुआ!'

उसने पुकारा : 'ओ पंचो ! आओ ।'

और हृदय के भीतर से निकली हुई वह ध्वनि, वह मर्म को छूने वाली दिव्य जागरण की मनुहार, वह झकझोर कर जगा देने वाली स्पर्धा, जब उनको छूने लगी तो सब चिल्लाये : 'बोल ! क्या हुआ ?'

आवाज़ गूंज गई । परन्तु धूपो सांपिन-सी धूल में फन पटकती हुई लोटती रही । और कभी-कभी उसके गले से वह भयानक आवाज़ निकलती कि सब थर्रा उठते ।

'भूत है, देवता आ गया है ।' किसीने कहा ।

'नहीं । नहीं ।' धूपो ने आँखें पागलों की तरह फाड़कर गर्जन किया— 'नहीं ! कौन है यहाँ ? आओ ! पंचो ! मेरा न्याव करो ।' वह जैसे बहुत कुछ कहना चाहती थी, परन्तु क्रोध से कह नहीं पा रही थी । चमार इकट्ठे होने लगे । एक-एक करके सब वहीं आ गये और भीड़ की मर्मर धीरे-धीरे कोलाहल बन गयी और सबकी अटूट उत्सुकता अब हाथ पसारकर कौतूहल का अंत मांगने लगी । परन्तु धूपो को जैसे यह सब ज्ञान नहीं था । स्त्रियाँ बड़े आश्चर्य्य से देख रही थीं । बच्चे डर गये और सहमे-से चुप हो रहे । बड़ों की आवाज़ें अब बढ़ने लगीं । रात के अंधेरे में लगा जैसे साक्षात अंधेरा स्थिर होकर अब आवाज़ करने लगा था ।

सुखराम ने भीड देखी तो वहीं चला गया । उसे बजार में देर हो गई थी । वह आज एक तमोली से मिला था जो अहमदाबाद से आया था । वह अपने किस्से सुना रहा था और सुखराम भी चाव से सुन रहा था, सोच रहा था कि क्यों न प्यारी और कजरी को लेकर वह वहाँ चला जाये और मील में नौकरी करे । वे दोनों भी मजूरी कर लेंगी और मज़े में वक्त कटेगा । परन्तु यह कोलाहल देखकर वह समझा नहीं । अंत में वह भी भीड़ में चला गया ।

उस समय धूपो खड़ी हो गई और उसने दोनों हाथों से छाती पीटकर कहा : 'हाय मैं मर गई, हाय मैं लुट गई । तुम देखते रहे, मैं बरबाद हो गई । हाय···'

उसकी वह हाय इतना कठोर हाहाकार बनकर निकलती कि स्त्रियों के नेत्र सजल हो गये । उसके एक बच्चे ने पुकारा : 'अम्मा···'

तब वह हँसी और भीषण स्वर में हँसी । उसका वह विकराल हास्य सुन-

कर बच्चा डरकर चिल्लाकर रो उठा। और गिल्ला चिल्लाया : 'क्या हुआ धूपो ! कहती क्यों नहीं ?'

'कहूँगी ! नही,' धूपो चिल्लाई : 'मैं आज कूएं में डूबूंगी जाकर ! मेरा मुँह काला है। मुझे मत देखो, मुझे मत देखो···'

बच्चा तभी पास आ गया। उसने मां के पास जाकर उसे छूने को हाथ बढ़ाया। परन्तु धूपो चिल्लाई : 'मुझे मत छुओ, मुझे मत छूओ, मुझे पाप छू गया है, मुझे पाप बींध गया है, मेरी देही फुकी जा रही है, मुझे मत छुओ, तुम सब जल जाओगे, जल जाओगे !'

'क्यों, क्यों ?' की पुकार उठी।

'तुममें हिम्मत है ?' धूपो ने कहा।

'बोल, कहके देख !' भीड़ गरजी।

'कहूँगी फिर, पहले सौगन्ध दो। भगवान की सौगंध दो। अपनी मैया की सौगंध दो। अगर मां के दूध की लाज है तो मुझे सौगंध दो।'

सौगंध ! अर्थात् मर मिटने की अंतिम प्रतिज्ञा। यह क्यों ? ऐसा क्या हो गया !

'देते हैं बोल !' खचेरा ने कहा।

सुखराम आगे बढ़ा। भीड़ भिचावदार थी। परन्तु सब पर जादू-सा छा रहा था। तब धूपो ने जोर से कहा : 'मुझे तुमने वचन दिया है !'

और वह अट्टहास कर उठी, जैसे वह अब मुट्ठी खोलकर चिल्ला रही थी—अब देख लूँगी। अब भीड़ का साहस कगारे पर आ गया था। वह हँस रही थी या किनारे पर बार-बार टकराकर थहर उठने वाली सर्वनाशिनी उत्ताल तरंग थी।

सुखराम चमत्कृत-सा देख रहा था। धूपो ! क्या हुआ धूपो को। ऐसा रूप तो उसका कभी नहीं देखा था ! आज यह कैसे बोल रही है। और सब क्या पूछ रहे हैं। वह ऐसी क्यों हँस रही है।

यह हँसी थी या रोदन की अन्तिम सीमा थी जहाँ विषाद ही अपनी चरम अभिव्यक्ति में आनन्द की प्रतारणा कर रहा था ? वह जैसे धीरे गर्जन करने वाली जाह्नवी की भाँति उन्नत गिरिश्रृंगों पर से पृथ्वी पर गिर रही थी ! वह हँसी उसके हृदय के मंथन की वह रोर थी, जिसके फेनों से समस्त समुदाय उस समय ढँक-सा गया था।

'धूपो !' खचेरा चिल्ला उठा।

परन्तु धूपो डरी नहीं। उसमें आज कोई संशय ही नहीं रहा था। उसने कहा : 'दुहाई है। आज से मरते दम तक मेरे बच्चा पंचों के हाथ।'

बच्चे अपना नाम सुनकर रो उठे।

कौतूहल तड़कने लगा।

भीड़ चिल्लाई : 'क्या हुआ !'

स्त्रियाँ पुकारीं : 'बात कह पहले।'

'क्या बात हुई।' 'क्या बात हुई।' की पुकार असंयत स्वर से बार-बार गूंज उठी।

धूपो ने अपने बाल नोंच लिये और उसकी फरिया सिर से गिर गई।

'पहले कहो। धरम की न कहती होऊँ तो कहना।' धूपो ने ललकार कर कहा।

'बोल !' खचेरा ने कहा। उसकी आवाज़ धूपो के वेग के सामने कांप गई। सबने उस स्त्री का उठता हुआ व्यक्तित्व देखा। वह जैसे आग का एक अंगार था, जो जब बोलता था तो लपट की तरह चमक उठता था।

'वचन देओ।' उसने गरजकर कहा। उसका वह अमानुषिक रौद्र स्वर सुनकर चमारों की भीड़, जिसमें कई लोग इधर-उधर से आ इकट्ठे हुए थे, एक स्वर से चिल्ला उठी—'दिया !' जैसे आज उन्हें और कोई डर नहीं रहा था। वह एक शब्द गांव के घरों पर बजा और 'दिया, दिया' की गूंज फिर-फिर हृदयों में प्रतिध्वनित होने लगी जैसे वह स्वर अब घर-घर पुकारने लगा, धूलि में से चिंघाड़ उठने लगी, आकाश दहाड़ने लगा और अनंत निरवधि व्यापक होकर वह शपथ का दान अपनी सार्थकता के कारण विजय की पताका-सा फहराकर ठहर गया।

'अब कह !' एक तरुण ने कहा।

स्त्रियों ने घूंघट खोल दिये, जैसे कारागार की भारी जंजीरें, झनझनाकर टूट गई हों और उन्मुक्त बंदी ने अभिमान से अपना शीश उठा दिया हो।

'अब कहने को नहीं, मुझे कूंए में डूबने दो।' धूपो ने कहा : 'तुम्हें सौगंध है, मेरी लोथ की सौगंध है, मैं जी नहीं रही हूँ। मैं मर गई हूँ। जो तुमसे बोल रहा है, वह मेरा भूत है, वह तुमसे कहने आया है कि मैं पापिन नहीं हूँ। मैं पापिन नहीं हूँ···।' और वह फिर चीत्कार करने लगी।

'बोलती है कि नहीं।' खचेरा चिल्लाया।

'मैं कहूँगी, मैं कहूँगी·····' परन्तु उस समय तक भीड़ अत्यंत आतुर हो उठी और जिसके जो मन में आया वही चिल्लाने लगा। अब एक क्षण का भी विलंब असह्य हो उठा था। उनका समवेत स्वर अब एक असंयत प्रकार का हो-हल्ला हो उठा।

धूपो ने देखा तो काँपने लगी।

गिल्ला बढ़ा। कहा : 'ठहरो, ठहरो भाइयो ! सुनने दो। सुनने दो !'

कई लोग चिल्लाये। जब सब शान्त हो गये तो धूपो ने ऐसे कहा जैसे वह कचहरी में थी : 'तुम्हारे सामने तुम्हारा भइया मुझे ब्याह के लाया था ?'

'लाया था।'

'वह कहाँ गया ?'

'वह, भगवान ने बुला लिया।'

'उसके बाद मेरा कौन है ?'

'हम हैं। बिरादरी है।'

'और जो मैं किसीसे राँड हो के दीदा लड़ा के पाप करूँ तो ?'

'हम तेरी खाल उधेड़ेंगे।'

'और जो मैं पापन नहीं होऊँ तो।'

'तो तेरे लिये हमारा खून हाजिर !'

'अम्माँ !' एक बड़ा बच्चा चिल्लाया। और धूपो की ओर रोते हुए भागा। धूपो ने सिर पीट लिया, और चिल्लाई : 'हटा लो इसे। मुझे छू लेगा तो इसके पाप चढ़ जायेगा !'

स्त्रियों ने बच्चा रोक लिया।

धूपो की वेदना जैसे असह्य हो गई थी। ममता की इस ठोकर ने उसे पहले से भी पागल बना दिया। उसने दाँतों को भींच लिया। वह सचमुच उस विक्षोभ और क्रोध से पागल-सी हो गई थी।

'धूपो !' खचेरा गरजा।

'तुमने वचन दिया है !' धूपो ने आँखें फाड़कर कहा : 'तुमने सौगंध खाई है।'

'हाँ।' खचेरा ने कहा।

'तो उठाओ तेगा !' उसने लौह पर प्रचण्ड घन जैसा प्रहार करते हुए स्वर

से कहा : 'मैं तो मरूँगी । मेरे बच्चों से कह देना कि उनकी अम्माँ बेदाग थी । उसने कभी पाप नहीं किया ।'

'किसने किया है तुझसे पाप! किसने तेरी इज्जत को मिटाया है ।' खचेरा उन्मत्त-सा झपटा ।

'मेरे साथ बाँके और उसके दो आदमियों ने खेत में जबर्दस्ती की है, मेरी इज्जत लूटी है, मैं जब तक लड़ सकी, लड़ती रही, पर वे तीन थे·····'

'बस,' खचेरा ने कहा ।

धूपो ऐसे खड़ी थी जैसे अग्नि की लपटों और बरसते बाणों के बीच में वानरों से घिरी एक पवित्र माता वैदेही लंका के अहंकार को कुचलवाने को उठ खड़ी हुई थी । उसके वह शब्द ललकार की तरह पुकारने लगे—उठ और बदला ले । माँ के लिये उठ ! माँ के लिये कमीनों और नीचों के विरुद्ध उठ ! अहंकार तो रावण तक का धूल में मिल गया ।

और धूपो अब पागल की तरह खड़ी होकर देख रही थी । शांत, निर्द्वन्द्व ! फिर भी भयानक ! जैसे वह टूट पड़ने के पहले बादल ने आकाश में हुमककर ऊर्ध्व श्वास खींचा था, जिससे वनान्त तक के महातरुओं में एक प्राण-व्यापी हहर-सी व्याप्त हो गई थी । उस समय उसके मुख पर अक्षय पवित्रता थी ।

विक्षोभ गरजने लगा । लहू में बिजली कौंधने लगी । गुस्सा थपेड़े देकर हाहाकार कर उठा और हाथ सन्नद्ध होने के लिये आतुर हो उठे । अपमान की भीषण विभीषिका ने प्रतिध्वनित होकर आत्मसम्मान की मर्यादा को ऐसे बार-बार कचोटा जैसे किसी सोते हुए केहरी में ठोकर दी, जिसने सटाएं फटकारकर वज्रनाद किया और बदला लेने के लिए प्यासा-सा उठ खड़ा हुआ । वह नारी की जीवन्त सत्ता की मर्यादा का प्रश्न था ।

सुखराम ने बढ़कर कहा—'तू सच कहती है धूपो ।'

उसका स्वर कठोर था । मुखाकृति गम्भीर थी । उस समय लगा जैसे पहाड़ की चट्टान काटकर उसकी एक-एक पेशी बनायी गयी थी । धूपो ने उसे देखा तो उसकी चेतना घहरा उठी । उसने आत्मविश्वास को ऊँचा करके अपने कांपते स्वर से पूछा : 'कौन ?'

'मैं हूँ सुखराम !' उसने वैसे ही उत्तर दिया । वह अब भी वैसा ही पत्थर दिखाई दे रहा था ।

'तूने मुझे बहिन कहा था।' धूपो ने अनियन्त्रित वेदना को झंकारते हुए कहा। उसकी यातना अब सजीव प्रतिशोध बनकर खड़ी हो गई थी। नारी अपने गौरव के लिये भीख नहीं, अपना अधिकार मांग रही थी, जिसने सबकी अन्तरात्मा के भीतर कौंधती हुई ज्वाला देदीप्यमान कर दी थी।

'कहा था।' सुखराम ने कहा। आज वह बोला नहीं था, उन दोनों शब्दों में उसका अतीत, वर्त्तमान और भविष्य एक साकार प्रतिज्ञा बनकर उठा था। वह दृढ़ता उसकी अपराजित मानवता की जयध्वनि के समान उठ रही थी, जिसके चारों ओर मौन की पताका ने अपनी सारी तहों को खोल दिया था।

'ला अपना लहू दे मुझे। मैं तेरा बदला लूँगा!' सुखराम ने आर्त्त परन्तु अविचलित स्वर से कहा। मानों आज अंगारे से हवा के झोंके ने कहा था कि आ तेरी भस्म उड़ा दूँ। मेरे कन्धों पर बैठ, मैं ब्रह्माण्ड को भस्म करने वाला तूफान हूँ, तू मेरी रग-रग पर प्रचण्ड लपट बनकर अपना ताण्डव नर्त्तन कर।

'मैं दूँगी बीरन।' धूपो ने आर्त्त निनाद किया। वह आगे बढ़ी और उससे कहा: 'बीरन! तू मेरे लिये उठा है?'

'नही!' सुखराम ने कहा: 'तू तू नही है। तू इज्जत है, और तू हमारी आन है। मैं आन की इज्जत के लिये लोहू मांगता हूँ।'

'एक को नहीं, मैं सब पै छींटा दूँगी।' धूपो ने कहा: 'मैं डरती नहीं बीरन!' उसने छाती पीटी।

सुखराम के अंतस में जो बवंडर था अब वह सबके भीतर उठ रहा था। एक-एक को जैसे झकझोर करके वे शब्द जगा रहे थे। प्रलय के महासिन्धु के विक्षोभ पर जैसे सर्वनाश ने अपनी रौद्र पगध्वनि की थी।

खचेरा आगे आया उसने कहा—'यह किस तरह हुआ?'

परन्तु उसको जवाब देने के पहले ही धूपो की ओर से स्त्रियां आगे बढ आईं। जैसे अब सेनापति के बाद सैनिक नंगी तलवार लेकर जान देने को मैदान में आ गये थे और घूंघट क्या खोला था, जैसे सिर से उन्होंने कफन बांध लिया था।

एक औरत ने कहा: 'अरे उसके कीड़ा पड़ें। उसकी यह मजाल!'

वह एक बहू थी। पर इस समय समस्त व्यवधान हट गये थे। उसने चिल्लाकर कहा: 'धूपो की नहीं, हमारी इज्जत लुट गई।'

उसके शब्दों ने आग में घी डाल दिया।

दूसरी बोली : 'अरे किसकी इज्जत । जहाँ मर्द कायर वहाँ लुगाई काहे को धरम की दुहाई द !'

उसके शब्द लोहे के सहस्र फलकों की तरह छितर गये और एक-एक के हृदय में गड़ गये जिन्होंने उनको आर्त्त कर दिया ।

तब औरतें चिल्लाईं : 'धिक है रे तुम्हें ! धिक है !'

'बोल मत !' खचेरा ने पुकारा ।

'अरे तुम्हारी बहू-बेटियों की इज्जत लुटै' उसी अधेड़ स्त्री ने तीखी आवाज़ से कहा : 'और तुम हाथ पै हाथ धरे बैठे रहौ। चूड़ी पहनके बैठ जाओ ।'

भीड़ हुँकार उठी ।

'बदला लेंगे ।'

और उस कोलाहल को दबाकर धूपो चिल्लाई : 'पंचो ! मैं हुकम मांगती हूँ । मैं सती होऊंगी ।'

'सती !!'

'पुलिस आ गई तो ?' भय हुआ । यह क्या बकती है ?

'नहीं ।' 'नहीं ।' भीड़ चिल्लाई । 'हम बदला ले लेंगे । तू मत डरै ।'

परन्तु एक बुड्ढे ने कहा : 'नहीं, सती तू नहीं हो सकती ।'

'मैं होऊँगी ।' धूपो ने कहा : 'मेरी क्या इज्जत है ?'

'अरी रहने दे इज्जत वाली ।' किसीने भीड़ में से चिल्लाकर कहा : 'तुझ जैसी गाँव में कितनी नहीं हैं ।'

उस समय धूपो की आँखों में खून उतर आया । उसने कहा : 'मेरे सामने आके कह !'

'कौन बोला !' खचेरा चिल्लाया ।

परन्तु कोई सामने नहीं आया ।

धूपो गरजी : 'कौन कहता है मैं पापन हूँ । मेरा क्या दोस है पंचो । मैंने अपने आप तो कुछ नहीं किया ?'

किसीने दूसरी ओर से कहा : 'ताली एक हाथ से नहीं बजती ।'

धूपो विकराल हो गई । उसने गला फाड़कर चिल्लाते हुए कहा : 'कायर ! सामने क्यों नहीं आता !'

पर सामने कोई नहीं आया। भीड़ में से रोष का स्वर उठा : 'धूपो बेदाग है। धूपो पापन नहीं है।'

'तौ मैं सती ही होऊँगी', धूपो ने कहा : 'मेरा यही प्रासचित्त है। मेरे पुरबिले जनम के पाप का मुझे दण्ड दिया उसने, तौ मैं उसका दण्ड उतारूँगी।'

'नहीं।' बूढ़ा फिर बोला। 'तू भली सही, पर धरम की बात और है।'

'सो कैसे ?' एक तरुण ने पूछा।

'बेटा, लुगाई है, इसे दोस तो लग ही गया।'

तरुण ने बहस की : 'पर इसका पाप क्या है ?'

'दोस हो न हो, पाप तो लग ही गया। पुरखा-पत्ती से जो होता चला आया है, वह क्या ऐसे मिट सकता है ?'

धूपो ने सुना। शायद इसी भय से वह सती होने की बात उठा रही थी। उस दारुण अपमान ने उसको ऐसे कुचल दिया जैसे मदांध हाथी ने सहस्रदल कमल की कोमल कली को रौंद दिया हो। उसका हृदय उसके व्यंग्य से क्षत-विक्षत होकर लहू-लुहान हो गया। वह उसके लिए असह्य हो गया।

'तो ले' धूपो ने कहा : 'तू मुझे पापिन मानता है, तू मुझे पापिन मानता है—'

और जैसे उसके मुँह से क्रोध से शब्द निकलना भी असंभव हो गया। वह फड़कने लगी और तब सामने की एक पत्थर की दीवार से उसने इतनी ज़ोर से सिर को जाकर टकरा दिया कि सिर खिल गया और लहू की धार फूट निकली, गर्म-गर्म लहू से वह भीग गई और नीचे गिर गई। लहू की धारा धूलि में बह निकली और बहकर जम गई और वह मर गई।

उसकी पुण्यगाथा अब रक्त से लिखी पड़ी थी। निर्दोष स्त्री ने समाज के बंधनों को अपने अस्तित्व के बलिदान से भिगो दिया था, जिसमें स्त्री को अधिकार नहीं दिये गये।

उस समय भीड़ रोने लगी। वह अपनी पवित्रता प्रमाणित कर गई थी। उसने कहीं भी भय और कातरता का प्रदर्शन नहीं किया था। वह इस समय ऐसी पड़ी थी जैसे पर्वतों के ऊपर फूटती हुई जीवनदायिनी ऊषा थी, दिव्यात्मा की भांति वह मुस्करा उठी थी।

'वह देवी थी।' सुखराम चिल्लाया : 'अरे देवी रूठ गई !'

उसके उस वाक्य को सुनकर वह भीड़ चौंक उठी। उन्हें लगा सचमुच वह

देवी थी। वह उन सबसे ऊँची थी, क्योंकि वह मौत से लड़कर जीत गई थी। मृत्यु को उसने कीड़ा बनाकर अपनी गरिमा के पांव के नीचे कुचल दिया था।

'मैया ! मैया!' करके भीड़ चिल्लाने लगी। उस पराभूत ओज में वे उसे प्रणाम करने लगे।

बुड्ढा भगत आगे आया और उसने अपने गंभीर वृद्ध मुख को उसके सामने झुकाया और उसके चरणों की धूल अपने सिर पर चढ़ा ली। उसे देखकर भीड़ समझी कि आज कोई बहुत बड़ा काण्ड हो गया है।

सुखराम का सिर फटने लगा। उसके सामने धूपो का शव पड़ा है। उस नारी का, जिसके बच्चे बिलख रहे हैं, अनाथ हो गये हैं, जिस पर यदि वहाँ अत्याचार हुआ था, तो यहाँ उसके अपने कहे जाने वालों ने पहले से भी भयानक अत्याचार किया था। और वह कितनी भव्य स्त्री थी, जिसने झुककर चलना ही नहीं सीखा, वह पवित्र थी···।

और तभी बच्चे रो उठे—'अम्मा! अम्मा !'

सुखराम ने धूपो का खून पिया और माथे पर लगाया और वह ऊँचे सुर में चिल्लाया—'माँ ! तू माँ है। तू सिंह चढ़ने वाली है। आज तेरी यह दसा।'

उसके काँपते हुए स्वर को सुनकर सब फिर हिल उठे।

'अरे बाँके महिसासुर !' खचेरा चिल्लाया।

उस समय लगा जैसे महाकाली की असंख्य भुजाएं कांपने लगीं और उनमें से भयानक आग पैदा होने लगी और लगा त्रिभुवन उस क्रोध को संभाल सकने में असमर्थ हो जायेंगे। उस भयानक ज्वाला का वह स्फुरित निर्घोष उस भीड़ में पर्वतों की भांति साकार होकर सिर उठाने लगा।

धूपो के बच्चे रो रहे थे। उनके सामने उनकी मां की लाश पड़ी थी। वे उससे चिपट-चिपटकर चिल्लाते थे, पर मां तो मरी पड़ी थी, वह तो नहीं बोलती। अभी तो बोल रही थी, अब चुप क्यों हो गई है ?

उनका वह हृदय-विदारक क्रंदन सुनकर छाती फटी जाती थी। छोटा बालक अपनी अबोध-निर्मल-पवित्र आँखों में आँसू भरे हुए उस लाश को बार-बार 'अम्मा-अम्मा' कहकर पुकार रहा था, जैसे आज वह ममता के बल पर फिर मृत शरीर को व्याकुल करके जीवित कर देने का हठ ले बैठा था।

धूपो की पड़ोसिन ने छाती पीटी और गाया : 'अरी तू चली गई, तैंने पाप

नहीं किया, पाप हमने किया जो तुझे मरते देखकर भी चुप खड़े रहे, अभागिन····· ।'

तब बूढ़ी रमझो बाहर आई और अपने कांपते स्वर से गा उठी : 'अरी बहू ! तू चली गई, जवानी में कमेरा छोड़ गया, और तूने कभी मन नहीं डिगाया, हाय आज तू भी चली गई, और वे राच्छस, उनका सत्यानास जाये, जिन्होंने तुझ पै हाथ उठाया····· ।'

उस समय स्त्रियों ने रोते हुए गाया : 'चली गई, चली गई, तेरा राजा पहले गया, ओ सती, तू किस रानी से कम थी, जो बिरादरी के माथे पै लोहू का चंदन लगा के चली गई····· ।'

चमार काँपने लगे । गुस्से से उनके मुँह से बोल कढ़ना कठिन हो गया था । कायरों तक में जोश था ।

सुखराम ने कहा : 'बाँके, मै तेरा लहू पीयूंगा····· ।'

परन्तु वह कह नहीं सका । उसका गला रुँध गया । वह धूपो के बच्चों को उस समय मां के शव से चिपटकर चिल्लाते हुए देखकर दहल गया । वह भीड़ उस समय अत्यंत विचलित हो गई थी ।

कुछ क्षण वे निस्तब्ध खड़े रहे । सोचते रहे । कुछ मिनट बीत गये । तब धीरे से गिल्ला ने कहा : 'आज भवानी जगी थी । सो गई ।'

'नही, सोई नही है । जगा रही है ।' सुखराम ने कहा ।

किसीने उसका उत्तर नही दिया । अब धीरे-धीरे वे एक दूसरे के मुख की ओर देखने लगे थे, और आँखों में अपने-अपने संकुचित स्वार्थों के चोर झाँकने लगे थे । कुछ चाहते थे कि इसे फूंक-फाँककर खतम किया जाये । और पुलस में रपट करवा दी जाये, पर हिम्मत नहीं पड़ती थी । अभी कैसे कह दें । कहीं कायर कहला गये तो ?

सुखराम ने चारों ओर देखा और कहा : 'तुम लोग चुप क्यों हो ?'

'चुप कहाँ हैं ?' एक ने कहा : 'पंचों को बुलाओ और आगे का फैसला करो । क्या करना है ।'

सुखराम आहत हुआ । वह सोचने लगा । अगर नटों में कोई ऐसी गुस्से की बात हो जाती तो अभी तक वे हमला कर चुके होते, फिर की फिर देखी जाती । पर इसका कारन है कि वे किसीसे दबते नही । डरते है, झुके रहते हैं, पर जब उन्हें गुस्सा आता है तो जानवर की तरह टूट पड़ते है । ये लोग कभी जानवर

नहीं बनते, तो ये कभी आदमी भी नहीं बनते। कायर हैं।

सुखराम विक्षुब्ध हुआ।

खचेरा ने कहा : 'सजाओ ! भवानी की अर्थी सजाओ। वह रानी थी। वह वैसे ही नहीं जायेगी। वह पुन्नात्मा थी। वह देवी का औतार थी।'

स्त्रियों में उसके वचन से सहानुभूति जाग उठी। वे काम में लग गईं।

'धिक्कार है तुम्हें' सुखराम ने कहा : 'अब भी नहीं जागे तुम।'

'मगर हम करें क्या ?' एक ने पूछा।

'अरे चलके बाँके को काट डालें।'

'फिर पुलिस आई तो ?'

उस बात ने कई लोगों पर असर किया।

सुखराम ने कहा : 'आज मुझे मौका दो। मैं अकेला उसे काट डालूंगा।'

'फिर क्या बच जायेगा ?'

'क्या हो जायेगा ? फाँसी ही न ?'

'तू तो नट है, भाग के डांग में जा छिपेगा, हमारा क्या होगा ? हमारे तो घर यहीं हैं। हम कहाँ जा सकेंगे।'

'किसी पर आँच नहीं आयेगी। अगर मैं उसे मारूंगा तो पुलस मुझे पकड़ेगी। वचन देता हूँ कि धूपो का बदला मैं जरूर लूंगा।'

'अपना बदला ही जो कह।'

'कैसे ?'

'तुझे भी तो मारा था उसने।'

'सो भी इसीके कारण।'

'तेरी इससे लाग क्या थी ?'

'कहे देता हूँ तुम लोग कायर हो।'

'बाल-बच्चों की तरफ़ क्या देखें नहीं ? गले घोंट दे सबके ?' एक और आदमी ने कहा।

'खून हुआ है तो सरकार देखेगी। जुरम हुआ है तो कानून क्या मर गया है ?' एक चौथे ही व्यक्ति ने कहा।

सुखराम ने देखा। वे धीरे-धीरे हिम्मत हार रहे थे।

'यह सब रुस्तमखाँ की वजह से हुआ है,' खचेरा ने कहा।

'तो चलो उससे पूछें।' गिल्ला ने कहा

'पूछोगे क्या ?' सुखराम ने कहा ।

वही बुड्ढा जिसने धूपो को पापिन कहा था बोला : 'तुम लोग जवान हो । समझते नहीं । समझे ? जोश में हो । पर सरकार एक-एक को भून डालेगी । और गेहूँ के साथ, फिर घुन भी पिसेगा । बाँके को पुलस में दे दो । जो हुआ वह तो हो ही गया ।'

भीड़ को यह बात जँची । वह सब जोश ठंडा-सा पड़ चला ।

'बाँके को ढूँढना होगा ।' एक ने कहा ।

'कहाँ होगा वह ?' दूसरे ने कहा ।

'कहीं छिप रहा होगा ।'

'पर जायेगा कहाँ ? हम उसका खून नहीं करेंगे, पर उसे अब इस लायक तो नहीं छोड़ेंगे कि फिर वह ऐसा काम कर सके ।'

सुखराम को घृणा हुई । पर अकेला क्या कर सकता था । स्त्रियां भी अब हल्की पड़ रही थीं । उनके अपने-अपने स्वार्थ जाग उठे थे ।

चमार भेज दिये गये । उन्होंने बाँके को ढूंढना शुरू किया ।

सुखराम गंभीर खड़ा रहा ।

खचेरा ने उसकी आंखों में झांका । कहा : 'तू क्यों घबराता है । यह सब डरपोक हैं । मै और तू तो हैं ।'

खचेरा की बात से सुखराम को चैन मिला । कहा कुछ नहीं, देखता रहा ।

'फिर कभी देख लेंगे ।' खचेरा ने कहा । और आगे की ओर बढ़कर बोला : 'लाश कहाँ है ?'

लाश सज गई । चमारों ने उस पर फूल डाले । वह ऐसी मन की बहलाने वाली बात थी, जैसे म्हावट की आस में आस्मान ताकने वाले किसान ने अन्त में गिरती ओस को ही गनीमत समझा था कि चलो न कुछ से यह ही भली ।

वहाँ धूपो के परिवार का कोई व्यक्ति नहीं था । अतः उसके लिये उमड़ा हुआ ज्वार उतना दृढ़ नहीं था । उसके बच्चे अब भी बिलख-बिलखकर रो रहे थे । बड़ी कठिनाई से उन्हें उनकी मां से अलग किया गया । उनका रोना सुन-सुनकर औरतें रोती थीं और आँसू पोंछती जाती थीं । पर पंचों का मन चौकन्ना था । धरम-दुहाई देकर वह पंचों पर उन्हें छोड़ गई थी । कैसे होगी ।

उस समय खचेरा ने कहा : 'हम जाते हैं ।'

'कहाँ ?' गिल्ला ने पूछा ।

'रुस्तमखाँ के यहाँ।'

'क्यों ?'

'बाँके वहीं होगा।'

सुखराम ने सोचा। कजरी और प्यारी भी वहीं हैं। कहीं प्यारी धूपो की लाश देखकर खुश हुई तो ! तो क्या वह उसे कभी माफ़ कर सकेगा ? कभी नहीं।

खचेरा के हाथ में लट्ठ दिखाई दिया। उसने कहा : 'जिसे डर हो लौट जाये !'

दस आगे बढ़े, फिर बीस, फिर पच्चीस, फिर सौ, फिर भीड़ खड़ी हो गई।

खचेरा ने कहा : 'उठाओ ! भवानी को उठाओ !'

उन्होंने अर्थी उठा ली। और पुकारा : 'राम राम सत्त है.....

सुखराम संग-संग चला। उसकी इच्छा हुई धूपो के बच्चों को ले ले और पाल ले। पर वह करनट था ! बिरादरी की बात है। उस जैसे नीच जात को चमार अपने बच्चे देंगे ही क्यों ?

आवाज़ उठी : 'सत्त बोलो गत्त है...

सुखराम ने खचेरा से कहा : 'मरघट जाते हो ?'

'नहीं।' उसने कहा।

'तो फिर जै क्यों बोलते हो ?'

'गांव भर में ख़बर फैल जायेगी ऐसे।'

'वहाँ लाश पुलस को देनी होगी।'

'नहीं देंगे।'

'और अगर उन्होंने मांगी तो ?'

खचेरा ने लट्ठ उठाकर कहा : 'तो लड़ लेंगे और हाड़ देंगे...

उसकी आवाज़ डूब गई, क्योंकि पुकार उठी : 'राम राम सत्त है।'

२४

बाँके की छाती फूल उठी। आज उसकी वह कठिन घड़ी पार हो गई थी। उसे पैशाचिक आनन्द था। धूपो का सतीत्व खंडित करना उसे सबसे

बड़ा काम दिखाई दे रहा था। अब क्या करेगी सुसरी। जब मिलेगी तो आँख कैसे मिलायेगी। सारे गाँव में खबर तो फैल ही जायेगी। मज़ा रहेगा। खूब चर्चा चलेगी।

वह सीधा रुस्तमखाँ के पास पहुँचा। रुस्तमखाँ भरा बैठा था। उसने उसे देखा, पर बैठा रहा। परन्तु उसके क्रोध को आज बाँके नहीं देख पाया। वह तो हर्षोन्मत्त हो रहा था। रुस्तमखाँ ने भी देखा कि आज वह बड़ा खुश था। उसका भी माथा ठनका। आखिर बात क्या है? बाँके झूमकर रुस्तमखाँ से एकदम लिपट गया—'उस्ताद!' उसने कहा जैसे जो कुछ उसने किया था वह लाकर उसके चरणों पर समर्पित कर दिया था। उसकी वे अलमस्त आँखें, वे फड़कती हुई मूँछें, वे गर्म-गर्म सांसें, इन सबने रुस्तमखाँ का क्रोध भगा दिया। उसे एक संबल मिल गया। उससे वह मन की सारी बातें कह सकता था।

'क्या हुआ बे?' उसने कौतूहल से पूछा जैसे अपना बड़प्पन रखते हुए भी वह उसकी किसी नयी हरकत का रस लेना चाहता था। उसने स्वयं कभी उसे इतना प्रसन्न नहीं देखा था।

'मजा आ गया।' बाँके ने कहा और उसकी आँखें सुखद कल्पनाओं के कारण मुँद गईं और वह आँखें मींचकर ही मूंछों पर ताव देने लगा। रुस्तमखाँ के भीतर ज्वार-सा उठ आया। उसने कहा: 'क्यों बे? ऐसा मज़ा अभी तक आ रहा है।'

'तुम्हारी दुआ है उस्ताद।' उसने पैरचप्पी की।

'क्या हुआ आखिर?' रुस्तम ने पूछा।

बाँके ठठाकर हँसा। उसका वह हास्य नीचे से ऊपर चढ़ा। प्यारी चौंक गई।

'क्यों क्या हुआ?' कजरी ने धड़कते दिल से कहा।

'बाँके आया लगता है।'

कजरी समझी नहीं। फिर अट्टहास सुनाई दिया। मदमत्त। विभोर-सा। आतंक-भरा। प्यारी ने सुना तो धीरे से कहा: 'कजरी!'

'क्या है?'

'मैं नीचे जाती हूँ। तू संभलकर बैठ।'

'मैं भी चलूंगी साथ। यहाँ अकेली मैं नहीं रहूँगी।'

'अच्छा चल एक से दो भली ।'

दोनों धीरे-धीरे नीचे उतर आईं । बाँके और रुस्तमखाँ को कुछ पता नहीं चला ।

दोनों छिपकर सुनने लगीं । उन्होंने दरवाज़े की संधों में से झांका ।

रुस्तमखाँ ने कहा : 'आज जूआ बहुत जीता क्या ?'

'सो तो है ही ।' कहकर उसने जेब से नोट निकालकर रुस्तमखाँ के सामने पटक दिये ।

रुस्तमखाँ की आँखें फट गईं ।

'सब ले लो उस्ताद, सब तुम्हारे हैं आज', बाँके ने हाथ उठाकर कहा ।

'बात क्या हुई ? बता तो ।'

'राजा मेरे सब तुम्हारे क़दमों की मेहर है । आज मुझे ना न करना । सब ले लो । तुम्हें अपने बाँके की क़सम ।'

लाचार रुस्तमखाँ को वे रुपये लेने पड़े । कहा : 'अबे तू है बड़ा ज़िद्दी । अब सब मुझे ही दिये दे रहा है ।'

'तुम क्या मुझसे कुछ अलग हो उस्ताद !' बाँके ने कहा : 'आज धूपो उस्ताद ! धूपो ।'

और फिर उसने क़हक़हा लगाया ।

प्यारी ने गौर से सुना ।

'तेरी मुराद पूरी हो गई ?' रुस्तमखाँ ने पूछा ।

'जरूरत से ज्यादा उस्ताद ।'

'वाह क्या बात है ! किस्मत वाले ।' रुस्तमखाँ ने कहा और एक आह छोड़ी जैसे हम न हुए ।

'आग लगती है मेरे दिल को उस्ताद । ये ठंडी सांस क्यों ली तुमने ? जवाब दो ।'

'यों ही ।' रुस्तमखाँ ने कहा ।

'अरे हम समझ गये उस्ताद ! अब तुम चाहो जब कहो, लाकर उसे हाजिर कर दूंगा ।'

'सो कैसे ?'

'अब वह क्या मुझसे आँख मिला सकती है ?'

'सो तो है ।' रुस्तमखाँ ने पारखी की तरह कहा ।

बाँके ने कहा : 'उस्ताद, इसके फेर में मैं साल भर से था : सुसरी मक्खी नहीं बैठने देती थी।'

'प्यारी इससे नाराज़ थी।'

'वह जाने उसका काम जाने। पर मैं जो नटिनी का तरफ़दार हो गया था उस दिन, जानते हो क्यों ? मैंने सोचा साली को ज़रा दो-चार हाथ जड़ दूँ। मुझे डराती थी पहले। कहती थी कह दूंगी सबसे।'

'तूने रुपया न दिया होगा ! एक-आद दे देता। चमरिया ही तो थी। मान जाती।'

'नहीं उस्ताद ! बुरा न मानना। नटिनी और चमरिया में फरक होता है। बड़े घर की औरतें तो आने नहीं देतीं, आने नहीं देतीं, पर कहीं चंगुल में आ गई तो बदनामी के डर से चुप लगा जाती हैं। पर यह तो अपने को बड़ी पारसा बनती थी। रुपया ! एक की कहते हो ! दस का नोट देता था, मेरे मुँह पै फेंक गई।'

'और अब तो मुफ्त में काम हो गया !' रुस्तमखाँ पशु की-सी आँखों को लिये हँसा। बाँके ने फ़र्माबर्दार की तरह सिर झुकाया और पैर पकड़ लिये। 'तुम्हारी रहम-करम की बात है उस्ताद ! वर्ना हम क्या थे।'

कुछ रुककर उसने कहा : 'पर एक कसर रह गई उस्ताद।'

'वह क्या !'

'मैं अकेला नहीं था।'

'तो !' वह चौंका।

'मेरे साथ दो आदमी और थे !'

प्यारी के रोंगटे खड़े हो गये।

'कौन ? कौन थे ?' रुस्तमखाँ ने पूछा।

'बताने में डरता हूँ।'

'क्यों ?'

'वे तुम्हारे दुश्मन थे।' बाँके ने कहा : 'पर अब मैंने खाई पाट दी उस्ताद ! वे थे हरनाम और चरनसिंह !'

रुस्तमखाँ चौंक उठा। इतना कि दिखाई दे गया कि वह हिल उठा है।

प्यारी ने गुस्से से होंठ काटे। कजरी ने उसकी ओर मुड़कर देखा और कान में पूछा : 'कौन हैं ये ?'

'ठाकुर हैं' प्यारी ने कान में ही कहा।

'तुम जानती हो ?'

'हाँ, मैंने दोनों को कुचलवाया था।'

'वे भी मिल गये इससे ?'

'हाँ।'

'हाँ।' तभी बाँके ने कहा। 'पहले मैं भी डरा। सुसरे चोरी से उस बनी गडरिये का खेत काट रहे थे।'

'अच्छा वो जिसका बाप मर गया है। जो उसके फूल-वूल लेके गंगा गया है।' रुस्तमखाँ ने कहा। 'खूब ! खूब मौका ढूंढा उन्होंने। फिर तुझे खेत में ही मिले होगे। वे तुझसे मिल कैसे गये ?'

'पहले तो' बाँके ने कहा : 'मैंने सोचा मामला चौपट हो गया। पर फिर मैंने अकल से काम लिया। मैंने कहा : धूपो प्यारी की सहेली है। और मैंने तुम्हारे कहने से प्यारी की चहेती को पीटा। प्यारी ने अपने सुखराम से उसे बचवाया। फिर तुम्हारे कहने से मेरी सुखराम से लड़ाई हुई। मैंने कहा उस्ताद को तुमसे दुसमनाई नहीं। वह तो उस प्यारी का फेर है। उस्ताद लुगाई का बाँट था। दोनों के पांव कच्चे। दोनों मिल गये।'

रुस्तमखाँ ने हँसकर कहा : 'ये तूने अच्छा किया। मुझ पर से सारा इलज़ाम हटाकर नटनी और उसके यार पर डाल दिया। बल्कि ठाकुरों से दुश्मनी मैं मोल लेना चाहता ही नहीं था। यह सब इसी हरामज़ादी की वजह से हुआ था। क्या बताऊँ ? उस वक्त मैं इस पर अंधा हो गया था।'

कजरी ने प्यारी की तरफ़ देखा।

प्यारी ने देखा तो देखती रही।

'सुना !' कजरी ने कहा।

'सुन रही हूँ।' प्यारी ने कहा।

कजरी ने कहा : 'तुझे बदनाम किया है।'

प्यारी के नेत्र जल रहे थे। कहा : 'मैं भी इसे देख लूंगी।'

कजरी ने कहा : 'ठाकुरों को तूने पिटवाया था ?'

'अरे मैंने कुचलवा दिया था।'

'छोड़ !' तभी रुस्तमखाँ ने कहा : 'फिर वे लोग बाद में क्या कहते थे ?'

'पांव पकड़ते थे।'

'क्यों ?'

'अब उस्ताद, मैं कैसे समझाऊँ ?' बाँके ने नम्रता से कहा। वह जैसे शर्मिन्दा था।

'अच्छा फिर ?' रुस्तमखाँ की वासना उस घृणित कथा को विस्तार से सुनना चाहती थी।

बाँके ने इंगित किया।

'आक्खाखा·····' करके रुस्तमखाँ हँसा। रुककर कहा : 'यार ! क्या बतायें। वे दोनों बड़े जालम हैं। काम के हैं। पर जब से यह साली नटनी आई है तब से उनसे बैर बँध गया है।'

'और उस्ताद गुनाह बेलज्जत।'

'बिल्कुल खामखाह !'

'अब कहो मर्द हूँ', बाँके ने पूछा।

'सौ बार !'

'पर उस्ताद वह छुरा मेरे किसने मारा था ?'

कजरी ने मुड़कर देखा। प्यारी मुस्करा दी। कजरी ने उसके कंधे पर स्नेह से हाथ धर दिया।

बाँके ने कहा : 'मुझे तो इसी नटनी पर शक होता है।'

प्यारी और कजरी के कान खड़े हुए।

'वह क्यों ? वह तो ऊपर थी।' रुस्तमखाँ ने कहा।

'अरे उस्ताद। नटनी है। उसे ऊपर-नीचे कूदते में क्या देर लगती है। यह जात तो बिल्लियों की है।'

'यही मैं भी सोचता हूँ। आखिर और कौन आ सकता था।'

'उस्ताद ! चमारों ने तो बदला मुझे मारकर ले ही लिया था !'

'वे नीच जात। यही क्या कम था जो सिर उठा गये इतना। पर अब तूने उनसे अच्छा बदला ले लिया।'

'उस्ताद बदला नहीं, एक ठिकाना वक्त-बेवक्त के लिये हो गया। वह बेवा है।'

रुस्तमखाँ सोच में पड़ गया।

'क्यों उस्ताद ! फिकर में कैसे पड़ गये ?'

'फिकर मुझे न होगी तो किसे होगी बाँके मेरे जाँनिसार।' रुस्तमखाँ ने कहा। और साँस ली।

'कह दो उस्ताद !'

प्यारी और कजरी ने ध्यान से सुना। रुस्तमखाँ आज की अपनी प्यारी से जो बात हुई थी सुना गया, पर इतना और जोड़ा कि मैंने भी उसे खूब डाँटा। कजरी ने प्यारी को देखा। प्यारी ने कहा : 'आखीर में झूंठ बोल गया। कमीन, डर के चुप हो गया था तब।'

'तो तूने मुझसे न कहा।'

'मैंने सोचा तू डर जायेगी।'

रुस्तमखाँ ने कहा : 'अब क्या किया जाये ?'

'अकड़ी हरामज़ादी ! उसकी ये मजाल !!'

'सुखराम का भरोसा है उसे।'

'उस्ताद मैं तो उसे भी—हाँ।' उसने हाथ से चाक करने का इशारा किया।

'कर ही दे यार।'

'कर दूंगा, मारो हाथ। आज ही।'

लेकिन रुस्तमखाँ ने हाथ पर हाथ नहीं मारा।

'पर आज उसकी दूसरी लुगाई साथ है।' उसने कहा।

'कहाँ ?'

'ऊपर है।'

'तुमने देखी ?'

रुस्तमखाँ ने मुस्कराकर देखा।

'कैसी है ?' बाँके ने पूछा।

'कहाँ यार ? बता तो रहा हूँ। देखने की कोशिश की थी, तभी तो वह बिगड़ गई। औरत औरत की बड़ी दुश्मन होती है !'

प्यारी ने कजरी का हाथ दबाया।

'कैसी भी हो। होगी तो जवान ही ?' बाँके ने कहा—जैसे उसने पूरे चित्र की कल्पना कर ली थी और अब उसकी अप्रत्यक्ष पुष्टि चाहता था। रुस्तमखाँ ने सिर हिलाया।

'अरे सो तो नटिनी है।' उसने कहा, जैसे नटिनी होने का अर्थ ही कामु-

कता का भण्डार होना आवश्यक था। उसके नेत्रों में एक चमक-सी आ गई थी। उसने सोचकर सिर उठाया और फिर रुस्तमखाँ की आँखों में रहस्यभरी दृष्टि डाली।

'उस्ताद, आज मज़े ही मज़े नज़र आते हैं।' उसने कहा।

'इतनी जल्दी भी सिर न उठा।' रुस्तमखाँ ने धीरज से काम लेने की सलाह दी और दुश्मन को कमज़ोर न समझने की राय दी।

'आज तो पौआ खोल दो। कलेजी ले आऊँ? उस्ताद! तुम यहाँ बैठे रहो, मैं सारे गाँव को यों नचा दूँगा, यों,' उसने चुटकी बजाई और पैसों के लिये हाथ फैला दिया।

'तो आजा! बोतल भी ले आइयो।' उसने पैसे देकर कहा: 'जल्दी आइयो।'

'ये गया, ये आया।'

वह उठ खड़ा हुआ। रुस्तमखाँ चारपाई पर फिर लेट गया और उसने दोनों हाथ की कुहनियाँ उठाकर हथेलियों पर सिर रख लिया।

प्यारी और कजरी ने देखा।

प्यारी ने कहा: 'तो सुखराम की इससे बात हो चुकी है?'

'हाँ।'

'तू जानती थी?'

'हाँ।'

'फिर मुझसे कहा क्यों नहीं?'

'फिर तू चिढ़ती कैसे।'

बाँके गया। प्यारी ने कहा: 'तू बड़ी निरदयी है।'

'सौत जो हूँ।'

'पर अब तूने सुना!'

'हाँ।'

प्यारी ने कहा—'अब?'

'अब क्या, कुछ नहीं।'

'ये उस पर छिपकर हमला करेगा।'

'इसका बाप कुछ नहीं कर सकता।'

प्यारी की समझ में नहीं आया।

कजरी ने कहा : 'इस पर तो मेरा मन आ गया है।'

उसकी बात सुनकर प्यारी कांप उठी। क्या हो गया है इसे ? इतने नीच पर ! कजरी का ! यह औरत है !! यह सुखराम की बफ़ादार है !! इसमें इतना ज़हर है ? उसको उबकाई-सी आने लगी। पर कजरी निश्चिन्त खड़ी थी।

'किस पर ?' प्यारी ने धीरे से कहा। उसके उस धीमे स्वर में भी उसकी घृणा अव्यक्त नही रही। कजरी मन ही मन मुस्कराई और फिर उसके होंठों पर भी वह प्रगट हो गई। प्यारी के नेत्रों में आश्चर्य आ गया।

'बाँके पै !' कजरी ने गर्दन नचाकर कहा।

'कजरी !!!' स्वर दबाकर उसने कहा, जैसे क्या बक रही है। और शायद ज़ोर से बोलने का मौका होता तो वह उसको मार भी बैठती।

कजरी ने कहा : 'इसीने मेरे खसम का लहू बहाया है न ?'

प्यारी समझी। सांत्वना हुई। मन हर्षातिरेक से भर गया। कहा : 'हां।'

'तुझे याद है मैं आई थी ?'

'कैसे भूल जाऊँगी !'

'पर तूने क्या किया था तब ?'

'मैंने बदला लिया था। तीन बार कटार भोंकी इसके। पर बदकिस्मती से तीनों बार कंधे में लगी। निसाना चूक गई वर्ना बराबर हो गया होता पापी उसी बखत !'

'तो फिकर क्यों करती है ?' कजरी ने कहा। और प्यार से उसने प्यारी का मुंह चूम लिया।

'क्या करती है ?' प्यारी ने कहा।

'तू सचमुच मेरी सौत है।' कजरी ने कहा।

प्यारी ने कजरी का हाथ स्नेह से दबाया।

तभी बाँके लौट आया।

बोला : 'उस्ताद ! कुछ चमारों में शोर तो हो रहा है।'

'होने दे यार ! साली रो रही होगी और क्या ?'

'उसका कोई अपना तो है नही।'

'नहीं सो डर नहीं। और होता तो मैं साले को मुंदा देता।'

'अरे तुम ऐसे ज़रा-ज़रा-से काम करोगे उस्ताद !' बाँके ने कहा और दो

बड़ी बोतलें निकालकर सामने रखीं, एक सिगरेट का हाथीछाप पाकट रखा और कलेजियाँ रख दीं। रुस्तमखाँ ने ललचाई आँखों से देखा और होठों पर जीभ फिराई।

'अबे इतनी क्यों ले आया ?' उसने पूछा।

'एक से क्या काम चलता।'

'क्यों ?'

'खूब पियो उस्ताद। आज की रात कतल की रात है। आज मैंने धूपो जीती है, आज सुखराम को जीतूंगा और फिर उसकी नटनी को तुम्हारा गुलाम बना दूंगा।'

'किसे दूसरी को भी !' रुस्तमखाँ ने ललचाकर पूछा।

'तुम इसारा करो।'

'पर बात फैलेगी फिर ? दोनों का यहाँ रहना ठीक नही।'

'तो पहली को चटका देना !'

प्यारी और कजरी ने एक दूसरे के हाथ दबाये और उन दोनों ने देखा कि उनके दोनों के हाथों में कटारें नंगी हो चुकी थीं। दोनों ही मुस्कराईं !

बाँके ने एक बोतल उठा ली और कहा : 'मसालेदार लाया हूँ उस्ताद !'

ज़ोर की आवाज़ से डाट खुली और उसकी बदबू व्याप गई। लाल-लाल बोतल में से शराब गिरने लगी। फेन छलक आये और फिर बैठ गये।

'लो कलेजी लो।' बाँके ने कहा।

एक चक्खी तो रुस्तमखाँ को अच्छी लगी। बोला : 'कल्लन से लाया होगा। बनाता अच्छी है।'

'उस्ताद अब तो तुम ठीक हो गये ?' बाँके ने कुल्हड़ देकर कहा : 'पियो !'

रुस्तमखाँ ने पी तो मज़ा आया। वह तो उन लोगों में था जो शराब की याद में झूमते थे, पीना तो जन्नत में तशरीफ़ ले जाने के बराबर था।

'बिल्कुल। बिल्कुल ठीक हो गया हूँ।' रुस्तमखाँ ने कहा, जब वह ज़हरीली मस्ती भीतर बोलने लगी। 'बिना इसके मज़ा ही नहीं आता यार बाँके। सबको बराबर कर देती है यह। क्या खूब चीज़ है !'

'फिर तुम्हारा मन इस नटिनी से न भरा।' बाँके ने आधा कुल्हड़ पीकर कहा।

'कलेजी ले।' रुस्तमखाँ ने कहा ।

'तुम खाओ।'

'अबे खा भी।' उसने खायी और फिर बोला : 'क्यों उस्ताद, मैं पूछ रहा हूँ। बताते क्यों नहीं !'

रुस्तमखाँ ने पूरा कुल्हड़ चढ़ाकर पूछा : 'अबे क्या कहता है ?' अब उसका स्वर भारी था ।

'उस्ताद हम तुम्हारी झूंठन सदा से खाते आ रहे हैं।' उसने धीरे-धीरे कुल्हड़ उतार लिया और फिर दोनों के कुल्हड़ भरे। फिर दोनों ने पी ली और तब कलेजियाँ खा लीं। और बाँके ने दूसरी बोतल उठाकर सामने रख ली ।

कजरी ने प्यारी को देखा तो मूँठ पर मुट्ठी कसी हुई दिखी ।

कजरी ने कहा : 'क्यों ?'

प्यारी ने कहा नहीं। गुस्से से होंठ फड़कने लगे।

कजरी ने कहा : 'धीरज धर !'

'कब तक।' प्यारी की आतुरता पुकार उठी।

कजरी ने कहा : 'प्यारी तू नहीं। पहले मेरा हाथ देख ।'

प्यारी शंकित हुई। कहा : 'क्या करेगी ?'

'खेलूंगी ।'

'किससे ?'

'तू कहे उसीसे।'

'अभी ठहर जा।' प्यारी ने घबराकर कहा ।

दूसरा कुल्हड़ पीकर रुस्तमखाँ ने कहा : 'बड़ी तेज़ लाया है बे !'

'उस्ताद ! मैंने कहा ही था।' बाँके हँसा। वह अब झूमने लगा था। उसने दूसरी बोतल खोली ।

'नहीं, बस अब नहीं।' रुस्तमखाँ ने कहा ।

'अरे वा उस्ताद !' उसने कहा : 'तुम तो चिल्लू बांधकर पिया करते थे पहले।'

उसकी इस प्रशंसा के सामने रुस्तमखाँ भला क्या कह सकता था। कुछ लोग इसीमें कमाल समझते हैं कि इतनी शराब पीना भी ठाठ का या कोई बड़ा भारी काम है। अपने-अपने दायरे हैं, किसीके बड़े, किसीके कम ।

'फिर भी, फिर भी', रुस्तमखाँ ने कहा, पर बाँके ने कुल्हड़ भर दिया।

रुस्तमखाँ ने पिया तो बेहोश-सा वहीं लेट गया और बाँके ने कहा : 'अरे उस्ताद ! एक कुल्हड़ और लो।'

पर उस्ताद थे कहाँ। वे तो नशे में झूम गये थे। इस वक्त उन्हें पता ही नहीं था कि वे थे कहाँ ?

बाँके शराब के नशे में चूर था और उसने सिगरेट सुलगाकर धीरे से गुनगुनाया। कजरी बढ़ी।

प्यारी ने कहा : 'क्या करती है ?'

'तू ठहर।'

'मैं न जाने दूंगी।'

'अरी मान भी तो जा।'

'क्या करेगी।'

'इसका मन रखूँगी।'

'और फिर क्या होगा। बात छिपेगी कैसे ?'

'फिर की फिर देखी जायेगी।'

प्यारी लाचार हो गई।

बाँके ने गाया : 'हो गोरी तेरी बड़ी-बड़ी अँखियाँ·····'

तभी उसे लगा सामने का द्वार हल्के-से खुला। उसने देखा। वहाँ कोई औरत थी। वह औरत मुस्करा रही थी। बाँके नशे में था। उसे विश्वास नहीं हुआ। जल्दी में उसने बची हुई भी गले में उतार ली और फिर देखा। वह तो अब भी मुस्करा रही है ! कौन है ?

आँख मींडकर देखा। वही है। सिर झूम रहा था, पर अब वासना अन्धा करने लगी। शराब के नशे में कमाल होता है कि आदमी जहाँ पाँव धरना चाहता है, वहाँ नहीं धर पाता। पहले यह दिमाग़ उड़ाती है, फिर पाँव उखाड़ देती है। वह उठा तो डगमगाया।

स्त्री ने इशारा किया, इधर आओ।

वह बोला : 'अरे·····तु·····तु·····'

पर स्त्री ने बोलने से मना किया। इशारा किया कि चुपचाप आ। उसने होंठ पर उंगली रख ली। जैसे वह नहीं चाहती कि रुस्तमखाँ जान जाये।

शराब के नशे में बाँके समझा कि प्यारी है। प्यारी ही उसे बुला रही है। वह डगमगाता हुआ बढ़ा। कजरी ने द्वार धीरे से खोल दिया और उसे भीतर

करके फिर वैसे ही द्वार बन्द भी कर लिया ।

बाँके के कन्धे पर हाथ रखकर उसने धीरे-से पूछा : 'उसने देख तो नहीं लिया ?'

'नहीं ।'

'मुझे उससे डर लगता है ।'

'अरे वह साला मेरे रहते क्या कर सकता है', बाँके ने झटका लिया तो गिरते-गिरते बचा । डगमगाते पांवों से संभलकर खड़ा हुआ और उसने उँगली उठाकर पूछा : 'तू कौन है ?'

उसके मुँह से शराब की बदबू आ रही थी जिसको सूंघकर कजरी का मन उबकाई से भर-सा गया । वह बड़ी तेज़ बदबू थी । पर वह मुस्कराई । उसने सैना नचाकर, उससे तनिक दूर हटकर, बड़े नखरे के साथ घूँघट-सा खींचकर कहा : 'कजरी ।'

बाँके ने सूरज सुनार से लेकर एक बार 'भूतनाथ' पढ़ा था । उस समय उसे लगा वह किसी तिलिस्मी शय के सामने आ गया है । नशे में वह सब भूल गया था । उसने दो क़दम लड़खड़ाकर चलने के बाद अपने को सम्भाला और भर्राये स्वर से पूछा : 'कौन कजरी ?'

'हाय तुम मुझे नहीं जानते ?'

'नही ।' उसने उंगली हिलाते हुए कहा : 'बिल्कुल नहीं । तू कोई परी है ?'

'सुखराम की नई लुगाई हूँ ।' कजरी ने कहा ।

बाँके चौंक उठा । 'एं !' उसने कहा ।

'सच कहती हूँ मैं तो उसी दिन से तुम्हारी तलाश में थी जिस दिन से तुमने सुखराम को मारा था । देखना चाहती थी वह मरद कौन है ?'

'अरे वाह प्यारी ।' उसने विभोर होकर कहा : 'तू परी नहीं है, औरत है !'

'और क्या ?' कजरी ने कहा : 'सो आज देखा, और जैसा सोचा था वैसा ही पाया ।'

'सच ।' वह आगे बढ़ा ।

'भीतर चल । ऊपर । यहाँ तो यह देख लेगा ।'

'कौन देख लेगा ?'

'सिपाही ।'

'वो साला कुत्ता है । अभी अपनी लुगाई से डर रहा था ।'

'मेरा तुझ पर मन आ गया है।' कजरी ने कहा : 'मेरी बात नहीं मानेगा ?'

'अरे सौ बार मानूंगा, सौ बार।' अब की बार वह ज़रा ज्यादा झोंक ले गया। कजरी ने उसे पकड़ा वर्ना वह गिर गया होता।

'तू बड़ी अच्छी है,' बाँके ने कहा।

वह उसे ले चली। प्यारी को आश्चर्य्य हुआ। यह क्या हो रहा है ? बाँके नशे में भूल रहा था। बक रहा था और कजरी उसे अपने साथ ऊपर लिये जा रही थी। हालांकि उसे काफ़ी ताकत लगाकर उसे गिरने से रोकना पड़ता था। कजरी के मुख पर एक विचित्र मुस्कराहट थी, जैसे वह पूर्ण रूप से शान्त है। वह उसे ऐसे देख रही थी, जैसे वह एक निरीह कीड़ा था। बाँके को यह सब अज्ञात था।

प्यारी समझी नहीं। परन्तु उसकी प्रज्ज्वलित प्रतिहिंसा उससे कहती थी कि देख। आगे क्या होता है देख। वह यह तो जानती थी कि कजरी उससे बुरी तरह पेश आयेगी, पर क्या करेगी, वह यह नहीं सोच पाती थी।

कजरी जब उसे पास ले आई तो प्यारी को इशारा किया, प्यारी आड़ में हो गई। कजरी उसे कोठे में ले गई और उस समय उसके मुंह से हल्की-सी हँसी सुनाई दी। प्यारी की जिज्ञासा बढ़ गई। वह अपने को रोक नहीं सकी, यह असम्भव था। वह पीछे-पीछे गई।

कजरी ने कहा : 'तो आ गये ऊपर !'

'हाँ प्यारी !' और बाँके ने डगमगाकर उसका हाथ पकड़कर उसे अपनी ओर खींचने की चेष्टा की।

कजरी ने हँसकर हाथ छुड़ा लिया और कहा : 'बाँके मेरा हाथ पकड़ा है, अब छोड़ तो न देगा ?'

'कभी, नई (नहीं), कभी, नई,' बाँके ने कहा।

'अच्छा ! तो सुखराम का कतल करना होगा।' कजरी ने मुस्कराकर कहा।

'मैं कर दूंगा प्यारी, आज रात को ही कर दूंगा।'

'वह तो बड़ा ताकतवर है, जानता है न ?'

बाँके ने फ़ोश गाली दी। कजरी हँस दी। कहा : 'तू लेट जा।'

और सहारा दिया। बाँके खाट पर लेट गया। उसने कहा : 'यहाँ आ मेरी बात सुन।'

'सुन रही हूँ। एक बात पूछूँ ?'

'दो बात पूछ।' बाँके ने कहा। पर नशा उसकी आँखों को झपकाये दे रहा था।

'तू सुखराम का कतल करेगा कैसे ?' कजरी ने पूछा।

'ओ प्यारी ! मैं उसे छुरियों से गोद-गोद के मारूँगा।'

हठात् कजरी ने फुर्ती से तकिया उसके मुँह पर रखा और ज़ोर से दबाया। प्यारी ने देखा, बाँके छटपटाया। उसने शायद हाथ भी चलाये। पर वह शिथिल था। तब कजरी के हाथ में कटार चमकी और उसने बाँके को बार-बार छुरी से गोद-गोद के मारा और तीन बार मूंठ तक उसके दिल में उसने छुरी घुसेड़ दी और फिर पेट में दो भुक-भुक की और जब बाँके बेजान-सा दिखाई दिया तो उठ खड़ी हुई और उसने घृणा से उसके मुँह पर थूका और ऐसी ठंडी गरगलाती हँसी हँस उठी कि अगर वहाँ कोई और होता तो थर्रा उठता। पर प्यारी पास चली गई और उसने तकिया हटाकर बाँके का मुँह बिल्कुल खोल दिया। देखा और कजरी की ओर देखकर धीरे से मुस्कराई।

'मर गया।' ऐसे कहा जैसे कोई कुत्ता मर गया हो और फिर मुँह पर तकिया पटक दिया। उसका मुख मृत्यु की यंत्रणा से विकराल हो गया था। वह पाप का पुंजीभूत स्वरूप इस समय मरा पड़ा था। उसका वह दंभ, वह जघन्यता, वह बर्बरता, वह क्रूरता, सब इस समय मिट्टी का ढेर बनकर पड़े थे। रावण के मरने पर लोगों ने यह तो भी शोक किया था कि हा ! ऐसा महान् विद्वान् यदि ठीक राह पर चलता तो क्या न कर देता ! परन्तु बाँके नीच था, उसके लिये ऐसा कहने वाला भी कोई नहीं था।

कुछ क्षण तक आवेश रहा। फिर वह चला गया। कजरी मुस्करा रही थी।

'अरी कटार पोंछ ले।' प्यारी ने कहा।

कजरी ने चादर से कटार पोंछ ली और साफ़ हो गई तो उसे चूम लिया और फिर म्यान में रख ली और कपड़ों में छिपा ली। कहा : 'जेठी तू न देती तो मैं क्या करती ?'

प्यारी संभली। कहा : 'तूने तो चिल्लाने भी न दिया इसे ?'

'इसने भी तो धूपो का मुँह बन्द कर दिया था !'

प्यारी ने प्रशंसात्मक रूप में सिर हिलाया।

कजरी ने उपेक्षा से कहा : 'मौका नहीं था। वर्ना मैं इसे ऐसे मारना नहीं चाहती। यह तो काट-काट के नमक भर-भरके गला देने लायक था। मुझे तो संतोस न हुआ।'

'हाय राम !' प्यारी ने कहा।

कजरी ने कहा : 'डरती है।'

'नहीं।' प्यारी ने कहा।

'फिर तेरा मुंह फक क्यों है ?'

'सोचती हूँ लाश कैसे ठिकाने लगेगी ?' प्यारी ने कहा, जैसे बाँके के मरने के बारे में उन दोनों को कोई बात ही नहीं करनी थी,, वह जैसे कोई बात ही नहीं थी। मर गया, मर गया। उसके बारे में क्या सोच। अब तो अपनी फिकर थी।

'तू मेरी जेठी है।' कजरी ने कहा : 'तू नहीं डर सकती, यह मैं जानती हूँ। तू मेरी सौत है, भला तू डर जायेगी, तो फिर दुनिया में हिम्मत किसमें रहेगी।'

प्यारी ने मुग्ध दृष्टि से देखा जैसे वहाँ कोई विभीषिका नहीं थी। कजरी ने ही कहा : 'तैंने पापी के घर रहकर पाप किया है जेठी, वह पाप तैंने अपने आप धो दिया था।'

'कैसे ?' प्यारी ने कहा।

कजरी अपनी आँखें फाड़कर धीरे से हँस दी। वह हास्य सचमुच डरावना था। प्यारी ने कहा : 'कैसे कजरी। मुझे बता।'

'जो तैंने इससे बदला लिया था। वह तो भाग की बात है जो यह तब बच गया। कर्मान ! धूपो की मरजाद बिगाड़कर आया था, मुझे-तुझे बदनीयती से देखता था और कहता था सुखराम को छुरियों से गोद-गोद के मारूँगा। देखा जेठी ! बाँके अब कहाँ है !'

'मैं तेरे चरन छूती हूँ कजरी। तू सचमुच सुखराम के जोग है, मैं कहाँ ?'

'सो क्यों ?' कजरी ने कहा।

'तू उमर में छोटी है पर मन से बड़ी है। तेरे अन्दर कितना बड़ा दिल है।' उसने पांव पकड़ लिये।

'नहीं प्यारी उठ।' कजरी ने कहा, 'तू मेरी जेठी है, और तू ही रहेगी। मैं क्या बिधना भी इसे नहीं मिटा सकता। मैं हत्यारी हूँ, और तू तो सीधी है अभी !'

'मैं तो हत्या से बच ही गई थी।' प्यारी ने खेद से कहा। कजरी मुस्करा दी और उसने खून से प्यारी के माथे में लकीर खींचकर कहा : 'तू मेरे बलमा की हो गई। तू अधूरे किले के मालिक की पहली बहू है, जो नटिनी नहीं करती सो तू कर, यह मैंने रानी के टीका किया है।' और उसे देखती रह गई। प्यारी का मुख आश्चर्य्य से फट गया।

दोनों पागल-सी थी। वह पागलपन हत्या का नहीं था। वह जीवन के उस स्नेह के प्रति था, जो आज उन दोनों में एक ध्येय, एक लक्ष्य होकर जाग उठा था। वे दोनों आज एक दूसरे के पास आ गई थीं।

'कजरी, मुझे तूने उबार लिया।'

'सो कहाँ !' कजरी ने कहा : 'अभी तो वह बाकी है। उसे छोड़कर भाग चलें ?'

दोनों ने एक दूसरी की ओर रहस्यमय दृष्टि से देखा और एक झटके में अब वे एक दूसरे के आलिंगन में बँधी थी। वह कितना विभोर उन्माद था, जिसे देखकर ही उन दोनों के आत्मविश्वास का परिचय मिलता था। भयानक परन्तु फिर भी पूर्ण, पूर्ण फिर भी क्रमशः।

'कजरी, पाप धुल गया।'

'पर पूरा नहीं।' कजरी ने सिर हिलाकर कहा।

'तो फिर ?'

'जो मैं कहती हूँ वह कर।'

'क्या ?' प्यारी ने पूछा।

'उसे और मिटा दें।'

'फिर ? लोग हमें न ढूंढेंगे ?'

'दोनों शराब पिये हैं। दोनों ने एक दूसरे का खून कर दिया, बस दुनिया यही समझेगी।' कजरी ने राय दी।

'और हम दोनों को ढूंढेगी ?' प्यारी ने प्रश्न किया।

'किसे खबर है मैं यहाँ हूँ।' कजरी ने पूछा।

'पर मेरी तो खबर है।'

'अरे नटिनी का क्या ? भाग गई ।'

'कहाँ भागेगी तू ।'

'डेरे चलेंगे ।'

'वहाँ पकड़ जायेंगे ।'

'तो परदेस चलेंगे । हम क्या जमीन से बँधे हैं ।'

'सो तो है', प्यारी ने कहा ।

'एक काम कर ।' कजरी ने उत्तर दिया और धीरे-धीरे उससे कुछ कहा । प्यारी हँस दी । कहा : 'यह ठीक है ।'

कजरी ओट में बैठ गई ।

प्यारी ने अपने कपड़े फाड़े, फिर बाल बिखरा लिये जैसे वह छीना-झपटी से उठी है ।

पूछा : 'ठीक है ?'

'शाबाश ।' कजरी ने कहा ।

प्यारी नीचे गई । रुस्तमखाँ बेहोश पड़ा था । उसको दीन-दुनिया की कुछ भी फिकर नहीं थी । प्यारी खड़ी देखती रही । फिर पास गई और हिलाया ।

वह नहीं जागा तब उसने ज़ोर से हिलाकर कहा : 'अरे सुनता है !'

रुस्तमखाँ ने कहा—'ऐं ऽ ऽ ऽ ऽ' और फिर करवट बदल ली ।

प्यारी के सामने समस्या हो गई । उसने उसके मुँह पर शराब की बोतल कुछ उँडेल दी । और उससे एक नयी भभक भर गई । प्यारी अपने को रोक न सकी । बोतल मुँह की तरफ उठाई ही थी कि सामने से आवाज़ आई—उँहु !

प्यारी लज्जित हो गई । कजरी देख रही थी । उसने बोतल की बाकी शराब भी उसके मुँह पर उँडेल दी और झकझोरकर कहा : 'उठ, गधे उठ ।'

शराब के नशे में ही झूमता हुआ रुस्तमखाँ बैठ गया । उसने कहा : 'क्या है ? तू कौन है ?'

'मैं हूँ प्यारी ।' उसने ज़ोर से कहा ।

'क्या है ?' वह झूमते हुए बोला ।

'अरे कितनी पी गया है तू ।' प्यारी चिल्लाई ।

कजरी ऊपर गई ।

'अरे क्यों चिल्लाती है तू । तू मेरी कौन होती है ?'

प्यारी ने कहा : 'मैं तेरी कोई नहीं, पर तू तो मेरा ही है ?'

रुस्तमखाँ को दूर से आते इन शब्दों ने फिर सुला दिया।

फिर उसने रुस्तमखाँ को जगाया।

वह नहीं बोला। प्यारी हताश हो गई। समझ में नहीं आया क्या करे? कजरी देर होते देख फिर नीचे आई। इशारे से पूछा। इसने कहा इशारे से—जागता नहीं। उसने इशारा किया—खूब हिला दे। प्यारी ने इशारा किया—हिला-हिला के हार गई, और सिर पर ऐसे हाथ रखा जैसे मर गया। कमबख्त उठता ही नहीं। कजरी चक्कर में पड़ी। पास बुलाया।

'क्या है री,' कजरी ने कहा। 'तुझसे जगाया भी नहीं गया।'

'ढोर है पूरा।' प्यारी ने कहा। 'ठोकर दूँ?'

'अरे नहीं।' कजरी ने कहा। फिर कुछ धीरे से कहा। प्यारी प्रसन्न हुई। वह आ गई और उसके पास बैठ गई। उसने धीरे से एक गीत की कड़ी छेड़ी और पतली आवाज़ का वह नटों वाला गीत कोठे में गूँजने लगा। रुस्तमखाँ अब भी बेहोश था, पर बहुत कुछ नशा उतर चुका था। कुछ ही देर में उसमें जागरण के आने वाले चिह्न दिखाई देने लगे। वह अब सिर दर्द से भर गया था।

प्यारी बफर गई।

चिल्लाई: 'सुनते हो!'

'कौन है?' वह चौंका।

प्यारी रोने लगी। उसका रोदन सुनकर रुस्तमखाँ सिर पकड़कर बैठ गया।

'मैं नहीं सह सकती', प्यारी चिल्लाई—'मैं नहीं सह सकती।'

'ऐ!' रुस्तमखाँ ने कहा और फिर दोनों हाथों से सिर पकड़ लिया, और आंखें एकदम मींच ली जैसे वह रोशनी नहीं सह सकता था।

प्यारी रोती रही।

'क्या हुआ?' रुस्तमखाँ ने कहा।

'मुझे मार डालो।' उसने कहा।

'आप ही जो मर जा।'

'मैं तो मर जाती, पर तुम्हें तो मुसीबत में नहीं छोड़ के जा सकती?' प्यारी ने कहा। रुस्तमखाँ ने घबराकर देखा और उसका हाथ पकड़ लिया। वह डर गया था।

'ऊपर बाँके ने कजरी को पकड़ लिया है।' प्यारी ने कहा।

'किसने !' वह पुकारा।

'बाँके ने !'

रुस्तमखाँ का चेहरा फक पड़ गया।

बोला : 'क्या कहती है ?'

'जल्दी चलो ऊपर।' प्यारी ने हड़बड़ाते हुए कहा।

रुस्तमखां सहारा लेकर उठा।

वह बुड़बुड़ाया : 'मेरे रहते···'

'तुम तो नशे में पड़े हो···'

'मैं नशे में था ?'

'उसने कहा ही है कि उसने इसीलिये तुम्हें बड़ी तेज़ पिला दी है, आप नहीं पी उसने···'

'कहाँ है वह ?'

'ऊपर !'

'चल।'

'पर चलकर भी क्या होगा ?'

'होना था सो तो हो गया।'

'क्या हो गया ?'

'तू नही जानता, सुखराम खूनी है। वह तुझे और बाँके को अब मार के छोड़ेगा।'

रुस्तमखाँ थर्रा गया। बोला : 'क्यों ?'

'वह बदला न लेगा ?' प्यारी ने कांपकर कहा—'मुझे डर लगता है, मैं तो यहाँ नहीं रहूँगी···मैं भाग जाऊँगी···

वह बाहर भागी···

रुस्तमखाँ ने कहा : 'ठहर, ठहर प्यारी ! मै बांके का खून कर दूंगा···' पर वह नशे में लड़खड़ा गया।

प्यारी लौटी।

'ऊपर चल।' रुस्तमखाँ ने कहा।

'मुझे डर लगता है। तू आगे चल। उसने मुझे बहुत मारा है। कहता था, सुसरी तेरे सिपाही को भी बराबर कर दूँगा···।'

'अरे उसकी ये मजाल !' उसने फौलादी गालियों की बौछार की और आगे बढ़ा। प्यारी पीछे चली।

उस समय बाहर से कोलाहल-सा सुनाई दिया जिसे सुनकर प्यारी चौंक उठी। यह क्या है ? उसको सुनकर कजरी भी चौंक उठी। उससे रहा नहीं गया। वह खिड़की से देखने लगी। लगता था भीड़ बढ़ी आ रही है। पर केवल कोलाहल के और कुछ दिखाई नहीं देता था कि यह सब क्या है ? कभी-कभी रुस्तमखाँ का नाम सुनाई दे जाता था।

उसके मस्तिष्क में तेज़ी से विचार आने लगे। क्या यह सब चमार हैं ? क्या वे धूपो का बदला लेने आये हैं। पर अब वे किससे बदला लेंगे ? बाँके तो मरा पड़ा है। दो क्या अब बात खुल जायेगी ? प्यारी और वह दो ही तो हैं ! और फिर सुखराम भी पास नही है। क्या होगा अब ?

वह यह भूल ही गई कि रुस्तमखाँ को लेकर प्यारी ऊपर आ रही है।

'कहाँ है वह।' रुस्तमखाँ ने ऊपर खड़ा होकर कहा।

कजरी भागी। उस भीड़ को देख वह घबरा गई, उसको यह ध्यान नहीं रहा था कि कौन है। वह द्वार पर पहुँची तो रुस्तमखाँ से टकराई। पर रुस्तमखाँ उसे संभाल गया। उसने कहा : 'कौन है ?'

'यह कजरी है।' उसने फिर कहा।

'छोड़ दे मुझे।' कजरी ने फुत्कार किया।

'भागती कहाँ है ?' रुस्तमखाँ ने उसे पकड़ लिया। और कहा : 'बाँके कहाँ है ?'

'भाग गया शायद।' प्यारी ने कहा।

परन्तु कजरी उस समय भूल गई। उसके मुँह से निकला—'वह, पड़ा है।' और रुस्तमखाँ पुलिस का पुराना घाघ, फ़ौरन समझ गया कि वह जरूर लाश होगी।

प्यारी आगे बढ़ी।

कजरी ज़ोर लगा रही थी। परन्तु रुस्तमखाँ ने उसे दृढ़ता से पकड़ लिया था।

'कहाँ जा सकती है तू मेरे हाथ से कुतिया ! तूने उसका ख़ून किया है ?' उसका नशा उतर-सा गया था।

'छोड़ दे।' कजरी ने कहा।

'फिर ख़ून किस पर चढ़ेगा ?'

'ख़ून मैंने नहीं किया। वह अपने आप मर गया है।' कजरी ने कहा।

'अरी जा हरामज़ादी। फाँसी लगवाऊंगा तुझे।'

'छोड़ दे मुझे !' कजरी चिल्लाई।

बाहर हो-हल्ला अधिक सुनाई दिया। आवाज़ें आने लगीं---'रुस्तमखाँ, रुस्तमखाँ ! कहाँ है। बाहर निकल !'

उन आवाजों को सुनकर वह चौंक गया। उसका ध्यान बँटा हुआ देखकर कजरी ने उसका हाथ काट खाया और इतनी ज़ोर से दांत गचकाए कि वह उसे सह न सका। पंजा ढीला पड़ गया। कजरी छूटी परन्तु उसने दूसरे हाथ से पकड़ ली और काटे हुए हाथ से उसने उसके मुँह पर ज़ोर-ज़ोर से आघात किये।

प्यारी बढ़ी।

चिल्लाई : 'छोड़ दे उसे।'

'अरी चल कुतिया।'

प्यारी गुस्से से बढ़ी। वह झपटी, पर सिपाही तैयार था। प्यारी झुकी, रुस्तमखाँ ने उसके लात दी। और वह हँसा।

बाहर अब शोर और बढ़ गया था। ऐसा लगता था मकान को सामने से घेर लिया गया है और सब बुरी तरह चिल्ला रहे हैं। कजरी उस कोलाहल से डरकर घात करने की चिंता में थी।

प्यारी के पेट में चोट पड़ी। बैठ गई। उसकी आँखों के आगे कुछ पतंगे-से नाच गये। पर यह अवस्था कुछ ही देर रह सकी।

कजरी और रुस्तमखाँ अब लड़ रहे थे। वह पुरुष था, अतः बलिष्ठ था, परन्तु स्त्री में इस समय जीवन-रक्षा का प्रश्न था। वह अपनी पूरी ताकत लगाकर लड़ रही थी। उसने उसे धक्का दिया। रुस्तमखाँ दीवार से टकराया। कजरी छूट गई और झटके से अलग हो गई।

इससे पहले कि वह कटार निकाल सके रुस्तमखाँ झपटा।

प्यारी उठी। दर्द तो था, पर अब वह चल सकती थी।

रुस्तमखाँ ने कजरी की ओर देखकर हाथ फैलाये जैसे बाज़ अब चिड़िया को दबा लेना चाहता था। कजरी के हाथ में गिलास आया। उसने रुस्तमखाँ

के सिर का निशाना लगाकर मारा, पर वह चौकन्ना था, बच गया, गिलास दीवार से जाकर टकराया।

बाहर अब गरज-सी उठ रही थी—'रुस्तमखाँ, निकल आ ! कायर, तूने बाँके को कहाँ छिपा दिया है···'

तब प्यारी ने देखा कि रुस्तमखाँ ने कजरी को पकड़ लिया और कजरी उसके हाथों में छटपटाने लगी। वह अवश हो गई थी। उस समय प्यारी वेग से झपटी और उसने अपनी कटार रुस्तमखाँ के पेट में मूँठ तक घुसेड़ दी।

रुस्तमखाँ की पकड़ ढीली हो गई। कजरी छूट गई।

प्यारी ने कटार निकाली और फिर वार किया। रुस्तमखाँ चिल्लाया, प्यारी ने फिर कटार निकालकर गहरी चोट की, वह गिर गया। पर तब बाहर इतना कोलाहल हो रहा था कि किसीने सुना नहीं। रुस्तमखाँ मर गया था।

प्यारी ने घृणा से ठोकर दी और बड़बड़ाई : 'कमीना !'

वह जैसे कहना तो बहुत कुछ चाहती थी, पर उसकी विक्षुब्ध घृणा ने उसे कहने नहीं दिया। जैसे बहुत बड़े बाँध में छोटा-सा सूराख हो जाये, जिससे पानी रिसा करे, रिसा करे, लेकिन एक दिन ऐसा आये कि पानी बांध को उखाड़ कर फेंक दे, और फिर अरर्रर्र करके उद्दाम वेग से प्रचण्ड धारा बनकर डुबाने वाला पानी बह उठे, उस समय बाँध कहीं जलधारा में डूब जाये, वही प्यारी का हुआ। रुस्तमखाँ की लाश को देखकर उसे अपनी घृणा बुझती हुई नहीं दिखाई दी। वह जैसे उसके जीवन का अभिशाप था। वही था जिसने उसे अपमानित किया था। अगर वह उसकी हत्या न करती तो कजरी को मार डालता। कजरी को मार डालता और मेरे सामने ? वह इस बात की कल्पना भी नहीं कर सकती थी। एक बार को कहीं सचमुच ऐसा हो जाता तो ? सुखराम समझता कि प्यारी ने ही कजरी को सौतिया डाह से मरवा दिया है। और कजरी की मौत से कजरी को अगर नजात मिलती तो प्यारी उसी वक्त जिन्दा ही मर गई होती। पर ऐसा नहीं हुआ। भगवान ! ऐसा नहीं हुआ। प्यारी इस सुख को सह नहीं सकी।

और प्यारी ठठाकर हँसी। उसका वह कठोर और उन्मत्त हास्य बाहर के कोलाहल में डूब गया। उसका वह उन्माद उस समय कजरी ने देखा तो स्वयं चौंकी।

परन्तु प्यारी वह रक्त से भीगी कटार लिये खड़ी थी। उसके मुख पर एक

निर्भयता थी। वह निःसंशय-सी होकर देख रही थी। और तब वह बढ़ी।

कजरी के कंधे पर उसने स्नेह से हाथ रखकर दबाया और उसकी आँखों में आँखें डालकर मुस्कराई।

उसने कहा : 'छोटी !'

कजरी ने उस आनन्द को देखा तो हिल गई। वह अद्‌भुत था।

बाहर लोग चिल्ला रहे थे—'कायर ! निकल !!'

'क्या है ?' कजरी ने कहा।

प्यारी जैसे उस कोलाहल को भूल गई थी। उसने स्नेह से उससे कहा : 'बैठ जा रानी तनक।'

कजरी ने कहा : 'बैठ नहीं, देख बाहर···'

'अरी बैठ भी जा।' प्यारी ने कहा : 'फिर की फिर देखी जायेगी', और उसने जबर्दस्ती उसे बिठा लिया। कहती रही : 'मरना तो एक दिन है ही, कल न सही आज सही, आज न सही, अब सही···' वह हँस दी। और उसके पांवों में रुस्तमखाँ का रक्त उसने हाथ से लगाया और कहा : 'देख ! मैंने तेरी टेक रख दी छोटी। आज मैंने तेरे महावर लगा दिया।'

कजरी की आँखें फट गई। वीभत्सा रोने लगी, परन्तु वे स्त्रियाँ अविचलित भरी-भरी आँखों से एक दूसरी को निर्निमेष होकर देखती रहीं !

दोनों हँसी। फिर दोनों ने प्यार से एक दूसरी को भेंटकर मुँह चूम लिये। दोनों खुशी से रो रही थीं। आज जैसे दोनों के दिल एक हो गये थे। लोहे की दीवारें गल गई थीं।

'कजरी।' स्नेह से प्यारी ने कहा और उसका मुख बार-बार स्नेह से चूम उठी, जैसे किसी बच्चे का मुख हो।

बाहर भयानक कोलाहल था।

कजरी ने कहा : 'उठ जेठी ! जल्दी कर !'

प्यारी उठी : 'क्या है ?'

'लोग आ गये हैं। अब वे इन्हें ढूंढेंगे।'

'अरे !' प्यारी के मुँह से निकला।

'एक काम कर। उठ। चल हाथ बँटा मेरे साथ।'

उन्होंने बाँके को खाट के ऊपर टेढ़ा करके डाल दिया। एक कटार उसके

सीने में झोंक दी और उसके पास ही रुस्तमखाँ को औंधा करके पटक दिया और एक कटार उसकी पसली में घुसेड दी।

'ठीक है' प्यारी ने कहा। दौड़कर गई। शराब की बोतलें उनके पास डाल दीं।

कजरी ने कहा : 'प्यारी भाग।'

खिड़की से देखा। भीड़ लहरा रही थी।

'कहाँ से भागेगी ?' प्यारी ने घबराकर कहा।

'हाय अब मरे !

बाहर चमारों का विक्षोभ फूटा पड़ता था। भीतर मकान में घुसते हुए डर लगता था, आखिर सिपाही था, और बाहर कोई निकल नहीं रहा था। दरवाज़ा खुला हुआ था। और भीतर बिल्कुल सन्नाटा दिखाई दे रहा था। कभी-कभी खिड़की पर कोई छाया-सी आती थी जो एक हल्की रोशनी में दिखाई देती थी। नीचे के कोठे के दरवाजे की संधों से भी आलोक की लकीर निकल रही थी। पर कोई दिखाई नहीं देता था। क्या बात है जो कोई निकलता नहीं। एक लड़का भेजकर तलाश कर लिया गया था कि रुस्तमखाँ थाने नहीं गया है। तब वह कहाँ जा सकता था ? यदि वह डरकर घर में छिपा होता तो घर का दरवाज़ा खुला क्यों होता ? भीतर घुसकर देखते हुए यह डर लगता था, कि कहीं किसी आड़ में से बैठा हुआ रुस्तमखाँ बंदूक न चला दे। और भीड़ कितनी भी बड़ी क्यों न हो, अपनी-अपनी जान की फिकर हर आदमी को लगी रहती है। दूर से कहना आसान है कि अगर हज़ार की भीड़ हो और उस पर दस आदमी गोली चला रहे हों, तो भीड़ उन पर बढ़ती चली जाय और उन्हें घेर ले, समाप्त कर दे। ऐसा भी होता है, मगर तब जब भीड़ को अपनी प्राणरक्षा इसके अतिरिक्त कहीं दिखाई नहीं देती। उस समय मनुष्य अपनी जान पर खेलकर अपने अस्तित्व की रक्षा करने की चेष्टा करता है। अब प्रश्न यह था कि बढ़े कौन ?

जो खास लोग थे उनकी इच्छा रक्तपात की नहीं थी। वे सिर्फ़ बाँके को अच्छी तरह खोटना चाहते थे, ऐसे कि उसकी टाँगें तोड़कर उसे घूरे पर फेंक दिया जाये। और इसी प्रकार जब कोलाहल बढ़ता ही गया तब खबर फैलने लगी। अनेक इधर-उधर के लोग आकर इकट्ठे होने लगे। उनकी प्रश्नोत्तरी से कोलाहल ऐसे बढ़ गया जैसे बरसाती पानी एकत्र होकर प्रचण्ड हो उठता है।

सुखराम ने तभी देखा कि भीतर एक छाया खिड़की पर है। वह भीतर जा सकता था, परन्तु भीड़ में वह सबके साथ रहना चाहता था। बात अब भी बाँके के विरुद्ध थी, रुस्तमखाँ के विरुद्ध तो नहीं थी। ठाकुरों के बारे में लोग जानते नहीं थे। केवल इतना ज्ञात था कि बाँके के साथी थे। अगर वह भीतर जाता है तो कुछ लोग ताना ज़रूर कसेंगे। वह समझ गया था कि कजरी और प्यारी भीतर डर रही होंगी; पर डरने के लिये उसे कोई आवश्यकता दिखाई नहीं दे रही थी। उनका कोई क्या बिगाड़ेगा? वह यह जानता था कि रुस्तमखाँ भीतर है परन्तु निकल नहीं रहा है।

अचानक उसकी निगाह एक आदमी पर पड़ी जो घर की बांई तरफ धीरे-धीरे खिसक रहा था, चौकन्ना-सा। सुखराम ने देखा और फिर आँखें हटा लीं। ऐसे जाने कितने इधर-उधर चल रहे थे, आ-जा रहे थे। भीड़ अपनी अविरल ध्वनियों से अब और भी घनी और डरावनी हो गई थी।

सुखराम की दृष्टि मुड़ी तो उसने देखा वह आदमी जो बांई तरफ़ पहुँच चुका था, इधर-उधर देख रहा था और कुछ टोह ले रहा था।

सुखराम ने टाला। पर जितनी ही कोशिश करता, उतनी ही जिज्ञासा बढ़ती। और फिर उसका भय साकार हो गया। वह व्यक्ति आड़ में हो गया। भीड़ गरजने लगी। और फिर एक हल्की-सी रोशनी हुई। सुखराम समझा नहीं। वह व्यक्ति निकला, धीरे-धीरे आया, पर उसके आने के बाद उसके पीछे हल्का उजाला-सा दिखाई दिया। और वहाँ कुछ क्षण में ही छप्पर सुलगता हुआ दिखाई दिया। आग लग गई थी। वह व्यक्ति भागा। सुखराम ने पहचान लिया।

वह निरोती के पीछे भागा। तो इस बामन ने दूसरों के झगड़े से फ़ायदा उठाकर अपना काम निकालने का कमीनापन किया है। इसे प्यारी ने रगड़वाया था। उसका बदला आज फूटकर निकला है। यह चाहता है चमारों पर आग लगाने का दोष आ जाये और यह बेदाग बच जाये। सजा दोनों को मिल जायेगी और निरोती बामन मूँछों पर तेल मलता रहेगा।

गांव में हल्ला मच उठा। आग को फ़ौरन हवा ने पकड़ लिया। वह आग हवा के हाथों में ऐसी छटपटाने लगी जैसे किसी परियों की कहानी के जोगी ने अदृश्य होकर किसी कमीनी, रूप बदलकर छलने वाली जादूगरनी को कसकर पकड़ लिया हो, और वह अब हर प्रयत्न करके हारती हुई छटपटा रही हो।

सारा गांव इकट्ठा हो गया। यह तो साफ़ लगता ही था कि चमार आज बग़ावत पर उतर आये थे और उन्होंने ही सिपाही के घर को फूंकने के लिये निडर होकर आग लगा दी थी। पर ऊँची जातों के लोगों को यह चीज़ भयानक लग रही थी। इसके क्या अर्थ हुए ? यह सब इकट्ठे होकर चाहे जिसके घर में आग लगा देंगे ? फिर सरकार किसलिये है ? और उनमें से कई लोगों ने पुलिस-थाने में भी सूचना पहुँचा दी। दरोगा जी अपनी शैया से ऐसे उठे जैसे कुम्भकर्ण जगा हो, जो अब जाने कितनी भेड़ों को समूचा ही खा जायेगा।

आग अब छप्पर पर सुलग रही थी। और हवा ने जो झाड़ू लगाई तो ऐसे फैल गई जैसे बर्तन में से दूध फैल जाता है। सारा छप्पर आग से ऐसे ढँक गया जैसे सोने का हो गया हो, जिसमें से लाल-लाल लपटें रक्त से भींगकर ऐसे भाग निकलीं जैसे रणभूमि में लोहू से भींगे हुए सिपाही भागने लगते हैं। वह आग हवा की चर्खी पर घूमी और जब अपने अंगों को फैलाकर लड़ते हुए सांड़ों की तरह थरथराने लगी तब उसने हवा को दस-बीस चोटें बढ़कर अधर में ऐसी घुमा-घुमाकर मारीं कि हवा सामने के छप्पर पर जा टिकी पर आवेश में ही लपटें सामने जा चढ़ीं। वह छप्पर भी धधक उठा। चैत की सूनी रात उस आग से हिलने लगी।

भीड़ ने देखा तो एक बार खुशी से चिल्लाई : 'जय भवानी ! तेरा परताप है कि पापी का घर जल उठा।' किसी बुड्ढे ने कहा : 'सती का गुस्सा है।'

परन्तु और लोगों की समझ में आया कि यह काम दैवी नहीं है। और इसका परिणाम बहुत भयानक होगा। अब वे अपनी ओर से कमज़ोर पड़ गये थे। परन्तु अब भागने का अर्थ था कि पाप हमने ही किया है।

सुखराम भाग रहा था।

वह चिल्लाया : 'मैंने तुझे देख लिया है कायर ! तू दूसरों पर दोस लगाकर छिपना चाहता है ? मैं सबसे कह दूँगा·····।'

परन्तु वह यह भूल गया कि उसका विश्वास करेगा कौन ? निरोती रुका नहीं। उसने मुँह ढाँक लिया था और न जाने किस गली में से होकर वह अदृश्य हो गया।

सुखराम ने घृणा से कहा : 'कायर !'

विक्षोभ उसे खाने लगा। पापी सामने आया और हाथ से निकल गया। वह क्षीणकाय बामन जाने कैसे इतना तेज़ दौड़ गया ! सच तो यह था कि उसकी

जान की बाज़ी थी। अगर वह नहीं भागता तो मारा जाता। अब तो निश्चय ही मुसीबत चमारों पर आयेगी। दुनिया कितनी कमीन है। यह सोचकर वह सिहर उठा। एक स्त्री के अपमान का बदला लेने को लोग आये थे, इसी बीच में यह निरोती आ गया था। जैसे अकाल से लड़ने को आदमी ने बांध बनाया हो और चूहे ने बिल बनाकर उस आप्लावित जल-राशि से आदमी को ही डुबा दिया हो।

वह कुछ देर किंकर्त्तव्यविमूढ़-सा खड़ा रह गया। उस घर में आग लग गई है, अब बढ़ गई होगी !

पर हठात् उसके मुख से एक चीत्कार निकल गया। उस घर में कजरी और प्यारी हैं। वे दोनों उस घर में घिरी हुई हैं। वे जल जायेंगी !

सुखराम भागा। अब वह एक ध्येय, एकचित्त हो गया था। उसे लगा सारा संसार जल रहा था और चारों ओर लपटें ही लपटें छा रही थीं। कजरी और प्यारी उनमें डरी हुई खड़ी थी। सुखराम का आवेश इतना भयानक था कि वह तीर हो गया।

जब वह वहाँ पहुँचा तो धूंआ घुमड़ने लगा था। आग अब कभी भालों की दीवार की तरह सीधी खड़ी हो जाती, और फिर हवा के विरुद्ध अपने हज़ारों हाथों में तलवारें लेकर दाँये-बाँये चलाती और कभी-कभी जब हवा कहीं हटने का उपक्रम करती तो तीरों की बौछार की तरह उस जगह टूटती और फिर वहाँ सिंह की भांति शिकार को फाड़कर उसके लाल-लाल रक्त को बहा देती। वह ज्वालाओं का समूह जब बढ़ा तब भैंस ने प्राणपण से चेष्टा करके खूंटा समेत रस्सी उखाड़ ली और भागी। वह सामने की दीवार से टकराई और फिर द्वार की ओर भागी और भीड़ पर निकल आई। आगे वाले दो-चार व्यक्ति उससे टकराकर घायल हो गये। और भैंस भीड़ फाड़कर भागती हुई चली गई। घायल व्यक्तियों का चीत्कार शीघ्र ही नये कौतूहल में डूब गया।

धूपो के शव को चमारों ने कंधे पर उठा रखा था। खचेरा गंभीरता से देख रहा था। वृद्ध लोग श्रद्धा से पास खड़े थे। चमारिनें आ गई थीं। आधे हर्ष और आधे आतंक से वे उस भीषण अग्नि को देख रहे थे। रुस्तमखाँ के घर में अच्छाई यही थी कि उसके घर के दोनों ओर घर नहीं थे, ज़रा दूर पर बने थे। और रुस्तमखाँ की गैरहाज़िरी में किसीको आग बुझाने की ज़रूरत

नहीं महसूस हो रही थी। कौन अपने बाप का घर जल रहा था। उससे सब ही को घृणा थी।

कोई आग बुझा नहीं रहा था पर आग अब ज़िन्दगी को बुझा रही थी। और अब वह निर्घोष करती हुई नाचने लगी थी, जैसे चंडिका ने अपना भीषण पांव उठा दिया था। उसके कारण उजाला फैल गया था।

दरोगा जी ने जो देखा तो हाय के तोते उड़ गये। यह तो बगावत का-सा नज़ारा था। उन्होंने दीवान जी से पूछा : 'मामला क्या है ?'

दीवान जी ने कहा : 'हुज़ूर ! चमार सरकश हो गये हैं। फिसाद पर आमादा हैं। किसी चमारिन पर किसीने जिना बिल जब्र कर दिया बताते हैं।'

'तो इससे क्या हुआ,' दरोगा जी ने कहा : 'यह तो जुर्म है कि आग लगा दी।'

थाने के सिपाही आ गये थे। पर वे समझदार लोग थे। उनकी ज़िन्दगी में रोज़ ही ऐसे ख़तरे पड़ते थे। एक सिपाही सुना रहा था कि एक बार कलकत्ते में आग लगी थी तब दमकलें फ़ौरन आ गई थीं और देखते ही देखते आग पर काबू पा लिया गया था, पर गांव में वे आराम कहाँ। यहाँ वह कैसे आग बुझा सकते थे। सिपाहियों ने स्वीकार किया कि सरकार यहाँ चाहे तो दमकलें रख सकती है, मगर उसको गांवों की इतनी परवाह ही कहाँ ?

अब दरोगा जी दूर खड़े आग का मुआयना कर रहे थे। उन्होंने कहा : 'भीड़ भगा दो !'

धूंए के मारे जो अभी इन्तज़ार कर रहे थे, अब आगे बढ़े। सिपाही चिल्लाये : 'भाग जाओ ! भाग जाओ !'

परन्तु जिस आवाज़ को सुनकर धरती कांपती थी, आज उसका कोई असर नहीं पड़ा। सिपाही फिर चिल्लाये और उन्होंने आगे वालों को धक्का देना शुरू किया। चमार हटने लगे, परन्तु पीछे की भीड़ आगे दबाव डाल रही थी।

चमारों पर डंडे बरसना शुरू हो गया था। उस अचानक के आघात से वे चौंक उठे। कोलाहल बढ़ गया। उनकी समझ में आ गया कि दमन शुरू हो गया था। पर क्या वे डर जायेंगे ? नहीं। उनकी एक औरत की बेइज्ज़ती की गई और फिर उन पर यह हमला !

डंडों से आगे के लोगों के सिर फट गये। उनके माथों से रक्त बहने लगा। संघर्ष शुरू हो गया। सिपाही अधिक नहीं थे। गाँव के थानों पर अधिक रहते भी नहीं। वहाँ तो 'राज' से लोग वैसे ही डरते हैं। वे इसी आतंक में दबे रहते हैं कि इनके पीछे एक और बड़ी शक्ति है, जो कुचल देती है।

चमार क्रुद्ध थे। वे भी टूटे।

एक चमार ने एक सिपाही को धक्का दिया। धूपो की लाश लेकर दस आदमी मरघट भेज दिये गये, ताकि लाश पुलिस के हाथ न पड़े, कहीं भवानी की चीरा-फाड़ी करके अन्त में मिट्टी खराब न की जाये। और बाकी लोग वहाँ मुकाबिला करने को रुक गये।

भीड़ अर्राई। सिपाही लड़खड़ा गये। पीछे से नारा लगा—भवानी की जै! कोलाहल हो उठा।

खचेरा ने एक सिपाही को उठाकर फेंका। वह दरोगा पर गिरा। दरोगा जी चारों खाने चित्त हो गये और चिल्लाये : 'हाय मार डाला!'

इस दरोगा से लोगों को वैसी ही नफ़रत थी, जैसे और दरोगाओं से होती है। दरोगा अपने पेट की खातिर, दूसरों के स्वार्थ के लिये, रात-रात भर कुत्ते की तरह ईमान बेचकर, तब कहीं अपना और अपनी बीबी और अपने बच्चों का पेट पालता है, कम तनख्वाह की कमी को रिश्वतों से पूरी करता है, और दिन-रात सलाम करके जब अफ़सरों के सामने भेड़ बन चुकता है, तब जनता के सामने शेर बनकर निकलता है, वह बिचारा इतना दयनीय होकर इतना घृणित बनता है। पर लगान की जोर-जबर से वसूली करते वक्त जुल्मों की नयी-नयी ईजाद, रिश्वत लेने के नये-नये हथकंडे, लोगों से व्यक्तिगत बातों के बदले निकालने की नयी-नयी तरकीबें, यह सब हर दरोगा में अलग-अलग पैमाने की होती हैं, और जो अपने काम में जितना माहिर होता है, उतना ही लोग भी उससे नफ़रत करते हैं।

इस समय वह गिरा कि भीड़ चिल्लाई : 'घेर लो।'

दरोगा और सिपाही लोग घेर लिये गये। अब दरोगा जी ने पगड़ी उतार ली और चिल्लाने लगे : 'दुहाई है, मेरी पगड़ी तुम्हारे पांव पर है, बाल-बच्चे वाला हूँ, माफ़ कर दो, अब ऐसा कभी नहीं होगा·····'

उस वक्त दरोगा का एक मतलब था कि निकल भागो। वर्ना कहीं इन

लोगों ने मार डाला तो सरकार तो बनी रहेगी, लेकिन अपने राम नहीं रहेंगे । बाद में तो हम भी देख लेंगे·····

दरोगा चिल्लाया : 'दुहाई है····· '

सुखराम आग में धँस पड़ा । छप्पर अर्राया और आग के टुकड़े खंड-खंड होकर गिर गये । सुखराम उस ताप से झुलस गया । कोई चिल्लाया : 'अरे मर जायेगा·····'

पर वह झपटकर चौखट पर आ गया । धूंआ उसकी आँख में लगा । उसने आँखों पर हाथ रख लिये । कसैला धूंआ था । साँस से भीतर गया तो चक्कर-सा आ गया । सामने से रस्ता बन्द हो गया था । देही जैसे हार रही थी । वह आँख मींचकर आग के ऊपर से कूदा । भीतर आ गया । धुंए ने अन्धेरा कर दिया था । उसी समय चौखट भरभराकर गिर गई । और वह आग दग़-दग़ दग़-दग़ की आवाज़ पर अंकुश की मार से चिंघाड़ते हुए हाथी की तरह बढ़ रही थी, और उसकी सूंड में लोहे की भयानक आघात करने वाली जंज़ीर की तरह, अंगारों की, चमड़ी जलाने वाली पाँत बार-बार लुढ़कने लगती थी । वह अग्नि अब एक भयानक पीली गहराई बनकर हाहाकार करके गिरते पत्थरों को खाये जा रही थी ।

सुखराम क्षण भर को रुक गया । चौखट के भीतर से लपट भीतर पहुँचने लगी, जैसे हज़ारों मुँह वाला साँप जीभ लपलपाता हुआ भीतर बढ़ता आ रहा था, लहराता हुआ, थरथराता हुआ । सुखराम एक ओर हो गया, जब लपट ने दीवारों पर हाथ रखे तो टँगे कपड़े भक से जल उठे । कोठे रूपी छिपकली के मुँह में फँसा हुआ अन्धकार रूपी कीड़ा छटपटाने लगा था और अग्नि की वह ज्वाला बाहर की एक सांपिन की जिह्वा बनकर उसे कभी-कभी चाटती फिर जैसे वह कीड़ा अब दोनों ओर से युद्ध करने लगा ।

सुखराम ने आँखे खोलीं । वह ऊपर की ओर भागा । अभी ज़ीने तक आग नहीं पहुँच सकी थी । यहाँ उसे चैन-सा आया ।

जिस समय सुखराम पहुँचा कजरी और प्यारी खड़ी-खड़ी डर से काँप रही थीं ।

प्यारी रो रही थी । वह कह रही थी : 'कजरी ! तू मेरे संग बेकार आकर फँस गई ।'

कजरी ने कहा : 'मरना है तो संग मरेंगी जेठी। पर वह न जाने कहाँ होगा ?'

'यह हूँ तो।' सुखराम ने कहा।

कजरी और प्यारी उससे चिपट गईं। उनके मुँह से हर्ष का चीत्कार निकला। वे दोनों हँस उठीं।

कजरी ने कहा : 'अब मैं नहीं डरती जेठी। भले ही हम मर जायें।'

प्यारी ने कहा : 'नहीं कजरी ! तुम दोनों भाग जाओ।'

समर्पण और रक्षा के दो भाव दोनों के भेद थे।

अब वे रोने लगीं। सुखराम समझा नहीं। जैसे चारों ओर की लगी हुई आग कुछ नहीं रही। उससे ऊपर भी एक सत्य था। वे आँसू उस अतीव आनन्द के थे, जो आज रुकना नहीं चाहते थे। वह एक अद्‌भुत स्फुरण था कि सुखराम आश्चर्य्य में क्षण भर के लिये उस मृत्यु के बढ़ते हुए पंजे को भूल गया, जिससे अंधकार अभी तक नीचे के कमरे में लड़ रहा था, और पल-पल हार रहा था।

'क्या हुआ ?' सुखराम ने पूछा।

कजरी ने कहा : 'आज हम संग मरेंगे।'

सुखराम समझा नहीं। पर उसने देखा वह डरती नहीं थी। उसने मृत्यु पर भी जैसे साहसिका की भांति प्रेम के बल पर विजय प्राप्त कर ली थी। वह उल्लास से बैठ गई और घुटनों तक उसने लहँगा उठा दिया और अपनी नंगी टांगें सामने फैलाकर अत्यन्त गर्व और आनन्द के साथ उसकी ओर देखा और मृत्युञ्जय स्वर से विभोर होकर कह उठी : 'देख बलमा जेठी ने मेरे महावर लगाया है, इसके खून से।'

'खून !!'

देखा रुस्तमखाँ मरा पड़ा था।

तभी प्यारी ठुमककर बढ़ आई और उसने सिर झुका दिया। 'इधर भी तो देख मेरे कमेरे' प्यारी ने कहा—'छोटी ने मेरे बाँके के लहू से टीका लगाया है।'

सुखराम चकित था। उसकी आग बुझ गई। उसके गुस्से का बदला ले लिया गया था। और वह भी दो अबलाओं ने लिया है ! वह क्या जानता था कि अबला भी कभी-कभी कितनी विकराल हो जाती है, जब उससे और आगे सहन नहीं होता।

देखा दोनों की लाशें पास-पास पड़ी थीं। कटारें घुसी थीं।

'मर गये !' सुखराम ने कहा।

और वह वाक्य सब कुछ कह गया, जैसे कोई विशाल इतिहास उसके दो ही शब्दों में समाप्त हो गया हो।

कजरी ने कहा : 'आग !!'

प्यारी पीछे हटी। सुखराम चौंका। उसने देखा वे घिरे हुए थे।

आग खिड़की पर सामने आ गई थी। पर वह सोच रहा था, जिस लिये यह सब कोलाहल था, उसका अन्त यहाँ पड़ा हुआ है। दोनों मरकर भी कितने घृणित लग रहे हैं। इसी आदमी का उसने इलाज किया था।

'आग !!' प्यारी चिल्लाई।

हठात् सुखराम जागा। वह बाहर का कोलाहल, अग्नि की हरहराहट, और प्यारी की पुकार !

सुखराम चिल्लाया : 'भागो !'

दोनों स्त्रियाँ असहाय-सी देखती रहीं। तब वह बढ़ा। पीछे का जंगला दिखाई दिया। उसमें से आदमी उतर सकता था। वह उसमें ठोकरें मारने लगा। प्यारी दौड़कर बगल के कोठे से एक हथौड़ा ले आई। सुखराम ने उसे तोड़ दिया। फिर ज़ोर लगाकर उसे उखाड़ दिया।

सुखराम ने कहा : 'धोती है ?'

'नहीं, चादर है।' प्यारी ने कहा।

'ले आ।'

तीन चादर ले आई। उन्होंने शीघ्रता से उन्हें बँटकर लम्बी रस्सी-सा बनाया और फिर सुखराम ने उस पर लालटेन बुझाकर जगह-जगह तेल छिड़क दिया। कसके एक पत्थर से बाँधकर बाहर लटका दी और कहा : 'कजरी उतर।'

कजरी सर्र से उतर गई।

'उतर गई !' सुखराम ने पुकारा।

'हाँ। आ जाओ।'

'प्यारी तू उतर।'

'नहीं पहले तू उतर।'

कजरी आज्ञा पर चली थी, परन्तु प्यारी नहीं मानी। वह आज्ञा अब भी

दे रही थी। सुखराम ने झल्लाकर कहा : 'मैं कहता हूँ तू उतर जा।'

प्यारी की आँखों में पानी छलक आया।

परन्तु सुखराम ने ध्यान नहीं दिया।

प्यारी को उतरना पड़ा। नीचे जाकर रो पड़ी।

'क्या बात है ?' कजरी ने पूछा।

'वह तो वहीं रह गया।'

'वह भी आ जायेगा।' कजरी ने कहा। 'वह कोई बच्चा है ?'

'अरी बेवकूफ है।'

'बेवकूफ़ न कहियो। सुन लेगा तो ऐसा मारेगा कि याद करेगी !'

तभी सुखराम उतर आया। तीनों ने चैन की सांस ली।

चलने लगे तो कजरी ने कहा : 'अरे इसे तो जला दो।'

नीचे से चादरों में आग लगा दी। लपट सांपिन-सी ऊपर चढ़ती चली गई।

तीनों एक घूरे की आड़ में आ गये।

'अब क्या होगा ?' प्यारी ने कहा।

'अब तो हम आजाद हैं।' कजरी ने कहा।

सुखराम ने कहा : 'अभी नहीं। अभी तो खतरा है।'

'फिर ?'

'अब यहाँ से चलना चाहिये।'

'पर जायेंगे कहा ?'

'मैं नहीं जानता।'

'अब तू न जानेगा तो काम कैसे चलेगा ?'

वह सोच में पड़ गया। उधर कोलाहल अब भी हो रहा था। यहाँ सन्नाटे में से वह स्वर बड़ा भयानक-सा लग रहा था। कजरी उसे अवाक्-सी देख रही थी।

प्यारी ने कहा : 'तू भुलस तो नहीं गया ऊपर आते में ?'

'नहीं।' सुखराम ने कहा।

'आज मैं जनमहारी, मैं तो समझी थी जल के दोनों यहीं मर जायेंगी।'

'सच जेठी', कजरी ने कहा : 'मैं तो डर गई थी।'

आग धधक उठी और फिर छत पर दिखाई देने लगी थी। जिस जंगले में

से यह आये थे अब उसमें से कभी-कभी झल्ल-सी निकलती थी और हवा पर लौट जाती थी। उस समय रात अपने आक्रोश से चिल्लाने लगी थी क्योंकि आग की बग़ावत अंधेरे पर जैसे धूँआधार गोलाबारी कर रही थी।

वे भाग चले। बांई ओर की झाड़ियां पार कीं। वहाँ तक तो कोई डर नहीं था। उसके बाद एक मंदिर का पिछवाड़ा था। उसके बाद वे लोग एक दगरे के पास पहुँचे। उसे पार करके असली मुसीबत आई। वहाँ माली रहते थे। सुखराम रुक गया। तब वे उस समय फिर बाँये हाथ को मुड़े और भागे। कुछ दूर चलने पर झील की हर-हर सुनाई देने लगी। वे अब खतरे के बाहर आ गये थे। जब वहाँ कोई नहीं दिखा तब वे आगे बढ़े। उस नीरव रास्ते पर भागते हुए गीदड़ मिल जाते थे। वे उन्हें डराते भगाते हुए अंत में फूलवाड़ी में पहुँचे।

घने वृक्षों की छाया में वे रुक गये।

'क्यों क्या हुआ ?' कजरी ने पूछा।

सुखराम गाँव की ओर देख रहा था।

'भागते चलो, अभी खतरा पार नहीं हुआ।'

सुखराम भविष्य की चिन्ता कर रहा था। सारा उत्तरदायित्व मूलतः उसी पर तो था। अब कहाँ जायें। जो कुछ हो गया है वह सब कितना भयानक था। और कितना सुख दे रहा था।

पर फिर भी चैन नहीं था। क्योंकि उसके पीछे एक आतंक की भावना निहित थी।

प्यारी ने कहा : 'चमारों पर जाने क्या बीतेगी ?'

'मेरे सामने डंडे बरसने लगे थे।'

'फिर ?'

दरोग़ा भाग गया था। उसके बाद मैं यहाँ आ गया, मुझे मालूम नहीं।'

अचानक बंदूकें चलने की आवाज़ आई।

प्यारी ने कहा : 'पीछे फिर पुलस आई हो।'

'गोली चल तो रही है।' कजरी ने कहा।

सुखराम काँप उठा। कहा : 'और आज बहुत-से बेकसूर आदमी मारे जायेंगे।'

उसकी बात सुनकर दोनों स्त्रियाँ थहर उठीं।

वे तीनों फुलवाड़ी से जंगल में घुस गये। चारों ओर भयानकता छा रही थी। सन्नाटा था। फुलवाड़ी के पेड़ों पर स्निग्धता थी। यहाँ के वे ऊबड़-खाबड़ रास्ते, और गुंजान पेड़ देखकर एक भय का-सा आभास होता था। झाड़ियाँ बड़ी सघन थीं। देखते ही भ्रम होता था कि इनके पीछे कोई न कोई खूनी जानवर ज़रूर छिपा होगा।

कजरी और प्यारी के हाथ नंगे थे। सुखराम के पास कटार अवश्य थी। उस समय सुखराम ने बल लगाकर दो हरी पर मज़बूत डालियां एक पेड़ में से काटीं, जो डंडों का काम दे सकती थीं और दोनों को दे दीं। वे फिर चलने लगे, परन्तु प्यारी बैठ गई। पेट पकड़कर।

'क्या हुआ ?' सुखराम ने आतुर स्वर में पूछा।

'उसने इसके पेट में लात दी थी।'

'बाँके ने ?'

'नहीं, रुस्तमखाँ ने।'

'पास चली गई होगी ?'

'नहीं, मुझे बचाने आई थी।'

सुखराम बैठ गया। कजरी ने कहा : 'बहुत दर्द होता है !'

'अभी तक तो न था,' प्यारी ने कहा . 'अब होने लग गया है।'

' आह !' उसके मुँह से निकला और वह क्षणभर के लिये वहीं लेट गई। कजरी ने उसका सिर उठाकर गोद में ले लिया।

पर सुखराम ने कहा : 'यहाँ तो जगह ठीक नहीं है प्यारी। हमें यहाँ से भाग चलना चाहिये।'

'चलो।' प्यारी दर्द में भी उठ बैठी।

कजरी ने कहा : 'पर तू चलेगी कैसे ?'

'जहाँ तक हो सकेगा चलूंगी, नहीं चल सकूँ तो वहीं छोड़ जाना।'

'क्या मतलब ?' कजरी ने कहा : 'देखा तूने !' उसने सुखराम से कहा—'क्या कहती है ?'

सुखराम ने कहा : 'मैं क्या जानूं भला।'

'तू इसे पीठ पै धर के ले चल न ?' कजरी ने कहा।

'तू ले चलेगा ?' प्यारी ने चौंककर कहा। उसे जैसे उसके बल में संशय था। कजरी ने ऐसे देखा जैसे प्यारी पर उसे दया आ रही हो। उसके विचार

में वह निरीह थी। इतने पास रहकर भी यह कुछ नहीं जानती। सचमुच यह दोनों कभी एक दूसरे के पास आये ही नहीं। यह सारा खिंचाव, यह सारी लगन तो बचपन की प्रीत है। हो ही जाती है। प्यारी अपने को सुखराम से अकलमंद समझती है। बड़ा भी समझती है। तभी वह उसे एक दिन छोड़कर चली गई थी। पर आदत तो अब भी वह ही पुरानी पड़ी हुई है।

सुखराम ने शर्माकर सिर झुका लिया। असल ताकतवर मर्द अमूमन अपने ऊपर घमंड नहीं करता। सच तो यह है कि वह अपनी ताक़त असल में पूरी तरह से जानता ही नहीं।

कजरी ने कहा : 'अरी ये तो मुझे पीठ पै धर के पहाड़ पै चढ़ गया था।'

उसके स्वर की उस प्रशंसा से प्यारी चौंक उठी। उसने अचानक ही पूछा : 'कब ?'

उस स्वर में एक कौतूहल था कि जाने कब का इतिहास है जो तुमने मुझे आज तक नहीं बताया है। और उसकी समझ में आया कि उसकी अनुपस्थिति में जाने क्या-क्या हुआ होगा।

'फिर बात करियो,' कजरी ने कहा : 'तू चली चल अब। कोई परमेसुरा इधर आ गया तो आफत हो जायेगी। यों पकड़े जायेंगे कि रात को जंगल में बैठे क्या चोरी करने की टोह ले रहे थे ? बस इत्ता-सा बहाना है और यह दो खून क्या हो गये हैं, काली पानी ही पहुँचेंगे तीनों।'

कजरी ने प्यारी की कमर पकड़ के झटके से उठा दिया और सुखराम ने उसे पीठ पर चढ़ा लिया। प्यारी ने गला पीछे से पकड़ लिया और निढाल होकर सिर एक ओर कंधे पर टिक गया। कजरी ने ही कहा : 'सौत न बनाये भगवान। मरैंगी, पर पहले कुढ़ लेगी।'

प्यारी मुस्करा दी।

'धूँ-धूँ !' की आवाज़ गूंज उठी।

'यह क्या है ?' प्यारी ने पूछा।

सुखराम गाँव की ओर देखने लगा।

कजरी ने कहा : 'वही है और क्या ? अभी खतम नहीं हुआ है शायद। क्यों ? दूर बंदूकें चलने की आवाज़ें आ रही हैं न ?'

'हाँ,' सुखराम ने कहा : 'चमार भागे न होंगे। उन्हें बहुत गुस्सा था।'

'पर अब तो धूपो ही न रही।'

सुखराम ने कहा : 'बड़ी सती थी वह !!' और एक लम्बी सांस ली। उस पुण्यस्मृति से तीनों क्षण भर के लिये चुप हो गये। वह कितनी प्रोज्ज्वल और पवित्र याद थी। वह अपने आप में उतनी ही पूर्ण थी, जितनी भक्ति होती है जिसमें समर्पण के अतिरिक्त कुछ नहीं होता।

आस्मान में अब आग की लपटें नहीं दिखाई देती थीं, पर एक उजाला खास गाँव वाले हिस्से की ओर दिखाई देता था। वहाँ जैसे कोई विराट भट्टी सुलग रही थी।

और वह जो गोलियाँ चल रही थीं, वे अत्याचार का वह भीषण प्रतीक थीं। लोहे की गोलियाँ इंसान की ज़िंदगी को खाये जा रही थीं। वह जीवन जिसे जन्म देने के लिये माता अनेक कष्ट उठाती है, और कठिनाई से पालती-पोसती है, वह इस तरह नष्ट किया जा रहा था कि जैसे वह सब व्यर्थ था। यदि उसी जीवन को सुधारा जाता तो इस पृथ्वी पर न जाने कितना ज्ञान होता ! परन्तु यह चिन्तन सुखराम का नहीं था। वह तो केवल एक संवेदना से आर्त्त था।

अधूरा किला अब काला-काला-सा खड़ा था। उसके ऊपरी भाग पर कभी-कभी उस आग की दूर से पड़ने वाली चमक खेल जाती थी। इसी धरती पर हुए असंख्य नाटकों में से एक गत युग का पर्दा बना हुआ वह ऐसे टँगा हुआ था, जैसे अब उसका इतना ही मूल्य था, कि उसके सामने से नवयुग के पात्र निकल जायें।

सुखराम ने प्यारी को पीठ पर बिठाकर भागना शुरू किया। कजरी साथ भागने लगी। वह थोड़ी दूर भागकर ही हाँफ गई।

बोली : 'बजमारा कैसे लिये उड़ा जा रहा है। मुझे उठाता था तो पग-पग पर कोसता जाता था।'

सुखराम हँस दिया।

प्यारी ने कहा : 'जलै मत कजरी ! मैं तेरे पांव धो-धो के पियूंगी।'

'मर न जाऊँगी मैं', कजरी ने कहा : 'तूनै मुझे ऐसी बेहया समझा है क्या ? मुझे सौगन्ध है जो मैं तेरे पांव दबाके न सुलाऊँ तुझे ? मैं तो तेरे पैताने सोऊँगी जेठी।'

'नहीं कजरी', प्यारी ने कहा : 'तू खेल-कूद। बाकी सब काम मैं करूँगी। तुझे रोटी भी न ठोकने दूँगी।'

'मेरा यह हक न छीन जेठी।' कजरी ने कहा : 'मरद की जात बड़ी मतलब की होती है। वह उसे नहीं चाहता जो चूल्हे के सामने नहीं गलती। ऐसी चालाक न बन।'

'मैं तो तेरे आराम की कहती हूँ कजरी।'

'आराम तो भला जेठी, पर पेड़ की जड़ धरती और लुगाई की जड़ चूल्हा। जो ऐसे नहीं चलती, तब तो बस मरद उसे मन बहलावे का खिलौना समझने लगता है। रोटी खिलाओ तो गुन मानता है और सिर झुकाता है। सानी करके धर दो, चुपचाप जुआ ढोता रहेगा।'

'अरी जा।' सुखराम ने कहा : 'तुझे मैंने असल में सिर चढ़ा लिया है बहुत।'

'सुनती है जेठी।' कजरी ने कहा : 'तेरे नाम की धौंस देकर मुझे दबा रहा है, और मौका पड़ेगा तो मेरे नाम की धौंस देकर तुझपै अहसान करेगा ये ! मैं कहती न थी, बड़ा चालाक है ?'

'मैं तो अब भगत हो जाऊँगा !' सुखराम ने हँसी की। 'सब छोड़ जाऊंगा। ऐसा मुझे घेर लिया है तुम दोनों ने !'

'सो न डरा', कजरी ने कहा : 'बगुला अगर भगत बनैगा तो भी बिलैया (बिल्ली) भगतिन नहीं छोडैगी।'

वे हँस दिये।

'तू बड़ी बातून है।' प्यारी ने कहा। 'तूने बातों से ही जीत रखा है सब।'

'फिर तू वही बात दुहराने लगी !' कजरी ने कहा : 'मैं इत्ता कम बोलती हूँ, तेरे अदब के मारे !'

प्यारी फिर हँसी। कहा : 'राम रे ! यह तो तब हाल है जब अदब से तू कम बोलती है। क्यों छोटी, कहीं अदब उठ गया तो तू कितना बोलेगी ?'

सुखराम रुक गया। कजरी रुककर ज़ोर-ज़ोर से हाँफने लगी थी। सांस इकट्ठी कर रही थी।

'बाप रे,' सुखराम ने कहा :'अभी एक-डेढ़ कोस का घेर है।'

'सीधे जाते तो कभी के पहुँच जाते।' कजरी ने कहा।

'पर कोई देख लेता तो ?' प्यारी ने कहा।

'पुलिस में सीधे बन्द।' सुखराम ने कहा : 'फिर वह हंटर पड़ते। उन्होंने

तो सोचा होगा कि हम सब मर गये, पर ठठरियाँ तो उन्हें दो ही मिलेंगी। शक न होगा ?'

'तो क्या हम डेरे नहीं रह सकते ?' कजरी ने पूछा। 'हम तो किसीसे कुछ नहीं कहते ?'

'अरी अब तू किसीसे कह या मत कह। खून तो हो ही गया।'

'नहीं, पुलस पकड़ेगी तो मैं कह दूंगी। मैं नहीं जानती।'

'अहा बड़ी भोली है तू ! फिर कहेगी न ? तब क्या होगा जानती है ?'

'नहीं तो।'

सुखराम ने कहा : 'फिर दरोगानी तुझे हलुआ-पूरी परोस देगी। तू खा लेना। फिर ? क्या होगा जानती है ?'

'ऐ मरने दे सबको। हम क्या बँधे हैं, यहाँ से भाग जो चलें।' कजरी ने कहा : 'जहाँ से मेरा बाप आया था, हम वहीं जो चले जायें। डाँग के पूरब में गुजराती नट हैं, उनके आगे पहलवान नट हैं, हम उनके आगे करनटों में जा छिपेंगे। करनटों की बस्ती तो ऐसी है कि वहाँ कोई डर ही नहीं। एक बार चलकर देख तो सही। वहाँ तो ऐसे लोग हैं तुझे अधूरे किले का मालक बनवाने को जान की बाजी लगा दें।'

'वहाँ कोई नही आयेगा ?' सुखराम ने पूछा।

'आयेगा कौन ? पहाड़ है, जंगल है, वहाँ पुलस वाले डर के मारे नहीं जाते। एक गया था तो मारा सुसरे को खूब। ऐसा पिटा ! ऐसा पिटा !! और फिर नटों का राजा हमें सरन देगा !' प्यारी ने कहा। 'वहां के गूजर हैं। चाहे जिसकी भैंस खोल लायें। राजा को रुपया देते हैं तो चौधरी पहाड़ के नीचे उतरता है, दरोगा-तहसीलदार सब भैया-भैया कहते हैं। दिन-दहाड़े गोली चलती है। वहाँ नहीं चलती किसीकी। राजा के लिये सब जान देते हैं, पर भीतरी मामलों में सब आजाद हैं।' और कजरी ने लम्बी सांस लेकर कहा : 'हाय मैं तो थक गई। जरा सुस्ता लें न ?'

'तो ठहरो' प्यारी ने कहा : 'मैं बताऊँ। कजरी, मैं चल लूंगी, तू इसकी पीठ पै आ जा।'

प्यारी ने बहुत ही ईमानदारी से कहा था। उसे लग रहा था कि कजरी सचमुच थक गई होगी।

'ऐसा हाथ दूंगा,' सुखराम ने कहा : 'सुसरियों ने पीस खाया। मैं तो

चक्की के पाटों में आ गया। तुम दोनों को बारी-बारी से लादूँ सो तुम्हारा गधा हूँ ?'

'अच्छा-अच्छा।' कजरी ने कहा : 'रहने दे। मुझपर तू अहसान न कर ! एक का ही गधा बना रह। वहाँ तक तो तुझे बुरा नहीं लगता न ? मैं तो वैसी ही भली।'

तीनों हँस दिये। परन्तु समस्या थी। सुखराम ने कहा : 'तुम दोनों यहीं रहो। मैं अपना बकस ले आता हूँ डेरे से।'

उसमें चित्र था ठकुरानी का।

'पर हम रहेंगी कहाँ ?' प्यारी ने कहा।

कजरी ने कहा : 'अच्छा तुम बैठो। मैं बकस ले आती हूँ डेरे से।'

'तू डरेगी तो नहीं ?' सुखराम ने कहा।

'भला क्यों न डरूँगी।' कजरी ने कहा—'तू ही तो एक नाहर रह गया है जगत में।'

कजरी चलने लगी। कहा : 'यहीं रहना। अभी आती हूँ।'

'अरी सुन,' सुखराम ने कहा : 'ये कटार ले जा।'

वह कटार लेकर चली गई।

कुछ देर बाद प्यारी धरती पर लेटी हुई कराह उठी।

'क्या हुआ ?' सुखराम ने पूछा।

'दरद होता है।'

'अब भी होता है ?'

'हाँ।'

'कहाँ, बतइयो।'

'यह देख, यहाँ।'

प्यारी ने उसका हाथ पकड़कर पेट पर जगह बताई।

'कैसी नरम जगह है।' सुखराम ने कहा। फिर उसने कहा : 'औरत का पेट धरती माता की तरह होता है। उस पर वही लात दे सकता है, जो बिल्कुल जिनावर हो। आज से नहीं, सदा से ही मानुस इस कोख की इज्जत करता आया है, क्योंकि यह भगवान की अपनी दुनिया की दया दिखाती है। प्यारी !'

वह बोली : 'क्या है।'

'ठीक हो जायेगी, बिल्कुल ।' सुखराम ने कहा : 'तुझे याद है ! मेरी माँ कितनी अच्छी थी । वह मेरे लिये मर गई थी ।'

और तब प्यारी को वह पहला दिन याद आया । उस समय वही तो थी जो अपने बाप से उसके लिये मचल गई थी । और फिर उसने उसी संरक्षण को स्थापित करके अपनी आकांक्षा का प्रसार किया था ।

वह आँख मींचकर सोचती रही । सुखराम ने अब बीड़ी सुलगाई और प्यारी को भी एक बीड़ी दी । दोनों धूंआ उड़ाते हुए सोचते रहे । अब रात ढलने लगी थी । आकाश में असंख्य तारे दिखाई दे रहे थे । और हवा अब कम हो चली थी ।

कजरी आ गई । सिर पर बक्स था, पीठ पर एक बोरी थी । वह हाँफ रही थी ।

'इसमें क्या है ?' प्यारी ने कहा ।

'जो अच्छा सामान था सब बटोर लाई हूँ ।' कजरी ने कहा : 'फिर मिलता न मिलता । मैंने तो खाट भी तोड़कर इसमें डाल ली है । अब ठोकते ही बन जायेगी ।'

देखा, सचमुच उसमें से पाटियाँ निकल रही थीं ।

'तू तो' प्यारी ने कहा : 'बड़ी जोरदार है ।'

'क्यों ?'

'मुझसे तो इतना सब न उठता ।'

'सब उठता लाड़ो !' कजरी ने कहा : 'तेरी तो इसने आदत बिगाड़ रखी थी ।'

'अब तू सुधार लीजो ।' प्यारी ने कहा ।

फिर तीनों पहाड़ की ओर चल दिये । धीरे-धीरे·····

२५

चलते-चलते सुखराम ने पूछा : 'कजरी ! तुझे वहाँ किसने देखा ?'

'किसीने नहीं ।' कजरी ने कहा : 'मैं दबे पांव गई। जानती थी, जो देखेगा सो ही पूछैगा ।'

'मंगू था ?'

'मुझे तो नहीं मिला ।'

'घोड़ा क्या किया ?'

कजरी ने कहा : 'घोड़ा खोल दिया मैंने ।'

सुखराम को दुख हुआ । पूछा : 'भूरा कहाँ गया ?'

'वह मिला नहीं । पुकारा भी । कहीं इधर-उधर हो गया होगा ।'

'अब लौटेगा तो ढूँढेगा ।'

'जरूर ढूँढेगा ।' प्यारी ने कहा । 'वह बड़ा अच्छा है । और फिर कुत्ते बफ़ा में कमाल करते हैं ।'

सुखराम सुनता रहा । बोला : 'उसे मैंने बड़े प्यार से पाला था । पर वह अब बुड्ढा भी हो गया है । एक-आद साल ही जियेगा और । रात-रात भर रखवाली करता था । मैं तो चैन से सो जाया करता था । पर डेरे के कपड़े की बाकी का क्या हुआ ?'

'सब गला-गलाया तो था ?' कजरी ने कहा : 'उसमें से क्या ले आती ?'

पहाड़ की चढ़ाई शुरू हो गई थी । चारों ओर ढोके खड़े हुए थे । कजरी ने बक्स उतारकर धर दिया ।

'क्यों ?' सुखराम ने कहा ।

'मुझे नहीं चला जाता ।'

'अरी तू थक गई ?'

'अच्छा मैं जैसे मानुस नहीं हूँ । मैं थक ही नहीं सकती ।'

सुखराम ने कहा : 'वह देख, सामने देखती है ? वहाँ जरूर कोई आसरा होगा । मुझे लगता है वहाँ जरूर कोई है । वहाँ तक चली चल न ?'

'नहीं । वह क्या कम दूर है ?'

'फिर कैसे होगी ?' सुखराम ने कहा । 'बड़ी जल्दी थक गई तू ?'

'जल्दी थक गई ? पहले तो भगाया मुझे । फिर डेढ़ कोस गई, डेढ़ कोस

आई, तमाम सामान लादा और अब फिर चल, फिर चल। जिस पर सारी लदाई मेरे ही सिर पर।' उसने बच्चों की तरह रूठकर सिर हिलाया। सुखराम मुस्कराया। कजरी ने कहा : 'मुझसे नहीं चला जाता, नहीं चला जाता।' कजरी ने रोष से स्पष्ट कर दिया।

'ठीक कहती है तू।' प्यारी ने कहा।

'तौ तू उठा ले न ?' सुखराम ने कहा।

'मैं उठा लूँगी। जित्ता चल सकूंगी उत्ता चल लूंगी।' प्यारी ने कहा—'तू समझता है मैं हरामिन हूँ ?'

प्यारी बढ़ी।

कजरी ने कहा : 'क्या है ?'

'ला इसे मेरे मूंड पर धर दे।'

'धर दूँ ?' कजरी ने सिर हिलाया।

'तेरी सौगंध, मैं ले चलूंगी।'

'रहन दे परमेसुरी। आप तो अपने को ढोया नहीं जाता, बकस ढोयेगी ?'

'तू यह समझ कि मैं बल पा गई हूँ।'

'क्यों ?'

'अब मैं कहती हूँ।'

'अच्छा।' कजरी ने कहा : 'तू यह समझता है कि मैंने जलन के मारे कहा था ! तू है ही कमीन।' वह रो दी। प्यारी ने बुरा न माना। जवाब नहीं दिया। स्नेह से उसके सिर पर हाथ फेरा। उसकी आँखों से दो बूंद आँसू निकल आये। और उसने उसे छाती से लगा दिया।

'अरे तू रोती है ?' सुखराम ने कहा : 'कजरी ने तो कुछ बुरी नीयत से नहीं कहा था।'

'तू बीच में बोलने वाला कौन है ?' प्यारी ने कहा : 'तू समझता है, मैं इसे नहीं समझती।'

'प्यारी ठीक कहती है।' कजरी ने कहा : 'दोनों को लड़ाने का मौका ढूंढा करता है जेठी। अरे औरत ही में समुवाई होती है। एक-एक के साथ कितनी-कितनी नहीं जनम गँवा देतीं। हम तो खैर नटनी हैं, यह मन की बात है, वैसे देख ले आन बिरादरी में, बाप कसाई के हाथ में हाथ दे देता है, तो

बोटी-बोटी कट जाये पर चूँ तक नहीं करती। और मरद ! औरत को देख के मालिक बन जाता है। लुगाई को पाँव की जूती समझता है।'

'अरे तू ऊँच जात वालियों की बात करती है। गूजर, मैना, माली सब धरेजना करती हैं।' सुखराम ने काटा।

'क्या करे बिचारी ! पेट को कहाँ छोड़ आँय। दो रोटी का सहारा न हो तो क्या मर जायें ! और कौन देता है ! किसी न किसीकी तो होके ही रहेगी। नहीं तो उसके बच्चों को पालेगा कौन ? अब धूपो ने नहीं किया, तो निबल जान के बदमासों ने उसे मिटा दिया कि नहीं ?'

'तो मरद को क्यों कोसती है।' सुखराम ने कहा। 'नौकर रखे तो दाम कहाँ ? रोटी करने वाली न होय तो खाय कहाँ ? दो रोटी के लिये यह लुगाई ढूँढ़ता है।'

'सो तो है ही', कजरी ने कहा। 'यों ही दुनिया चलती है। एक दूसरे का सहारा लेकर काम चलता है। मरद कहे कमाऊँ नहीं, औरत कहे काम न करूँ तो दोनों क्या एक दूसरे को संभालेंगे ? हमारे नटों में मर्द हरामी होते हैं, तभी तो नटनियों को अच्छा-बुरा करके पेट पालना पड़ता है। दुनिया ही ऐसी है। यहाँ औरत बूढ़ी हुई फिर कौन पूछता है ?'

तर्क उठते थे, परन्तु उनकी समस्या का हल नहीं निकल पाता था। वे उनके बन्धन थे। स्त्री के अधिकारों ने मांग तो की, किन्तु वह माँग स्पष्ट नहीं हुई, न पुरुष की सत्ता की ही व्याख्या हो सकी।

कुछ देर बाद सुखराम ने कहा : 'लो बीड़ी पी लो।'

तीनों ने बीड़ी पी। फिर सुखराम ने कहा : 'अब चलो।'

कजरी ने कहा : 'चल।'

तीनों उठ खड़े हुए।

बोरी को प्यारी ने उठाया। भारी थी। गिर गई।

'नहीं उठती तुझसे ?' सुखराम ने कहा।

'पेट में दरद होता है उठाती हूँ तो।'

'तो रहने दे।' कजरी ने कहा।

सुखराम आगे आया। कहा : 'बोरी मुझे दे दे।'

उसने बोरी उठा ली। बक्स रह गया। उसकी ओर उसने मुस्कराकर देखा।

प्यारी ने कजरी की विवशता को देखकर उसकी ओर से कहा : 'क्यों सुखराम ! तू मरद है, तू ही न ले चल ।'

'सो तो हूँ ।' सुखराम ने कहा : 'पर दुनिया के कुछ नेम भी तो हैं ।'

'सो कैसे ?' प्यारी ने पूछा ।

सुखराम ने कहा : 'मैं तो उजर नहीं करता । पर तू ही जरा सोच । सच कह । यह काम औरत का है । दो-दो मेरे संग चलेंगी और बोझ मैं ढोऊँगा तो कोई देख के हँसेगा नहीं ?'

'हँसेगा क्यों ?' प्यारी ने कहा ।

'यों कहेगा, दोनों का चाकर है ।' सुखराम ने कहा ।

'कह लेगा तो तेरा क्या कुछ बिगड़ जायेगा ?' प्यारी ने कहा । 'तुझे दूसरों की फिकर है, अपनों की नहीं ? पहले घर देख तब द्वार में से बाहर झाँक ।'

कजरी ने कहा : 'रहने दे जेठी । यह अपने को राजा भी तो समझता है । इसमें ठाकुर की बू भी तो है । पर ठाकुर लुगाई को हाथ हिलाते देखकर झल्लाता है । बस घर का काम कराता है । रोटी देता है । पर्दा वह कराता है, तो पर्दे का इंतजाम भी तो करता है । कै तो नट रह ले, कै ठाकुर बन जा । ला मैं पर्दा करूँ, तुझमें करवाने की ताकत है ? सब इंतजाम कर । ठकुरानी को कोई छेड़े तो सारे ठाकुर तेगा लेके आते हैं, नटिनी को कोई भी छेड़ जाय ।'

हँसकर प्यारी ने कहा : 'सो तो पंचों की राय सिर आँखों पर, पर परनाला यहीं से बहेगा ।' उसने बक्स उठा लिया ।

अभी वे लोग बढ़े ही थे कि आवाज़ आई । उस बीहड़ दर्रे में खौफ़नाक पत्थरों के बीच में उस आवाज़ को सुनकर सुखराम के भीतर भय का भाव नहीं जागा, जिज्ञासा ने सिर उठाया । पत्थर काले-काले-से दिखाई दे रहे थे । पानी का बरसाती बहाव उसी रास्ते से होने के कारण छोटे-छोटे पत्थर उधर बहुत थे और उन पर चलने से पाँव सहज ही टिकता नहीं था ।

वे चौंक उठीं । धीरे-धीरे आवाज़ पास आने लगी थी । सुखराम अंधेरे में आहट लेता रहा । कान के पास मुँह ले जाकर धीरे से फुसफुसाकर प्यारी ने कहा : 'कोई जिनावर होगा ।'

कजरी ने कहा —'नहीं; मानुस लगते हैं ।'

'कौन होंगे ?' वह डरी ।

'राम जाने ।'

प्यारी ने कहा—'खूनी होंगे।'

'डरै मत।'

'नहीं डरती नहीं। पर वह हम दो के संग है। अकेला है। कैसे संभालेगा सब!'

कजरी ने प्यारी को पकड़ लिया। वह स्वयं संत्रस्त थी। उस स्पर्श में जहाँ सांत्वना ली गई थी, वहीं दी गई थी। यह पारस्परिक सहिष्णुता का आदान-प्रदान था, संबल को जैसे संबल ने पकड़ा था।

सुखराम चिल्लाया : 'कौन है?'

पहाड़ में वह आवाज़ प्रतिध्वनित होकर लौट आई और पत्थर जैसे चिल्ला उठे—कौन है? कौन है?

ढोकों के पीछे से एक भयानक-सा आदमी निकला। वह तारों की छाँव में बलिष्ठ-सा दिखाई दिया। उसकी काली और घनी दाढ़ी ऊपर की तरफ चढ़ी हुई थी। वह मारवाड़ी ढंग का पुराना अंगरखा पहने था, जिसमें उसकी छाती का हिस्सा दिखाई देता था। उसने धोती पहन रखी थी, दुलाँगी। सिर पर पगड़ था। वह देखकर भला आदमी नहीं लगता था। उसकी आँखें कुछ डरावनी और चढ़ी हुई-सी थी। वह रंग का काला था। उसने तीनों को घूरा।

उसकी आँखें कजरी और प्यारी पर पड़ीं। प्यारी चुप रही पर कजरी कह ही उठी—'देखो कमबखत को। कैसा घूरता है, जैसे खा ही जायेगा!'

वह आने वाला आदमी हँसा। उसके सफ़ेद-सफ़ेद दाँत चमक उठे। सुखराम ने उसकी वह गाढ़ी आवाज़ झटके ले-लेकर उसके गले से निकलते देखी। फिर उसने एकदम क्रुद्धस्वर में कहा : 'तुम कौन हो?'

'परदेसी हैं।' कजरी ने कहा।

'इधर किस देश को जाते हो?' उस आदमी ने व्यंग्य से कहा।

'डाँग को।' सुखराम ने कहा।

'कौन लोग हो?'

'करनट हैं।'

'दिन में क्यों नहीं जाते?'

तीनों चुप। उस आदमी ने कहा : 'यहाँ मेरी अमलदारी है, जानते हो? पुलस के आदमी आते हैं तो मैं उन्हें नहीं छोड़ता।'

'हम पुलस से डरकर ही रात को जाते हैं।' सुखराम ने कहा।

'क्यों, क्या कतल किया है ?' उसने पूछा ।

'नहीं, चोरी लगाई है हम पर ।'

'करनट पर लगाई है ?' उसने कहा : 'तू तो हाथ की सफाई में हुनरबाज होगा ।'

'मैं चोर नहीं हूँ,' सुखराम ने कहा : 'मैं डाकू बन सकता हूँ पर चोर नहीं हूँ ।'

वह आदमी बड़ी जोर से हंसा । उसका हास्य जब समाप्त हुआ तो उसने पुकारा : 'खडगसिंह !'

'हाँ सरदार !' कहते हुए एक आदमी और निकल आया । उसके पीछे चार आदमी और थे । उनके कन्धों पर गठरियाँ लदी थीं ।

'देखा तूने ?' सरदार ने कहा : 'मुंह तो देख इस करनट का ।'

'देख लिया, क्यों ?' एक ने कहा ।

'यह कहता है—चोर नहीं है, डाकू बन सकता है !'

तब वे सब हँस पड़े । कजरी से रहा न गया । कहा : 'हँसते क्यों हो ? जोर अजमा के देख लो न ?'

'फिर देख लेंगे ।' खडगसिंह ने कहा : 'पहले अपना सबूत दो । बकस दिखाओ ।'

'क्यों ?' कजरी ने कहा ।

प्यारी ने चुपचाप उसे नोंचा । चुप रहने का इशारा किया । पर कजरी न डरी । कहा : 'तुम कौन हो जो दिखा दें । अगर हम चोर हैं, और हमारे पास माल है, तो तुम कैसे देख लोगे ? जोर होय तो छीन लो ।'

उस समय उनके चारों ओर और कुछ लोग निकल आये । उनके हाथों में बल्लम थीं, चारों ओर से उठी हुई, संधी हुई ।

कजरी ने कहा : 'ये न्याव है ?'

सरदार हँसा । और उसने कठोर स्वर से कहा : 'बहुत बक-बक मत कर ।'

कजरी ने फिर कुछ कहना चाहा पर प्यारी ने कान में कहा : 'कजरी ! तुझे सौगन्ध है, चुप रह । यह लोग डाकू लगते हैं । इन्हें दया नहीं होती । काट देंगे ।'

सुखराम ने कहा—'दिखा दो री ।'

प्यारी ने बैठकर बक्स धर दिया । कहा : 'देख लो ।'

वह हट गई। खडगसिंह आगे बढ़ा। उस समय सुखराम ने अपनी कनखियों से देखा, सरदार ने इशारा किया। चारों ओर से बल्लम वाले पास आ गये। खडगसिंह ने बैठकर कहा : 'अरे इसमें तो ताला भी नहीं !'

उसकी बात सुनकर सरदार चौंका।

बकस खुला। पुराने दो-चार कपड़े और एक तस्वीर।

'यह क्या है ?'

'तस्वीर है एक,' खडगसिंह ने कहा।

सरदार के इशारे पर एक ने दियासलाई जलाकर रोशनी की।

तस्वीर देख ठाकुर ने कहा : 'यह कौन है ?'

सुखराम सोचने लगा। क्या कहे ? क्या वह बताये कि यह चित्र किसका है !

कजरी ने समस्या तुरन्त हल कर ली। कहा : 'क्या करोगे जानकर ?'

'इस पर बड़ा माल है। हीरे-मोतियों से ढँकी हुई है।' सरदार ने कहा।

'मालकिन थी पुरानी।' कजरी ने कहा : 'उस पर माल न होगा तो क्या हम-तुम पै होगा ? तुम भी भिखारी, हम भी भिखारी !'

'ऐ !' खडगसिंह ने कहा : 'कैसे बोलती है ? जानती है किससे बात कर रही है ?'

'इस जंगल-पहाड़ के इलाकेदार से।' प्यारी ने कहा, जैसे रहा न गया।

'हैं ?' सरदार ने तस्वीर की ओर देखकर पूछा। वह जैसे अपने ही मतलब की सोच रहा था। वह हीरे ! वह मोती ! वह डाकू को विचलित कर रहे थे।

सुखराम ने ठंडी सांस ली और कहा : 'ठकुरानी ! कहाँ ? वह ही होती तो क्या बात थी। बेचारी मर गई।'

'इसका घर कहाँ है !'

सुखराम ने कहा : 'राजा के खान्दान की थी। वंस नास हो गया। राजा ने जमीन-जैजात पर कब्जा कर लिया।'

डाकू की आशा टूट गई। पूछा : 'कहाँ जाओगे ? डाँग में ?'

'हाँ।' सुखराम ने कहा।

'चले जाओ।'

'कै दिन का रस्ता है ?'

'कल दुपहर ढले पहुँच जाओगे।'

'हमारा कोई सहारा नहीं।' कजरी ने कहा : 'भूखे हैं।'

'खडगसिंह !' डाकू ने कहा : 'इन्हें आटा दे दो।'

'हाँ सरदार,' खडगसिंह ने इशारा किया। उन गठरी वालों में से एक ने गठरी उतार दी। आटा दिया।

'और दे दे महाराज थोड़ा।' प्यारी ने कहा। 'तुझे आसीस देंगे। तू राजा है !'

आटा ले लिया। खडगसिंह ने सुखराम से कहा : 'आदमी तो डीलडौल का है। कुछ दम भी है ?'

'गरीब आदमी हैं हम', सुखराम ने दाँत निकालकर कहा।

खडगसिंह ने झटाक से चाँटा दिया। सुखराम ने झपटकर उसे पकड़ लिया और उठा के फेंक दिया। औरतें भय से चीख उठीं। खडगसिंह ने उठते हुए कहा : 'शाबाश ! सरदार ! आदमी काम का है।'

सरदार ने हँसकर कहा : 'है तो !'

अब परस्पर मित्रता-सी हो गयी। सुखराम ने कहा : 'सरदार, तुम मालक हो। थोड़ा गुड़ और दे जाओ, तो पेट भर जायेगा।'

'दे दे रे !' खडगसिंह ने कहा।

गुड़ देकर वे चले गये।

सुखराम ने कहा : 'चलो री एक किनारे चले चलें।

वे एक बड़े पत्थर पर आ गये। धौ के पेड़ खड़े थे।

'बड़ी भूख लग रही है मुझे।' सुखराम ने कहा।

'रात को खाया भी तो नहीं कुछ। बस कल दुपहर को खाया था।' प्यारी ने कहा : 'कजरी !'

'हाँ जेठी।'

'जा पत्थर बटोर ला।'

कजरी पत्थर बटोर लाई। अब के प्यारी ने कहा : 'जा जरा लकड़ियाँ बीन ला।'

गई। लाई। अब चूल्हा जला। बोरे में से थाली निकाली। आटा डाला। और कजरी से कहा—'जा पानी ले आ।'

कजरी लोटा लेकर चली गई।

सुखराम लेट गया। उसे झपकी आ गई थी। प्यारी ने तवा चूल्हे के पास

रख लिया। और कजरी की बाट देखने लगी। इस बीच गुड़ का छोटा-सा टुकड़ा मुँह में डालकर चूसने लगी। बड़ा अच्छा लगा। भूख बड़े ज़ोर की लग रही थी।

रात के उस निर्जन सन्नाटे में वे वहाँ जीवन का प्रबन्ध कर रहे थे। सुखराम ने पाँव फैला दिया। प्यारी ने देखा वह अब नींद में था। पुकारा : 'अरे तू तो सो गया।'

'काम कर, काम,' सुखराम ने कहा—और करवट बदल ली।

सामने ताल से पानी लेकर कजरी आ गई। उसने आटा गूंधा फिर पानी लेने चली गई। तब आकर चैन से बैठ गई।

कहा : 'ला मैं सेंक दूँ।'

'अरी मैं कोई घिस न जाऊंगी।'

'तेरी मर्जी।'

'जगा दे इसे।'

प्यारी ने रोटी सेंकी। सुखराम को कजरी न जगाया।

सुखराम उठ बठा। पूछा : 'बन गई।'

'अब सिंकी जाती है।'

'अरे तुम दो हो फिर भी देर लग गई।' सुखराम ने कहा। पुरुष की हमेशा की आदत होती है कि खाने को बैठकर उसे इन्तज़ार अच्छा नहीं लगता। प्यारी ने रोटी दी।

'बड़ी अच्छी बनी है!' सुखराम ने कहा।

'तुझे भूख लगी होगी।' प्यारी ने कहा। उसके स्वर में ममता थी, जैसे वह अपने लिये गौरव नहीं चाहती थी।

परन्तु सुखराम ने कहा : 'नहीं, बहुत-दिन बाद खायी है, बड़ा स्वाद आया है।'

'मुझसे अच्छी बनाती है?'

'तू क्या जाने रोटी बनाना।'

'और इत्ते दिन तूने क्या खाया था?' कजरी ने चिढ़कर कहा।

'करम अपने।' सुखराम ने उत्तर दिया।

'तू हट जा, अगली मैं ठोंकती हूँ।' कजरी ने कहा। प्यारी ने मना किया : 'रहने दे री। यह दिल्लगी करता है।'

'अरी नहीं', कजरी ने कहा : 'तू हट तो।'

लाचार प्यारी हटी। कजरी रोटी बनाने लगी।

'अब फिर वही कच्ची-पक्की मिलेगी।' सुखराम ने कहा। प्यारी हँस दी। कजरी खिसियायी।

प्यारी ने कहा : 'ला मुझे भी खिला दे।'

'सच तू बतइयो।' कजरी ने कहा : 'मुझे तो तेरा ही सहारा है।'

प्यारी फिर हँस दी। कहा : 'जो मैं भी इससे मिल जाऊँ तो ?'

'मिल जा।' कजरी ने कहा : 'डरती हूँ ?'

प्यारी तैयार बैठ गई। कजरी ने एक रोटी उसे दी। प्यारी खाने लगी। और कजरी खिलाने लगी

'बड़ी अच्छी बनी है।' प्यारी ने कहा।

'सच जेठी। झूठे ही न कहा।'

'भाई तेरी सौगंध !'

कजरी ने सुखराम की ओर देखा कि वह भी कुछ बोले।

सुखराम ने कहा : 'वह बात नहीं है !'

'तो रहने दे ! नहीं सही !' कजरी ने कहा : 'तू कह देगा तो क्या हो जायेगा ? तू इसके हाथ की खा लिया करियो, मैं इसे बनाके खिला लूंगी।'

सुखराम ने कहा : 'यह ठीक है और मैं तुझे बनाके खिला दिया करूँगा।'

उस बात को सुनकर वह प्रेम का तनाव ढीला हो गया। आनन्द ने कंपन भर दिया। कजरी हँस दी, प्यारी भी, सुखराम भी।

'क्यों छेड़ता है उसे तू ? मेरी छोटी है। उसके तो अभी लाड़ के दिन हैं।'

इस तरफ़दारी से कजरी झेंपी। कहा : 'चल रहने दे।'

वे लोग लेट गये। पत्थरों पर, नंगे आकाश के नीचे। इन्सानों की देही ने चैन पाया। इन्हीं पत्थरों की सख़्ती और आकाश की नीली पलक के विरुद्ध विद्रोह करके मनुष्य ने शताब्दियों में घर बनाया, पलंग बनाया, परन्तु उनके पास कुछ भी नहीं। वे केवल मनुष्य हैं। उनके पास ज्ञान नहीं, किंतु स्नेह है, और वही जीवन का शाश्वत संबल है। वे मर जाते हैं, फिर जी उठते हैं, उनके ऐसे भावना के सत्य अमर हैं। बियावान जंगल है, जिसमें तरह-तरह के पशु घूमते हैं। ख़ूंख़ार और खतरनाक। और उनके पैरों पर पगडंडियों की हल्की बेड़ियाँ कहीं-कहीं कसती हैं, जिनसे कतराकर वे और गहन हरियाली में चले

जाते हैं, क्योंकि चलने के निशान छोड़ना सिर्फ आदमी के पांव जानते हैं। और वह जंगल सूनी-सूनी-सी साँस लेता है, फिर अपनी झाड़ियों में इतराता है। सूना-सा पहाड़ ऊपर तक चला गया है। दूर से नीला दिखता है, पास से काला। इनकी शृंखला अरावली तक ऐसे ही चली जाती है। इन रास्तों को आदमी कम रूँदता है, जानवर अधिक।

पर संसार में आदमी हर जगह घुस गया है। वहाँ जीवन कठिन है। कभी-कभी पहाड़ी कुण्डों में हिरन पानी पीते हैं और दूसरी ओर की चट्टान पर चढ़े बघेर को देखकर कुलाँच मारकर भागते हैं। यहाँ हर गर्मी में ऊँचाई पर टिटहरी अण्डे देती है और बरसात में इन पत्थरों पर मखमल की तरह काई जम जाती है, जो भादों के बाद फिर सूखने लगती है। जाड़े में जब चिल्ला पड़ता है तब यहाँ की हवा तीखी बन जाती है। पत्थरों को छूती है, तो वे भी ठंड से अकड़ने लगते हैं।

कजरी उन पर से इधर-उधर पड़ी हुई लकड़ियाँ बटोर लाई। दिन में गूजर और ग्वारिये वहाँ आते। गाय-भैंस चराते। गाँव के ग्वालों की गौओं का इन्तज़ाम करते। फिर शाम को उनकी आवाज़ें गूंजने लगतीं। रात होते-होते फिर वही सन्नाटा छा जाता।

कहा जाता था कि एक समय इन पहाड़ों पर जोगी अपनी धूनी रमाते थे, और अलख जगाते थे। पर वह पुरानी बात थी। उससे अब कुछ वास्ता नहीं था।

लेटे-लेटे सुखराम ने उस ऊँचाई से देखा, सामने ही उसका अधूरा किला खड़ा था। प्यारी समझ गई। कहा : 'फिर तुझे राजाई याद आ रही है ? यह तुझे नहीं छोड़ेगा क्यों ?'

कजरी ने सुन लिया। दूर से ही कहा : 'छोड़ देगा तो भरम न टूट जायेगा जेठी। उसे इसीमें सुख है तो होने दे। वह हम लोगों से अपने को ऊँचा समझता है। मैं तो इसकी सूरत नहीं देखूँगी।'

प्यारी ने कहा : 'क्यों बकती है कजरी ! इसका मन इसे देखके धक-धक करने लगता है।'

'अरी कहीं पत्थर से भी कोई प्रीत करता होगा ?'

क्यों पुरखों की बपौती कौन छोड़ता है ?'

'हम क्या जानें जेठी ! हमारे पुरखों ने हमारे लिए तो धरती छोड़ी थी,

सो हम तो उसीको जानते हैं। धरती सबकी है, हमारी है, घमण्ड करें तो किस-का ?'

'किसीका करो।' प्यारी ने कहा : 'यही संभालती है सबको।'

कजरी ने आग जला दी। उजाला-सा हुआ, फिर आँखों को आदत हो गई। हल्का ताप शरीर को अच्छा लगता था। अतः वे उसके पास आ गये। लपट उठी, थर्राई और फिर लकड़ियों में पलटे खाने लगी।

ठंडी हवा अब पहले से भी ज्यादा ठंडी हो गई थी। दूर उसके आंचल में जो फूलों की खुशबू भरती थी वह सब रास्ते में बिखेरकर जब वह यहाँ पहुँचती थी तब वह खाली हो जाती थी। परन्तु शरीर को सिहरा देने की शक्ति उसमें तब भी बच रहती थी। जैसे वह हवा भी यहाँ आज़ाद थी।

लपट फरफराने लगी। पीली, फिर बल खाते में लाल हो जाती और गर्भ में हरी-सी झांई देती। जहाँ वह लकड़ियों पर सरकती वहाँ उसमें नीला-पन भी होता।

सुखराम ने ठंडी सांस ली। कहा : 'आज सिर पर डेरा भी नहीं रहा।'

कजरी ने उत्तर दिया : 'बन जायेगा ! चिड़िया तक हर साल नया घोंसला बनाती है।'

प्यारी ने स्वीकार किया : 'मानुस होगा तो सौ घर बना लेगा।'

सुखराम ने कहा : 'कौन कहेगा तुम सौत हो ?'

'क्यों तू जल रहा है ?' प्यारी ने कहा।

'क्यों न जलूंगा ?' सुखराम ने कहा : 'तुम दोनों की दोस्ती में खतरा नहीं है ?'

वे हँस दीं।

'मैं यों ही न कहती थी।' कजरी ने कहा : 'आखिर इसके मन की बात निकल ही गई। लुगाइयां लोगों की तरह छोटे दिल की नहीं होतीं।'

और सामन्तीय समाज की वह स्त्री उस समय बड़ी प्रसन्न हो उठी थी। वह नहीं जानती थी कि उसके आधार कितने पुरातन थे। उसके आकाश में नयी भोर नहीं फूट सकी थी। वह अपने छोटे दायरों को ही अपने जीवन के लम्बे विस्तार का पर्य्याय समझती थी और अभी तक समझती चली जा रही थी। कुछ देर यों ही बीत गई। तब जैसे अतीत याद आने लगा। पुरानी तस्वीरें आने लगीं।

'गांव में क्या हो रहा होगा ?' सुखराम ने कहा।

दोनों ने सुना।

सुखराम कहने लगा : 'मेरे सामने पुलिस आ गई थी।'

'किसीको पकड़ा ?' प्यारी ने पूछा।

'नहीं। तब तक तो नहीं।'

'वह बन्दूकें कैसी चली थीं', कजरी ने पूछा। 'मुझे तो ऐसा डर लगने लगा था तब। मैंने किसीसे कहा नहीं था। सच। यों घोड़ा दबाया, यों मानुस फट मर गया। भला ये भी कोई लड़ाई है ? जिसके पास हथियार नहीं हो वह क्या करेगा ?'

'हथियार नहीं होना ही तो कमजोरी है।' सुखराम ने कहा।

'उन्हीं पर चली होगी गोली ?'

'पता नहीं।' सुखराम ने फिर कहा : 'ज़रूर उन्होंने कुछ गड़बड़ की होगी।'

'किसने ? चमारों ने ?'

'और नहीं।' प्यारी ने कहा। 'वर्ना गोली क्यों चलतीं ?'

'इनका क्या बिगड़ता है,' सुखराम ने कहा : 'जब चाहें चला दें।'

'पुलिस ने चलाई होंगी तो जरूर चमारों पर ही।' कजरी ने कहा।

सुखराम चुप हो गया। चिन्ता में पड़ गया-सा लगा। कजरी ने पूछा : 'तुझे क्या फिकर है !'

'धूपो का बदला किसने लिया ?'

'कजरी ने।' प्यारी कह उठी।

'तो रुस्तमखाँ को तूने मारा था ?'

'हाँ।'

'तुम दोनों को खून करते डर न लगा।'

'उस बखत मुझे मालूम ही नहीं था कि खून कर रही हूँ।'

'यह मैं जानता हूँ, तू इतना आगे बढ़ने से डरती थी।'

'अब भी डरती हूँ। सोचती हूँ तो रोंगटे खड़े होते हैं। फिर जब याद आता है कि मैंने ही उसे मारा था तो और भी डर लगता है।'

'वा ! जेठी।' कजरी ने कहा : 'मुझे तो डर नहीं लगता। यह तो सोच

कि वह कैसा पापी था। साँप को कोई क्यों मारता है ? उसे छोड़ दो तो वह तुम्हें काटेगा।'

'खैर समझो।' सुखराम ने कहा : 'आग लग गई। भगदड़ में पता नहीं चला। वर्ना वहीं गिरफ़्तार हो जाते।'

'तुझे इत्ती देर कहाँ लग गई थी।'

'मुझे एक तमोली अहमदाबाद की बात बता रहा था। मैं सोच रहा था। तीनों वहीं चलें। मेहनत-मजूरी करके पेट पाल लेंगे।'

'तो चल न ?'

'नहीं, मैं डरता हूँ।'

'क्यों ?'

'सहर के लोग अच्छे नहीं होते।'

'न होंगे, हमारा क्या लेंगे।'

'हमारा क्या लेंगे। कुछ नहीं।' उसने कहा। उसके मन में आया अपना भय कह दे। पर कह न सका। शहर के लोग एक आदमी की दो औरतों को देखेंगे तो अच्छा नहीं कहेंगे। घुमाकर कहा : 'वहाँ हमारा कौन है और ?'

'यहीं कौन है ?' कजरी ने कहा।

इसका भी वह उत्तर नहीं दे सका।

'तू फिर सोचने लगा ?' प्यारी ने कहा।

'सोच रहा हूँ कि जिस आदमी ने आग लगाई थी, वह बेदाग बच गया।'

'कौन था ?'

'निरोती बामन।'

प्यारी ने कहा : 'साँप !! वह था !!'

'हाँ।'

'और जानता है घूपो पर बाँके के साथ जुलम करने वाले कौन थे ?'

'उसके साथी थे।'

'कौन-से ?'

'मुझे नहीं मालूम।'

'तो सुन ले। जी कड़ा कर ले। वे हरनाम और चरन ठाकुर थे।'

'वे दोनों !!!' सुखराम ने कहा।

'हाँ। आग आग ही होती है।' कजरी ने कहा।

'बाँके ने झूंठ कहा था यों', कहकर प्यारी ने बाँके के मुंह से सुनी हुई वे सब चालें बता दीं। सुखराम को सुन-सुनकर गुस्सा आने लगा। पर अब बाँके तो था ही नहीं। स्त्रियों ने उसे सब कुछ सुनाया।

'सो जाओ।' प्यारी ने बात समाप्त करके कहा।

'नींद नहीं आ रही है।' सुखराम ने उत्तर दिया।

'तू गांव की न सोच।'

'नहीं सोचूँगा।'

'कल हम डाँग पहुँच जायेंगे!' कजरी ने कहा।

प्यारी ने कहा : 'तूने तो देखा है कजरी!'

'खूब!'

सुखराम ने कहा : 'दोनों को कल पहुँचा दूंगा वहाँ। सुना है अच्छी जगह है। वहाँ तुम दोनों रहना। चैन है। कोई झंझट नहीं। फिर वहाँ तो अपनी बिरादरी होगी! वे भी तुम दोनों की देख-भाल कर लेंगे। और तुम दोनों ही क्या अपना इन्तजाम नहीं कर सकतीं?'

कजरी ने शंका से देखा और कहा : 'हम दोनों का क्या मतलब जो तूने बार-बार कहा। और तू कहीं जायेगा!'

'हाँ!'

'कहाँ? मैं भी तो सुनूँ!' कजरी के स्वर में एक ललकार-सी थी।

'मैं गांव जाऊँगा,' उसने कहा।

'क्यों?' प्यारी ने कहा।

'एक काम करूँगा वहाँ।'

दोनों डर गईं।

'कौन-सा काम?' कजरी ने पूछा।

'बदला लूंगा।'

दोनों ने एक दूसरी की ओर देखा। आतंक था, ममता उसे रोकना चाहती थी, स्नेह उसे गलाना चाहता था, प्रेम उसकी जड़ें काटना चाहता था, परन्तु वह ऊपर छा गया था। अब उसे हटाना सहज नहीं रहा था, क्योंकि उसका स्वर दृढ़ था।

'कजरी तू रोक इसे?' प्यारी ने कान में कहा।

उसके स्वर में अनुनय था। उस नम्रता में एक समर्पण की भावना थी।

'मेरी क्या मानेगा ?' कजरी ने संदेह से कहा। जैसे वह कहते हुए डर रही थी। उसने पूछा था कि जब यह तेरी ही नहीं मानता हो भला मेरी तो बिसात ही क्या !

'अरी मैं जानती हूँ।' प्यारी ने उसे ढांढस दिया। 'तू ही कह।'

कजरी को प्रसन्नता हुई। यह उसके लिये एक गौरव का विषय बन गया कि सौत उसे अपने से जबर्दस्त समझती है।

कजरी ने कहा : 'बदला लेगा ? किससे ?'

'निरोती से।'

'क्यों ?'

'उसने आग जो लगाई।'

'आग न लगाता तो हम लोग पकड़ी न जातीं। मैं तो कहती हूँ, उसने हमारा भला किया।'

सुखराम ने कहा : 'वह तो ठीक है पर उसकी नीयत तो दूसरी थी।'

'हुआ करे। नीयत से हमें क्या ?'

तुझे न हो, मुझे तो है।'

'क्या, ज़रा बता तो।'

'सोच, चमारों का क्या होगा ?'

'अरे तू नहीं सबका ठेकेदार है करनट !'

प्यारी ने कहा : 'क्यों री ! तूने ये कैसे कह दी ! वह तो अपने को राजा समझता है। अधूरे किले का मालक जो है।'

उस व्यंग्य से सुखराम आहत हुआ। दोनों हँसीं। कितना इस हास्य में सिर्फ इसीलिये था कि उसे जाने से रोका जा सके, यह वे समझ रही थीं।

सुखराम ने कहा : 'हंसती हो तुम लोग। हँस लो ! पर मैं तो जाऊंगा।'

'तू जायेगा तो मैं भी चलूंगी।' कजरी ने कहा।

'मैं भी चलूंगी।' प्यारी ने कहा।

'नहीं। तुम दोनों नहीं चलोगी।' सुखराम ने दृढ़ता से कहा।

'तेरे कहे से ?' कजरी ने कहा : 'तू है कौन ?'

'अच्छा मुझे सोने दे।'

'तू जाकर क्या करेगा ? निरोती का कतल !'

'मैं क्या कोई तुम्हारी तरह हूँ !' सुखराम ने कहा।

दोनों के मुँह पर हवाई-सी उड़ी ।

'तू हमें खूनी समझता है ?' कजरी ने पूछा ।

'और क्या समझूँ ?'

'तो जा !' कजरी ने कहा : 'जा तू कल गिरफ्तार हो जा ।'

'ये तो सिर चढ़ गया है ।' प्यारी ने राय दी ।

'दो-दो खूबसूरत बहू हैं ।' कजरी ने कहा । 'तभी तो धरती पर पाँव नहीं रखता ।'

'अब मैं तुम्हें कैसे समझाऊँ ?' सुखराम ने कहा : 'तुम डरती क्यों हो ? मैं लौट आऊँगा । बस !! अब तो ठीक है । मैं क्या किसीसे लड़ता हूँ ?'

'हाँ बाँके से लट्ठ तो मैंने चलाया था ?' कजरी ने पूछा ।

सुखराम चिढ़ा । बोला : 'चुप रहती है कि बताऊँ ? घंटे भर से चबर-चबर कर रही है । समझती न बात ।'

'मैं नहीं समझती कि तेरी अकल पर पत्थर पड़ गये हैं ।'

'भला सो कैसे ?'

'अच्छा तूने लोगों से कहा भी तो निगोती के खिलाफ तेरे पास सबूत क्या है ?'

'कुछ नहीं ।' प्यारी ने कहा ।

'सबूत !' सुखराम ने कहा : 'साँच को सबूत की क्या गुञ्जायस ! मैंने आँखों से देखा है ।'

'अब ये नहीं समझता ।' प्यारी ने कहा : 'मैं इसे तभी तो बेवकूफ़ कहती थी ।'

कजरी ने कहा : 'हाँ जेठी ! तू ठीक कहती थी । मैं नाहक तब इसकी अकल-मंदी पर जोर दे रही थी । पहले तो यह ऐसा न था । तेरे आते ही फिर बेवकूफ हो गया ।'

'अरी नहीं । यह सदा का ऐसा है । एक बार पहले यह ऐसे ही मेरी इज्जत बचाने गया था, तब पिटा था ।'

'कब !'

'शुरू में । दरोगा ने पकड़वा ली थी, सो राजा जी अपनी ठकुरानी के लिये गये थे ।'

'फिर क्या हुआ ?'

'पिटे और हुआ क्या ?'

'नटनी की इज्जत !' कजरी हँसी ।

'अच्छा दोनों की सलाह हो रही है', सुखराम ने कहा : 'मैं नहीं डरता, समझी । मुझे जो अच्छा नहीं लगता, उसे मैं बुरा ही कहूँगा ।'

'अरे कहने का हक भी तो हो ।'

'हक तो लिया जाता है ।'

'क्यों न हो ? कितने ले लिये ऐसे !'

सुखराम जवाब न दे सका । कहा : 'झगड़ा करना है तो आपस में कर लो । मुझे फुरसत नहीं है ।'

'तू तो एक छोड़ दो-दो की छाती पै मूँग दलने की सोच रहा है ।' कजरी ने कहा ।

'रहने दे,' प्यारी ने काटा : 'इस बखत वह बड़े काम में लगा है, उसे फुरसत नहीं है ।'

दोनों हँस दीं ।

'अच्छा मुझे सोने दो ।' सुखराम ने कहा ।

'आज तुझे नींद आने लगी ।' प्यारी ने कहा ।

'अच्छा बकै मत ।' सुखराम ने टोका ।

'जो बघेर आके तेरी इस लाड़ली को उठा ले गया तो ? ' प्यारी ने कहा ।

'बांध के सिरहाने धर के सो जा ।'

'और मुझे ले गया तो !'

'आँच तेज कर दे परमेसुरी । सोने दोगी कि यहाँ से हट जाऊँ ? काँय-काँय-काँय मचा रखी है । हे भगवान ! किसीको दो मत दीजो । कै तो आपस में कलेस करके चैन नहीं लेने देंगी, कै मिल के उसीको खा जायेंगी । एक से ही भर पाई थी, अब तो दो हो गईं ।'

'देखो नासपीटे को । जाने कहाँ से इसे नींद फटी पड़ रही है !' कजरी ने कहा : 'चारों ओर सूनसान है । राजा जी को पत्थर भी गदेले हो गये हैं । चैन से पड़ा है निपूता !'

प्यारी ने उसके आश्चर्य्य को समझते हुए कहा : 'अरी मेरा बाप भी ऐसा ही था । मेरी अम्मा से हमेशा दबके रहता था पर नींद के बखत नहीं । कजरी, मरद की जात ऐसी कि नींद के बखत राजा होता है । उस बखत तो पत्ता

खड़क जाय तो पेड़ का दुसमन हो जाये। बड़ी खराब नीयत का होता है यह। बच्चा रो गया तो उसकी अम्मा को मारैगा। भला कोई बात है। बच्चे पै भगवान का जोर नहीं। उस पर भी हुकम लागू करैगा।'

और इसी तरह वे दोनों बातें करती रहीं। सुखराम सो गया। तब वे दोनों थकी-सी उसके बारे में चर्चा करती रहीं। दोनों ने अपने-अपने मन के भय व्यक्त किये।

फिर वे सो गईं।

भोर के पहले ही पेड़ पर कोई चिड़िया चहक उठी। उसे सुनकर प्यारी जाग उठी। उसने दोनों को जगा दिया।

'सच कहता हूँ।' सुखराम ने कहा : 'ऐसी गहरी नींद में सो गया था मैं कि फिर अब होश आया है। सारी थकान दूर हो गई।' और उसने एक बार अंग मरोड़कर जँभाई ली। कजरी को देखा-देखी जँभाई आई। यह जँभाई की बीमारी ऐसे ही फैलती है। तैयार हुए। रोटी बनी। खायी चुके तो उजाला फैल चला।

सुबह चले तो एक नगला पड़ा। कोई चार-पांच घर। कुछ आदमी। कुछ ढोर। और चारों तरफ़ वही पहाड़।

सुखराम को देखकर कुछ लोग बाहर आ गये। उस रास्ते पर नये आदमियों को देखकर उनको आश्चर्य्य होना स्वाभाविक ही था। कुछ स्त्रियाँ भी आड़ में खड़ी हो गईं।

'क्यों भइया करनट कहाँ हैं ?' सुखराम ने पूछा।

'तुम कौन हो ?' एक ने पूछा।

'करनट हैं।' सुखराम ने जवाब दिया।

'बस कोई आध कोस होगा उनका बास।'

जब ये लोग करनटों की बस्ती में पहुँचे तो कई करनट पास आ गये। पूछ-ताछ हुई। अन्त में उन्होंने प्रसन्नता से कहा : 'मन चाहे जहाँ रहो। यहाँ कोई डर नहीं है।'

उन्हें डेरा बनाने की इजाजत मिल गई। सौभाग्य से एक डेरा ही मिल गया, क्योंकि उसकी मालकिन ने ब्याह कर लिया था और वह डेरा उसके पास बेकार था। प्यारी के पास रुपये थे। पाँच रुपये देकर वह डेरा ले लिया गया।

जब वे डेरे में आ गये तो सुखराम ने कहा : 'तेरे पास रुपये हैं ?'

'हैं।'

'कितने ?'

'सौ थे। अब पाँच कम सौ हैं।'

'तैंने रखे कहाँ हैं ?'

प्यारी ने लहँगे के नाड़े में भर रखे थे। भारी लहँगा था। पता भी नहीं चलता था।

'तू ले कैसे आई इन्हें ?'

'मैं सदा इन्हें यहीं रखती थी। कौन जाने कब भागना पड़ जाता।'

वह दिन आराम में निकल गया। दूसरे दिन सुखराम ने जान-पहचान बढ़ाई।

एक नट था किसना। बड़ा नीला-सा रंग था उसका, जैसे कच्च काला। सुखराम के संग उसे आता देख कजरी ने कहा : 'ओ जेठी ! तेरा भैया ढूंढ लाया आज तो ये।'

प्यारी ने देखा तो झेंपकर कहा : 'आग लगा ! कहाँ से पकड़ लाया है इसे ?'

दोनों हँसीं।

सुखराम ने उसे बिठाया और कहा : 'यह दोनों मेरी लुगाइयाँ हैं।

उसने मुड़कर देखा और कहा : 'मेरी बहू बहुत अच्छी है। वह इनकी देखभाल कर लेगी। तुम फिकर न करो। मेरी लड़की भी इत्ती ही बड़ी है। वह भी आ जायेगी कल। फिर ये सब रह लेंगी।'

'राजा जी कहाँ हैं ?'

'वे तो सहर गये हैं।'

सहर से उसका तात्पर्य बड़े गाँव से था। क्योंकि असली शहर उसने देखा ही नहीं था।

सुखराम ने कहा : 'तो बस ठीक है।'

आगंतुक चला गया। प्यारी ने कहा : 'आज ये अपना चाचा कहाँ से ले आया ?'

सुखराम हँसा। कहा : 'तूने तो चचिया ससुर के पांव न छुए ?'

'अब छू लूंगी।' प्यारी ने कहा।

'मेरे भाग।' कहकर वह फेंटा बाँधने लगा।

'फिर फेंटा क्यों बाँध रहा है ?' प्यारी ने कहा ।

'ज़रा गाँव हो आऊँ ।'

कजरी बाहर जा बैठी । प्यारी ने कहा : 'और हम क्या करेंगी !'

'मजे करो । यहाँ कोई चिन्ता नहीं है ।'

वह बाहर आया तो उसने कहा : 'कजरी कहाँ है ?'

'मुझे क्या खबर !' प्यारी ने कहा । डेरे की ओट से आहत-सी मलिन मुख से देखती हुई, उस वक्त कजरी ने कहा : 'तू जा रहा है ?'

सुखराम ने कहा : 'डरती क्यों है ?'

'अपने लिये डरूँ तो कसम है ।' वह वहीं खड़ी रही ।

'अरे तू बड़ा वो हो गया है ।' प्यारी ने कहा : 'रोकते-रोकते छोटी का मुँह सूख गया ।'

'तू क्यों बोली !' सुखराम ने कहा : 'तूने तो न रोका ।'

प्यारी ने कहा : 'सुनती है ! तू कहती है, तो चाहता है, मैं भी अलग से कहूँ ?'

कजरी ने याचना की : 'कह दे न जेठी ! अगर ये तेरे कहने से ही मान जाये । वह दुनिया बड़ी खतरनाक है ।'

सुखराम ने कहा : 'तुम नहीं जानतीं । मैंने धूपो को वचन दिया था । मैं देख तो आऊँ उन लोगों को । नहीं तो वे यह न कहेंगे कि उसने भड़काया और भाग गया ? कित्ती बुरी बात है । आखिर उनके क्या जान नहीं है ? और फिर रात को उन पर गोली चली थी । जाने कौन मरा होगा । उनको देखने वाला कोई नहीं ।'

'मुझे कसम दे दे, जा ।' प्यारी ने कहा ।

'तू कसम क्यों दिलाती है !' कजरी ने पूछा । उसके स्वर में उलाहना था । जैसे परोपकार की वह सब बातें वह मानती है, पर उसकी राय में अब भी उसका जाना व्यर्थ है ।

'किसकी !' सुखराम ने कहा ।

प्यारी ने अपने गंभीर मुख को उसकी ओर मोड़ा और उसके नेत्रों में एक चमक-सी आ गई । उसने क्षण भर रुककर दृढ़ता से हाथ फैलाकर कहा : 'कजरी की ।'

कजरी स्तब्ध रह गई । प्यारी के मुख पर उन्मत्त महिमा थी । उसकी गोरी

नाक पर उठी हुई भ्रू अराल हो गई थीं और बरौनियाँ फैल गई थीं। उसकी मांसल हथेली फैली हुई थी। वह प्रतीक्षा करती हुई खड़ी थी। सुखराम ने इस रूप को बहुत दिन के बाद देखा था। यह उसके पास की छवि का साकार आविर्भाव था।

'अपनी क्यों नहीं कहती ?' उसने पूछा।

कजरी ने क्षण भर सुखराम को देखा और फिर प्यारी को। उसने अपनी सत्ता को परोक्ष में रखकर जैसे दो प्रत्यक्षों को तुला पर रखकर टाँगा। प्यारी उसकी दृष्टि को समझ गई थी।

'मैं झूंठ क्यों बोलूं ?' उसने कहा : 'मुझे यहाँ कौन लाया है, बता सकता है ?'

'मैं।'

'अरे जा, जा।' प्यारी ने कहा।

'तो।'

'कजरी लाई है।'

'कजरी ही सही। मुझे क्या उससे कोई होड़ है !'

'तो कसम दे !'

'जा। सौगन्ध है ! लौट आऊँगा।'

'वहाँ किसीने कह दिया कि तू बड़ा बहादुर है तो भड़ी पै मत चढ़ जइयो !'

सुखराम चला गया। कजरी ने वेदना से भरी सांस छोड़ी। प्यारी ने कहा : 'डर मत, वह आ जायेगा।'

एक बुढ़िया ने पुकारा : 'खबर आई है। राजा जी गिरफ्तार हो गये।'

'यह कैसी बात !' प्यारी ने कहा। 'राजा को कौन पकड़ सकता है ?'

'अरी ये करनटों के राजा की कहती है।' कजरी ने कहा।

'तो क्या वह बड़ा नहीं होता ?'

'वह ? जैसे हम, वैसा वह।'

'तो फिर उसकी अमलदारी कहाँ है ?'

'तू तो लगता है नटिनी नहीं।'

'पर हमारे गाँव में तो राजा एक बेर आया था जब मैं बच्चा थी। मुझे तो याद भी नहीं।'

'तभी। उसकी अमलदारी वहाँ है, जहाँ-जहाँ करनट हैं, चाहे कहीं हों।'

प्यारी की समझ में आया।

धीरे-धीरे सांझ आ गई। अंधेरा पहाड़ पर चुभकी मारता और हर बार एक चट्टान को ले रँगता। धीरे-धीरे सारा पहाड़ काला हो गया। उसके किनारे पहले धुंधले-से हुए, फिर धुंआ-धुंआ हो गये, जैसे बहुत घना कोहरा छा रहा था। और तब डेरों और झोंपड़ों में चूल्हे सुलग उठे।

प्यारी आटा गूंधने लगी। कजरी पास बैठी थी। रोटी बनाकर प्यारी ने कहा : 'चल कजरी खा ले।'

कजरी ने कहा : 'मुझे भूख नहीं जेठी।'

'क्यों ?'

'जाने क्या बात है ?'

'अरी मैं सब जानती हूँ।'

'तुम्हें नहीं लगता कुछ ?'

'लगता क्यों नहीं ? पर तेरी जिम्मेदारी तो मुझ पर है।'

'सो कैसे ?'

'तू अभी छोटी है, समझती नहीं।'

वह कितना स्नेह था इसे क्या कजरी नहीं समझती ?

दोनों ने रोटी खाई। और लेट गई। डेरों में कहीं-कहीं गीत उठ रहे थे। कोई बांसुरी बजा रहा था और कहीं ढोलक बजती थी। धीरे-धीरे वे सो गईं। आधी रात को कजरी जग गई।

'क्या है', उसने कहा।

'कुछ नहीं।' प्यारी ने कहा : 'जब से रोटी खाई है, पेट कुछ भारी-सा हो गया है।'

'अभी तू कराह रही थी न !'

'हाँ, नींद खुल गई। पेट में दरद है।'

'जाने तेरे कैसी लगी है। बड़ी जोर की लात थी। अब वह आये तो देखे। वह तो ठीक कर देगा। तूने उससे कहा नहीं।'

'मैं समझी ठीक हो जायेगा। ये तो फिर उठ आया और क्या होगा। ज्यादा से ज्यादा मर ही तो जाऊँगी !'

कजरी ने कहा : 'अब के तो कहके देख। दाँत झड़ा दूँ तेरे।'

२६

चमारों पर पुलिस ने अपने जुल्म शुरू किये। उन्होंने पहले अपना आतंक जमाया। उन्होंने सिपाहियों को भेजा जिन्होंने एक-दुक्के चमारों को पकड़-कर थाने में बंद करके खूब पीटा और फिर भी नहीं छोड़ा। नौजवान चमारियों के साथ कितने ही लोगों ने छेड़-छाड़ की, पर अब उनकी रक्षा करने वाला कोई भी नहीं था। उनका रोदन घरों में डूब गया, पर बाहर आने पर उसका कोई भी मूल्य नहीं था। बच्चों को वे रोने से चुप करके घरों में घुसा लेतीं और राह पर भी सिपाही देखकर थर-थर काँपने लगतीं।

औरतों को चारों ओर अंधेरा ही अंधेरा दिखाई देता था। वह बूढ़ा जिसने धूपो का विरोध किया था, अब पुलिस का मुखबिर था। उसने एक-एक खबर दी थी। उसकी सारी रक्षा पुलिस पर निर्भर थी। औरतें उसे गालियाँ देतीं, पर उसकी जोरू अब सबको ज़ोर-ज़ोर से गालियां देती। उसके अहंकार को देखकर तो कोई भी सरकारी अफ़सर शर्मिन्दा हो सकता था, क्योंकि बरसाती पानी से भी कम समय के उस उद्वेग में अथाह प्रवाह था।

दोनों ठाकुर अब पुलिस से मिले हुए थे। चरनसिंह मूँछों पर ताव देता था। उधर ठाकुर हरनाम के प्रयत्नों से नटों में से कई जवानों को थाने में पकड़ लिया गया था और कई जवान नटनियों को सिपाहियों की बुभुक्षा को तृप्त करना पड़ा था। नटों के पास से जितने पैसे निकल सकते थे, वे निकलवा लिये गये। चारों तरफ से दुगनी मार खाकर जनता विक्षुब्ध हो गई थी। परन्तु फिर भी कोई राह नहीं थी।

निरोती पुलिस की नाक का बाल था। उसने साफ़ जनेऊ की कसम खाकर खचेरा को आग लगाने के जुर्म में गिरफ़्तार करवा दिया। खचेरा ने कहा: 'पण्डित दुहाई है। गंगा की ओर हाथ उठाकर कहो। तुमने मुझे आग लगाते देखा?' परन्तु पंडत ने कहा: 'देखा दरोगा जी! इसकी मजाल जो मुझे धरम सिखाने लगा।'

दरोगा जी ने कड़ककर कहा: 'पकड़ लो साले को। इसकी यह हिम्मत!'

खचेरा चमार था। डरा भी था। किन्तु इतनी बड़ी झूंठ को सहना, और न बोलना उसके लिये असंभव हो गया था। उसने जवाब दिया था और अब

लोहे के सीखचों के पीछे बंद था। उसकी बहू एक भी बार उससे मिलने नहीं दी गई।

चमारों की खेती खड़ी थी, कट रही थी। पर कौन काट रहा था इसका कोई हिसाब नहीं था। ठाकुरों ने उनका जैसे बाँट कर लिया था। चोरी के माल का आधा दरोगा जी के यहाँ पहुँच जाता था और फिर किसीका डर शेष नहीं था।

जो लोग मारे गये थे उनकी लाशों को पुलिस ने ही ठिकाने लगा दिया था। चमारों के परिवार प्रयत्न करके भी उन्हें पा नहीं सके थे। जिनके घरों के मर्द मर गये थे और औरतें ही बच रही थीं, वे घर भूख के अड्डे हो गये। बच्चे तड़पते थे। पहले कम से कम एक जून तो पेट भरते थे और इतनी महरबानी और बढ़ गई कि दूसरे जून पर भी कृपा कर दी गई।

ऐसा था वह चमारों का मुहल्ला, जहाँ सुखराम पहुँचा। उसको हर्ष था। वह धूपो के अपमान का बदला सुनाने के लिये आया था। उसे आशा थी कि खचेरा मिलेगा। परन्तु खचेरा कहीं भी नहीं मिला।

सुखराम को देखकर चमारिनों ने मुँह फेर लिया।

वह पास गया। उसने देखा, उनकी आँखों में आँसू थे। वही अधेड़ औरत पास आ गई।

सुखराम ने कहा : 'खचेरा कहाँ है ?'

स्त्री ने बताया। वह सुनाती जाती थी, सुखराम दाँत पीसता जाता था।

'और क्या-क्या हुआ ?'

'पीतो को उन्होंने इतना मारा कि उसके दाँत तोड़ दिये।'

'वह है कहाँ ?'

'मर गया !'

वह रोई।

'और !' सुखराम ने कठोरता से पूछा।

'राघू की बहू कूएं में डूब मरी।'

'क्यों ?'

'ठाकुरों ने उसे कहीं का न रखा।'

सुखराम ने दोनों हाथ उठाकर कहा : 'तू देख रहा है ? यह है तेरी दुनिया ! यह है तेरा न्याव ! और कहने को हम कमीन हैं ! ये लोग जात के बल पर,

डण्डे के बल पर गरीबों की खाल खेंचते हैं। इनका घमंड सबको कुचलकर रखता है। यह नफ़रत के बल पर जीते हैं, ताकि दूसरों का घर बरबाद कर सकें।'

वह कह नहीं सका। उसका गला रुँध गया। फिर रुककर कहा : 'और कह भाभी !'

'उन्होंने !' स्त्री ने कहा : 'बुद्धा, हीरो और पंगा को नंगा करके बेंतों से पीटा और उनकी औरतों के मिर्च भर दी।'

सुखराम के रोंगटे खड़े हो गये। उसकी आँखें भय से निकल आईं। स्त्री ने कहा : 'पंगा की बहू के पेट था। गिर गया। वह मर गई।'

सुखराम पागल-सा हँसा। कहा : 'बहुत अच्छा हुआ। बहुत अच्छा हुआ। और !'

स्त्री ने कहा : 'और क्या कहूँ ?' वह रो दी।'

'क्यों ?' सुखराम ने कहा : 'तुम यों रोओगी तो उनकी इच्छा जो पूरी हो जायेगी ! उनका काम है लोहे से लोहा काटना। तुम डरोगी तो उनकी हिम्मत बढ़ेगी। रोओ नहीं भाभी। उनको जुलम करने दो, तुम रोओ नहीं। सहो, और सहा नहीं जाता तो लड़ो। हम नट हैं ! हमारे पास कुछ नहीं। हम जुआरी, चोर, उचक्के, बेईमान, कमीने, धोखेबाज़, झूंठे हैं ! हमारी औरतें कुतियों की तरह रहती हैं। ये सिपाही, ये बड़े लोग उन्हें बीमारी देते हैं। फिर वे औरतें वे ही बीमारी हमें देती हैं। फिर हम मरते हैं। मरते वक्त गुस्सा आता है तो कतल तक करते हैं। हम कभी किसीका भला नहीं कर पाते, हमें मौका मिलता है तो हम लोगों को ठगने का जतन करते हैं। जो भूखे मरते हुए किसान हैं, वे भी हमसे सुखी हैं। उन्हें बोहरा नोंचता है, वकील ठगता है, पुलस खाती है, सब चूसते हैं, पर हम उनसे भी गये-बीते हैं। हम इतने मर चुके हैं कि हम बेघरबार कुत्ते की तरह घूम-घूमकर झूंठन खाने को अपनी आजादी कहते हैं। पर हम रोते नहीं। तुम कैसे रोती हो ?'

सुखराम आवेश में आ गया था। स्त्री ने कहा : 'फिर हँस दूँ ?'

'हाँ भाभी।' सुखराम ने कहा। 'हँसो। तुम धरती की तरह गरभ में बच्चों को पालो और जनम दो। वे तुम्हारे बच्चों को साग-भाजी की तरह काटें तो तुम रोओगी ! धरती कहीं रोती है ? नहीं। धरती को जब गुस्सा आता है तब भूचाल आते हैं।'

उसने गुस्से से अपना सिर पकड़ लिया। और कहा : 'तू मुझे रोकती थी कजरी ! तू मुझसे न आने को कहती थी प्यारी। आओ ! यहाँ आकर देखो ! क्या हो रहा है यहाँ ? अरे, तुमसे देखकर यह झेला जाता ? कितनों का कतल किया जा सकता है। हे भगवान !' उसने हाथ उठाकर कहा —'ये दुनिया नरक है। हम गंदे कीड़े है। तूने यह संसार ऐसा क्यों बनाया है जहाँ आदमी कटता है तो उसके लिये दर्द तक नहीं होता। यहाँ पाप इतना बढ़ गया है कि गरीब और कमीना आदमी कोढ़ी बन-बनकर अपने पेट के लिये अपनी अच्छी देही को गंदा बना लेता है ! यहाँ एक-एक आदमी दबता है, पर हम तो कमीन हैं। वे बड़े लोग क्यों करते हैं ऐसा ? क्या वे अपने धन और हुकूमत के लिये आदमी पर अत्याचार करने से नहीं काँपते। तू चुप है, तू जवाब नहीं देता। नट की छोरी पर जवानी आती है और गंदे आदमी उसे बेइज्जत करते हैं, फिर वह रंडी की तरह जिये जाती है। जिये जाती है। मर क्यों नहीं जाती ! हम सब मर क्यों नहीं जाते ?'

'हम नहीं मरते,' उस अधेड़ औरत ने कहा : 'भइया, क्योंकि हम रोज पाप करते हैं। भगवान जिला-जिलाकर दण्ड देता है। भगत कहते थे कि चौरासी लाख जोनि पार करके यह जनम मिला है।'

'भाभी !' सुखराम ने कहा : 'चौरासी लाख जोनि पार करके यह जनम मिला है ? इसके बाद फिर उतनी ही बार मानुस-जनम नहीं मिलेगा ? तो फिर अब भी, तब भी, सदा ही हमें बैल की तरह जुते रहना है !'

उस भयानक चित्र की कल्पना करके दोनों दहल गये।

सुखराम ने हँसकर विद्रूप से कहा : 'तो खचेरा जेल में है भाभी। आ मेरे पास ! एक बात कहूँ। सौगंध दे, किसीसे नहीं कहेगी ?'

'कह देवर !'

'किसीसे नहीं कहेगी ?'

'नहीं। वचन देती हूँ।'

'तो सुन, मेरी ही लुगाइयों ने बाँके और रुस्तमखाँ को गोद-गोदकर मारा था, जिनकी मौत का बदला अब खचेरा से लिया जायेगा।'

'लिया जायेगा ? उन्होंने उसका घर उजाड़ दिया। उसकी बहू·····

वह काँपने लगी।

'क्या हुआ ?'

'वह फाँसी लगाकर मर गई। उसके बच्चों को वह अपने हाथ से गला घोंट-घोंटकर मार गई।'

सुखराम ने सिर दीवार से दे मारा।

'और खचेरा रजधानी की जेल में है। उसे फाँसी हो जायेगी।'

सुखराम हँसा। कितना भयानक था वह हास्य। उसने कहा : 'भाभी ! मैंने सोचा था कि कजरी और प्यारी को पकड़वाके खचेरा को छुडा लूं पर अब ऐसा नहीं करूँगा, अब बदला लूँगा। मैं इस दरोगा को धूल में मिला दूँगा। यह दुनिया तो ऐसी ही रहेगी, पर पापी को दण्ड भरना ही होगा।'

स्त्री उसके साहस पर मुग्ध हो गई थी। कहा : 'भगवान तेरे साथ है सुखराम ! जो कहीं आज तुझ-सा एक मेरा बेटा होता तो मैं खुशी से पागल हो गई होती।'

सुखराम ने झुककर उसके पाँव छुए। कहा : 'तू मेरी माँ ही है आज से मैं तेरा बेटा हूँ।'

'जुग-जुग जी मेरे लाल।' स्त्री ने कहा और आँसू पोंछे।

अत्याचार का विरोध गांव में तत्कालीन कांग्रेसियों ने किया था। अधिकांश कांग्रेसी परचूनिये और दूकानदार थे। ठाकुर विक्रमसिंह [नरेश के पिता] पहले ही से जेल में थे। उनके परिवार का काम ही बड़ी मुश्किल से चल रहा था। [मेरी] भाभी के पास नरेश उस समय छोटा-सा था। परचूनियों का असली शोर तो तब होता था जब उनके व्यापार में गड़बड़ी पड़ती थी। कुछ बनिये छिपा-चोरी चंदा देते थे। ख़बर राजधानी के वकीलों के पास पहुँच गई थी और वहाँ उसका वितंडा खड़ा करने की तैयारी की जा रही थी। परन्तु गांव में मुआयने के लिये आने में देरी थी। गाँव के मास्टर प्रायः हर जगह ही मन में कांग्रेस के सहायक थे। वे भी दबी ज़बान से पुलिस के अत्याचार की निन्दा कर रहे थे, परन्तु ठाकुर और बामन उनके विरुद्ध थे। वे चमारों की इस सरकशी को सीधे या उल्टे तरीके से कांग्रेस के प्रचार का ही फल मानते थे और इसमें उनकी शाश्वत धारणायें कलियुग के प्रवाह में बही जा रही थीं। न जाने कैसे भीड़ में एक-आद बार महात्मा गान्धी की भी जै बोल दी गयी थी।

शाम हो गई थी। थानेदार बीच में बैठे थे। उनके आसपास छोटे अमले बैठे थे। जैसे वर्णन नागों के आते हैं कि बीच में नागों का राजा बैठता है

और फिर इधर-उधर छोटे-छोटे सांप बैठते हैं, वैसे ही वे सुशोभित हो रहे थे।

शराब चल रही थी। उन्होंने बीकानेर के एक कलार से खिंचवाई थी। अंगरेज़ी हुकूमत में सुना जाता था कि कांग्रेस कहीं-कहीं शराब-बन्दी करवा रही थी। इसकी प्रतिक्रिया यहां शराबियों में आतंक बनकर फैल गयी थी।

सामने गिद्ध-दृष्टि से देखता हुआ तहसील का पेशकार बैठा था। उसके साथ निरोती बामन धरमात्मा बना बैठा हुआ था। वह शराब नहीं पी रहा था। ठाकुर हरनाम और चरनसिंह की आँखों में तो लाली आ गई थी।

सुखराम पहुँचा। उसने सलाम करने के पहले सब ओर देखा। उसको देखकर निरोती चौंक उठा। दरोग़ा जी अपनी बातों में मशगूल थे। अभी उनकी निगाह नहीं पड़ी थी।

सुखराम ने वह जशन देखा तो तबियत बुझने लगी। एक ओर उसी गाँव में हाहाकार है, दूसरी ओर यह आनन्द है। यह संसार कैसा अजीब है! एक का दर्द दूसरे के लिये कुछ नहीं! जो लोग बड़े-बड़े हैं, वे इसको देखते रहते हैं! यहां ठाकुरों के बीच में बामन बैठे हैं। सब चल रहा है। सब अपनी-अपनी जगह चलता ही जा रहा है। पर कोई रोक नहीं है। सदा से ऐसा ही चलता आ रहा है।

परन्तु सुखराम को इसमें मन में कचोट आती है कि वह जानवर की तरह दूर बैठा रहे और वे सब आनन्द मनाया करें। पर उसके सोचने न सोचने से होता ही क्या है?

वह ठाकुर नहीं है। दुनिया में वह केवल एक करनट है, और करनट नीच होता है।

नीच! उसको फुरफुरी-सी आ गई। दरोगा जी किसी बात पर हँसे और सामने देखा। सुखराम ने सलाम किया।

दरोगा जी ने पूछा: 'कौन है?'

'हुज़ूर करनट हूँ।'

'तेरा नाम।' उन्होंने कड़ककर कहा।

'मालिक, सुखराम।'

'अबे तू मालिक है! बैठ जा।'

वह बैठा। और कहा: 'मालिक तो सरकार आप हैं। मैं तो सुखराम हूँ।'

कुछ लोग हँस दिये। पेशकार ने डाँटा : 'कैसे बोलता है बे ! हुजूर की शान में बेअदबी करता है !'

सुखराम सकपका गया। उसने कहा : 'मालिक माफ़ करो। अपढ़ गमार हूँ।'

'कैसे आया ?' दीवान जी ने पूछा।

'सरकार को सलाम करने आया था। हम पर मेहरबानी नहीं हुजूर ! जमादार थे तब तो चैन था सरकार !' उसका इंगित रुस्तमखाँ से था।

'तू कहाँ था ? अब तक ?'

'भटकता था सरकार !' उसने सिर पर हाथ दे मारा। इधर नटों पर जुल्म हुआ था और वह अभी तक गिरफ़्तार क्यों नहीं हुआ था ! उसके तो दो खूबसूरत बीवियाँ थीं। सुखराम ने कुछ क्षण अपनी दयनीयता का झूंठा प्रदर्शन करके कहा : 'सरकार पूछो नहीं। मैं मर गया !'

दीवान जी ने हँसकर कहा : 'देखा हुजूर ! यह लोग कितने मक्कार होते हैं। हट्टा-कट्टा बैठा है फिर भी कह रहा है मर गया। बाहर जाकर कहेगा कि थाने से मेरी लाश निकल रही है, और पुलिस के ईमानदार पेशे को बदनाम करेगा। क्यों ?'

'बड़े चालाक लोग हैं।' पेशकार ने कहा।

'हुजूर ! माई-बाप हैं,' सुखराम ने गिड़गिड़ाकर कहा : 'गरीब आदमी हैं !'

'अबे' दीवान जी ने कहा : 'इसमें गरीब-अमीर का क्या सवाल है। देखा हुजूर, गरीब है तो जैसे इसके सब कुसूर माफ़ !'

दरोगा जी ने कहा : 'तेरी औरतें कहाँ हैं ?'

'मेरी दोनों लुगाइयां खो गई। पता नहीं चलता महाराज। उन्हें ही ढूंढ रहा था। अब हार गया तो सरन में आया हूँ।'

'देखा हुजूर !' दीवान जी ने कहा : 'इसका मतलब यह है कि हमने इसकी औरतों को पकड़ रखा है ! देखा आप लोगों ने साहिबान !' उन्होंने उपस्थित लोगों की ओर देखकर अपनी पवित्रता की दुहाई दी।

'समझ में आ गया' थानेदार ने कहा : 'तो वे ठठरियाँ बाँके और रुस्तमखाँ की ही थीं। जब इसकी बीवियाँ वहाँ से गायब हो गईं तो लगता है डरकर भाग गईं। इन दोनों में शराब पीकर औरतों के पीछे झगड़ा हुआ और खून-

खराबा देखकर वे दोनों रफूचक्कर हो गईं और गिरफ्तार न हो जायें इसलिये इसको भी संटी दे गई।'

पेशकार ने कहा : 'मगर वे गई कहाँ ?'

'लुट गया सरकार।' सुखराम ने रुआँसे स्वर से कहा जैसे दुख से मरा जा रहा था।

निरोती बामन ने कहा : 'हुजूर ! नटिनी का क्या। रंडी और नटिनी में क्या फरक है ?'

उसकी बात सुनकर दरोग़ा जी ठठाकर हँसे। कहा : 'वाह पण्डित जी कमाल करते हो !'

निरोती ने कहा : 'सरकार, अब आप ही देख लें।' और हँसकर उसने कुटिलता से सिर हिलाया, जिसमें आँखें मिच गईं और अपनी हथेलियाँ खोल दीं।

सुखराम ने कहा : 'मैं बताऊँ सरकार ! रंडियों और नटिनी में उतना ही फरक है महाराज,' उसने निरोती की ओर देखकर कहा : 'जितना तुममें और चमारों में।'

अर्थात् क्रम से उसने चमार और नटिनी एक ओर रखे और रंडी और निरोती बामन एक ओर।

सभा में सन्नाटा खिच गया।

'क्या बकता है !' निरोती चिल्लाया। दरोगा जी चुप थे। उनकी राय में यह भी ठीक ही था कि थोड़ी निरोती की भी पगड़ी उछल रही थी। अब साला दबकर तो रहेगा। निरोती को विक्षोभ हुआ। उसने दरोगा की ओर देखकर कहा : 'देखा सरकार ! जात का करनट ! कैसे बोलता है ?'

उन्हें बड़ा क्रोध था।

दरोगा जी ने कहा : 'अबे होश में नहीं है क्या ? पण्डित जी से ऐसे बोलते हैं !'

वह दूसरा पक्ष भी दबाये रखना चाहता था। नीच धोबी, कुम्हार, भंगी, सब ही सिर चढ़ रहे थे। फिर चमार तो जैसे कांग्रेस के ही आदमी थे। और यह करनट। सबसे गया बीता था।

सुखराम ने कहा : 'हुजूर अनदाता माई-बाप हैं। पर इन्हीं पण्डित जी की वजह से जमादार मारे गये। मेरी लुगाइयाँ खो गईं।'

पंडित तमककर खड़े हो गये। चिल्लाये : 'साले मुझ पर दोष लगाता है। तू ब्राह्मण पर पाप लगाता है। और वह भी तब जब कि बदमाश पकड़ा गया है।'

'कैसा दोष महाराज ?' सुखराम ने कहा।

'तू यही न कहना चाहता है कि आग मैंने लगाई थी।' पंडित गुस्से और घबराहट में बक गया। वह कहता गया : 'मैं जानता हूँ तू यह भी कहेगा कि तूने मेरा पीछा किया और मैं तेरी पकड़ में नहीं आया। क्यों ?'

सुखराम ने कहा : 'पण्डित महाराज ! तुम यह सब मेरे मन की कैसे जान गये। तुम्हें तो तिरलोकी दीख रही है आज।'

दरोगा ने दीवान जी से कान में झुककर कुछ कहा। पंडित कांपने लगा। सुखराम ने कहा : 'पंडित काँपते क्यों हो ?'

'कहाँ ?' पंडित ने सकपका कर कहा : 'मैं कांपता हूँ ?'

और फिर दरोगा को देखकर कहा : 'सरकार ! आपके दरबार में मेरी विनती पर ध्यान नहीं दिया जा रहा है ? यह क्या कह रहा है ?'

लगा पंडित रो पड़ेंगे।

'अब रोते हो महाराज !' सुखराम ने कहा : 'तब जमादार से दुसमनी निकालने चले थे !'

निरोती का मुँह सूख गया। कहा : 'मेरा जमादार से कब का बैर था ?'

'उसकी रखैल से तो था !'

'था ! और तुझे शर्म नहीं कि वह तेरी लुगाई थी।'

'भली कही,' सुखराम ने कहा : 'जो हमारी बिरादरी में होता है उसमें शरम कैसी ?'

'तभी तो कहता हूँ तुम लोग नीच हो।'

'और,' सुखराम ने कहा : 'सरकार और कहूँ ?'

'क्या है ?' दीवान जी ने कहा।

'पंडित जी ने आग लगाई थी। मैंने देखा था।'

'पकड़ा क्यों नहीं ?'

'मैं पीछे भागा। पंडित कहीं अंधेरे में छिप गये।'

'यह हो सकता है सरकार ?' पंडित चिल्लाया।

'और सुनिये अन्दाता।' सुखराम ने कहा।

'क्या है कह ।' दरोगा जी ने कहा ।

'सरकार डरता हूँ ।'

'हमारे रहते ?'

'मालिक, आप ही का भरोसा है ।'

दीवान जी ने कहा : 'अबे जल्दी बोल ।'

सुखराम की आँखें दौड़ने लगीं । उसकी आँखों ने फ़ौरन अपने चोर पकड़ लिये ।

'सरकार, बाँके मेरा यार हो गया था । ठाकुर हरनाम और ठाकुर चरनसिंह ने भी·····'

'क्या बकता है !' दोनों ठाकुर चिल्लाये ।

दरोगा चौंका ।

सुखराम ने कहा : 'सरकार वे मेरे कहने के पहले ही समझ गये । अब आप ही पूछ लीजिये ।'

'तू ही कह !' दीवान जी ने कहा ।

सुखराम ने देखा वे दोनों भस्म कर देने वाली निगाहों से देख रहे थे । और घबरा रहे थे ।

सभा धक्क रह गई थी । सुखराम उठा और बढ़ा । कहा : 'सरकार भी ठाकुर हैं, और ये दोनों भी ठाकुर हैं, क्या आज मुझे न्याब मिलेगा ? या आप भी इनसे मिल जायेंगे !'

दीवान जी गरजे : 'चुप रह !'

दरोगा चिल्लाया : 'साले तू मुझ पर ही दोष लगाता है । तेरी इतनी मजाल !!'

'सरकार ! दुहाई है,' सुखराम ने कहा : 'आप इलाके के राजा हैं । पर यह दोनों आदमी खतरनाक हैं । यह दोनों आदमी नहीं हैं । इन्होंने पाप किया है·····और आज ये आपके दोस्त हो गये हैं, सरकार ! आप पाप से घिरे बैठे हैं·····'

दरोगा ने कनखियों से इधर-उधर देखा । सब प्रभावित-से लगे । वह चिल्लाया : 'पकड़ लो इसे ।'

'पकड़ लीजिये सरकार !' सुखराम गरजा : 'इन दोनों ने भी धूपो से जबर्दस्ती की थी ।'

धिक्कार की एक हल्की-सी आवाज़ गूंज गई। परन्तु सिपाहियों ने सुखराम को पकड़ लिया।

दरोगा ने कहा : 'अब बोल !'

'हुज़ूर यह तो जुलम है।'

'जुलम ? दीवान जी !'

'हुज़ूर !' दीवान जी ने बढ़कर कहा।

'देखते हैं कैसे बोलता है ?'

'सरकार समझ में नहीं आता। क्या हो गया है। वर्ना पहले तो ऐसा हमने कभी नहीं देखा।'

'हाँ दीवान जी।' सुखराम ने कहा : 'पहले बामन-ठाकुर ऐसा करते भी नहीं होंगे। एक ने आग लगाई, दो ने पाप किया, और आप लोग उनकी रच्छा कर रहे हैं। यह जुलम नहीं है तो क्या ?'

'लगने दो जूते।' दरोगा चिल्लाया। क्रोध से वह पागल-सा लग रहा था।

जूते पड़ने लगे। दरोगा क़हक़हा लगाने लगा। निरोती और ठाकुर चौकन्ने-से देखते रहे। सुखराम लड़ने लगा। उस समय उसे लगा कि अब वह और सहन नहीं कर सकेगा। वक्त आ गया है। उस समय उसके भीतर मनुष्य का स्वाभिमान जागा और सुखराम ने अनुभव किया कि सब उसे ही घूर रहे हैं। सब उसे ही अपनी आँखों से बेध रहे हैं। वे सब उसका मखौल उडा रहे हैं। क्या वह इतना गया-बीता है। क्यों वह चुपचाप सिर झुका दे। क्यों वह विद्रोह नहीं करे ! कीड़ा तक हमला होते देखकर काटता है तब अपनी जान देता है।

क्यों न वह लड़कर जान दे दे।

एक दिन तो मरना ही है।

पर फिर प्यारी को दिया वचन याद आया।

वह चिल्लाया : 'दुहाई है सरकार ! माफ़ी दो, माफ़ी दो।'

सभा ठठाकर हँस पड़ी।

निरोती ने कहा : 'देखा सरकार ! करामात देखी !'

हरनाम ने कहा : 'लातों के देव बातों से कभी मानते हैं ?'

चरनसिंह तो ऐसा हँसा कि लगा अब आँतों का जाल गले में चढ़ चुका है

और अब बाहर गिरने ही वाला है। दरोगा किसी सम्राट के गौरव की छाया बनकर ठाठ से बैठा था।

दीवान जी ने उंगली उठा दी। जूते पड़ना रुक गये। सुखराम हाँफने लगा। उसका फेंटा उसके गले के चारों ओर पड़ा था। सिर के बाल बिखरे हुए थे। उसका मस्तक नत था, पराजय आँखों में झूल आई थी। आज प्रेम ने उसे लाचार कर दिया था। परन्तु भीतर ही भीतर हृदय में बड़ा संघर्ष हो रहा था।

एक भाव उठता था : यह ठीक नहीं है···मर मिट, पर सिर न झुका···

दूसरा भाव कहता था : करनट ! नीच ! खाल में रह, बाहर न निकल, बाहर न निकल···

हठात् वह बफर गया।

उसने दो लातें मारीं और भयानकता से गरजा। उसकी गरज और उसके रौद्र परिवर्त्तन को देखकर सब चौंक उठे। वह ऐसे बदल गया था, जैसे पौधा अचानक पेड़ बनकर झोंके लेने लगा था, या कुत्ता अचानक भेड़िये की तरह गुर्राने लग गया था। वह परिवर्त्तन इतना आकस्मिक था कि दरोगा देखता रह गया। दीवान जी ने बोलना चाहा पर मुँह खुला रह गया, क्षण भर आवाज ही नहीं निकली। निरोती फिर थर्रा गया और दोनों ठाकुर सन्नद्ध-से देखने लगे। पेशकार सोचने लगे कि यह क्या आफ़त आ गई। सुखराम ने दोनों सिपाहियों को धक्का दिया और फिर एकदम एक झटके में उसने छुड़ा लिया, और क्रोध से बढ़ा। उसने एक और को धकेल दिया।

दरोगा आतुर-सा अपनी जगह खड़ा हो गया। उसकी आँखों में भी आतंक छा गया था। और अपने आप उसका हाथ कमर पर पहुँच गया। परन्तु सुखराम ने इससे पहले ही ज़ोर से हमला किया। दरोगा गिर गया। और तब दरोगा को पकड़कर उसने फेंकने का यत्न किया, किन्तु सिपाहियों ने उसे झपटकर पकड़ लिया और धुनाई करने लगे। कोई जूता मारता, कोई ठोकर देता, कोई घूंसा मारता।

सुखराम प्राणपण से लड़ने लगा। वह अकेला था, वे कई थे। खूब मार-पीट हुई और भगदड़-सी मच गई। उसी झगड़े में किसीसे टकराकर जलती लालटेन बुझ गई। और फिर अन्धेरा छा गया। परन्तु वे अन्धेरे में भी रुके नहीं। कोलाहल में सुखराम का चिल्लाना दब गया। वे उसे धुंआधार

मारते रहे। उन्होंने उसकी पसलियों पर लातें मारीं। दरोगा जी पुराने आदमी थे। उन्होंने अपने हाथ में फँसे हुओं की बिलिया तक कटवाई अर्थात् सिर के बाल घुटवाकर बीच सिर तक सिर की खाल छिलवा दी थी और उसमें नमक भरवाई थी। उस दारुण यन्त्रणा को देखने के आदी व्यक्ति के लिये यह तो साधारण-सी बात थी।

कोई चिल्लाया : 'रोशनी लाओ !'

दरोगा ने गोली चलाई। उस अन्धकार में वह निर्घोष हठात् गूंज उठा और सबके हाथ शिथिल हो गये क्योंकि गोली चलने की बात भयंकर थी। उस समय सबके हृदय स्तम्भित हो गये।

दरोगा ने डराने के लिये हवा में गोली चलाई थी। परन्तु जैसे सांप को मारने वाला आदमी इतना डरा हुआ होता है कि अगर सांप बच गया तो उससे कोई बचा नहीं सकेगा, दरोगा के कांपते हाथ ने फिर उसी तरह गोली चला दी। इस बार का परिणाम घातक हुआ।

आह ! करके कोई चिल्लाया और गिरा। और फिर सन्नाटा वैसे ही बरसने लगा जैसे बिजली गिर जाने के बाद गिरने लगता है। एकरस, और गहन।

इसी समय कोई लालटेन लेकर आ गया। उसकी रोशनी को देखकर सबको चैन आ गया। और फिर उन्होंने अपने-अपने शरीर को देखा कि कहीं उनके तो कुछ नहीं लगा ? वह आतंक अब कम हो गया था, क्योंकि वे देख सकते थे।

'ठाकुर हरनाम मारे गये।' निरोती पुकारा : 'दरोगा जी ने गोली मार दी।'

'गोली मार दी ! गोली मार दी !' फुसफुसाहट गूंज उठी।

दरोगा कांपने लगा।

दीवान जी ने बढ़कर कहा : 'हुजूर यह तो बड़ा कातिल निकला।' वह अविचलित था। उसकी बात सुनकर सब चौंक उठे। उसने फिर कहा : 'सरकार ! हमारे रहते ऐसी क्या जल्दी थी ! आपने यह भी न सोचा कि अगर वह आपके गोली मार देता तो क्या होता !'

सबने कहा : 'कौन मार देता !'

दीवान जी ने कहा : 'पुलिस में मुझे बाईस बरस हो गये। यह कोई लौंडों

का खेल है ? तुम लोगों ने देखा ही नहीं। जिस वक्त यह नट पिट रहा था, उस वक्त इसने पिस्तौल निकाली। मैं और दरोग़ा जी दोनों झपटे। मगर दरोगा जी का मुकाबिला मैं क्या करता ? जान पर खेल गये और पिस्तौल उसके हाथ से छीन ली।' फिर मुड़कर कहा : 'हुज़ूर ! कमाल कर दिया आपने ! मैंने कई अफ़सर देखे, मगर ऐसा शेर एक भी नहीं देखा।'

दरोगा ने दीवान को ऐसे देखा जैसे वह स्वर्ग में से सीधा उनके थाने में आ गया हो। उन्होंने इतना अच्छा आदमी कभी देखा ही नहीं था !

'गोली सुखराम ने मारी है ?' तहसील के पेशकार ने पूछा।

निरोती बामन सकते की-सी हालत में था। चरनसिंह सब समझ गया था। परन्तु वह सोच रहा था कि यह तो मर ही गया। अब लौटकर तो आ नहीं सकता। फिर सुखराम तो दुश्मन है।

सुखराम बेहोश पड़ा था। वह धीरे से जगा। उस समय अंग-अंग दुख रहा था।

दीवान जी ने कहा : 'निरोती पंडित !'

'हाँ हुज़ूर', निरोती ने कांपते-कांपते कहा।

'सिपाहियो ! पंडित को गिरफ़्तार कर लो।'

'सरकार दुहाई है !' पंडित चिल्लाया।

सिपाहियों ने उसे पकड़ लिया और पंडित फिर चिल्लाया : 'मेरा कसूर हुज़ूर !'

पेशकार ने कहा : 'अरे पंडित ! तुम इस नट से मिले हुए थे ! तुमने दरोगा जी को ही खूनी करार देने की चेष्टा की ?'

दीवान जी ने कहा : 'पेशकार साहब ! तीन दिन से सरकार की पिस्तौल ग़ायब थी। यह नट पहले ही चुरा ले गया था। खुदा का शुक्र है कि अपने आप लौट आई। ३०४ का मामला है।'

पंडित गिरफ़्तार हो गया।

सुखराम ने कहा : 'मैं खूनी नहीं हूँ। लेकिन चरनसिंह पंडित को देख ! हरनाम को देख ! दुखियों और ग़रीबों को सताने का नतीजा देख !'

चरनसिंह की निगाह हठात् दरोगा की तरफ़ उठ गई जैसे कह रहा हो, ज़रा इन्हें भी तो देख !

हुकम हुआ। सिपाहियों ने सुखराम को खींचकर बंद कर दिया। सुखराम ने आँखें खोलकर देखा।

अंधेरे में एक आदमी बढ़ आया। वह धीरे-धीरे कुछ बड़बड़ा रहा था : 'पकड़ लाये साले···जाने कौन है···साला मौका कहीं बिगाड़ न दे·····'

वह सोचने लगा। सुखराम अंधकार में धरती पर गिरा दिया गया था। अब वह धीरे से उठ बैठा और चारों ओर देखने का प्रयत्न करने लगा। कुछ देर बीत गई।

फिर दूर महफ़िल का कोलाहल सुनाई दिया, जैसे सब फिर से ठीक हो गया था। उस स्वर में आनन्द गूंज रहा था, जिसमें अहंकार था। और सुखराम ने सुना तो हृदय झनझना उठा। उसे अब याद आया। क्यों किया उसने यह सब ? क्यों वह इस चक्कर में फंस गया। अब क्या होगा ? अब क्या वह छोड़ सकेंगे उसे ? वर्ना अब खून किस पर लगेगा। उस समय घोर घृणा हुई और इच्छा हुई कि सिर पटक-पटककर जान दे दे ! पर उससे लाभ !

कोई बेड़नी अब महफ़िल में नाच रही थी। उसके घुंघरुओं की आवाज़ आ रही थी। शायद हरनाम की लाश को सिपाही ले गये होंगे। उसके घर के लोगों में पहुँचा दी गई होगी। क्या होगा अब, सुखराम यह सब क्या जाने। यहाँ तो अपने ऊपर बन आई है। और वह बेड़नी का गाना : 'हाय मरि जाऊंगी।···'

और कहकहे और वाहवाहों की बौछार, जैसे इस संसार में और कुछ है ही नहीं।

उस समय वह आदमी सुखराम के सामने आकर खड़ा हो गया। सुखराम ने सिर उठाया। आदमी ने कहा : 'तू कौन है ?'

'कौन ?' सुखराम ने कहा। वह पास आ गया। सुखराम उसे अन्धेरे में पहँचान नहीं सका।

'बोलता क्यों नहीं ?' उस आदमी ने कहा। उसके स्वर में खिझलाहट थी। सुखराम ने क्षण भर सोचा और फिर उसके भय दूर हो गये। उसने धीरे से कहा : 'मैं ? मैं हूँ करनट सुखराम।'

'करनट !' उस आदमी के मुख से खुशी की हल्की आवाज़ निकली। फिर उसने दुहराया : 'करनट !' जैसे उसे एकाएक विश्वास नहीं हो रहा था कि उसका बिगड़ता हुआ खेल अचानक ही फिर ऐसे बन जायेगा।

'शाबाश,' उसने कहा।

सुखराम चौंका।

'क्यों ?' उसने पूछा।

वह आदमी हल्के से हँसा।

'तू कौन है ?' सुखराम ने पूछा।

उस आदमी ने जैसे सुना नहीं। अंधकार में भी वह इस समय निश्चित-सा दिखाई दिया।

सुखराम ने खीझकर कहा : 'बताता क्यों नहीं ?'

वह आदमी और पास आ गया और उसने विभोर स्वर से कान में कहा : 'मैं करनटों का राजा हूँ।'

सुखराम में जैसे ज़िन्दगी लौट आई। उसका स्वप्न पूरा हुआ था।

उसीकी तो खोज थी और वह ऐसी अचानक ही पूरी हुई।

'राजा जी।' सुखराम ने पाँव छुए।

'खुश रह।' राजा ने आशीर्वाद दिया।

'बीड़ी पी ले।' राजा ने कहा।

दोनों बीड़ी पीने लगे। धूंआ कोठरी में भर गया। उस समय बीड़ी पीकर सुखराम की चेतना लौट आई। वह थकान उतरने लगी।

'तुझ पर,' राजा जी ने सोचते हुए कहा : 'वे कतल का मुकद्दमा चलायेंगे।'

'मैंने कतल नहीं किया।'

'तो तू करनट नहीं है।' राजा जी ने कहा।

'पर मैं बेकसूर हूँ।'

'बेवकूफ़ !' राजा जी ने कहा : 'करनट कभी बेकसूर नहीं होता। अगर तूने कतल नहीं किया, तब भी तुझे मानना ही होगा कि तूने कतल किया है।'

'क्यों ?'

राजा जी ने कहा : 'मगर तूने कतल क्यों नहीं किया ?'

सुखराम क्या कहे। समझ में नहीं आया। वह उसकी ओर देखने लगा। अंधेरे में मुंह साफ़ नहीं दिखता था। बीड़ी जलते समय जो उजाला हुआ था उससे एक हल्की झलक अवश्य उसने देख ली थी।

'तू जानता है ?' राजा जी ने कहा।

'क्या ?'

'मैं क्यों पकड़ा गया हूँ ?'

'नहीं।'

'मैंने एक बच्चे की हँसुलिया उतार लेने की कोशिश की थी। पकड़ा गया।'

'क्यों उतारी थी ?'

'अबे तू मुझसे झूंठ बोलता है। करनट होकर पूछता है क्यों उतारी थी ? अगर तू असल नटनी का जाया होता तो पूछता—पकड़ा क्यों गया।'

सुखराम चिन्ता में पड़ गया।

राजा जी ने कहा : 'तू गधा है।'

'फिर क्या करूँ ?'

'सो जा !'

'सो जाऊँ ? फिर ?'

'फिर फाँसी पर चढ़ जइयो।'

'और तुम क्या करोगे ?'

'जो अभी तक किया है।'

'राजा जी ! मैं मरना नहीं चाहता।'

'मैं तो तुझे नहीं मार रहा।'

'पर तुम हमारे राजा भी तो हो।'

'हाँ, हूँ।'

'मैं तुम्हारी सरन आया हूँ।'

उसकी बात सुनकर सुखराम से उसने कहा : 'तो तू मेरे हुकम पर चलेगा !'

'जरूर राजा जी।'

'तो सो जा !'

'सो जाऊँ ?' सुखराम चौंक गया।

'हाँ मैं जगा लूंगा।'

'तुम क्या करोगे ?'

'मैं तेरी रच्छा करूँगा।'

'क्यों ?'

'तू मेरी सरन जो आया है।' सुखराम यह सुनकर चुप हो गया।

आधी रात हो गई थी। राजा जी उठे।

'मेरे संग हाथ बँटा।' राजा ने कहा।

सुखराम खड़ा हो गया। चारों ओर सन्नाटा छा रहा था। सब सो रहे थे। कोठरी में एक छोटी-सी खिड़की थी। उसमें लोहे के सींखचे लगे थे, वही एक हवा आने का रास्ता था। उसी पर राजा जी की नज़र पड़ी।

सुखराम और राजा ज़ोर लगाने लगे। पर वह न उखड़ी। सुखराम निराश हो गया।

'अब क्या होगा ? राजा जी !'

'घबराता क्यों है ?'

'राजा जी मारे जायेंगे। मैं फाँसी पर चढ़ जाऊँगा।'

'कायर !' राजा जी ने कहा : 'मेरे रहते डरता है?'

'डरता तो नहीं राजा जी !'

'ठीक है। एक काम कर। यह ले।' राजा जी ने एक बड़ा मज़बूत छुरा कहीं से निकाल लिया। अन्धेरे में सुखराम न देख सका। कहा : 'इससे तू काट।'

सुखराम ने काटा तो आवाज़ हुई। वह डरा। पर राजा जी खड़े-खड़े खर्राटे भरने लगे। आवाज़ डूब गई। कोई घण्टे भर बाद सलाकों के नीचे की लकड़ी कट गई।

खर्राटे धीरे-धीरे कम हो गये।

खिड़की खींच ली गई। अब रास्ता निकल आया। राजा जी ने बाहर झाँका। सन्नाटा था।

'सुखराम !' वे फुसफुसाये।

'क्या है ?'

'कोई नहीं है।'

'भाग चलो राजा जी।'

'अभी नहीं। वह कुत्ता जा रहा है।'

'वह क्या करेगा ?'

'भोंक उठेगा।'

फिर कुत्ता भी चला गया।

दोनों बाहर निकल आये। उस समय उन्हें लगा जैसे वे मौत के मुँह से निकल आये थे। ठीक उस समय ठाकुरों ने थाने के आगे आकर पुकारा—'दरोगा जी !'

ठाकुर हरनाम की मृत्यु से वे विक्षुब्ध थे। पता नहीं क्या हुआ। आगे चलकर यह अवश्य हुआ था कि खून सुखराम पर नहीं आया क्योंकि गाँव के पण्डित और ठाकुरों ने मिलकर दरोगा को कसवाकर ही छोड़ा। परन्तु इस समय भय था।

दोनों भाग चले।

ठाकुरों के दबाव से दरोगा ने कोठरी खुलवाई। पर वहाँ कोई नहीं था। सिपाही भाग चले। बन्दूकें अन्धेरे में चलीं।

राजा जी ने फुलवाड़ी में पहुँचकर कहा : 'ठहर जा।'

'क्यो ?' वह ठहरा।

'सिपाही आ रहे हैं।'

'फिर ?'

'अब भागेंगे तो आवाज़ होगी।'

सुखराम ने कहा : 'राजा जी !

'हाँ !'

'सोचते क्या हो ! जल्दी करो !'

'क्या करूँ ?'

'लपककर पेड़ों पर चढ़ जाओ।'

राजा खुश हो गया। बोला : 'शाबाश ! जब मैं उल्लू की बोली बोलूँ तब उतर आना।'

दोनों पेड़ों पर चढ़ गये।

थोड़ी देर में दो सिपाही भागते हुए उधर भी आ गये। वे बातें कर रहे थे : 'देखा पण्डित सिवराम ! दरोगा ने ठाकुर मार डाला।'

'मैं ठाकुरों को ज़रूर बता दूँगा असली बात। हरनाम ठाकुर मेरे साले लगते हैं।' दूसरे ने कहा।

'गवाही देनी पड़ेगी।'

'दूँगा।'

'मैं भी दूंगा। पण्डित निरोती मेरे नातेदार हैं। नौकरी की खातिर क्या मैं धरम छोड़ दूंगा।'

'साली नौकरी ने कुत्ता बना रखा है।'

'यह तो देखो दीवान जी ने कैसी झूठ बोली।'

'अजी इसने बड़े मठा दुधारे हैं।'

'बड़े भाई का सारा माल दबा गया ये। इसकी भाभी और छोटे-छोटे भतीजे भूखे मरते हैं।'

'वह भी तो सिपाही था ?'

'हाँ।'

'जैसी आई वैसी गई।'

'चलो यहाँ कोई नहीं है। छोड़ो। जब वह बेकसूर है तो पकड़कर भी क्या होगा ?'

'दूसरा भी तो है ?'

'वह तो अब तक डाँग पहुँचा होगा।'

वे चले गये।

कुछ देर बाद उल्लू बोला।

सुखराम ने सुना तो सांस ली।

दोनों उतर आये। गले मिले।

'देखा ! बच गये।' राजा ने कहा।

'भाग की बात है।'

'अरे करनट का सहारा और है ही क्या ?'

'यार !' सुखराम ने कहा : 'मजा आ गया !'

'आ गया न ?' राजा ने कहा : 'हमारे साथ आज तक किसीको मजा न आया हो, सो नहीं हुआ।'

तुमने सुना था न ? खून दरोगा ने किया है।'

'कोई करे ! मुझे-तुझे क्या ?'

'सो तो कुछ नहीं।'

'फिर मरने दे सालों को।'

'ठाकुर हरनाम कौन भला था ? और पंडित तो बड़ा बदमाश है।'

'कहाँ जायेगा ?'

'डाँग।'

'वहाँ कौन है तेरा।'

'तुम जो हो !'

'मैं।' राजा ने चौंककर पूछा।

सुखराम ने कहा : 'क्यों डर गये ? भला बताओ। जब मैंने तुम्हें राजा माना है, तो तुम राजा हो और मुझे कौन आसरा देगा।'

'ठीक बात है।'

'मेरा डेरा वहीं है।'

'कब से रहता है तू ? मैंने तुझे देखा नहीं।'

'मैं नया पहुँचा हूँ। गांव में झगड़ा हो गया था सो भाग गया था यहाँ से।'

'तू मरद है, मेरे यार, चल मेरे साथ।' राजा जी ने कहा।

'किस्मत की बात है।'

'क्या ?'

'देखो तुम मुझे कैसे मिले।'

'तू किस्मत को बहुत मानता है ?'

'क्यों नहीं ?'

राजा ठिठक गया।

'क्या हुआ ?' सुखराम ने पूछा।

'सोचता हूँ तुझे ले जाना ठीक होगा या नहीं ?' राजा ने कहा। सुखराम समझा नहीं।

'क्यों ?' उसने कहा।

'मुझे सोचने दे।' राजा ने कहा।

सुखराम चुप हो रहा।

'दो वादे कर।' राजा ने कहा।

'क्या ?'

'एक तो तू मेरे कहने पर चलेगा।'

'यह भी कहने की बात है ?'

'अरे पहले भी एक को ले गया था, उसने मेरी नटनी को ही फँसा लिया था। वह चली गई उसके साथ। लोग हँसने लगे। वह उसके संग थी। आखिर मुझे लड़ना पड़ा। वह मर गया, तब वह फिर मेरी हो गई।'

'मैं वादा करता हूँ।' सुखराम ने कहा : 'उस तरफ़ से डरो मत।'

'क्यों तू आदमी नहीं है ?'

'मेरी दो औरतें हैं।'

'औरतों से कोई रुकता है ?'

'तो तुम भी वादा करो।'

'क्या ?'

'तुम मेरी औरतों पर आँख न डालोगे ?'

'मैं तो नहीं डालूंगा।' राजा ने कहा : 'और तेरी लुगाइयों ने मुझे छेड़ा तो ? तू जानै रानी बनने का लोभ किसे नहीं होता ?'

'तौ तुम काट डालना उसे।'

'बसा न लूं ?'

'नीयत बिगड़ रही है तुम्हारी राजा।'

'चोखी ! भई सुखराम। मार डालूंगा सुसरी को। तू दूसरा वादा कर।'

'कहो।'

'मेरी गद्दी तू नहीं छीनेगा।'

'कभी नहीं।'

दोनों गले फिर मिले।

अब दोनों पहाड़ पर आ गये।

आस्मान में हल्की पौ की रोशनी फट रही थी। उजाले में राजा ने कहा : 'मेरे यार सुखराम ! तू तौ बड़ा जोर का आदमी है।'

'सो कैसे राजा जी।'

'अबे तेरी औरत तो मुझे न देखेगी। पर मुझे अपनी से जरूर डर हो गया है।'

'बेकार डरते हो। मेरी औरतें देखेगी रानी तो आँखें फट जायेंगी।'

'मैं देखूं तो !'

'तो !!' सुखराम ने कहा : 'लुगाइयों की मरजी। पर जबरन कुछ न करने दूंगा।'

'और किया तो क्या करेगा ?'

सुखराम ने उसका हाथ पकड़कर दबाया। 'ये करूँगा।'

'अरे छोड़-छोड़, टूटा-टूटा····· !'

सुखराम ने छोड़ दिया।

'अबे तू तो बड़ा खतरनाक है ?'

सुखराम हँस दिया।

२७

उधर आस्मान में लाली छलकी, इधर दो आदमी दिखाई दिये। काली छायाओं के-से।

बूढ़ी चिल्लाई : 'अरे आओ-आओ ! राजा जी छूट आये !'

उस आवाज़ को सुनकर सब बाहर आ गये। उनके चेहरों पर उल्लास था। धीरे-धीरे ये लोग पास आ गये। कोलाहल मच उठा।

बूढ़ी मस्त थी। हँसकर कहा : 'अरे राजा जी ! तू कहाँ चला गया था ?'

'आप से तो नहीं गया था।' नट आ-आकर राजा जी के पांव छूने लगे। सुखराम ने निगाह दौड़ाई। उसका काला वाला परिचित अभी नहीं आया था। न उस भीड़ में कजरी और प्यारी ही थी। क्या बात हुई। अभी तक कोई नहीं आ सकी ?

नटों और नटनियों के गाने और नाच शुरू हो गये। वे विभोर थे। उन्हें इस तरह की कोई उम्मीद ही नहीं थी कि राजा इतनी जल्दी छूटकर आ जायेगा।

'कहो राजा जी।' एक ने कहा। 'क्या हुकम है।'

'जसन मनने दो।' राजा ने कहा।

'राजा जी की जै' का नारा गूँज उठा।

कुछ नट चिल्लाये : 'आओ ! आओ !'

शराबें खुल गईं।

सुखराम ने कहा : 'मैं चलूँ ?'

'कहाँ ?' राजा चौंका।

'लुगाइयों से मिल आऊँ ?'

'सब यहीं आ जायेंगी ।' राजा ने कहा : 'तुझे जाने का हुकम नहीं ।' वह हँसा ।

राजा बीच में कुर्सी पर बैठा । इसी समय रानी आ गई । राजा को देखकर उसने सलाम किया और फिर सुखराम की ओर देखा । सुखराम ने उसके सामने आँखें नीची कर लीं । राजा हँसा । रानी से बोला : 'यह वैसा नहीं है समझी ?'

रानी ने कहा : 'हाय मरे, तुझे सरम नहीं आती । कैसे बकता है ।'

राजा अपनी जांघ पर हाथ मारने लगा ।

रानी ने पूछा : 'यह कौन है ?'

राजा ने घूमकर कहा : 'यह हमें लुड़ाके लाया है ।' और सबकी ओर उसने देखकर हाथ घुमाकर कहा : 'सुनो-सुनो !'

सब पास आ गये । एक ने कहा : 'हुकम राजा जी ।'

'इसे देखो ।'

सब देखने लगे । सुखराम को अजीब-सा लगा ।

'यह कौन है ?' एक और ने पूछा ।

'यह मेरा वजीर है ।' राजा जी ने कहा ।

'कैसे हो जायेगा ?' रानी के पीछे खड़ी स्त्री ने पूछा ।

'मेरी मरजी से ।'

'पर बताना तो पड़ेगा ।'

'बताऊँगा जरूर ।' राजा ने कहा : 'इसने मुझे जेल से भागने में मदद की थी ।'

नट सुखराम को सलाम करने लगे । वे सन्तुष्ट हो गये थे । इतना बड़ा कारण और क्या हो सकता था ?

एक ने कहा : 'आदमी तो जोर का है ।'

'क्या बात है ?' दूसरे ने कहा : 'नटनी का जाया जोर का न होगा तो और होगा ही कौन !'

तब ही रानी ने शराब का प्याला भरकर सुखराम की ओर बढ़ाया ।

सुखराम ने राजा की ओर देखा ।

'अरे उधर क्या देखता है ।' रानी ने कहा । 'तू तो बड़ा डरपोक है ?'

'उसके दो लुगाइयाँ हैं ।' राजा ने कहा और ठठाकर हँसा ।

रानी खिसियाई। कहा : 'पर फिर भी डरता है।'

'कभी नहीं।' राजा ने कहा : 'कभी नहीं डर सकता। पी ले मेरे वजीर। दरोगा !'

एक नट बढ़ आया। सुखराम ने देखा कि रानी ने उसे देखा। राजा ने कहा : 'सबको खबर दे दो वजीर आया है।'

दरोगा चला गया।

राजा ने कहा : 'पी ले वजीर।'

सुखराम ने पी डाला। बहुत दिन बाद आज शराब पी। वे दिन और थे जब उसे पीने की आदत थी। कजरी के रहते कभी होश खोने लायक दुख नहीं हुआ था, कोई ऐसा अभाव ही नहीं रहा था। पर पीते ही मज़ा आया। पुरानी चीज़ ने ठोंसा दिया।

गीत उठने लगे। राजा और रानी तथा वज़ीर के चारों ओर खास-खास आदमी थे, औरतें थीं, और गोल बनाकर चारों ओर नट-नटनियाँ नाच रहे थे। गोश्त पकने लगा था। गंध आने लगी थी। वे लोग खूब शराब पीते रहे। राजा ने रानी के मुँह से प्याला लगा दिया। रानी अन्त में नशे में नाचने लगी और चारों ओर हुड़दंग और मस्ती का आलम छा गया।

जब सुखराम महफ़िल में झूमा तब भी शराब की मस्ती गज़ब ढा रही थी। राजा ने खाते वक्त कहा : 'अब कहाँ जाता है ?'

'घूमने।' सुखराम ने झूमकर कहा।

राजा बोला : 'और घूमकर फिर घूम आ !'

वह बक रहा था। उसे खुद होश न था। रानी ने अश्लीलता से कमर नचाई और गाया : 'अब मैं क्या करूँ री सखी। मेरा बलमा बड़ा रसीला है पर सारी डाँग में ढूंढ़ आई कहीं नहीं मिला। हाय मेरी तो डेरे की टाट उड़ गई, सिर पर छाया न रही, हाय मैं क्या करूँ ?'

सब हँसने लगे। राजा खुद नाचने लगा। और उसने सुखराम की कमर में हाथ डाल दिया। सुखराम भी नाचने लगा। आदी न था। जल्दी लड़खड़ाने लगा।

'और लाओ थोड़ी।' सुखराम ने कहा।

एक नट ने प्याला दिया। सुखराम पीकर चिल्लाया : 'राजा !'

'हाँ वजीर !'

'मज़ा आ गया।'

'मज़ा !' और राजा ने अट्टहास किया। 'और क्या वजीर !' और वह फिर भूल गया।

तभी कई नट नाचने लगे। सुखराम झूमने लग गया था।

धीरे-धीरे ज्वार कम हुआ। उन्होंने मदमस्त होकर गोश्त खाया और राजा ने तारीफ़ों के पुल बाँध दिये। बड़ा मज़ा आ रहा था। धीरे-धीरे खाना खतम हुआ। महफ़िल खतम हुई।

सुखराम निकला तो पाँव लड़खड़ा रहे थे। सिर घूम रहा था। ऐसा लग रहा था वह उड़ा जा रहा है। पर वह चल पड़ा था। कहाँ जा रहा था यह उसे स्वयं ज्ञात नहीं था। वह तो चल रहा था।

आखिर वह पेड़ के नीचे बैठ गया। और उसने पाँव फैला दिये और ऊपर देखा। पेड़ पर बेल लग रहे थे। उसे वे बहुत बड़े-बड़े-से लगने लगे और सिर पर हाथ रख लिये जैसे वे सिर पर गिर जायेंगे। वह डर गया।

कुछ देर बाद वह उसे भी भूल गया और चित्त सो गया। इस समय उसकी आँखें मिंच गईं।

आज उसे गाना सूझ रहा था। उसने भर्राये स्वर से गाया : 'चलत-चलत मोरे बाजे री बिछिया·····'

बिछिया पर वह स्वर बल खाने लगा और उसने गाया,

'पनघट आय छिप्योरी सँवरिया·····'

सँवरिया का शब्द उसके मुंह से बार-बार निकलने लगा, लड़खड़ाता हुआ, झूमता हुआ।

तभी कजरी ने उसे देखा। वह उसे बड़ी देर से ढूंढ रही थी। उसने सुन लिया था कि वह वजीर हो गया था। परन्तु वह आया नहीं था, इसका उसे खेद था। वह वजीरनी हो गई थी। उसे बुलाना चाहिये था। मरद की जात भी क्या, फ़ौरन ही तो भूल गया। ऐसा मौका होता तो वह कभी भूल सकती थी।

पास आई। उसका दिल भर आया। उसने उसके पास बैठकर उसका हाथ पकड़ लिया। ऐसे जैसे गिरे हुए बालक को माँ कुछ खीझती हुई और दया करती हुई ममता से उठाती है। जिसे स्त्री प्यार करती है उसकी भूलों को माफ़ करना भी जानती है।

'उठ।' उसने कहा : 'प्यारी की हालत खराब है।'

सुखराम ने सुना ही नहीं। तान जारी रखी·····

'हाय गही मोरी गोरी ये बैंया,

हौं नहीं जाऊंगी ऐ मेरी दैया।'

'ऐ ?' कजरी चिल्लाई।

पर सुखराम ने उसको पकड़कर गाया :

'हाय गही मोरी गोरी ये बैंया'

कजरी ने उसके हाथ को झटका दिया। सुखराम ने फिर हाथ पकड़ने की चेष्टा की। कजरी की खीझ बढ़ गई। चिल्ला उठी : 'हरामी ! शराब पी के पड़ा है। तुझे लाज नहीं आती ?'

'ऐं ऽ ऽ ऽ ?' सुखराम की चेतना ने जवाब दिया।

'मर गया है तू ?' कजरी ने कहा।

सुखराम को धक्का लगा। कहा : 'मर गया ? मैं ?'

कजरी ने सिर पीट लिया। भागकर गई और पानी से फरिया का किनारा भिगो लाई। लाकर मुँह पर पानी छिड़का। कुछ देर में सुखराम को कुछ होश-सा आया। कजरी आँखें फाड़कर देख रही थी।

'कुछ ठीक हुआ ?' उसने कहा।

सुखराम ने आँखें मींच लीं। सिर भन्ना रहा था।

कजरी ने कहा : 'उठ।'

'क्या है री ?' वह जैसे जग गया। और कजरी को देखकर मुस्कराकर उसकी कमर में बाँह डालकर बोला : 'आ गई तू ! अरी तू अब वजीरनी हो गई है।'

'आग लगे तेरी मस्ती में।' कजरी ने हाथ अलग करते हुए कहा।

'क्या बात है ?' सुखराम ने पूछा।

'चल प्यारी के पास चल।'

'पहले तू तो मेरी सुन ले कजरी। कित्ते दिन से तूने मुझसे मन की बातें नहीं कीं।'

'अरे हट !' कजरी ने कहा : 'दिन-दहाड़े क्या बक रहा है। कमबखत सब भूलके नट हो गया असल।'

'अरी,' सुखराम ने हँसकर कहा : 'तुझे मेरी तरक्की से खुशी नहीं हुई ?'

'बड़ी तरक्की कर ली तूने ।' कजरी ने कहा : 'अब चलता है ?'

'कहाँ ?'

'डेरे पर ।'

'यहाँ मैं अच्छा नहीं लग रहा हूँ ? यहीं जो बैठी रह ।'

'अभी तू नसे में है ।'

'नसे में होगा तेरा बाप ।'

'अरे बाप तक न पहुँचियो कहे देती हूँ ।'

'क्या कर लेगी ?'

'कुछ नहीं करूँगी परमेसुरे,' कजरी ने कहा : 'चलता है कि नहीं। प्यारी बीमार है ।'

सुखराम खूब हंसा । बोला : 'वाह री कजरी ! अभी तक ठीक थी, अब प्यारी बीमार हो गई । बात का बतंगड़ करना तू खूब जानती है ।'

कजरी सकते में पड़ी । क्या करे ?

कहा : 'तू चलता है कि मैं जाऊँ ?'

कजरी उठ खड़ी हुई । सुखराम ने हाथ पकड़कर बिठा ली और कहा : 'अरी चली जइयो । कजरी । मेरी वजीरनी । एक गीत सुना दे मुझे ।'

'तेरे मुंह पै आग बराऊँ ।' कजरी ने कहा : 'देखो नासपीटे को कैसा मस्ता रहा है । गीत सुना दे मुझे ? अरे तो क्या तब उठेगा जब प्यारी की ल्हास उठ जायेगी !'

'खबरदार !' सुखराम ने कहा और तड़ाक उसके मुंह पर चाँटा जड़ दिया । कजरी रो पड़ी । उसे गुस्सा आ गया । उसने झपटकर उसका मुंह नोंच लिया और चिल्लाने लगी : 'सुसरा सराब पी के आ गया है, जरा अकल नहीं ।'

दोनों अलग हुए । सुखराम ने कहा : 'और कहेगी तू ?'

'सौ बेर कहूँगी । अब चलेगा कि यहीं मरेगा ?'

तभी कोई दौड़ा-दौड़ा आया । कजरी का मुख फक हो गया । पुकार उठी 'क्या हुआ !'

'प्यारी की हालत खराब है । जल्दी चलो ।'

कजरी ने सुखराम की ओर देखा । सुखराम का मुख अचरज से फट गया । उसने कहा : 'कजरी !'

कजरी रोई। सुखराम ने कहा : 'मुझे माफ़ कर कजरी·····'

वह आदमी बोला : 'जल्दी चलो।'

कजरी ने हाथ खींचा।

तीनों वेग से चल पड़े।

प्यारी ने देखा तो मुस्कराई।

सुखराम बैठ गया। प्यारी में नयी शक्ति-सी आ गई। सुखराम ग्लानि से कटा जा रहा था। कजरी ने कहा : 'शराब पी के मस्त हो रहा था तेरा बालम, जिसके लिये तू रात से बिहाल हुई जा रही थी।'

प्यारी फिर मुस्करा दी।

'क्या हुआ तुझे ?' सुखराम ने कहा।

'कुछ नहीं।' प्यारी ने उसे देखते हुए जवाब दिया।

उसकी दृष्टि में अथाह तृप्ति थी, जिसे देखकर सुखराम का मन चंचल हो उठा।

'पेट में बड़ा दरद है !' कजरी ने कहा।

'पेट में ?' सुखराम ने चौंककर पूछा। उसके दिमाग़ में वही बात घूम गई।

'कहाँ देखूँ ?'

'वहीं है ' कजरी ने कहा।

छूकर देखा। पता नहीं चला, क्या था। वह समझा नहीं। भूला-सा देखता रहा।

प्यारी ने उसके हाथ को अपने हाथों में ले लिया।

कजरी बैठ गई। कहा : 'जेठी बोलती क्यों नहीं ?'

'अच्छी हूँ अब।' प्यारी ने उसे प्यार से देखते हुए कहा। कजरी उस स्नेह को देखकर झुक गई।

'तुझे ताप है।' सुखराम ने कहा।

'होगा।' प्यारी ने उत्तर दिया।

'ताप तो रात से है।' कजरी ने बताया।

'फिर तूने क्या किया ?' सुखराम ने पूछा।

'मैं क्या करती ! इसने मुझे उठने ही नहीं दिया। कहती थी ठीक हो जायेगा। अभी हो ही रहा है।'

'होने दे।' प्यारी ने कहा।

'रात मैंने सिकाई की थी।' कजरी ने कहा : 'तू तो दुनिया का भला करने गया था न ? जा हो आ। मैं बैठी हूँ यहाँ। तुझे क्या फिकर कोई जीता है या मरता है। तू भला अब गरीबों की फिकर क्यों करने लगा ?'

'कजरी !' धीरे से प्यारी ने कहा।

कजरी रूठी हुई बैठी रही।

'मेरी ओर देख।' प्यारी ने स्नेह से कहा।

'क्या है ?' कजरी ने मुड़कर देखा। प्यारी विचलित हो गई। बोली : 'अरी यह क्यों ?'

उसकी आँखों में आंसू भरे थे। कजरी की आँखों का वह पानी बूंद बनकर ढुलक आया। उसे देखकर सुखराम का मन पानी-पानी हो गया। उसे अपने ऊपर बड़ी लाज आ रही थी। परन्तु यह समय सोच-विचार का नहीं था।

'तू बैठ जा यहाँ। मैं किसीको लाता हूँ।' कहकर वह उठ खड़ा हुआ।

'सुनती है जेठी,' कजरी ने कहा—'क्या कहता है ? तू बैठ जा यहाँ ! जैसे मैं तो घूम रही थी न इधर-उधर ?' उसके मुख से दुख के कारण और शब्द नहीं निकल रहे थे।

प्यारी ने कहा : 'रहने दे छोटी। उसे दुखी न कर।'

सुखराम उठा और राजा के पास गया। राजा अभी तक मस्त था।

'राज जी !' उसने कहा।

'क्या है ?' राजा ने पूछा।

'मेरी लुगाई बीमार है। यहाँ कोई इलाजी है ?'

रानी ने कहा : 'है तो।'

राजा ने कहा : 'करेला कहाँ है ?'

करेला को लेकर सुखराम आ गया। उसने पेट सूंता। बड़ी पीर हुई परन्तु करेला कह रहा था : 'नस पर नस चढ़ गई है। दस्त आये थे ?'

'नहीं।' कजरी ने कहा।

'तो नर नहीं हिला है। वही बात है।'

और वह फिर सूंतने लगा। अपने सूंतने में वह अंगूठा प्रायः गड़ा देता था और प्यारी दर्द से दांत भींच जाती।

सुखराम चुपचाप बैठा रहा।

करेला ने कहा : 'यह दो बूटियाँ हैं। पीसकर पिला दो।'

सुखराम पीस लाया। पिला दीं। चला गया।

'कुछ खायेगी ?' कजरी ने उसके गाल पर प्यार से हाथ फेरकर पूछा।

'नहीं।'

'हाय कल से तैंने कुछ नहीं खाया है।'

'मेरा मन नहीं करता।'

'मेरी कसम है, दो कौर ले ले।'

'नहीं खायेगी तो देही कैसे चलेगी।' रुककर फिर कहा।

और प्यारी को खाना पड़ा। चार कौर खाये तो ऐंठा शुरू हो गया। लाचार पड़ रही।

गाँववालों में 'लै रोटी खाय लै।' की बात इतनी अधिक होती है कि रोग में भी बराबर खाये जाते हैं। उनका खयाल होता है कि भूखा पेट डालना बुरा होता है। न जाने यह अज्ञान कितनी जानें ले डालता है। सुखराम बाहर आकर बैठ गया था। इस समय वह ग़म में डूब गया था। उसे कुछ भी नहीं सूझ रहा था। प्यारी सो गई थी या दर्द की ज्यादती से चुप पड़ गई थी यह पता नहीं चलता था। कजरी धीरे-धीरे उसके पाँव सहला रही थी।

दुपहर की आखिरी झिल्ली उतर गई है और भीतर से वही काली-सी शाम निकल आई है। उसकी उदासी आज काटे खा रही है। सुखराम आज डूबा-सा जा रहा है। उसमें साहस नहीं हो रहा है कि भीतर जाये और प्यारी के पास जाकर बैठे। वह उसे देखता है तो उसका कलेजा मुंह को आने लगता है। वह कराहती है तो आतंक-सा छा जाता है।

वह मन ही मन भगवान का नाम ले रहा है। हे महादेव ! प्यारी को अच्छा कर दे, उसे बचा ले।

प्यारी ने आँख खोल दी। कजरी ने पुकारा : 'आ जा भीतर ! वह जग गई है।'

सुखराम महादेव को ढोक दे उठा : 'भगवान मेरी सुन ली। मेरी सुन ली दीनानाथ। अरे बमभोले ! तू बड़ा दयावाला है।'

प्यारी ने आँखें घुमाईं। कहा : 'वह कहाँ है ?'

बाहर बैठा है।

उसने क्षीण स्वर में कहा : 'उसे बुला ले।'

कजरी रूँआसी हो गई। बोली : 'नहीं, तू ठीक हो जायेगी।'

प्यारी का मुख शांत था। भव्य। कजरी ने दिया जला दिया था। जिसकी रोशनी उसके मुख पर पड़ रही थी। उसकी लंबी आँखें अब चमक-सी उठी थीं। कजरी ने देखा तो उसे लगा प्यारी पर एक तेजस्विता आ गई थी। वह उसे देखकर चौंक उठी। कहा : 'तू क्या कह रही है प्यारी !'

'एक बार मेरी भी तो मान लें।' प्यारी ने पूर्ण शांति से उत्तर दिया। उसमें कोई उत्तेजना नहीं थी। आज उसमें कोई भी क्षुद्रता दिखाई नहीं देती थी।

कजरी रोने लगी। उसकी वेदना आज अन्तरात्मा से घुमड़कर आँसू बन-बनकर रिस रही थी। वह जैसे अपने को संभालने का यत्न करती थी किन्तु आज यह उसके बस के बाहर की बात थी।

'तू अच्छी हो जायेगी प्यारी।' उसने आर्द्र स्वर से कहा।

'अरे क्या है ?' सुखराम ने पूछा।

किसीने उत्तर नहीं दिया। वह शंकाकुल हुआ।

प्यारी ने क्षीण स्वर से कहा : 'कुछ नहीं।'

'फिर भी तो ?'

प्यारी ने देखा। कजरी ने मुँह छिपा लिया।

'कजरी रोती है।'

'क्यों ?'

'पता नहीं, पगली है।'

सुखराम झनझना उठा।

क्यों ?

पगली है !!

कजरी !!

पता नहीं !!

उससे रहा नहीं गया। वह आतुर हो उठा। भीतर एक उदास सन्नाटा था, वह बाहर नहीं बैठ सका।

जब वह भीतर आया तो प्यारी हँस दी, पर स्वर नहीं निकला। उसने उसे भरी-भरी आँखों से देखा। अपलक। एकटक। गम्भीर, परन्तु ममता-भरी दृष्टि से। और कजरी भयातुरा-सी, सहमी हुई। सुखराम अवाक्, जहाँ घुटन के पंख निकल आये हैं, और वह उड़ना चाहती है, पर उड़ नहीं सकती। अथाह

निस्तब्धता अब कजरी के नेत्रों से निकलकर सुखराम के मन पर उतरी जा रही है।

'मेरे पास बैठ जा।' प्यारी ने धीमे से कहा।

सुखराम ठिठका खड़ा है। उसका साहस कहाँ चला गया है? आज वह कितना निर्बल हो गया है। लगता है जैसे उसमें शक्ति बाकी नहीं है। वह प्यारी को देख रहा है और उसकी आँखें आज उसको देखती ही रहना चाहती हैं, जैसे वह प्रकृति की किसी अनुपम सत्ता को देख रहा है, देख रहा है, जिसका उसे कोई उपमेय नहीं दिखता, न वह उसका कहीं अन्त ही पा सकता है।

कजरी ने कहा : 'यहाँ आ न।'

वह अवरुद्ध स्वर उसके भीतर आज आवाहन नहीं है, आज वह उसे रुलाई-सी लग रही है, जो अपने समुचित और संचित रूप में एकत्र हो गई है, वह भावनाओं का मोल-तोल नहीं है, वह मानवीय मूल्यों की भीतरी गहराई है जो कभी-कभी अचानक प्रगट होती है। सुखराम पास आ गया। उसके बैठ जाने पर कजरी धीरे से खिसकी और उसने प्यारी का सिर उसकी गोद में रख दिया।

प्यारी को आज सन्तोष हुआ है। वे घृणा, विद्वेष और ईर्ष्या के शूल कहीं नहीं हैं, सुखराम डाल पर लगा एक फूल है और लेटी हुई प्यारी उस फूल पर जैसे पंख खोलकर एक खूबसूरत तितली चिपक गई है। और फूल निस्तब्ध-सा देख रहा है, तितली अवाक्-सी अपने अन्तस् को भर रही है, इसमें आदान-प्रदान नहीं है, दोनों अपने को लुटा रहे हैं, बाँहें तनों को नहीं मनों को लपेटे ले रही हैं, गाढ़ और गहन आलिंगन में, जो दिखाई नहीं देता, किन्तु जिसका ताप युगान्तर तक की ऊष्मा को अपने आप स्पन्दित कर रहा है।

रात अंधियारी थी।

एक पुरुष था, एक स्त्री थी। दोनों के शरीर की बनावटों में कुछ भेद था। उस भेद ने एक ही मन के दो पहलू बना दिये थे और वे दोनों जीवन भर एक दूसरे को समझने की चेष्टा कर रहे थे, परन्तु आज उनका द्वैत हट गया था। वे एक नये प्रदेश में थे, जहाँ मन का अचेतन अब चेतन बनकर भास्वर हो उठा था। वह दृष्टियों का मिलन नहीं था, वह पूर्ण एकाकार था। प्यारी के बड़े-बड़े नयनों की पलकें अब ढलककर आ गई थीं और वे नेत्र उनींदे-से अध मुंदे-से, अपने भीतर पूर्ण वासना का निखार ले आये थे। वह मादक वासना आज प्रेम की अतीन्द्रिय आभा में डूबकर कितनी उन्निन्द्र-सी हो गई थी;

और सुखराम के सीधे नयन पर उसकी भौं तनिक खिचाव देकर स्तब्ध हो गई थी ।

प्यारी के वे लम्बे-लम्बे लगने वाले नेत्र उसको देख रहे हैं, बाहर हवा पर तैरता अन्धेरा नहीं रहा, वह सब उसकी पुतलियों में आकर इकट्ठा हो गया है, और उसमें वह तारा चमक रही है, जो न जाने कितनी-कितनी माधवी निशाओं का खुमार लिए हुए है और स्नेह की गहराइयाँ आज उठे हुए समुद्र की भाँति अनन्त रागिणी लिए हुए गूंजती चली जा रही हैं । कैसा करुण झूमता हुआ स्वर है । उसमें कितनी विभोर आत्मसमर्पण की अन्तिम गाथा है। आज बुझता हुआ दीपक जैसे अपनी लौ की अन्तिम दीप्ति में आलोक का समस्त विगत इतिहास फिर से अन्धकार पर लिख-लिख जाना चाहता है । इस पूर्ण शान्ति में निर्द्वन्द्व आकाश की भांति पवित्र सम्मोहन है, जिसमें समस्त अतीत की प्रेम-स्मृतियाँ अब इन्द्रधनुष की भाँति निकल आई हैं, और मन उन्हें देख-देखकर अपने क्षण-क्षण को दुहरा कर अपने को उसीमें लय कर देना अपनी सार्थकता की चरम सफलता समझता है । जहाँ अनुभव के बन्धन छोटे हो गये हैं, जहाँ ज्ञान के अभिमान दूर हो गये हैं, जहाँ सृष्टि ने अपनी गहन रहस्यभरी बात अनजाने ही कह दी है, जहाँ कुलकुल करते प्रात-खगों के मधुर जागरण से स्फुरित हुए आन्दोलित जीवन ने सुरभि लुटाकर फूलों की भांति अपनी मांसल पंखुरियों को खोल दिया है, वहाँ आज मृत्यु पर विजय हो रही है, क्योंकि विनाश की प्रतिपल सन्निकट आती पग-ध्वनि, चिरन्तन बनी हुई जीवन की इस मोहक तन्मयता को भेदने में असमर्थ हो गई है । न कहीं जड़ता है, न कहीं अवरोध ही दिखाई देता है ! यहाँ गौरव और पराक्रम भी क्षुद्र बन गये हैं, इन सबके ऊपर उठने पर जो तादात्म्य है, वही आज मुस्करा उठा है । बचपन के खेल-कूद में जो धरती में बीज-सा उतरा, और किशोरावस्था के प्राथमिक दर्शन में जिसमें यौवन ने छूकर अंकुर उत्पन्न कर दिये, यौवन में जो शरीरों की वाह्य सत्ता में संभोग बनकर अपनी अधूरी पूर्णता प्राप्त कर सका, डग-डग पर जो जीवन में दो पाँवों की भाँति चलता रहा, वह प्रेम आज एकत्व की पूर्णता प्राप्त कर गया था । जैसे किसी महान के सामने अपने कर्तृत्व का अभिमान रखने वाले दोनों हाथ नमस्कार में जुड़कर अपनी अहंमन्यता को खो बैठते हैं, वैसे आज प्यारी और सुखराम के नेत्र मिलकर एक हो गये हैं । आज तक जो था वह सब उपासना का कोलाहल था, प्रबन्ध था, आज देवता और उपासक

सचमुच पास आ गये हैं, एक दूसरे में अपने आपको मिटा-मिटाकर प्राप्त करते चले जा रहे हैं।

कजरी देख रही थी। दिया टिमटिमा रहा था। धीरे-धीरे वह बुझने के पहले जैसे एक बार फिर अपनी सारी ताक़त से जगमगाने की चेष्टा कर रहा था। अन्धकार को जैसे इस बार वह सदा के लिये मिटा देने को सन्नद्ध हो उठा। प्यारी का मुंह सफेद सा पड़ चला था।

कजरी सह नहीं सकी। वह आकुल होकर फूट-फूटकर रो उठी। उसके स्वर को सुनकर दोनों चौंक उठे। उनका वह स्वप्न टूट गया। मंगल-बेला में जब सहस्र दीपों की आरती सजाकर उठाई तो उस समय क्रूर वायु ने उसे बुझा दिया।

'कजरी !' प्यारी ने डाँटा।

परन्तु कजरी नहीं रुकी। वह तो घुमड़ उठी थी और ऐसी बदली थी जो बार-बार कांप उठती थी। कैसे शान्त हो जाती वह ! उसे मिट्टी का लोभ पुकार रहा था क्योंकि मिट्टी मिट्टी को प्यार करती है।

'क्यों रोती है बावरी।' प्यारी ने कहा। और कुछ नहीं। जैसे प्यारी ने जीवन के अनन्त सत्यों को खोल दिया था। रुदन और कोलाहल के ऊपर ही मुस्कान और शांति है। उन्हींमें तो असली तन्मयता है। परन्तु कजरी की आर्त्तावस्था भी कितनी पवित्र थी। वह जीवन के प्रति साकार निष्ठा थी। उसकी हिचकी बँध गई थी।

'प्यारी !' कजरी कहती है।

'क्या है छोटी।' वह धीरे से पूछती है।

'जेठी !!!' वह कुछ कह नहीं पाती, उसने तो एक शब्द में अपना सब कुछ उँडेल दिया है। वह तो रो रही है, वह तो हिल उठी है, वह अपने आपको पानी-पानी किये दे रही है, उसके सामने उसकी प्यारी चली जा रही है···

प्यारी ने कहा : 'बलमा !'

सुखराम देखता है। और एक करुणा फिर उसके मुख पर सजीव हो उठती है। प्यारी उसे जो कुछ दे रही है, प्यारी उससे जो कुछ ले रही है, वह सब कितना भव्य है ! वह सब कितना महान है। सुखराम उसे देख रहा है।

'तू जा रही है ?' सुखराम पूछता है, जैसे वह किसी स्वप्न-लोक में है। वह आज स्वयं भी तो अपनी क्षुद्रताएं छोड़ बैठा है।

'हाँ मेरे बलमा।' प्यारी कहती है। वह स्वीकृति है।

'क्यों ?' सुखराम पूछता है।

प्यारी उत्तर नहीं देती, देखती है। उसका मुख ऐसा हो गया है, जैसे शरद का पूर्ण चन्द्र हो और उसमें से कितना-कितना आलोक न फूट पड़ता हो, बहा जा रहा हो।

'तुझे इतनी भी दया नहीं ?' सुखराम पूछता है, जैसे श्वेत भव्य ताजमहल शारदीया ज्योत्स्ना में भींगा खड़ा हुआ हो, और चुपचाप देख रहा हो, अपने भीतर प्रेम की समाधियों की अनन्त निद्रा में से जगे हुए दिव्य आलोक को उस वाह्य प्रकाश में मिल जाता हुआ पहँचान रहा हो।

प्यारी मुस्कराई है। वह एक मुस्कान नहीं है, वह जीवन की जय है, जो विनाश के किसी भी पल में घबराता नहीं, अपनी सुसंस्कृत अवस्था को जो इतनी ऊँचाई पर ले जाने का यत्न करता है कि फिर उसे इस परिवर्त्तनशीलता में भी अपनी मिट जाने की भीति के परे कर दे, क्योंकि वह उसको कल्पों के विराट अन्धकार में एक पल के आलोक में ही पूर्ण कर देना चाहता है !

और कजरी फिर रोती है। वह चिल्लाती है : 'सुखराम ! उन्होंने प्यारी को मार डाला···मार डाला···'

सुखराम ने कहा : 'तेरे उसने लात दी थी न ? वह मर गया, पर जो बचे हैं उनकी मैं जाकर टांगें काट दूंगा।' वह हठात् जागकर चिल्ला उठा। वह जो अभी तक खोया हुआ था वह प्रेम की पराजय देखने लगा, क्योंकि वह भी प्यारी की भाति ऊँचाई पर नहीं पहुँच सका। उसे फिर सूनापन दिखाई देने लगा। कजरी के हाहाकार से डेरा गूंजने लगा। सुखराम भयाक्रान्त-सा देखने लगा। इस समय वह आवेश में था।

प्यारी दृढ़ थी। उसकी शक्ति क्षीण होती जा रही थी। उसने कहा : 'कजरी मेरे पास आ।'

कजरी रोती हुई आ गई। प्यारी ने उसका माथा चूम लिया। फिर आँसू से भीगा उसका गाल चूम लिया। कजरी का मन कातर हो उठा।

तब प्यारी ने धीरे से कहा : 'बलमा !'

सुखराम स्तब्ध हो गया था।

फिर प्यारी ने कुछ नहीं कहा। वह देखती रही। उसने आज अपने पुरुष से कोई चुंबन की भीख नहीं मांगी। वह क्या कोई अभावग्रस्ता थी ! नहीं,

वह तन्मया, निर्द्वन्द्वा, अपराजिता और चिरंतन तथा पूर्ण थी। वह देखती रही, देखती रही, वे नेत्र फिर मुस्कराये, वह मुस्कान होठों पर छा गई, वह मुस्कान एक आलोक बनकर विकीर्ण होने लगी, वह लगा जैसे मनोहर फूल खिल गया, वह लगा जैसे निरभ्र आकाश में पूर्ण चन्द्र निकल आया, वह लगा जैसे अनंत निद्रा में से सौंदर्य्य के स्वप्न ने जन्म लिया, वह लगा जैसे अतलांत सिंधु में से अपनी समस्त श्री के साथ पद्मस्थिता लक्ष्मी का आविर्भाव हुआ, वह लगा जैसे अपनी प्रभूत जड़ता छोड़कर सृष्टि ने पहली बार जीवन की चेतना के प्राप्त होन पर आदि नाद किया, वह लगा जैसे कल्मषों के गहन स्तरों को भेदकर उज्ज्वल सत्य अपने साकार रूप को धारण करके अवतरित हुआ, वह लगा जैसे कोई दिव्य संगीत निरबाध सम्मोहन बनकर शाश्वत युगों तक के लिये व्याप्त हो गया, और वह मुस्कान फिर स्थिर हो गई, अपलक होकर वह नयनों में जैसे सदा के लिये उजागर हो गई, प्यारी आज सचमुच जी गई।

उस समय कजरी करुण स्वर से रो उठी—'जेठी !'

उसका वह चीत्कार हवा पर टकराया और हाहाकार बनकर अंधकार को ऐसे फाड़ने लगा, जैसे उसे खंड-खंडकर देगा। किंतु सुखराम स्तब्ध बैठा रहा। उसको हाहाकार सुनाई न दिया, उसे तो वह मुस्कान दिखाई दे रही है जो आज उसमें ऐसी व्याप गई है कि वह अपने को सुखराम नहीं समझता, वह तो प्यारी की महिमान्वित अमर मुस्कान बन गया है। उसे नहीं लगता कि प्यारी सो गई है, वह तो उसे शाश्वत जागरण समझ रहा है। उसे लग रहा है जैसे साक्षात् जगदम्बा आकर सामने लेट गई है।

परन्तु कजरी हाहाकार कर रही थी। उसकी वह असीम वेदना आज फटी पड़ रही है। उसे सुनकर नट-नटनियाँ आ गये।

एक नट आगे आया।

उसने कहा : 'उठ वजीर ! वजीरनी मर गई है।'

'यह झूठ है' सुखराम कह रहा है, : 'प्यारी मुझे कभी नहीं छोड़ सकती। उसने कजरी के आने पर भी मुझे नहीं छोड़ा, वह तो मेरे पास है, मेरे पास लेटी है, उसे सोने दो, उसे सोने दो·····।'

और कजरी फिर फूट-फूटकर रो उठती है, दारुण स्वर से निढाल होकर, जैसे सब कुछ खो गया है, और अब अंधकार बाहर अट्टहास कर उठा है, वीभत्स, भयानक, कठोर···दिगंत-व्यापी···।

किसीने कहा : 'अरी कोई सौत के लिये भी ऐसी रोती होगी··· ।'

परन्तु वे शब्द व्यर्थ हैं, क्योंकि सुखराम पर्वत की भांति उठा जा रहा है, कजरी हिमखंडों की भांति पिघलती चली जा रही है····· ।

प्यारी शान्त पड़ी थी ।

कजरी ने उसका पांव पकड़ लिया । पांव ठंडा हो गया था ।

वह चीत्कार करने लगी ।

एक नट ने कहा : 'ओढ़ा दो ।'

दूसरे ने उसे ढँक दिया ।

कजरी को रोते देखकर औरतें पसीज गईं ।

'रो नहीं री ।' एक ने कहा ।

'किसका यह दिन नहीं आता ।' एक बूढ़ी ने कह ही दिया ।

सुखराम बैठा रहा ।

'बिचारी बड़ी अच्छी थी !' एक स्त्री ने प्रगट किया ।

'अरे मैं मर जाती ।' बूढ़ी ने कहा—'जवान थी, उसे भगवान ने उठा लिया । उसके तो एक बच्चा भी नहीं हुआ । क्या सुख देखा बिचारी ने !'

सुखराम फिर भी स्तब्ध था । अब उसकी दृष्टि जैसे चादर के भीतर से भी प्यारी का मुँह देखे ले रही है । वह सब उसे स्पष्ट दिख रहा है ।

फिर क्या हुआ ? उसे मालूम नहीं ।

कौन आया है ? कौन गया है ?

सुखराम नहीं जानता ।

बूढ़ी कहती है : 'भगवान को न्याव न आया री, अब तक नहीं आया । कैसी मलूक थी कि देख के दीदा ठंडे होते थे । इसे उठा लिया, दुनिया में सैकड़ों पापी बाकी हैं ।'

कजरी रोती रही । एक स्त्री ने उसे सहारा दिया । कहा : 'अरी तनिक धीरज धर !'

बूढ़ी ने दार्शनिक के-से स्वर में कहा : 'ऐसा अच्छा घर था, बेरहम ने उजाड़ दिया । सौत-सौत को काटती है, पर यहाँ दोनों ऐसे रहती थीं जैसे बहिन हों, एक पेट की जाई भी सौत होके दुसमनाई कर उठती हैं, पर यहाँ तो भगवान हार गया ।'

'उसीका बदला ले लिया उसने काकी ।' कोई बोल उठी ।

सुखराम बैठा रहा।

उसकी निस्तब्धता को देखकर डर लगता था। बिल्कुल जैसे निर्जीव ! जड़।

अन्धेरी रात बाहर गल गई और एक कोने से आस्मान में एक उजाले की झांई पड़ने लगी थी। आज की शुरुआत रुलाई के झटकों से काँपती हुई आई।

अब सुबह हो गई थी।

'अरी बुलाओ न सबको।' बूढ़ी ने कहा।

कोई भाग चला।

बूढ़ी ने कहा : 'रो नहीं कजरी। अपने आदमी की गोद में सिर धरे-धरे मर गई है, इससे बढ़कर लुगाई का सुख क्या है ? देखा तूने उसका चेहरा। तनिक डर नहीं है।'

राजा आ गया। उसे देखा। दुख से सिर हिलाया। बोला : 'इन्तजाम करो अब !'

और फिर वे लोग प्रबन्ध में लग गये। बूढ़ी कह रही थी : 'बड़ी अच्छी थी बिचारी। मरते बखत आदमी को अपने जनम भर के पाप डराने लगते हैं। देखा है ? ऐसी पड़ी है जैसे मुस्करा रही हो। देवी-सी लगती है। बड़ी पुण्यात्मा थी बिचारी।'

कजरी का हृदय फटा जा रहा था।

जब लाश उठी तो कजरी डकराकर रो उठी। जीवन की ममता ने संचित स्मृतियों की धरोहर को अन्तिम बार झकझोर दिया और मृत्यु की विकरालता पर जैसे उसने अन्तिम प्रहार किया। योगी जिसे सृष्टि का अनादि नियम कहकर उसे निरासक्त भाव से सहने का उपदेश देते हैं, उसे आज तक मनुष्य की जीवन के प्रति आस्था ने कभी स्वीकार नहीं किया। उसने अस्तित्व के प्रति सदैव श्रद्धा की है। वही उसका रुदन है।

'जेठी ऽ ऽ ऽ···' उसका करुण क्रंदन गूंज उठा।

सुखराम नहीं रोया। वह पीछे-पीछे चलने लगा।

राम राम सत्त है···

सत्त बोलो गत्त है···

और यह स्वर बार-बार बदलते कन्धों पर झूम रहा था। शाश्वत किन्तु सदैव नवीन !

चिता पर लाश रख दी गई।

उन्होंने आग लगा दी। लपटें धधक उठीं।

सुखराम अपलक देख रहा है। वह नहीं जानता यह सब क्या हो रहा है।

राजा ने चिल्लाकर कहा : 'सुखराम ! वजीरनी में आग लग गई है, देखता है वह जल रही है !'

'नहीं, राजा जी !' सुखराम का स्वर धीरे से सुनाई दिया—'वह सो रही है।'

नटों ने साँस छोड़ी। कुछ की आँखों में नमी आ गई।

परन्तु सुखराम चुपचाप खड़ा रहा।

लपटें धक-धक करके उठीं और चारों ओर से अपना ताना-बाना बुनने लगीं। उनमें अदम्य दाह था, जो सर्वभक्षी क्रूरता को लेकर इस समय लकड़ियों पर जीभ फिराने लगा था। आज वह अन्त का प्रतीक बन गया था। वह आलोक की मर्यादा को लांघकर आज भस्म करने पर उद्यत हो गया था। उसकी हहर हवा पर व्याप रही थी।

उसकी गर्मी से नट पीछे हट गये।

'सुखराम !' राजा ने कहा : 'पीछे आ जा।'

'क्यों ?' सुखराम ने पूछा।

राजा पास गया और उसे खींच लाया।

'क्यों राजा जी ! तुम मुझे उससे दूर क्यों करते हो ?'

'तुझे ताप नहीं लगता।'

'ताप ? कहाँ है ताप ?'

और लपटों ने जैसे उस समय हंसकर भीतर के शव को पकड़ लिया। एक नट ने कहा : 'पहुँच गई भीतर !'

दूसरे ने कहा : 'जा रे ज़रा कपाल किरिया कर दे।'

एक आगे बढ़ा। उसने थोड़ा घी एक लम्बे करछुल में रखकर सिर को छू दिया। तड़ाक की एक हल्की आवाज़-सी गरजती लपटों में खो गई।

'पहुँच गई।' एक बूढ़े ने कहा।

और उन्होंने कहा : 'बिंदरावन पहुँच गई वह तो।'

'जो रह गये सो रह गये।'

'एक दिन सबको जाना है।'

राजा बढ़ आया। उसकी आँखों में कौतूहल था। वह इस आदमी को पहँचानना चाहता था। क्या बात थी कि यह अभी तक विचलित-सा नहीं दिखाई दिया था। क्या वह साधू है? पर वह तो उसे बहुत प्यार करता था, यही तो सब कहते हैं न?

उसने पास आकर देखा। वही निस्तब्ध गम्भीरता, वही अमर विश्वास। अडिग समर्पण!

'सुखराम!' उसने कहा।

'राजा जी!' सुखराम ने पहँचाना।

'देखता है?' राजा ने कहा।

'क्या है?' उसने पूछा।

'तू देख रहा है न?'

'हाँ।'

'तुझे क्या दिखता है?'

'सब कुछ देखता हूँ।'

'तो तू रोता क्यों नहीं?'

'रोऊँ? क्यों?'

'प्यारी मर गई है।'

'नहीं।'

'वह सामने कौन है!'

'प्यारी है।'

'वह आग के बीच में है।'

'नहीं राजा जी! तुम झूठ कहते हो।'

'वह मर गई है सुखराम।'

'अच्छा!!'

'तुझे विसवास नहीं।'

'नहीं।'

'क्यों?'

'वह मुझे छोड़कर कैसे जा सकती है !'

'यह भगवान की मर्जी है ।'

'आज तक तो मेरे-उसके बीच में किसी और की मर्जी नहीं आई ?'

राजा कैसे समझाये ? एक बूढ़े ने कहा : 'बेचारा सह नहीं सका है ।'

दूसरे ने धीरे से कहा : 'कहीं पागल न हो जाये ।'

'पागल !' सुखराम ने कहा : 'कौन है पागल ?'

'कोई नहीं, कोई नहीं,' सबने कहा । वे डर गये थे कि कहीं वह सचमुच पागल न हो जाये । पर सुखराम ने कहा : 'मुझसे कहते हो ?' वह हँसा और फिर उसने कहा : 'वह डेरे पर मिलेगी मुझे । वह सबसे पहले लौट गई है ।'

राजा सहम गया ।

'राजा जी !' सुखराम का स्वर उठा ।

'क्या है वजीर !'

'तुम भी नहीं मानते ?'

'क्या सुखराम !'

'तुम देखना । वह लौट गई है । मैंने उसे लौटते देखा है ।'

राजा का मुख भय से आक्रांत हो गया ।

'तुम क्या जानो ?' सुखराम ने कहा : 'वह मुझसे कभी झूंठ नहीं बोली ।'

बूढ़े ने सोचा शायद पुरानी यादें उखाड़ देने से मन सुस्थिर हो जायेगा । उसने पुकारकर पूछा : 'क्या कहती थी वह ?'

'वह कहती थी कि वह मेरे बिना नहीं रह सकती ।'

'पर वह दगा दे गई ।'

'तुम झूंठ कहते हो ।' सुखराम ने उसी तन्मयता से कहा : 'वह सबसे झूंठ कह सकती थी, पर मुझ पर उसका भरोसा था । तुम क्या जानो, जब मैं छोटा था, तभी से वह मुझे चाहती थी । तब मैं बहुत छोटा था, वह भी बहुत छोटी थी, वह धूल में खेलती थी, मैं इधर-उधर से आते-जाते उसे मार जाता था, तब वह रोती थी । फिर हम दोनों साथ-साथ खेलने लगे थे । और वह मुझे दिक करती थी । मैं उसे मारता था, वह रोती थी, मुझे काट खाती थी । और फिर जिस दिन मेरे मां-बाप मरे थे, उस दिन उसीने मुझे सहारा दिया था । वह मुझे छोड़ जायेगी ? तुम जान जाओगे, और मैं नहीं जानूंगा ? क्यों ?

मेरे साथ रहने का क्या उसे चाव न था ?' वह हँसा। वह हास्य बहुत निर्मम और ठंडा था। उसे सुनकर वे सब काँप उठे।

राजा ने कहा : 'चल सुखराम, अब कुछ नहीं रहा।'

'तुम जाओ, मैं नहीं जाऊँगा।'

'क्यों ?'

'प्यारी मुझे दिखाई दे रही है।'

राजा निराश हुआ। सबने हताश होकर देखा और एक-एक करके सब चले गये। केवल राजा रह गया। सुखराम बैठ गया। राजा पास खड़ा रहा।

'राजा जी !' सुखराम ने कहा।'

'क्या है ?'

'आज प्यारी बड़ी गहरी नींद में है।

'मूरख वह जल रही है, मर गई है, तू समझता ही नहीं', राजा ने हारकर कहा।

सुखराम हँसने लगा, कहा : 'ठीक है, मैं नहीं समझता। तुम समझते हो। जानते हो ? उसने क्या किया था। मुस्कराई थी। तुम इसे जबर्दस्ती बांध लाये हो। तुम राजा हो। जैसे सब बड़े आदमी निठुर होते हैं, तुम भी निठुर हो, तुम्हें दया नहीं है।'

लकड़ियाँ चटचटाने लगी थीं। आकाश में धूंआ उड़ा जाता था। भयानक आग थी और सुखराम ने कहा : 'राजा जी !

'क्यों ?'

'तुम्हें तो याद होगा रुस्तमखाँ का मकान जला था ? ऐसा ही था न ?'

राजा ने वैसे ही कहा : 'हाँ याद है।'

'तुम अच्छे आदमी हो।' सुखराम कहता रहा : 'याद है न ? मैं कितना डर गया था। मैंने समझा था प्यारी और कजरी उसीमें जल उठेंगी। और मैं भागा-भागा पहुँचा था। पर प्यारी और कजरी दोनों खड़ी थीं। डर तो गई थीं। जली कोई नहीं थी। वह उस आग में नहीं जली थीं, तो क्या वही प्यारी इस आग में जल जायेगी ? जानते हो यह क्या है ?'

'क्या है ?'

'यह सुपना है।'

'सुपना ही है सुखराम !' राजा ने कहा : 'यह सारी दुनिया ही एक सपना है।'

'प्यारी बड़ी अच्छी है राजा जी।' वह कहने लगा : 'वह कभी मुझसे रूठती है, कभी मान मनाती है, पर मैं जानता हूँ, वह मुझे बहुत चाहती है, मुझे तो ऐसा लगता है जैसे वह पिछले जनम में भी मेरे साथ ही थी। हम दोनों तब शायद हिरन और हिरनी थे। एक झरने पर संग-संग पानी पीने जाया करते थे।'

राजा डर गया। उसे लगा कि सुखराम सचमुच पागल हो गया है। उसकी इच्छा थी कि किसी तरह वह रो पड़े किन्तु वह नितान्त शान्त था। और यह उसका ठंडापन उसके अथाह दुख का ही पर्य्याय था। परन्तु राजा की समझ में नहीं आ रहा था कि वह क्या करे ? उसको सोचने में देर लग गई।

'तुम्हें विसवास नहीं होता ?' सुखराम ने उसे जवाब न देते देखकर पूछा।

'होता है', राजा ने कहा।

सुखराम ने कहा : 'तो वे सब क्यों चले गये राजा जी ! तुम उन सबको सजा दोगे न ? वे सब हमें छोड़कर क्यों चले गये ?'

'चलो मेरे साथ।' राजा ने कहा : 'मैं उन सबको सज़ा दूंगा।'

उसने सुखराम का हाथ पकड़ लिया। सुखराम उठ खड़ा हुआ और बोला : 'राजा जी !'

'अब क्या है ?' राजा ने चलते हुए पूछा।

'देखो किसीको मारना नहीं।'

'नही मारूँगा।' राजा उसे लेकर बढ़ चला।

'वे नादान हैं', सुखराम ने कहा।

दोनों पहुँचे। उस समय कई नट और नटिनी वहाँ खड़े थे। उनके मुख उदास थे।

'राजा जी !' सुखराम चिल्ला उठा।

'क्या है ?'

'वह देखो !' वह फिर चिल्लाया।

देखा। राजा काँप गया।

सुखराम ठठाकर हँसा। उसका वह भयानक हास्य सुनकर अन्तराल तक

थहर उठा। उसमें हृदय की पत्तें तड़क गईं और फिर राजा ने सन्नद्ध होकर आँखें फैला दीं।

द्वार पर कजरी प्यारी के कपड़े पहने खड़ी थी। वह मुस्करा रही थी।

कजरी चिल्लाई : 'बलमा।'

सुखराम हँसता रहा। कहा : 'घबराती क्यों है ? मैं गया ही कहां था ?'

राजा अवाक् खड़ा रहा। वह आज जैसे एक नये लोक में आ गया था। सब स्तब्ध खड़े थे, जैसी किसीने उनपर इन्द्रजाल फैला दिया था।

तब राजा की ओर देखकर सुखराम ने कहा : 'राजा जी !'

'क्या है ?' उसने धीरे से पूछा।

सुखराम चिल्लाया : 'मैंने कहा था न ?'

राजा नहीं बोला।

कजरी और सुखराम गले मिले।

'प्यारी !' उसने कहा। वह स्वर कितना गद्‌गद था। जैसे बहुत दिन के बाद आज वह अपने आराध्य के पास आ गया था, जैसे बहुत दिनों के बाद बटोही को अपनी मंजिल मिल गई थी।

'हाँ।' कजरी ने रुआँसे कण्ठ से कहा।

'मैंने कहा था प्यारी लौट गई है।' सुखराम ने कहा : 'पर यह सब लोग मानते ही नहीं थे। कजरी कहाँ है ?'

'कजरी !' कजरी ने कहा : 'वह मर गई ?'

तब सुखराम ने आँख फाड़कर देखा। और कजरी की आँखों से धारा फूट निकली।

'प्यारी ऽ ऽ ऽ ऽ !' सुखराम धाड़ मारकर रो उठा और धरती पर सिर फोड़ने लगा और आर्त्त स्वर से हृदयों को हिलाने वाला चीत्कार करके अब बार-बार पुकार उठा : 'निरदई ! तू चली गई ! तू मर गई ! मुझे भी साथ क्यों न लेती गई !'

और कजरी का रुदन ऊर्ध्व श्वास के साथ खिंचकर उस समय झिझक-झिझककर घुटता-घुटता-सा बिखरने लगा·····।

राजा पास आ गया।

रानी ने कहा : 'रोकै मत !'

राजा रुक गया·

रानी ने कहा : 'वह पागल हो गया था न ?'

राजा ने सिर हिलाया ।

रानी कहने लगी : 'उसे तुम ले गये मैं तो मर-मर गई ।'

'क्यों ?' राजा ने पूछा ।

'इसका तो रोना ही बंद न होता था ।'

'हाय कैसी-कैसी रोई है !' बूढ़ी ने कहा : मेरा तो कलेजा हिल गया ।'

'और वह नहीं रोया रानी ।' राजा ने कहा ।

'मरद की बात है ।' बूढ़ी ने उत्तर दिया ।

रानी ने धीरे से कहा : 'मरद नहीं काकी । वह तो पत्थर हो गया था । वह तो और भी खतरनाक है·····'

और सुखराम और कजरी का वह रोदन अब भी गूंज रहा था । सब उन्हें छोड़कर एक ओर आ गये थे ।

राजा ने कहा : 'पर यह प्यारी कैसे बनी ?'

'मैंने बना दिया ।' रानी ने कहा ।

'सो कैसे ?'

'बहुत रोई, बहुत रोई, तो मैंने कहा कि तू ही रोयेगी तो फिर तेरे आदमी को ढांढस कौन बँधायेगा । बस ।'

'फिर ?' राजा ने पूछा ।

'फिर पीछे पड़ गई ।'

'कैसे ?'

'बोली मुझे मरा समझ लो । मेरा मरद उसे ही मानता था, वह मानने लायक थी । मैं क्या उसकी बराबरी कर सकती हूँ ?'

'तब ?' राजा की जिज्ञासा बढ़ी ।

रानी ने कहा : 'क्या करूँ । मानती न थी ।'

'क्या कहती थी ?'

'वह कहने लगी कि सुखराम इसे सह नहीं सकेगा । वह मुझसे ज्यादा प्यारी को चाहता था । कजरी आई है, कजरी चली गई है । मैं प्यारी हूँ, आज से मैं प्यारी हूँ ।'

'अरे !' राजा ने कहा ।

'हाँ' रानी कहती गई : 'कजरी नहीं मानी । उसने कहा उससे कह देना

कजरी मर गई। वह नहीं रोयेगा। अगर मैं प्यारी बनकर ही उसे सुख दे सकती हूँ तो क्या है ? क्या एक जिंदगी उसके लिये मैं प्यारी बनकर नहीं बिता सकती ? और इसने प्यारी के कपड़े पहन लिये और बोली, कहो रानी ! मैं प्यारी जैसी लगती हूँ कि नहीं ?'

राजा ने कंधे पर हाथ धरकर कहा : 'सुखराम !'

वह नहीं बोला।

रानी ने फिर कहा : 'और फिर इसने सिंगार किया !'

राजा चौंका। पूछा : 'सिंगार ?'

'हाँ ! कहती थी कि बलमा देखेगा तो क्या रूखी-रूखी-सी जाऊंगी उसके पास !'

पर सुखराम रो रहा था। आज हृदय में से प्रत्येक सिसक प्यारी की स्मृति बनकर रिस रही थी। वह कठिन ग्रन्थि खुलती थी तो अपने साथ कितना विस्तार लेकर घूम-घूमकर आती थी।

रानी ने कहा : 'मन हल्का हो जायेगा।'

राजा ने देखा। उसकी करुणा कराह उठी।

एक वृद्ध बढ़ आया। कहा : 'राजा जी !'

'क्या है ?' राजा ने पूछा।

वृद्ध ने धीरे से उसे अलग ले जाकर कहा : 'रोको नहीं। इस बखत इसे खूब रो लेने दो।'

'क्यों ?'

'रो लेगा तो पागल नहीं होगा।'

राजा ने कहा कुछ नहीं। देखता रहा। और जो कुछ वह देख रहा था उस पर उसे आश्चर्य्य ही बढ़ता जाता था।

कजरी ने गाया—'हाय जेठी। तू चली गई, तू चली गई, निरदई भगवान, तूने उसे उठा लिया, तूने उसे उठा लिया, अरे क्या वह अभी से जाने के जोग थी.....'

सुखराम ने दोनों हाथों से सिर पीट लिया। कजरी ने अपनी छाती पीट ली। सुखराम ने कहा : 'प्यारी !'

और फिर उस पुकार के साथ वह मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। कजरी बड़े जोर से चिल्ला उठी।

रात हो गई थी। डेरे में सुखराम पड़ा था। कजरी की गोद में उसका सिर था। जब उसे होश आया, उसने पूछा : 'कौन ?'

'मैं हूँ कजरी।'

सुखराम ने उसे खींचकर छाती से लगा लिया और फिर धीरे से कहा : 'तू ही है कजरी, तू तो मुझे छोड़कर न चली जायेगी ?'

दोनों फूट-फूटकर रो पड़े।

२८

'मैं इसका बदला लूंगा।' सुखराम ने कहा।

कजरी चौंकी। पूछा : 'किसका ?'

'प्यारी की मौत का।' वह दृढ़ था।

'भला कैसे ?'

'तू ठहरी रह।' उसने सोचते हुए कहा।

'मैं तो यहीं हूँ।' कजरी ने कहा।

सुखराम ने कुछ नहीं कहा। सोचने लगा।

'जो दुश्मन था वह तो मर चुका।' कजरी ने कहा।

'वह तो एक था।'

'फिर अब कौन है ?'

'पुलिस है।'

कजरी डरी, पर हँसी।

'क्यों हँसती है ?' उसने चिढ़कर पूछा।

'हँसू न तो करूँ क्या ? तू तो बेवकूफ है।' कजरी ने कहा।

'क्यों ?'

'पुलिस का क्या मतलब ? पुलिस इतनी है, तू अकेला है।'

'पर उन्होंने प्यारी को मारा है न ?'

'क्यों ? प्यारी उसके पास जाकर बसी भी तो थी। वैसे ही उसके पास जाकर उसकी चाहत भर नहीं सकती थी ?'

'तू प्यारी की बुराई कर रही है कजरी ?' वह धीमे स्वर से कह उठा।

'तू ऐसा मानता है ?'

'नहीं। पर कहते बखत सोचती नहीं।'

'मैं सब सोचती हूँ' कजरी ने कहा। 'पर अपनी सकत भी देख। तू है क्या, बता सकता है ?'

'मैं कुछ नहीं हूँ, निबल हूँ, तू यही कहना चाहती है न ?'

उसने कजरा की आँखों में झाँका।

'नहीं', कजरी ने कहा : 'पहाड़ कोई आदमी नहीं खोदता, सब मिलकर ही उसे काट सकते हैं।'

'पर हमारे साथ तो कोई नहीं ?'

'कोई नहीं, तभी कहती हूँ, नहीं है तो जैसे पी जाते हैं, वैसे हम भी पी जायेंगे। जिस जगह कोई चारा नहीं, वहाँ अगुआ बनें सो क्या हमें ही अपनी जान भारी पड़ी है ?'

उसके तर्क में सत्य था।

कजरी ने फिर कहा : 'तू चला जा। तू कुछ कर। पर वे तुझे पकड़कर हवालात में डाल देंगे। फिर तुझे फाँसी दे देंगे। कुछ भी नहीं होगा। कोई ऊँच जात होता, बड़ा आदमी होता तो असर भी पड़ता। तू नहीं रहेगा तो किसी-का कुछ नहीं बिगड़ेगा, बस मेरी दुनिया अँधेरी हो जायेगी।'

वह कह न सकी।

पर उसने सत्य कहा था।

सुखराम ने कहा : 'कजरी ! तुझमें यह सब विचार कहाँ से आ गया।'

कजरी ने कहा : 'भाग से बड़ा कोई नहीं। बता इधर आये हैं तब से हाथ हिलाना पड़ा है कुछ ? प्यारी के रुपये भी खतम हो चले हैं। पेट के लिये तूने कुछ सोचा है ?'

'नहीं कजरी।' सुखराम ने कहा।

कजरी ने कहा : 'फिर खायेंगे क्या ?'

सुखराम सोचने लगा। कहा : 'अभी तीस रुपये हैं। बहुत है। तब तक कुछ न कुछ आ ही जायेगा।'

'क्यों ?' कजरी ने कहा : 'बैठे-बैठे आ जायेगा ?'

'और नट कहाँ से लाते हैं ?'

'चोरी करते हैं। नटनी कमाती है।'

सुखराम क्षणभर सोचता रहा।

'खतरे का काम है,' कजरी ने कहा: 'पर चोरी करना बुरा नहीं है। न करें तो करें क्या? पर मुझे यह सब नहीं भाता। यह अच्छे काम नहीं हैं। अभी रुपया हाथ में है तो चल अहमदाबाद निकल चलें। वहाँ कमाकर खायेंगे।'

'वह परदेस है।'

'हुआ करे। यहाँ सब बिरादरी है, पर कोई मुँह में तो रोटी नहीं धर जायेगा?'

'हम तो राजा की सरन हैं।'

'राजा खुद भूखा नहीं है?' कजरी ने पूछा: 'वह क्या पेट भर देगा?'

'तू तो वैसे ही डरती है!' सुखराम ने टाला।

कजरी ने कहा: 'मैं क्या डरती हूँ, तू खुद डरता है। तू सोचता है और सोचकर भी अंत नहीं पाता, तो घबरा के सोचना नहीं चाहता।'

'तू ठीक कहती है।'

'फिर ले चलेगा न?'

'पर मैं डरता हूँ।'

'क्यों? मैं क्या बैठी-बैठी खाऊँगी? अरे तू देखियो, मैं भी मजूरी करूँगी।'

'नहीं कजरी।'

'क्यों?'

'कहीं तू भी चली गई तो?'

'मैं कहाँ जाऊँगी?'

सुखराम की आँखें भींग गईं। वह बाहर देखने लगा। आसमान उजला था। डेरे में सुस्ती थी। कजरी को प्यारी की याद आ गई, और फिर ध्यान आया। सुखराम उसी ओर इंगित कर रहा है।

'तू न डर' कजरी ने कहा—और फिर धीरे से बड़बड़ाई—'भाग की बात कौन जानता है कमेरे?'

कजरी रो दी।

सुखराम की चेतना सुस्थिर हुई। कहा: 'तू रो नहीं कजरी।'

कजरी ने आँसू पोंछे।

'हम क्या सोचते थे, और क्या हो गया।'

'भगवान की मरजी।' कजरी ने उत्तर दिया।

तब सुखराम ने कहा : 'मैं गांव जाऊंगा।'

'क्यों ?' कजरी चौंकी।

'मैं एक ऐसा काम करूँगा कि कोई जान ही न पायेगा अब बदला भी चुक जायेगा।'

'मैं भी चलूंगी।' कजरी ने कहा।

सुखराम ने कहा : 'मैं जल्दी आऊँगा। तू फिकर न कर। काम ऐसा चुपके का है कि कानोंकान खबर नहीं होगी।'

कजरी ने कहा : 'और किसीको पता न चल जाये !!'

'चलेगा तो पुलिस न पकड़ लेगी ? अब तो डर नहीं ?'

'नहीं।'

'क्यों ?'

'मैं जानती हूँ तू बड़ा चालाक है। तुझे कोई सहज ही पकड़ नहीं सकता। जेल में से भागा है तू करनट ! आजतक नहीं पकड़ा गया।'

सुखराम हँसा। कहा : 'और तलाश करूँगा कि हरनाम का खून किस पर लगा। मैंने तुझे बताया निरोती पकड़ा गया था !'

'कहाँ कुछ तो नहीं।'

सुखराम ने पूरा किस्सा सुनाया। सुनकर डर गई।

'क्यों ?'

'वे पकड़कर मारते हैं !'

'तो उनके हाथ में मैं आऊँगा कब ?'

'तुझे मेरी सौगंध है।'

सुखराम ने कजरी की आँखों में आँखें डालकर देखा। वह हँस दी।

सुखराम जब चला तो शाम हो रही थी। वह पहाड़ से उतरने लगा। किसान अपने बैल हाँककर घर चले गये थे। ग्वारियों के ढोरों से उठी धूलि बैठ चुकी थी। वह जब चंदन के द्वार पर पहुँचा रात पूरी उतर आई थी। वह गाँव बाहर-बाहर चलकर वहीं पहुँच गया। चंदन गाँव के बाहर ही रहता था क्योंकि वह मेहतर था। उसके घर के पास ही गाँव का घूरा गिरता था। जिसके

भीतर तक सूहर घुस जाते । पास ही एक बड़ी नाली थी जिसमें से सड़ाँध आया करती थी ।

सुखराम को भी बदबू आई । परन्तु उसके भीतर विद्वेष था । वह उसे व्याकुल कर रहा था । घृणा में बहुत बड़ी अंधी शक्ति होती है, क्योंकि वह मनुष्य की बहुत-सी विकृतियों की ओर खींच लेती है । वहाँ तर्क के ऊपर मनुष्य का कलुष जाग उठता है ।

घृणा जब समर्थ में आती है तो वह वीरता बनती है । किंतु जब निर्बल में वह जगती है तो बिना पानी की मछली की तरह तड़पने लगती है । वह एक लोहा होता है जो हृदय को काटने लगता है । निर्बल मनुष्य को घृणा साँप के ज़हर की तरह व्याप जाती है । वह उस समय सब भूल जाता है । उसका एक ध्येय होता है कि किसी तरह उसका काम हो जाये, ताकि उसके बाद वह अपनी विकृत और जघन्य प्रतिहिंसा की तृप्ति में नीचता से हँस सके । और इस तरह के काम में किसीको माध्यम बनाना चाहता है ।

सुखराम का असल में यही हाल था । उसे तो क्रोध था । दरोगा से वास्तव में उसकी शत्रुता नहीं थी । परन्तु उसके भीतर अपनी ठकुराई का एक सुप्त अहं था, जिसको दरोगा ने ठोकर दी थी । निरोही गिरफ़्तार हो चुका था, हरनाम मर गया था, दरोगा पर ठाकुरों ने मामला चला दिया था, यह सब सुखराम ने रास्ते में अपनी परिचित उसी चमारिन से पूछकर जान लिया था, तब वह चंदन के द्वार पर आया था ।

जब मन ने तर्क किया तो उसके उस आहत अहं ने कहा था कि तू ठीक कर रहा है, खचेरा के खानदान का बदला ज़रूर लेना चाहिये ।

चंदन के पांच बीबियाँ थीं । वह दिन भर बैठा रहता और औरतें दिन भर काम करतीं । जिस पर तुर्रा यह था कि वह उन्हें काम ठीक से न करने पर हरामखोर कहकर गालियाँ देता था । औरतें उसका अदब करती थीं । उसके सामने कोई नहीं बोलती थी । चंदन के हर एक स्त्री से संतान थी और वे संतानें भी माताओं के साथ काम करती थीं । चंदन की भौं ज़रा चढ़ी रहती । वह मस्त आदमी था । अपने काम से काम रखता । कर्जा लेता तो मांगने के पहले चुका देता और अगर किसीने मांग ही लिया तो चंदन की आबरू बिगड़ जाती थी ।

वह साठ के करीब था पर उसमें बुढ़ापे का एक ही लक्षण आया था कि

कान के पास के बाल सफ़ेद हो गये थे, वर्ना उसकी खाल खिंची-खिंची थी और चारों ओर से एक चिकनापन दिखाई देता था। उसके कपड़े उसके शरीर पर फँसे-फँसे-से आते। उसकी काली घनी मूँछें उसके मुँह पर पड़ी रहतीं जैसे पानी में सरकडों की आड़ी-तिरछी छाया पड़ गई हो। और उसकी भद्दी मोटी नाक उन पर ऐसे जमी बैठी थी, जैसे उसके वज़न से ही वे पूले जैसी मूँछें फैल गई हों।

उसका काला भुजंग रंग था, पर छबीला इतना कि एक दिन बड़े ज़मींदार ने जब उसे पाँच पोशाक दीं, तो पहनकर फूला न समाया और गाँव के बज़ार में सारे बनियों को झिझोड़ आया कि साले बनिया बाँट ! तुम क्या दोगे, जो रईस हैं, देने को उनका ही हाथ उठता है और इस प्रकार वह अपने दाता के विरुद्ध विष के बीज बो आया था।

मोटा हट्टा-कट्टा वह भारी आवाज़ का आदमी देखकर ही क्रूर लगता था। परन्तु वह ऐसा था नहीं। हृदय का कोमल था। जब उसकी बहुएं आपस में लड़ती थीं तो वह पहले तो चुप रहता, फिर बड़प्पन के लिहाज़ से कभी बड़ी की तरफ़ बोलता। कभी जवानी के लिहाज़ से छोटी की तरफ़। बीच की बहुएं अब उसके लिये बेकार थीं।

उसकी आँखें सूर्ख रहती थीं। एक तो बहुत काले आदमी की आंखें वैसे ही कुछ सुर्ख होती हैं। फिर शराब का शौक तो उसे और भी ललाई दे देता। उसकी औरतें शराब पीकर मस्त हुए पति को देखतीं तो मुस्करातीं। वे सुरीली आवाज़ में गातीं और उसको सुनकर चंदन कहता: 'सुसरियो ! खूब गाओ, खूब गाओ। अब के फगुवा लेने जाओ तो ऐसा गाना कि जमींदारनी खुश हो जाये।'

शराब चंदन के जादू-टोने से सम्बद्ध थी। चंदन प्रसिद्ध टोनेबाज़ था और मरघट तो उसका घर समझा जाता था। उससे गाँव के बड़े लोग भी डरते थे। भूतों का ठेका मेहतर और धोबियों के हाथ में ही होता है।

उसने पेड़ की छाया में शराब उँड़ेली कि दुनिया आकर कुल्हड़ में बैठ जाती। और फिर वह भद्दे स्वर में गाता—

ऐ तेरे बैना मोहे सुहाए·····

और अपने गर्दभस्वर से सुरीली आवाज़ के बारे में वह ज्यों-ज्यों कल्पना करता राहगीर और बिगड़ते। ग्यासी कोरी चौधरी कहलाता था, साढ़े चार फुट

का पतला-सा आदमी, आँख का ऐसा अंधा कि एक झलक-सी दिखाई देती। राह चलता जानवर तो दीखता, पर बहुत ही करीब जाने पर उसे गाय और भैंस का फरक पता चलता। वह ठिठक कर एक दिन रुक गया था।

चंदन ने देखा तो पुकारा : 'आओ चौधरी !'

'क्या है ?' चौधरी ने पूछा। 'कौन चंदन है !'

'हाँ चौधरी।'

'क्यों रोकता है मुझे ?'

'आओ श्रद्धा खोल डाला है, ढालूँ कुल्हड़ में ?'

चंदन शराब के नशे में मस्त था। चौधरी ने माँ से प्रारम्भ किया और पाँचों बहुओं का सम्बन्ध जोड़कर एक बार गाली दी और फिर बड़बड़ाता चला गया। चंदन को कुछ नहीं व्यापा।

चंदन की आदत थी कि जब उसे रुपयों की ज़रूरत पड़ती तो मालिक के घर जाता और झाड़ू स्वयं हाथ में लेता। इधर-उधर करके कई बार उनकी नज़र में पड़ता और अन्त में सलाम करता। वह उस दिन पैसे लेकर लौटता। जमींदारनी से उसने कई बार बहुओं के लिये कपड़े मंगवाये थे। बड़ों की रईसी को मीठी चुनौती देता और काम निकाल लेता।

सूहर पालना उसका धंधा था। उनके बाल बेचता। कुछ नट भी उससे खरीद ले जाते और बड़े कस्बे ले जाते जहाँ से इकट्ठा होकर वह सब माल शहरों में आ जाता, जहाँ से वे बाल विलायत के कारखानों में चले जाते। जब कहीं चंदन ने यह सुना कि उसके सूहरों के बाल विलायत जाते हैं, तब से उसे लगने लगा कि उसने विलायत की आधी जायदाद अपने पास रख छोड़ी है।

सुखराम ने कहा : 'चंदन हो !'

छोरी निकली। पूछा : 'कौन है ?'

'अरे चौधरी है ?'

'है। क्या काम है ?'

'तू कह दे कजरी का आदमी आया है।'

वह अपना नाम नहीं लेना चाहता था। कहीं कोई सुन ले तो खतरा जो पैदा हो सकता है। छोरी भीतर चली गई।

चंदन कच्चे कोठे से निकल आया। बोला : 'कौन है ?'

सुखराम ने पास आकर कहा : 'राम राम।'

'अरे तू है बेटा !' चंदन ने कहा। 'बैठ-बैठ। अरी छोरी, हुक्का ले आ !'

'अरे नहीं-नहीं,' सुखराम ने कहा : 'मैं तो चिलम पीता ही नहीं, बीड़ी पीता हूँ।'

चंदन अपने में मस्त था। बोला : 'जाने दे, जाने दे।'

वह जानता था कि वह उसके घर का नहीं पियेगा, पर उसकी आदत और थी।

बोला : 'कैसे आया ?'

'एकंत का काम है।'

'चल उधर।'

एक पेड़ के नीचे दोनों बैठे। सुखराम ने कहा : 'यह दरोगा बड़ा तंग करता है चौधरी। तुम ही बचा सकते हो।'

'सो कैसे ?'

'अरे अब लगे न भोले बनने, इतना जंतर-मंतर जानते हो। डाकिन तुम्हारे पास आती है, बैताल तुमने सिद्द किया है।'

'अरे नहीं।' चंदन हँसा। सुखराम ने कहा : 'भला बताओ !'

'दो तरीके हैं।' चंदन ने कहा।

'क्या-क्या ?'

'तू पक्का होके आया है ?'

'बिल्कुल।'

'तो मरहट में एक लुगाई ले चल।'

'लुगाई ?'

'हाँ-हाँ, काम आयेगी।'

'क्या काम ?' सुखराम ने अचकचाकर पूछा। वह तो इसकी कल्पना भी नहीं करता था।

'मैंने तो पाँचवीं को फँसाया था।' चंदन ने कहा—'फिर ब्याह करके डाल लेया। खूब काम करती है। उसके अब तीन बच्चा हैं।'

सुखराम का गला सूखने लगा। उसने कहा : 'औरत मंतर में क्या करेगी ?'

'और तू क्या जाने ?' चंदन ने कहा : 'लड़का है अभी। यह जंतर-मंतर की बात है। बहेलिन है एक, मढैया के परे रहती है। उसका बाप अंधा है। वह आजकल इधर-उधर जवान यार करती रहती है। मैं जानता हूँ। उसे ले आ।'

'ले तो आऊँ ? पर उससे काम क्या होगा ?'

'उसे नंगी करके मरघट में शराब पिलाकर···'

'नहीं, नहीं', सुखराम ने काँपकर कहा : 'नहीं काका।'

'नहीं काका ?' चंदन ने आश्चर्य से कहा।

'मुझसे न होगा ये !'

'क्यों तू मरद नहीं है।'

'अब तुम यही समझ लो कि मैं मरद ही नहीं हूँ। मुझे तो यह सोचकर ही डर लगता है। काका ! यह तो बड़ी डरावनी बात है। मेरे तो रोंए खड़े हो गये !!'

'तो फिर रकम लाया है ?' चंदन ने चिढ़े हुए स्वर से कहा।

'कैसी रकम ?'

'खर्चे की।'

'वह मंजूर है।' सुखराम ने कहा : 'काहे में लगेगी ?'

'भजन-पूजा में।'

'हाँ। यह ठीक है।'

'अबे यह रस्ता जरा कठिन है। उसमें तो डाकिन तुझसे बोलती, और फौरन काम हो जाता।' पर सोचकर कहा : 'तू जरा हिम्मत नहीं कर सकता ?'

'क्यों नहीं कर सकता ?'

'तो तू बहेलिन को···'

'नहीं, नहीं, काका' सुखराम ने कहा—'वह नहीं दूसरा तरीका ही ठीक रहेगा।'

'वर्ना पचास रुपये लगेंगे। सोच ले।' चंदन ने आंखें गड़ाईं। 'उसमें पन्द्रह रुपये में सब हो जायेगा। बहेलिन ज्यादा से ज्यादा तीन रुपये ले लेगी।'

'काका पाँव पड़ता हूँ।' सुखराम ने कहा : 'वह तो बात ही छोड़ दो।'

'तेरी मर्जी।' चंदन ने पुकारा : 'छोरी ! हुक्का नहीं लाई ?'

'लाई !' छोरी ने आवाज़ दी।

सुखराम ने झट से बीड़ी सुलगा ली कि कहीं पीने को न कह दे। धरम सारा बरबाद हो जायेगा।

लड़की हुक्का दे गई। चंदन ने नली में मुँह लगाया।

'पचास लगेंगे ?' सुखराम ने कहा।

'रकम कण्टान !' चंदन ने सिर हिलाया।

'कुछ कमती कर देते ?'

'यार मेरे ! जोखों का काम है।'

'तो फिर ला दूँगा।'

'शाबाश !' चंदन ने कहा और फिर हुक्के में मुँह लगाया।

'पर काम हो जायेगा ?'

'पछाड़ खाके गिरेगा नीचे।'

'कब।'

'इधर मेरी तलवार चलेगी, उधर उसका हिया धड़क के बंद हो जायेगा।'

सुखराम को चैन मिला। उसने कहा : 'तौ रात को ला दूँगा दो घंटे में।'

'जा ले आ।' चंदन ने धीरे से कहा : 'आजकल बौहरे लल्लू के घर माल है।'

'तुम्हें कैसे खबर ?'

'हमें खबर न हो भला। उसका भतीजा सब माल हथियाना चाहता है, सो मुझसे मंतर करवाने आया था। मैंने मना कर दिया।'

'क्यों ?'

'बनिये का लड़का है। कच्चे दिल का। जो किसीसे पीछे मेरा नाम ले दिया तो मेरी गिरस्ती कौन संभालेगा ? मेरे बिना कोई इनमें से काम करता है ? सुसरियाँ हाथ पर हाथ धरे बैठी रहती हैं।'

'सो तो है' सुखराम ने बिना किसी दिलचस्पी के सिर हिलाया, हाँ में हाँ मिला दी, क्योंकि इसमें उसका कुछ बनता-बिगड़ता नहीं था।

सुखराम अंधेरे में छिपता हुआ चल दिया। बौहरे लल्लू की बाज़ार में दूकान थी। जब निठल्ले लोग आकर बैठ जाते और अपनी दूकानदारी में उसे फरक नज़र आता दिखाई देता, तुरन्त टाट फटकार कर झाड़ू लगाने लगता और सबको भगा देता। वैसे बड़ा मीठा आदमी था, पर जब पैसे की बात आती तो आँखें तुरन्त बेपानी की हो जातीं और लगता कि उसमें दया ही नहीं। किफ़ायत का

हाल यह था कि घी में पड़ी मक्खी को निचोड़कर फेंकता। दूकान से वह लौटता तो दस एक बज जाते क्योंकि अड्डे के पास दूकान थी जहाँ देर तक लोग रहते। वह बड़ा भगत आदमी था। काली पड़ चुकी धोती नीचे रहती, अधमैला कुर्त्ता ऊपर पहनता और पाँव में चमरौधा पहनता जिसमें पचासों पैबन्द लगे होते। उसे देखकर कोई नहीं कह सकता था कि वह बौहरा था। उसकी लंबी-लंबी मूंछों का हिलना तो उस वक्त मजे बाँधता था जब वह कटऊ का घी लेता था और तोलता बाद में था पहले डंडी मार लेता था। मंदिर में खड़े होकर ॐ की आवाज़ ऐसे लगाता जैसे ओऽऽऽ की बाँग देता हो और फिर माला उसके हाथ में ऐसे चलती कि देखने वाले आश्चर्य्य करते। बराबर सटासट घूमती चली जाती थी और उसके घूमने की फुर्ती देखकर लगता था कि उंगलियाँ घूम नहीं रही हैं। माला अपने आप नाच रही है। फिर एक टांग पर खड़े होकर वह प्रार्थना करता।

सुखराम ने बौहरे लल्लू की दीवार में सेंध लगा दी। यह काम आज वह पहली बार कर रहा था। परन्तु जान का खतरा भी था। कोई नहीं आया, सुखराम ने काम पूरा कर लिया और भीतर घुस गया।

सामने ही घड़े रखे थे। उस कोठे में उस समय कोई नहीं था। सुखराम उन्हें देखने लगा। एक घड़े में उसे दो हँसुलियाँ मिलीं। उसने रख दीं। अगले घड़े में रुपये थे। उसने धीरे से उठाये। दोनों मुट्ठियाँ दो बार भरीं।

सुखराम रुपये लेकर भागा।

जब वह बाहर आ गया तो उसने इधर-उधर देखा। दिल धड़क रहा था। वह तीर की तरह भाग चला।

भीतर शायद कोई आया, उसने देखा तो हल्ले किये। सब आये, देखा। परन्तु क्या हो सकता था। सेंध लगाने वाले ने उस्तादी की थी। तिरछी सेंध लगाई थी, जिसमें आवाज़ कम होती है।

गाँव में हल्ला हो गया। बात फैलते कुछ देर नहीं लगी।

गांव-बाहर जाकर सुखराम ने पग संभाले और वह चंदन के पास जा पहुँचा। चंदन पेड़ के नीचे सो रहा था। कुछ देर बाद सुखराम ने खाँसा।

'अरे कौन है ?' चंदन ने पूछा।

'कोई नहीं।' सुखराम ने कहा : 'मैं हूँ चौधरी।'

'लो काम हो गया।' सुखराम ने निकट बैठकर कहा।

चंदन कण्ठ के भीतर हँसा और वह हँसी बड़ी अजीब थी जिसमें से ह और स का मिला हुआ शब्द बाहर निकल रहा था। चंदन ने अपने हाथ फैला दिये।

सुखराम ने चंदन के सामने रुपये धर दिये।

'कतने हैं ?' चंदन ने पूछा।

'तुम गिन लो।'

चंदन ने गिने। कहा : 'अस्सी हैं।'

'तुम ही रख लो सब।' सुखराम ने कहा: 'मुझे नहीं चाहिये। तुम चौधरी ठहरे, मुझे नहीं लेने।'

'बस कल रात चलेंगे।' चौधरी ने कहा : 'अब तू जा।'

'कल कब आऊँ ?'

'आज जब आया था तभी।'

'आज क्यों नहीं चलते ?'

'इस बखत ?'

'हाँ।'

'तो चल।' उसे आवश्यकता से अधिक मिल चुका था। रुपयों की शक्ति ने चंदन को घिस दिया था।

धीरे-धीरे रात घनी हो गई थी। चंदन ने एक मुर्गा ले लिया। और कुछ सामान अपनी पाँचवी बीबी से इकट्ठा करवाया वही उसके इन कामों में पक्की मदद करती थी। चलने लगा तो बहू ने कहा : 'आज क्या इरादा है।'

चंदन ने बहू का लाड़ किया। पाँच रुपये उसे दे दिये। सत्ताइस साल की औरत थी। अभी तक अकेले में घूंघट मारकर गाती और नाचती थी। चंदन का बड़ा लड़का उससे सिर्फ पाँच साल बड़ा था। रुपये देखकर उसकी भी चिन्ता कम हो गई।

चंदन ने कहा : 'डरे मत !'

वह बोली : 'सो क्या तुम्हें जानती नहीं ?'

चंदन बाहर आ गया।

चुपचाप वे दोनों निकल चले।

सुखराम ने कहा : 'अब क्या करोगे ?'

'अब तू फिकर क्यों करता है ?'

'तो पूछूँ भी नहीं ?'

'क्या करैगा पूछकर ?'

इस सवाल से सुखराम चित्त आया। बोला : 'ऐसे ही दिल नहीं मानता।'

'डरता होगा ?'

'हाँ, थोड़ा-थोड़ा।'

'क्यों ? मरहट थोड़े ही जा रहे हैं ?'

'फिर कहाँ चलेंगे ?'

तभी बगल की तरफ़ से दो आदमी आते दिखाई दिये। उनके पास कंधे तक के ऊँचे लट्ठ थे।

'कौन है ?' एक ने पूछा।

'हम हैं।' चंदन ने कहा : 'इसी गाँव जा रहे हैं।'

दुर्भाग्य से वे भी उसी गांव को जा रहे थे।

'किसके घर जाते हो ?'

'बिरादरी में। मदन भंगी को जानते हो ?'

सुनने वाले ज़रा हट गये। कहीं छू न जायें।

'हम भी वहीं जाते हैं।' उनमें से एक ने कहा : 'चलो साथ हो जायेगा। अंधेरी रात है।'

चंदन चकराया। बोला : 'हाँ-हाँ चलो, बड़ा अच्छा रहा। मेरे संग का यह लड़का वैसे ही डर रहा था। तुम जानों अंधेरे में देवता निकलते हैं न ?'

दोनों आदमी सकपकाये। एक ने कहा : 'तुमने देखा है कभी ? हमने तो कभी नहीं पाया।'

'नहीं पाया होगा।' चंदन ने कहा : 'भाग अच्छे होंगे। हम तो गांव से निकले ही थे कि एक तमाकू माँग रहा था। पूछो इस छोरे से।'

'क्यों ?' एक ने पूछा।

सुखराम झूंठ बोलते में हिचकिचाया तो—'हाँ-हाँ' का स्वर घुटा-घुटा-सा निकला। उन्हें लगा अभी तक डरा हुआ है।

एक ने पूछा : 'रात को कैसे जाते हो ?'

'अरे जरा रूखड़ी-उखड़ी ले ते जायेंगे जंगल से', चंदन ने कहा।

'क्यों भला ?'

'दवा-दारू के काम आयेगी और क्या ?'

'तुम भी अमावस की रात को निकले हो ? क्या दीखेगा ?'

'हमें न दीखेगा तो रूखड़ी का देवता आप दिखाई देगा।'

दोनों फिर डरे। हवा के चलने से गूंज उठती थी। चंदन ने सुखराम को इशारे से नोंचा। सुखराम अचानक चौंक उठा। चंदन धरती पर पड़ा किच्चा रहा था, चिल्ला रहा था : 'परमेसुरे छोड़ मुझे, अरे तू नहीं मानता·····।'

दोनों ने देखा। चंदन चिल्लाया : 'ज भवानी की। टं टं टं टं टं कबीर, हत ज्ञान बुद्धि जै, टं टं टं टं·····

उसका वह रूप देख सुखराम भागा। उसे लगा उस पर भूत आ गया था। उन दोनों ने जो देखा कि साथी ही भाग चला तो वे भी भागे। जब वे भाग गये तो चंदन उठा और लौटा।

उसने पुकारा : 'अबे कहाँ भाग गया ?'

पेड़ के पीछे से सुखराम निकलकर आ गया और हँसा। कहा : 'खूब बनाया।'

'सुसरे संग ही लगे जाते थे।'

चंदन ने चामड़ पर दीपक चढ़ाया। दीप का आलोक फैल गया और एक सेकण्ड में १ लाख ८६ हज़ार मील चलने वाला प्रकाश उन दोनों भागते हुओं को भी दिखा। वे डरकर और भी भाग चले।

चंदन ने कहा : 'तू डरता तो नहीं ?'

'क्यों ?' सुखराम ने कहा।

'हाँ ! हिम्मत रखना भला।' चंदन ने कहा।

सुखराम ने देखा चंदन ने कपड़ा खोला और देवी की मूर्त्ति के सामने ही मुर्ग़ा पकड़कर बाँध दिया।

उसने आलथी-पालथी लगाई और कहा : 'तू हटकर बैठ जा। जा बीड़ी पी ले।'

'तुम क्या करोगे ?' सुखराम ने काँपते स्वर से पूछा।

'मैं ? अब देवी बोलेगी !'

सुखराम ने मूर्त्ति की ओर देखा और जब उसे लगा कि वह बोलेगी तो वह डरा। क्या करेगा वह तब ? कैसे सह सकेगा सब ? उसे तो हिम्मत हारती हुई नज़र आई।

'कौन है तेरा दुश्मन ?'

'दरोगा है।'

'हाँडी छोड़ता हूँ' चंदन ने कहा : 'उसके बीबी-बच्चे हैं ?'

'है।'

'वे क्या करेंगे ?'

सुखराम क्या जवाब दे। चुप रहा।

'उनका दुख पाप बनकर तुझ पर चढ़ेगा। तू तैयार है ?' चंदन ने कहा : 'समझ ले, पर बचाने वाला और भी बड़ा है। अगर उसकी मरजी होगी तो वह मर जायेगा। अगर नहीं होगी तो कोई कुछ नहीं कर सकता।'

सुखराम स्तब्ध खड़ा रहा।

चंदन ने कहा : 'वह सबसे ऊपर है। अपनी तबियत से दुनिया को चलाता है।'

'तो किस्मत की बात हो गई। काम न होगा तो क्या होगा ?'

'हाँडी लौटेगी तब मुर्गा काट दूँगा।'

'क्यों ?'

'वर्ना वह छोड़ने वाले पर आकर फटेगी, और वह मर जायेगा।' चंदन ने कहा : 'तभी मैंने कहा था बहेलिन ले आता तो उसे पागल करवा देता, न पाप लगता, न डर रहता। किसीकी जिन्दगी लेने का क्या नतीजा भोगना पड़ता है जानता है ?'

सुखराम का दिल धकधक करने लगा। कहा : 'नहीं।'

'मरते बखत तुझे कोढ़ हो जायेगा और तू गल-गलकर मरेगा।'

सुखराम के रोंगटे खड़े हो गये।

और चंदन ने कहा : 'तू अगले जनम में सूहर बनेगा।'

'रोक दो यह पूजा।' सुखराम ने कहा : 'मुझे यह बदला नहीं लेना है।'

'यह कैसे हो सकता है ?' चंदन ने कहा : 'मैया के थान पर आ गये अब तो। अगर मैया को मंजूर होगा तो तेरा काम हो जायेगा।'

'तब भी पाप मुझे ही लगेगा ?'

'अबे तब आधा रह जायेगा।'

'तब क्या होगा ?'

'आखीरी बखत में तू सड़ जायेगा।'

'तो छोड़ दो यह काम।'

'तू छुड़ानेवाला है कौन,' चंदन ने कहा : 'अगर मैया को ही मंजूर न होगा तो आप बिघन डाल देगी।'

'और तू करता है सो तेरा क्या होगा ?'

चंदन ने गले की कंठी दिखाई और कहा : 'इसके रहते मुझे कोई डर नहीं। यह कवच है कवच।'

सुखराम हताश हो गया था। उसे भय ने ग्रस लिया था।

चंदन ने कहा : 'और अगर तू खुद रोकेगा तो तेरा सबसे प्यारा आदमी मर जायेगा।'

कजरी !!! मर जायेगी !!!!

सुखराम ने भर्राये स्वर से कहा : 'मैं कोढ़ से सड़-सड़कर गल-गलकर मरने को तैयार हूँ, सूहर बनने को तैयार हूँ—चंदन, तू पूजा कर ! मेरी ओर से कोई रुकावट नहीं है। मैया से कह दे मैं नहीं रोकता।'

चंदन ने कहा : 'शाबाश ! देवता की गैल में ऐसे ही कहा जाता है। पर तू कुछ डरपोक भी है। पाँचवीं बहू ने तो शराब पीकर मरघट में नंगी होकर खेल किया था, ज़रा नहीं डरी थी।'

चंदन की बात सुनकर सुखराम आहत हो गया और उस भयानक स्त्री के बारे में सोचने लगा।

'उसका तो बाप बड़ा भगत था,' चंदन ने सिंदूर मुर्गे के माथे और सीने पर लगाते हुए कहा। फिर चामड़ मैया के द्वार पर लगा दिया। चामड़ मैया सब-की देवी है। भीतर मेहतर घुस नहीं सकता, पर बाहर सब बैठ सकते हैं।

तब चंदन ने अंटी के पास कमर में खुंसी हुई शराब की बोतल निकाली। 'तू पियेगा ?' उसने पूछा।

करनट शराब किसीके हाथ से छीनकर पीने वाली जात, परन्तु सुखराम ने कहा : 'नहीं।'

'कभी नहीं पीता ?'

'अब छोड़ दी है।'

चंदन ने पी और पीकर फड़का।

तभी दूर हल्ला-सा होता लगा। चंदन चौंका। उसने उधर कान लगाया। कोलाहल उसी दिशा की ओर अब बढ़ा रहा था। चंदन ने हठात् दीप बुझा दिया। सुखराम चौंक गया।

कहा : 'क्या हुआ ?'

'तू बच गया ।' चंदन ने कहा ।

'देवी को मंजूर नहीं ।'

'तुझे कैसे पता चला ?'

'बिघन पड़ गया ।'

'कैसे ?'

'तू शोर सुनता है ?'

'हाँ ।'

चंदन ने पच्चीस रुपये निकालकर सुखराम के हाथ पर धर दिये और अंधेरे में कहा : 'ले यह वापिस ले ।'

'क्यों ?'

'तेरा काम नहीं हुआ ।'

'तू ही रख, यह चोरी के रुपये हैं । और देवी ने जो आज रच्छा की है, उसके लिये मैं उसे फिर-फिर ढोक देता हूँ ।' वह ढोक देने लगा ।

'भाग सुखराम ।' चंदन ने कहा ।

'क्यों ?'

'खतरा आ रहा है ।' उसने शराब की बोतल कमर में खोंसकर कहा ।

'कैसा खतरा !' वह उठा ।

तभी कोलाहल पेड़ों के पीछे सुनाई दिया । हो-हो के अतिरिक्त कुछ सुनाई नहीं देता था ।

'गांववाले लाठीबंद आ रहे हैं ।' चंदन ने कहा ।

'क्यों ?'

'उन्हें शक हो गया है ।'

'पर उन्हें डर क्या है ?'

'वे यही समझे हैं कि उनके गाँव पर कोई हाँडी चलाने आया है ।'

'क्यों ?'

'वे उसे रोकने आ रहे हैं ।'

'अच्छे आदमी हैं,' सुखराम ने ठंडी साँस लेकर कहा ।

'अच्छे हैं !' चंदन ने कहा : 'तू यहीं ठहरा रह जरा । फिर देख ।'

'तू जा रहा है ?'

'खबर फैल गई है मूरख। भाग। अगर उन्होंने एक को भी पकड़ लिया तो मार-मार के धज्जियाँ बिखेर देंगे। फिर की फिर देखी जायेगी।'

सुखराम ने देखा भीड़ और पास आ गई थी क्योंकि कोलाहल अब सामने के पेड़ों के पीछे ही था।

'अबे भाग,' कहकर चंदन भाग चला। क्षण भर में ही सुखराम भी भागा। दोनों अंधेरे में खो गये।

सुखराम बेतहाशा भाग रहा था। उसे लगा कि सारी भीड़ उसे ही पकड़ने चली आ रही है और अगर उन्होंने पकड़ लिया तो आज जीता नहीं छोड़ेंगे। लाश का पहँचानना भी मुश्किल हो जायेगा।

कोलाहल चामड़ के पास आ गया था। उस समय मशालें जल उठीं। एक ने कहा : 'यह देखो मुर्ग़ा बँधा है।'

'अरे इसके सिंदूर चढ़ा दिया है।'

'अभी भागे हैं वे लोग।'

'पकड़ो उन्हें। हमारे गांव पर ही हाथ उठाया था ?'

'पर थे कहाँ के ?'

'यह तो मैंने नहीं पूछा।' यह वही व्यक्ति था, जो भाग गया था।

'चलो, चलो, अब कोई फायदा नहीं।'

एक ने मुर्ग़ा पकड़ा, उसकी गर्दन उमेठकर उसे फेंक दिया।

सुखराम ने देखा दूर एक खंडहर था। वह उसीमें छिप गया। जब हल्ला बंद हो गया तो वह बाहर निकला। आहट ली। सब चले गये थे। चैन आया। आँखें उठाईं। विश्वास नहीं हुआ ! अधूरा क़िला !

तो वह अधूरे किले में छिपा था !!

तो आज फिर उसके पुरखों ने ही उसे बचाया था !!

उसने डंडौत की। और गद्‌गद स्वर से कहने को मुख खोला किंतु वह कह नहीं सका। हवा किले के खंडहर में सूँ-साँ, सूँ-साँ कर रही थी। भयानक हास्य-सी वह बार-बार गूंज उठती थी। अमावस्या के अंधकार में वह दुर्ग एक दानव के विकराल वक्ष की भांति कठोर दिखाई दे रहा था। वह निर्जनता चारों ओर साँप की तरह फुफकारती हुई बार-बार छटपटा उठती थी। किंतु सुखराम को डर नहीं लगा। उसे लगा वह किसी महान संबल के पास खड़ा है। उस पर आज कोई गहरी छाया है।

तभी लगा कोई खंडहर के भीतर हँस उठा और यद्यपि वह उल्लू का स्वर था, सुखराम में एक हहर-सी भर गई। वह आज फिर वहीं खड़ा है जहाँ एक दिन कजरी के साथ आया था। झील दूर फुंकार रही है। उसमें बघेर गुर्रा रहा है। सुखराम को भय लगने लगा। तब उसने भगवान की याद की और संपूर्ण आदर और भक्ति से नमित भाल साष्टांग दण्डवत करके कहा : 'पुरखो ! मैं पापी हूँ, अभागा हूँ, मैं तुम्हारी तरह जोग नहीं हूँ, मैं दीन, गरीब, नीच हूँ, मैं जात-कुजात हो गया हूँ, इसीलिये जो तुमने छोड़ा था, वह मुझ तक कभी नहीं पहुँच सकता। मुझे इसका दुख नहीं है, मुझे नहीं चाहिये ये सब। पर तुमने मेरी रच्छा की है, तुमने मुझे बचाया है।'

और सुखराम ने धरती पर नाक रगड़कर माथे को टेक दिया। वह पूर्ण विश्वास था। भय दूर हो गया।

जब वह लौटा तो सोचता हुआ चला जा रहा था। आज वह सुपना टूट गया था। पर सुपने में से सुपना पैदा हो गया। वह चुपचाप फिर चामड़ पर पहुँचा। कोई नहीं था। उसने मुर्गे को मरा हुआ पाया।

तब उसने अपना सिर देवी के द्वार पर टेककर कहा : 'मैया ! तूने पाप से बचा लिया। यह ही क्या कम पाप है कि मैं ठाकुर होकर भी करनट बना दुख भोग रहा हूँ। फिर यह पाप तो मुझे मानुस-जनम से ही दूर कर देता। पर तुझे तो यह मंजूर न था। ठकुरानी ने पाप किया था, जिसका बदला आज तक पूरा नहीं चुका। यह पाप तो रही-सही कसर पूरी कर देता। मैया, किला नहीं मिलता, तो न सही, पर मानुस तो बना रहने दे—मैया···।'

वह और कह नहीं सका। उसकी आँखें भींग गईं।

उस समय आकाश में नक्षत्र निकल आये थे। अमावस्या का अंधकार पहले से कम हो गया था। और सुखराम ने देखा, देवी जैसे मुस्करा उठी थी। उसने फिर ढोक दी।

२९

कजरी ने पूछा : 'क्या हुआ ।'

वह उठकर बैठ गई ।

'कुछ नहीं ।' सुखराम खाट पर बैठ गया ।

'तू इसी अंधेरे में आया है ?'

सुखराम ने बताया । कजरी ने सुना । और कहा : 'तो अब क्यों चिन्ता करता है । जब भगवान को ही मंजूर नहीं तो तू क्यों जान देता है ?'

'पर मुझे चैन नहीं आता ।'

कजरी ने उसका हाथ पकड़ लिया और कहा : 'तू तो पागल है । छोड़ इन बातों को । सो जा रात भर का जगा है । देख तो आँखें कैसी भारी पड़ रही हैं ।'

'नींद नहीं आ रही है ।'

'तुझे मेरी कसम है । लेट जा ।'

किन्तु उसका मन विक्षुब्ध था । उसने कहा : 'तू नहीं मानती ।'

'हाँ मेरा हक है, नहीं मानती ।'

सुखराम लेट गया । परन्तु उसे आराम नहीं मिला । आखिर कजरी थक गई । उसने कहा : 'तेरा जी ठिकाने नहीं है ।'

'सचमुच नहीं है ।'

वह उठकर घूमने लगा ।

'कजरी !'

'फिर कहीं जायेगा क्या ?'

'हाँ सोचता हूँ ।'

'अबके कौन है ?'

'लौटकर बताऊँगा ।'

वह हठात् मुड़ गया जैसे बिजली कौंध गई थी ।

'बताकर जाने में हरज है ?' कजरी ने कहा !

'नहीं लौटकर ही बताऊँगा ।' और इससे पहले कि कजरी कुछ कहे वह बाहर निकल आया । कजरी के दिल पर साँप लोट गया । नहीं बताता तो

मत बता। कसम है जो मैं भी अब अपने आप पूछूँ। वह रूठी बैठी रही।

सुखराम पगडंडी से बीहड़ की ओर चलने लगा। उसे निश्चय तो नहीं था, परन्तु उसे आशा थी कि वे लोग इधर ही रहते होंगे। वहाँ एक-आधा कोस चलने पर एक छोटी-सी इमारत दिखाई दी। अनगढ़ पत्थरों से बनी हुई थी।

बाहर जाकर वह ठहर गया। सोचा। फिर पुकारा : 'अरे खडगसिंह है !'

'कौन है ?' एक पतला स्वर आया।

'मैं हूँ सुखराम।'

'क्या चाहता है ?'

'खडगसिंह है ?'

'नहीं।'

सुखराम आगे बढ़ आया था। उसने खुले द्वार में से भीतर झाँककर देखा। वहाँ शराब के नशे में झूमती एक औरत बैठी थी। उसने सुखराम को देखा तो हँस दी। उसकी आँखों में ऐसी जंगली तृष्णा थी कि सुखराम उसे देखता ही रह गया।

सुखराम को अपनी ओर इस तरह देखते देखकर स्त्री ने एक नितान्त कामुक और अश्लील इशारा किया। सुखराम सकपका गया। औरत ने कहा : 'तू है ! खडगसिंह ये रहा। सो रहा है।'

'कब जागेगा ?'

'अभी जग जायेगा। ये ले।' कहकर स्त्री ने उसे एक धप्प मारा। खडगसिंह उठ बैठा। पूछा : 'क्या है री !'

'देख तेरा बाप आया है।' स्त्री ने कहा।

उसने देखा तो पूछा : 'तू कौन है ?'

'मैं सुखराम हूँ।'

'कौन ?' उसने जँभाई ली।

'वही जो उस रात दो लुगाइयों के साथ पहाड़ में एक करनट मिला था, जिसे तुम्हारे सरदार ने आटा दिलाया था।'

'हाँ-हाँ याद आया।' खडगसिंह ने कहा। 'कैसे आया है ?'

'मुझे एक काम था।'

'कह।'

सुखराम ने स्त्री की ओर देखा।

स्त्री हँसी।

खडगसिंह ने कहा : 'अरे इससे क्या है ?'

मानों वह उसकी सत्ता को स्वीकार ही नहीं करना चाहता था। स्त्री को इसमें कोई अपमान नहीं लगा। परन्तु औरत के पेट में बात जाने पचे या न पचे सुखराम ने कहा : 'मैं फिर कहूँगा।'

'तू हट जा री।' खडगसिंह ने कहा।

स्त्री पीछे हट गई। परन्तु उसकी आंखों में द्वेष-सा दिखाई दिया, जैसे वह कुछ सोचने लग गई थी। वह पीछे की ओर चली गई और सुखराम के पीछे आ गई।

'मुझे सरदार के पास ले चल।' सुखराम ने धीरे से कहा।

'क्यों ?' वह चौंका।

सुखराम ने कहा : 'मुझे एक दुश्मन से बदला लेना है।'

'किससे !'

'पुलिस के दरोगा से।'

औरत ही-ही करके हँसी।

सुखराम ने कहा : 'इससे कहो चुप रहे।'

'अरे उसे बकने दे। तू मेरे साथ चल।'

दोनों निकले। स्त्री चुपचाप पीछे-पीछे चल दी। उन लोगों को यह मालूम भी न हुआ। वे एक मढ़ैया पर पहुँचे।

'तू ठहर।' कह वह भीतर घुसने के लिये बढ़ा। किन्तु द्वार बन्द था। उसने पुकारा : 'सरदार।'

कोई उत्तर नहीं आया। ऐसा लगा कहीं कोई छोटी-सी संध के पीछे छाया डोल गई।

चौथी बार पुकारने पर आवाज़ आई : 'कौन है ?'

'मैं हूँ खडगसिंह !'

'कैसे आया ?'

'एक आदमी को लाया हूँ।'

'वह कौन है ?'

'एक करनट है ।'

सरदार का स्वर सुनाई नहीं दिया । अब दूसरी ही आवाज़ सुनाई दी : 'क्या कहा ?'

'करनट सुखराम !'

उसने पूछा : 'उस दिन वाला ?'

'हाँ ।'

'उसके साथ कौन है ?'

'कोई नहीं ।'

'औरतें नहीं हैं ।'

'नहीं हैं ।'

कुछ देर नीरवता छा गई । फिर आवाज़ आई : 'उसके पास क्या है ?'

'कोई हथियार नहीं है ।' सुखराम ने कहा ।

वह खीझने लगा था ।

खडगसिंह ने उसे चुप रहने का इशारा किया । तभी भीतर से फिर आवाज़ आई : 'अभी है कि गया ?' और जैसे कोई नींद में से ही बर्रा उठा था, सुनाई दिया : 'क्या चाहता है ?'

'मदद ।' खडगसिंह ने उत्तर दिया ।

'कैसी ?'

'बन्दूक की ।'

'किससे लेना है बदला ।'

'पुलस से बदला लेना है उसे ।'

भीतर एक हास्य गूंज उठा । तब लगा भीतर एक ही आदमी नहीं है, और भी हैं ।

'कतल करना है ?' किसीने पूछा । यह स्वर पहलेवाला नहीं था । स्पष्ट ही भर्राया हुआ स्वर न था ।

'हाँ अगर ज़रूरत पड़ी तो ।' खडगसिंह ने कहा ।

उस उत्तर को सुनकर कई लोग एक साथ हँस पड़े । एक ने हँसते हुए ही कहा : 'बेवकूफ है । उससे कहो जाये ।'

दूसरा स्वर सुनाई दिया : 'उसकी लुगाई पकड़ ली है किसीने ?'

'नटनी है, आ जायगी ।'

फिर सब बन्द हो गया।

वह औरत पीछे आ गई थी। उसने खडगसिंह के सामने ही सुखराम के कंधे पर हाथ धर दिया। सुखराम चौंक उठा।

'क्या बात है ?' औरत ने पूछा।

'सरदार ने मना कर दिया।' खडगसिंह ने उत्तर दिया।

'कायर !' सुखराम ने कहा : 'पेट के लिए गरीब और कमज़ोरों को लूटता फिरता है। जो सजा पाने के लायक हैं उन्हें नहीं दबाता।'

'कौन है कायर ?' स्त्री ने पूछा।

'तेरा सरदार।' सुखराम ने कहा। उसका स्वर उठा हुआ था। स्त्री ने हँसकर उसके गले में बाँह डाल दी।

खडगसिंह ने धीरे कहा : 'चुप-चुप !'

'अरे कौन है यह ?' सरदार की आवाज़ सुनाई दी। खडगसिंह ने कहा : 'अरे वह आ गया।'

भीतर से वह निकला।

'किसने कहा था कायर !' डाकू गरजा।

'इसने।' स्त्री ने इशारा किया।

डाकू झूमता हुआ पास आ गया। उसने स्त्री को धक्का देकर सुखराम से दूर कर दिया। स्त्री हँस दी।

डाकू ने अपना हाथ सुखराम के कंधे पर धरकर कहा : 'करनट !'

उसके स्वर में घृणा थी।

फिर पूछा : 'क्या कहा तूने ?'

सुखराम ने कहा : 'जो मुझे लगा सो मैंने कह दिया।'

'दुहराता क्यों नहीं ?' स्त्री ने कहा : 'अब सामने डरता है ?'

'नहीं डरता नहीं।' सुखराम ने काटा। 'फिर कह सकता हूँ और तब तक कहता रहूँगा जब तक ये इसकी उल्टी बात साबित करके नहीं दिखा देगा।'

चार-पाँच आदमी भीतर से निकलकर और आ गये।

सरदार ने कहा : 'तुझे जान का डर नहीं ?'

सरदार के हाथ में पिस्तौल दिखाई देने लगी। सुखराम मुस्कराया।

बोला : 'बस ! निहत्थे पर पिस्तौल ! अगर मर्द है तो सामने आके लड़ और हाथों से किस्मत आज़मा ले !'

'अच्छा तू मरद है ?' सरदार ने व्यंग्य से कहा।

'मरद है तो मेरे संग चल।' उस स्त्री ने अश्लील इंगित करके कहा।

उसको देखकर सरदार ने कहा : 'अच्छा ! तो तू भी आज मस्ता रही है ?'

औरत ने कहा : 'क्यों अभी तो मेरी उमर ही क्या है ? इसको देख। यह भी जवान है, और मैं भी जवान हूँ।'

और वह ऐसे छाती निकालकर खड़ी होकर मुस्कराने लगी कि सुखराम ने शर्म से आँखें नीची कर लीं। उसने नटनियाँ देखी थीं जो निर्लज्ज होती हैं, किन्तु यह स्त्री तो पराकाष्ठा थी। उसे देखकर वे पशुओं के-से कठोर डाकू भी सकपका गये।

सांझ आने लगी थी। उसकी किरनें अब पहाड़ के ऊपर ऐसी निकल रही थीं जैसे धरती में से फूटकर निकल रही हों। और पक्षी अब आकाश में लौट चुके थे। सुखराम ने देखा कि जहाँ वह खड़ा था वह स्थान अत्यन्त ही गुप्त और भयानक था। चारों ओर से ऐसा घिरा हुआ था कि दिखाई नहीं दे सकता था। वहाँ से भाग निकलना तो असम्भव था। एक बार सुखराम को चंदन के पास जाकर शोक हुआ था तो दूसरी बार उसे यहाँ आने पर भी खेद होने लगा।

यह लोग डाकू हैं। भयानक बीहड़ों में पड़े रहते हैं। राजा के राज्य में लूटते हैं। राजा इनको पकड़ नहीं पाता। जब यह लोग पकड़े जाते हैं तो फाँसी लग जाती है। और आश्चर्य्य की बात है कि जब संसार इतना आधुनिक हो गया है, तो ये लोग भी जाने कहाँ से नये-नये हथियार ले आते हैं। इनके इस जीवन का आरम्भ विक्षोभ, भूख, प्रतिशोध से होता है।

सरदार ने चारों ओर देखा, परन्तु उसके साथी मज़ा देख रहे थे। खडगसिंह ने कहा ; 'कैसे बोलती है ? सरदार क्या बूढ़े हो गये हैं।'

'बूढ़े न होते तो तेरे पास क्यों आती ?'

सरदार ने खडगसिंह को जलती आँखों से देखा।

'नहीं सरदार', खडगसिंह ने सरदार के पाँव पकड़कर कहा : 'झूंठ बोलती है।'

सरदार ने खडगसिंह को लात दी। वह गिरा और उठ खड़ा हुआ। सुखराम यह सब आश्चर्य्य से देखता रहा। वह स्त्री का इतना मुखर रूप कभी नहीं देख सका था।

उसने ऊपर देखा तो स्त्री मुस्करा उठी और उसने कहा : 'जो तू इससे हार गया तो मेरी टांग के नीचे से निकल के जाना होगा। मेरा दूध पीके मैया कहना होगा।' स्त्री ने कहा।

'इसे चुप कर दे।' सुखराम ने कहा।

'क्यों मरद तो तू है न ?' वह चिल्लाई।

'चुप रह ! क्या बकती है ? बेड़नी साली ! शराब पी के मस्त हो रही है। अपने-पराये का फ़रक नहीं जानती ? चाहे जिससे चाहे जो कुछ कहने लगती है ? तुझे हया नहीं ?' सरदार ने डाँटा।

'आय हाय !' स्त्री ने कहा : 'कैसा डाँट रहा है, जैसे मैं कोई ब्याहता ही हूँ न ? जो जी में आयेगा सो करूँगी। शेरनी तो शेर के पास रह सकती है। समझा !'

'बकै मत।' सरदार गरजा।

'अरे तेरी डाँट अब काम न देगी सरदार' औरत ने कहा : 'लड़ के दिखा मुझे।'

'वाह हरामजादी। इसी दिन को पाला था।'

'पाला था सो मैंने क्या बदला नहीं चुकाया है तुझे ?' स्त्री ने कहा।

'क्या चुकाया है तूने ?' सरदार ने कहा : 'तुझ-सी तो सैकड़ों कुतियाँ डोलती हैं।'

'कुतिया के जाये ! मुझसे कुतिया कहता है !' स्त्री नशे में उबली और हँस उठी। सरदार उसे मारने बढ़ा।

'आ मार !' स्त्री बढ़ आई। 'मार के तो देख। तुझे बता दूँ अभी। नामरद !'

सरदार की क्रोधावस्था स्पष्ट हो गई।

'तो ले।' उसने चिल्लाकर कहा और ज्योंही हाथ उठाया, आगे बढ़कर सुखराम ने उसका वह हाथ पकड़ लिया।

'क्या करते हो ?' सुखराम ने कहा। 'वह औरत है। मरद होकर औरत पर हाथ उठाते हो ?'

'तू छोड़ दे मुझे ?' सरदार फुंकारने लगा।

'कैसे छोड़ दूं ?' सुखराम ने कहा : 'मुझसे न देखा जायेगा।'

'छुड़ा ले सरदार', एक डाकू ने कहा।

'छोड़ दे।' सरदार ने डाँटा।

'अरे छुड़ा क्यों नहीं लेता ?' औरत ने कहा : 'धमकी क्यों देता है ? करके दिखा दे न ?'

सरदार को अपमान ने आहत किया। उसने ज़ोर से झटका दिया, एक दो, तीन, पर सरदार कोशिश करके हार गया।

हाथ नहीं छूटा, नहीं छूटा। सरदार को पसीने से चुचाते देखकर स्त्री हँसी। उसने जांघ पर हाथ मारा जैसे ताल ठोंक रही हो। सरदार ने लज्जा से सिर झुका लिया। सुखराम गिद्ध की दृष्टि से उसके दूसरे हाथ को देखता जा रहा था। वह हाथ पिस्तौल वाली जेब की तरफ़ बढ़ा कि सुखराम ने पिस्तौल वाली जेब पकड़ ली। सरदार लाचार हो गया।

सुखराम ने कहा : 'और किसीकी तबियत हो तो आओ।'

डाकू एक दूसरे की ओर देखने लगे। सरदार तब शिथिल हो चुका था। उसको वे सबसे बलिष्ठ मानते थे। आज उसको पराजित होते देखकर कोई नहीं बढ़ा।

सुखराम ने तब सरदार को गले लगा लिया। सरदार उल्लू-सा देखने लगा।

सुखराम ने कहा : 'मैं दोस्ती के लिये आया हूँ। मुझे अपना हाथ दे !'

सरदार ने हाथ बढ़ा दिया। डाकू खुश हुए। लेकिन सुखराम मन में प्रसन्न नहीं था। उसे एक नयी मुसीबत लग रही थी। कजरी को वह छोड़ आया है। इस सोहबत में जान भी जा सकती है। परन्तु प्रतिहिंसा भयानक होती है, जब मनुष्य उससे घायल हो जाता है तो तड़पने लगता है। उसे अपनी निर्बलता में दूसरे के अहंकार का पालन दिखाई देता है।

सुखराम ने कहा : 'मैं दौलत नहीं चाहता, इनाम नहीं चाहता, मैं दोस्ती चाहता हूँ।'

'बोल !' सरदार ने कहा।

'मैं पुलस के दरोगा से बदला लेना चाहता हूँ।'

'दरोगा से ?' सरदार चौंका।

'हाँ।'

'क्यों ?'

'उसने बेकसूरों को सताया है।'

'तो मैं क्या करूँ ?'

'तुमने राज के खिलाफ़ सिर उठाया है, तुमने हथेली पर जान धरी है, बताओ उनकी रच्छा कौन कर सकता है। राजा अपने कानून का राजा है, डाकू गरीब का मददगार है।'

'ही-ही-ही···' करके स्त्री हँसी और बोली : 'अगर ऐसा होता तो यह मुझे उठा लाता ? मेरे क्या खसम न था ? इसने मुझे बिगाड़ दिया। तबसे मेरा कोई नहीं रहा। तू आदमी नहीं लगता, तू मुझे पागल लगता है। तू दूसरों के भले की सोचता है ? मैं तेरे संग चलूंगी करनट !'

'और जो इसने रोका तो ?'

'तो तू मुझे बचा नहीं सकता ?'

'नहीं।'

'क्यों ?'

'क्योंकि मैं तुझे नहीं ले जाना चाहता।'

'क्योंकि तू डरता है ? तू चाहता है मैं इस हत्यारे की बेड़नी बनकर यहीं बनी रहूँ।'

सुखराम ने उस कीचड़ में से कमल पैदा होते हुए देखा ! परन्तु वह उस पर विश्वास नहीं कर सका।

डाकू-सरदार ने कहा : 'करनट ! मैं नहीं जानता। मैं जो कुछ करता हूँ अपनी जान बचाने के लिये करता हूँ। मौत के मुँह में जाकर जिन्दगी का मज़ा लूटता हूँ। तू चाहता है तो मैं दरोगा पर हमला कर दूंगा। पर तू मेरे साथ चलेगा ?'

'चलूंगा।' सुखराम ने कहा। 'पर एक वादा करना होगा।'

'क्या ?'

'मेरे सामने तुम किसी बेकसूर को नहीं सताओगे !'

'मंज़ूर है।'

औरत बढ़ आई। कहा : 'पहले मेरा फैसला कर दो।'

डाकू ने कहा : 'अपना मकदमा कह।'

स्त्री ने कहा : 'यह मेरा है आज से ।'

'पूछ ले उसीसे ।' सरदार ने मुस्कराकर उत्तर दिया ।

सुखराम ने कहा : 'अरे इसीकी बनी रह न ?' पर स्त्री ने सरदार की गर्दन पकड़ ली । सरदार ने उसे झटका दिया । वह पीछे हट गई ।

'इसीमें बड़ा जोर है ।' सुखराम ने कहा ।

स्त्री की आँखें चढ़ गईं । बोली : 'अब मैं बेड़नी हूँ समझा ? मुझसे बचकर कहाँ जायेगा ?'

'अब तो तेरे ही पास आ गया है ये बकरा ।' सरदार ने कहा । 'लहू पी ले इसका ।'

सुखराम हँसा ।

स्त्री चिल्लाई : 'हँसता है गधे !'

'हँसूं न तो रोऊँ ?'

'तू मुझे छीन नहीं सकता ?'

'तू इस लायक भी तो हो ।'

उस स्त्री ने सुखराम के सिर पर जूता मारा । खडगसिंह ने बीच में आकर जूता रोक लिया । स्त्री विक्षुब्ध-सी दिखाई दी । वह जैसे समझा नहीं पा रही थी । और सब ठठाकर हँसने लगे । सुखराम का मन भारी हो गया ।

सरदार ने कहा : 'आज तो तू कमाल कर रही है ।'

स्त्री होंठ चबाने लगी । उसने कहा : 'भूल गया तू । मैंने नहीं कहा था कि तब तक तेरे पास रहूँगी जब तक तुझसे जोरदार कोई नहीं मिलेगा ? मैं सिपाही के पास नहीं रहती, सरदारों के पास रहती हूँ। तूने क्या समझा है मुझे ?'

सुखराम हँसा । कहा : 'सरदार तो परमेसुरी यही है ।'

स्त्री ने कहा : 'तू सरदार नहीं है ?'

'मैं गरीब करनट हूँ ।'

'छीन ले इसकी पिस्तौल ।' स्त्री ने कहा—'यह सरदारी के जोग नहीं ।'

'क्यों ? परमेसुरी । तू कौन है जो मैं तेरी हर बात मान लूँ ?'

सब हँसने लगे ।

'तो तू मेरी न मानेगा ?'

'नहीं । मेरे घर लुगाई है ।'

स्त्री ने कुछ बहुत गंदी गालियाँ दीं और कहा—'तो मैं तेरी उसे ही देख लूँगी !'

सुखराम कजरी का वह अपमान देखकर खीझ उठा। उधर मदमस्त होकर वह स्त्री बढ़ी।

सुखराम चौंका। उसने सरदार की ओर देखा, जिसे स्वयं अब बुरा लगने लगा था। उसने कहा : 'ज्यादा पी गई है।'

खडगसिंह ने कहा : 'डेढ़ बोतल चढ़ा गई है सुसरी।'

'इसे भेज दो।' सुखराम ने कहा : 'वर्ना कलेस करती रहेगी और बोलने नहीं देगी। इस बखत इसे होश तो है नहीं।'

'अरे नशे में है, ले जाओ इसे।' सरदार ने कहा।

'नशे में नहीं हूँ।' वह चिल्लाई। 'करनट ! तुझे मैं सरदार बनाकर छोड़ूँगी।'

'मान जा भानमती।' सुखराम ने हाथ जोड़कर कहा : 'मैं गरीब ही भला हूँ।'

डाकू उस स्त्री को पकड़कर ले जाने लगे। वह बकती ही रही। उसे जाने इतना क्रोध कैसे आ गया था। बफरी जाती थी। छूट-छूट भागती थी। आखिर वे उसे ले ही गये। और फिर वे बातें करने लगे।

रात हो गई थी। घना अंधेरा छा रहा था। अमावस की छाया अपनी दूसरी रात में भी उतनी ही गाढ़ कालिमा लिये हुए उतर आई थी। हाथ को हाथ नहीं सूझता था।

घोड़े पहाड़ से उतरकर भागने लगे। उनके सुमों से आवाज़ सम पर उठती, खटाखट, खटाखट। पहाड़ों की भीमाकृतियाँ केवल चोटियों के पास हल्की-सी दिखाई देतीं, और काजर के-से ढेर वे आकाश से उतरते गीले अंधेरे में ऊपर जाकर घुल जाते। फिर केवल वही नीरव गहनान्धकार छा जाता।

अंधेरे में इस समय वे लोग सिर पर ढाटा बाँधे थे। वे बीस आदमी थे। उनके कंधों पर बंदूकें लटक रही थीं। केवल सुखराम के पास पिस्तौल थी। उसकी भी गोलियाँ भरना उसने अभी सीखा था। वह निशाना लगाना नहीं जानता था, क्योंकि उसने जीवन में कभी इस चीज़ को छुआ भी नहीं था। आज उसके मन में संशय था। वह एक नये जीवन की ओर जा रहा है ! क्या कजरी यह सब सुनकर खुश होगी ? क्या वह कहेगी कि यह ठीक है ?

कुछ ही घंटों में वे गाँव पहुँच गये। वे लोग फूलवाड़ी के पीछे के कच्चे दगरे से उतर गये और फिर एक-एक करके निकले, कुछ-कुछ देर से ताकि किसीको शक न हो। वे अंधेरे में ही जाकर एक घने और ऊँचे पेड़ के नीचे इकट्ठे हो गये। सामने ही अधूरा क़िला खड़ा था। सुखराम ने उसे प्रणाम किया और घोड़े पर चढ़े हुए उसे लगा कि वह राजा ही था।

दरोगा की महफिल जमी थी। पर दरोगा नहीं था। दीवान जी के आज सबसे ज्यादा ठाठ थे। वे लोग आज आपस में बातें कर रहे थे। वे खास खुशामदी जो हर गाँव में होते हैं, और इन छोटे सरकारी अफ़सरों को खुदा का-सा दर्जा बख्श देते हैं, इस समय बैठकर चर्चा कर रहे थे। ये लोग किसीके नहीं थे, अपनी स्वार्थ-भरी जघन्यता के लिये यह लोग दाँत निपोरते हैं, और पीछे से निन्दा करते हैं, और जरा-जरा से काम के लिये झूंठ बोलते हैं, बेईमानी करते हैं।

घोड़े पर खड़े होकर खडगसिंह ने गोली चलाई। गोली की आवाज़ सुनकर सब चौंक उठे। और इससे पहले कि वे लोग संभल सकें गोली सीधी दीवान जी के सीने में घुसकर निकल गई। तहलका मच गया। कोई भागा, कोई चिल्लाया···

'डाकू आ गये, डाकू आ गये···'

कोलाहल मच उठा। सरदार ने बंदूक दागी।

लालटेन फूट गई। और फिर अंधकार फैल गया। इसके बाद दोनों तरफ़ से गोलियां चलने लगीं। धूं-धूं का वह विकराल शब्द अंधकार में रोंगटे खड़े करने लगा। मरने और घायल होने वालों का अंतिम चीत्कार सुनकर हृदय हिल उठता था।

सरदार गरजा : 'हर-हर महादेव !'

और जब डाकू चिल्लाये तो उधर भगदड़ पड़ गई। गांव के थाने का काम तो दबदबे से चलता है, वहाँ सिपाही ही कितने।

खडगसिंह ने कहा : 'सरदार आधे यहाँ छोड़ो आधे बनिये के घर ले चलो।'

सरदार ने कहा : 'ठीक है। जब आये ही हैं तो ज़रा फ़ायदा भी करते चल। क्यों रे करनट !'

'सरदार फिर कभी कर लेना।'

'तो फिर तू हमें आने-जाने का क्या मुआवज़ा देगा ?'

'मैं क्या दे सकता हूँ।'

'तो चल।' सरदार आगे बढ़ा। कुछ लोग पीछे-पीछे घोड़े बढ़ा चले। एक बनिये का मकान घेर लिया। चलते समय उन्होंने आतंक फैलाने के लिये धड़ाधड़ गोली चलाईं। उसको सुनकर सब डरकर अपने-अपने घरों में जा छिपे।

सुखराम ने कहा : 'औरत पर हाथ न उठाना सरदार !'

'अच्छी बात है।' सरदार ने हँसकर कहा : 'तू तो यार बनिया लगता है मुझे।' और उसने फिर गोली चलाई। सन्नाटा खिंच गया। केवल मकान में रोने की आवाज़ आई।

सुखराम ने कहा : 'लूटो तुम। मैं उधर खड़ा हूँ।'

'यहीं रह।' सरदार ने कहा : 'कोई तुझे पकड़ लेगा।'

'भागूँगा नहीं।' सुखराम ने कहा।

बड़ी ज़ोर से सरदार ने कहा : 'दरवाज़ा खोल दो, वर्ना आग लगा देंगे।'

उस समय बड़ी ज़ोर का चीत्कार सुनाई दिया जैसे भीतर किसीकी घिग्घी बंध गई हो। पर दरवाज़ा नहीं खुला। अपने तीन साथियों के साथ सरदार धड़ाधड़ गोलियां चलाता हुआ ऊपर चढ़ गया और सबसे पहले सरदार भीतर कूद पड़ा।

सुखराम सोचने लगा। वे लोग लूट रहे हैं। क्या वह इनका साथी नहीं है ? बनिया खून चूसता है, पर डकैती तो अच्छी नहीं है। यह सब क्या है ?

उसका हृदय सशंक था। उधर कोलाहल में याचना, करुण क्रंदन था। औरतें चिल्लाने लगी थीं, बच्चे रो उठे थे, और धाँय-धाँय गोलियों की आवाज़ सुनाई देती थी। तहसील की तरफ जो गोलियाँ चलती थीं तो कोई यह ही निश्चित नहीं कर पाता था कि जाने कितने डाकू चढ़ आये हैं। और आपसी फूट के कारण गाँव वाले असंख्य होकर भी उन संख्या में अल्प शत्रुओं से भय-भीत हो गये।

कुछ ही देर में सरदार लौटा। साथ में गठरी थी। कूदकर घोड़े पर चढ़ गया और फिर चिल्लाया : 'हर हर महादेव !'

उस समय वह प्रसन्न था।

उसका घोड़ा आगे बढ़ा। पीछे गोलियों की बौछार हो रही थी।

सरदार ने कहा : 'कहाँ है तू ?'

सुखराम घोड़ा पास ले आया। 'क्या है ?' उसने पूछा।

'चल काम हो गया।' सरदार ने एड़ दी। घोड़ा फरफराया।

वे अन्धेरे में भाग चले, जब जंगल आ गया तो रुके। कुछ ही देर में अलग-अलग दिशाओं से आकर सब डाकू इकट्ठे हो गये।

'कोई नहीं गिरा।' खडगसिंह ने कहा : 'तांतिया के ज़रा जांघ में चोट आई है।'

फिर वे लोग भाग चले।

पहाड़ पर पहुँचकर सुखराम रुक गया। डाकू ने कहा : 'चल !'

'नहीं,' सुखराम ने कहा।

'तू नहीं चलेगा ?'

'तेरा-मेरा साथ खतम।'

'क्या मतलब ?' डाकू-सरदार ने कहा : 'क्या बस मैंने इसीलिये तेरे साथ इतनी जोखम उठाई थी ?'

'तेरे हाथ में माल है सरदार। और वह तेरा इनाम हो गया अब।'

'और इसमें से हिस्सा बाँट करने तू कल आ जायेगा ?' सरदार ने व्यंग्य से कहा।

'कभी नहीं।' सुखराम ने कहा : 'वह तेरी रोजी है। मेरी नहीं। मुझे उससे कोई सरोकार नहीं। दरोगा नहीं मरा, पर मेरा काम हो गया। वे लोग यह भी नहीं जान सके तो कि हमला किसने किया। पर दीवान मारा गया। वह बड़ा कमीना था। उसने मुझ पर खून का झूंठा इल्ज़ाम लगाया था।'

एक डाकू ने कहा : 'दरोगा ! वह तो सुना यहाँ से चला गया !'

सुखराम घोड़े से उतर गया। पूछा : 'क्या कहा ?'

'हाँ, उस पर सरकार में मामला चला रही है यहाँ ही ठाकुर पंचायत। उसका तो तुझे डर नहीं होना चाहिये। वह तो रजधानी गया है।'

'लेकिन रपट तो छोड़ गया होगा ? दरोगा किसका अपना, सरदार ! सुनार की कहानी सुनी है न ? मां का गहना बनाने बैठा तो चोर न सका, सो दुबला होने लगा। मां समझ गई कि सुनार का बेटा यों दुबला हो रहा है कि चोर नहीं पाता। एक दिन बोली बेटा, वह मेरा गहना बन गया ? पड़ोसिन का था, जल्दी बना दे। दूसरे दिन गहना भी बन गया और सुनार भी मोटा हो गया। सो दरोगा की कुर्सी ही ऐसी होती है। अच्छा राम-राम।'

सुखराम के घोड़े की रास एक ने पकड़ ली। वे सब चले गये। सुखराम देखता रहा। इस समय उसे लगा वह थक गया था। बहुत थक गया था।

वह डेरे पहुँचा। मन में डर रहा था। जैसे बच्चा कहीं दंगा कर आये और फिर माँ के पास जाते हुए डरता है, वही हाल सुखराम का भी था। क्या कहेगी वह ? यह तो किस्मत की बात थी कि वह सही-सलामत लौट आया था। कहीं किसीकी गोली ही लग जाती तो ? तब कजरी बैठी-बैठी राह ही देखा करती और वह कभी भी लौटकर डेरे नहीं आता।

तभी वह ठिठक गया। उसे एक काली-सी छाया डेरे के इधर-उधर दिखाई दी। बाहर कोई घूम रहा था। कौन हो सकता है यह ? क्या कजरी ही बेचैनी से घूम रही है ? सुखराम को आश्चर्य्य हुआ। पर वह इस तरह पाँव दबाकर क्यों चलती ? वह दुनिया में डकैती डालकर आया है और अब उसीके घर चोर आ गया है ? हृदय में गुदगुदी भी हुई और फिर शंका के साथ भय भी उत्पन्न हुआ।

सुखराम पेड़ की आड़ में हो गया।

वह छाया अब स्तब्ध खड़ी थी। जैसे किसी चिंता में पड़ गई थी। सुखराम धीरे-धीरे आगे खिसकने लगा। उसके पाँवों से तनिक भी आहट नहीं होती थी। ज्यों-ज्यों वह पास जाता था उसके भीतर का कौतूहल अब अधिक उभकता था, यहाँ तक कि अब तो जिज्ञासा भी अंगूठों के बल खड़ी हो गई।

उसने पहँचाना। डाकू सरदार के यहाँ जो स्त्री मिली थी, वही थी। तो यह सचमुच बदला लेने आई थी।

सुखराम सोचने लगा। कितनी गंदी औरत है। कितनी भयानक है। इस वक्त कजरी का खून करने आई है। वह कितने अच्छे मौके से आया है। कहीं वह न आता तो कजरी इससे क्या बच पाती ? वह काँप उठा। वह लौटता तो आकर देखता कजरी·····

नहीं-नहीं, भगवान इतना बड़ा दण्ड नहीं दे सकता। आखिर उसने आज किसीकी हत्या नहीं की। पर दीवान मर गया। उसके बीबी-बच्चे अब क्या करेंगे ? वह भी तो जब सजा देता है तब बीबी-बच्चों की आड़ में किसीको छिपने नहीं देता।

फिर विचार आया : यह औरत सरदार से नफ़रत करती है। सरदार इसे पकड़ लाया था। उसने इसे कहीं का नहीं रखा। यहाँ यह बेड़नी की तरह

रखी गई। मजबूर होकर इसने इसीको स्वीकार कर लिया। क्या यह बुरा नहीं है ? वह बुराई को अब भी बुरा कहती है।

वह सुखराम के साथ आना चाहती थी। वह कैसे ले आता उसे·····

तभी स्त्री भीतर घुसी। सुखराम छिपकर पीछे आ गया। उसने देखा दिये की रोशनी में उस औरत के हाथ में कटार चमक रही थी और कजरी सो रही थी।

सुखराम ने भगवान को मन ही मन सिर झुकाया। सचमुच आज वह लुट गया होता। कजरी मर गई होती। फिर क्या होता ?

यह औरत कितनी खतरनाक है ! यह सोचती है कि इस तरह कजरी को मारकर यह मेरी हो सकेगी !

औरत आगे बढ़ी, चौकन्नी-सी, दबे-दबे पांव धरती हुई। सुखराम बिल्कुल ऐसा हो गया जैसे अब वह झपटकर आगे टूटेगा।

औरत ने कटार उठाई। तभी कजरी ने करवट बदली। औरत ठिठक गई। वह स्वयं डरी हुई थी। उसका हाथ काँप रहा था। अचानक उसे जैसे आहट-सी हुई। उसने डरकर देखा, चारों ओर। कोई नहीं था। शायद उसे भ्रम ही हो गया था।

और फिर सुखराम ने देखा, वह कजरी के मुख की ओर देखने लगी। सिर हिलाया, जैसे है तो अच्छी। फिर मुद्रा आई कि मैं बुरी हूँ। उसने अपने ऊपर निगाह डाली। फिर वह दृढ़ दिखाई दी।

सुखराम हिला। एक हल्की-सी छाया डेरे में भी पड़ी।

स्त्री चिहुँक उठी। उसने चारों ओर देखा। सुखराम आड़ में हो गया। स्त्री का हृदय धड़क रहा था क्योंकि वह घबरा गई थी। उसकी सांस अब ज़ोर-ज़ोर से चल रही थी, जिसे वह दाँत भींचकर दबा लेना चाहती थी, क्योंकि उसका वक्ष बार-बार उठता था और गिरता था। गेहुँए रंग की उसकी छाती सिर्फ चोली से ढँकी हुई थी और उसने फरिया को ऐसे ढंग से खोंस रखा था कि उसकी नाभि दिखाई देती थी, लहँगा और नीचे कसा हुआ था। अचानक उसकी चूड़ियाँ खनक गईं।

तब वह घबराकर डेरे से बाहर निकल आई।

सुखराम द्वार से चिपक गया कि कहीं वह देख न ले। जब औरत को

कोई नहीं दिखा तो फिर डेरे में घुसी। इस बार वह तनिक भी विचलित नहीं दिखाई देती थी।

सुखराम उसकी मुद्रा देखकर आतंकित हो गया था।

औरत बढ़ी। ठोकर से खाट का पाया हिला। औरत पीछे हट गई। पाया हिल जाने से कजरी कुलबुला उठी और उसने धीरे से पूछा: 'आ गया ?' उत्तर नहीं मिला तो कजरी जैसे चौंक उठी। स्त्री अब झपटने को तैयार थी। कजरी जागी। सामने एक औरत ! अपरिचिता ! कजरी ने पलक मारते देखा। हाथ में कटार !

दिये की रोशनी में चमचमाती कटार !

'कौन है ?' कजरी चिल्लाई।

'तेरी मौत !' स्त्री ने फूत्कार किया।

और औरत आगे टूट पड़ी। उस समय सुखराम चौंक उठा। कजरी तड़पकर उठी और सुखराम ने ताज्जुब से देखा कि वह बिजली की तरह झपटी। उसने उसको पकड़ लिया। दोनों स्त्रियां लड़ने लगीं। दोनों में बड़ा वेग था।

सुखराम को आनन्द आया। उसने कभी कजरी को लड़ते हुए नहीं देखा था। उसे आश्चर्य्य हुआ कि उसमें इतनी स्फूर्ति थी। वह ऐसे लड़ रही थी जैसे कौशल उसके लिये हस्तसिद्ध था।

शीघ्र ही यह लगने लगा कि कजरी उससे अधिक फुर्तीली थी। उसने उस स्त्री को धक्का और टँगड़ी मारकर नीचे गिरा लिया और कजरी उसके ऊपर चढ़ बैठी।

औरत छटपटाने लगी। कजरी ने उसके कटार वाले हाथ को उमेठ दिया और कटार नीचे गिर गई। औरत घिघिया उठी। उसने अन्तिम चेष्टा की कि उठ खड़ी हो परन्तु कजरी ने घुटना मारकर उसको दबा लिया। स्त्री चिल्ला उठी।

कजरी ने कटार लेकर हाथ उठाया कि सुखराम ने कहा : ' नहीं, कजरी नहीं.....'

वह भीतर गया। उसने कहा : 'छोड़ दे !'

'छोड़ दूं !' कजरी ने फूत्कार किया। 'यह मुझे मारने आई थी।'

'पर यह है कौन ?'

'मैं नहीं जानती।'

सुखराम ने कहा : 'रहने दे ! वह तो मर ही गई, समझ ले न ?'

औरत ने सुखराम को देखा तो उसकी आशा जाग उठी। उसने रोते हुए कहा : 'मुझे बचा ले, मुझे बचा ले, अब नहीं आऊँगी·····'

'तू इसे जानता है ?' कजरी ने पूछा।

'जानता हूँ।' सुखराम ने मुस्कराकर कहा।

'कौन है यह ?' कजरी ने पूछा। सुखराम मुस्कराता रहा। बोला : 'पहले उठ तो सही।'

कजरी उठ खड़ी हुई। उसने कहा : 'बताया नहीं तूने ?'

'यह तेरी नयी सौत है।'

कजरी ने औरत को घूरा और एक लात दी। औरत आर्त्त-सी उठ बैठी।

'उठ !' कजरी चिल्ला उठी। सुखराम हँसा। कहा : 'तो क्या मार ही डालेगी ?'

औरत डरी-सी उठी।

सुखराम ने कहा : 'परमेसुरी !'

स्त्री काँप उठी। कजरी ने आश्चर्य्य से देखा।

सुखराम ने कहा : 'क्यों शेरनी ! अब निकलूँ तेरी टाँग के नीचे से ?'

औरत की हालत खराब थी। चेहरा फक पड़ गया था। वह कुछ नहीं कह सकी। उसने बोलने का यत्न किया किन्तु गला रुंध गया।

सुखराम ने उसका हाथ पकड़कर अपने पास खींच लिया और उसकी धूल झाड़ दी।

कजरी को चैन कहाँ। झट घास ले आई। उसके मुँह में देके कहा : 'कह मैं तेरी गौ हूँ।'

औरत ने विक्षोभ से देखा। सुखराम ठठाकर हँसा। कहा : 'हाय भगवान ! कजरी, तूने तो शेरनी को घास खिला दी।'

'बोल !' कजरी ने पटाक चाँटा मारकर कहा : 'हरामज़ादी ! दुनिया में मरद मर गये थे जो तुझे ये ही दीखा ! अपनी सूरत तो देख मुँहजली कुतिया ! बोल·····'

उसने फिर चाँटा मारा।

औरत ने पांव पकड़ लिये और रोते हुए कहा : 'मैं तेरी गौ हूँ।' फिर

सुखराम के पांव पकड़कर रोने लगी। सुखराम पिघला। कहा : 'अरी रोती क्यों है ? तू तो इसका खून करने आई थी न ?'

औरत ने रोते हुए कहा : 'मुझे माफ कर' और उसने कजरी के पाँव पर सिर धर दिया। कजरी ने लात देकर पांव हटा लिया।

'सरदार से न कहियो,' औरत ने धरती पर पड़े-पड़े कहा : 'मैं क्या करूँ ? उसने मेरा धरम बिगाड़ा था। मेरे एक बच्चा भी था। पर तब से यहीं पड़ी हूँ। क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? तू आया था ! मैंन समझा था, तू मुझे सरन देगा, मैं उससे घिन करती हूँ। वह बड़ा कमीना है, मेरे सामने ही कितनी लड़कियों को बिगाड़ चुका है···मैं क्या करूँ·····'

कजरी को कोई दया नहीं आई। सुखराम को उसकी कथा में दद लगा।

'चल, चल,' कजरी ने कहा : 'आई बड़ी पतबरता, निकल यहाँ से !'

स्त्री ने दयनीय दृष्टि से सुखराम को देखा।

'उधर क्या देखती है हरामजादी।' कजरी ने कहा : 'वह तेरा खसम है ? निकल चल। डोरे डाल रही है उस पर। आँसू बहा-बहाके पिघलाये जा रही है। मैं भी लुगाई हूँ, सब समझती हूँ·····।'

उसने उसके बाल पकड़ लिये और द्वार की ओर खींच ले चली। सुखराम देखता ही रह गया, कजरी उसे बाहर पटककर चिल्लाई : 'जाती है कि नहीं·····'

वह बढ़ने को हुई कि स्त्री भाग चली। उसके चले जाने पर कजरी भौं चढ़ाये भीतर घुसी। उसे अत्यन्त क्रोध था।

'कौन थी यह ?' वह बड़े ज़ोर से चिल्लाई।

सुखराम ठठाकर हँसा और खाट पर चित्त लेट गया। कजरी मुँह फाड़कर देखती रही और फिर उसके पास बैठ गई।

'मैं बहुत थक गया हूँ कजरी।' सुखराम ने कहा—और फिर कजरी की ओर उसने लालायित आंखों से देखा।

कजरी तिनककर उठ गई।

३०

कजरी नित्य कहती : 'अब काम कैसे चलेगा ?'

'मैं नहीं जानता ।'

'पर पेट तो सब जानता है ।'

'इतना मैं भी समझता हूँ ।'

'फिर ?'

'तू कुछ क्यों नहीं सोचती ?'

सुखराम कहता और उसके मुख की ओर देखने लगता । गाँव वह जा ाहीं सकता । आन गाँव जाता है कभी शहद बेच आता है, कभी डाँग में दवा- ारू कर देता है । कजरी जाकर सूप बेच आती है । पर अधूरे किले के गाँव ी ओर दोनों नहीं जाते । इसीसे जो मिल जाता है उससे पेट भर जाता ै । फिर भी मन नहीं भरता । खुलकर चलने-फिरने की आज़ादी नहीं है । हाँ जायें जिससे कोई देखने वाला न हो । किसी और रियासत में क्यों न ले जायें, डाँग में से उधर की डाँग भी तो मिली हुई है ।

सुखराम शिकार मारकर लाता है । दोनों उस माँस को भर पेट खाते ै । उनके पास जमीन नहीं कि खेती करें । पैसा नहीं कि बिन्जी फिरें । ेल दिखा नहीं सकते, पकड़े जाने का डर है । और नौकरी में रखेगा कौन ? महमदाबाद ही कैसा रहेगा ? पर नितांत परदेस में जाने की हिम्मत नहीं ड़ती यकायक ।

एक दिन राजा आया । दोनों ने उठकर स्वागत किया । खाट पर बैठाया । कुशल-क्षेम पूछी गई । राजा ने अपनी नयी चोरियों का किस्सा बयान केया । उसे जैसे कोई डर नहीं । उसे पुलिसवाले दिखते हैं तो छिप ाता है ।

'अरे तू क्या करता है ?' उसने पूछा ।

सुखराम ने कजरी की ओर देखा, कजरी ने सुखराम की ओर । जैसे ोनों ही उत्तर की खोज में हों । परन्तु क्या कह सकते थे । अतः कजरी की ाँखों में निराशा छा गई ।

'कुछ नहीं राजा जी ।' सुखराम ने कहा ।

'खाना खाता है ?'

'सो तो भगवान की दया है।' कजरी ने कहा : 'दोनों जून मिल जाता है राजा जी।'

सुखराम ने भी स्वीकृति में सिर हिलाया।

'तो मेरे साथ चलता क्यों नहीं ?' राजा ने पूछा।

इसी समय रानी आ गई। कजरी ने प्रेम से खाट पर राजा के पास ही बिठा दिया। रानी ने पूछा : 'कहाँ ले जा रहा है इसे ?'

'धंधे पर।'

'तू जायेगा ?' कजरी ने पूछा।

'जी नहीं करता।' सुखराम ने उत्तर दिया।

'जी !' रानी ने कहा : 'गरीब के जी का क्या सवाल है मूरख। जी बड़ा कि जिंदगी ?'

'जिंदगी।' सुखराम ने कहा।

'ले सो चले।' राजा ने दाद दी।

रानी ने कहा : 'कजरी तू नहीं कहती कुछ।'

'कहती तो हूँ।' कजरी कह उठी।

'तो तू ही डरता है ?' राजा ने कहा : 'देख !'

उसने पीठ दिखाकर कहा : 'यह देख। हंटरों की मार ! पर मैं कभी नहीं डरता। बचपन से जिसको मौका मिला है उसीने मुझे मारा है। पर मैंने भी कसर नहीं की, मैं मुरव्वत में नहीं फँसता। मौका मिलते ही पैसा हाथ से जाने देना मेरा धरम नहीं है। किसान गरीब मेहनत करता है, उसकी बेदखली होती है, घर बिकता है, ढोर बिकते हैं, पर शिकमी को वह भी नहीं छोड़ता। फिर हम तो शिकमी भी नहीं। हम भी खेतों में मजूरी करके पेट पाल सकते थे, पर हम जात के नट हैं। कोई हमारा भरोसा नहीं कर सकता, तो हम क्यों किसीका भरोसा करें ?'

वह चुप हुआ तो रानी ने उसकी पीठ के निशानों पर गर्व से हाथ फेरा और कहा : 'मरद होना भी बड़ा कठिन है कजरी। कैसी-कैसी साँसत उठानी पड़ती है। जरा दया नहीं की जाती इन पर। देख ! यह देखती है इसकी इस छोटी उंगली का नखून ! पुलस ने खींच लिया था, पर यह भी मरद है, इसने उफ़ तक न की, न माल का पता दिया, ऐसा भोला बना रहा कि वे चक्कर

में पड़े रहे। सच मैं तो यही सोचती हूँ कि भगवान ने औरत बनाया तो बड़ा अहसान कर दिया।'

कजरी रो उठी।

'क्यों क्या हुआ ?' राजा ने पूछा।

कजरी ने कहा : 'नहीं, मैं न जाने दूँगी इसे। वे इसे मार डालेंगे।'

'अरी तो मरने वाले क्या महलों में नहीं मरते ?'

'वह और बात है।'

'तेरी मरजी !' राजा उठ खड़ा हुआ। सुखराम भी खड़ा हो गया। कजरी बैठी रोती रही।

सुखराम ने लौटकर पूछा : 'तू रोई क्यों ?'

'मुझे जेठी की याद आ गई थी।'

'झूंठा।'

'क्यों ?'

'तू समझी थी, मैं उसके संग चला जाऊँगा। वे मुझे मार डालेंगे। यही बात थी न ?'

'जब तू समझ ही गया है तो पूछता क्यों है ?'

सुखराम ने कहा : 'कजरी तू इतनी अच्छी क्यों है ?'

'क्या बकता है !' कजरी ने लजाकर कहा : 'कोई अपनी बहू की भी इतनी तारीफ करता होगा।'

बहू ! वह शब्द अपने आप संभलकर निकला था। वह अब लुगाई अर्थात् एक विशेष प्रकार का शरीर नहीं रही थी। वह उस छोटी सीमा से ऊपर उठ गई थी। इस भाव में संरक्षण की संवेदना थी, आत्मीयता का विकास था, और यह चिन्तन जीवन-संग्राम में संचित की हुई शक्ति की कोमलता ने दिया था।

स्वर को मन ने पहचाना। इस स्वर में अतुलनीय स्नेह था, जो एक पवित्रता का बोधक होता है; जहाँ संभोग नारी पर बलात्कार नहीं रहता, सृष्टि के सृजन के पवित्र और महान कार्य्य का वह पर्य्याय हो जाता है, जहाँ प्रेम और वात्सल्य का उत्तरदायित्व पुरुष और नारी साथ-साथ उठाते हैं, और फिर कोई जघन्यता नहीं बच रहती।

'सच कजरी तू बड़ी अच्छी है।' सुखराम ने दुहराया।

'मैं अच्छी हूँ कि तू पागल है।'

'क्यों !'

'मैं यही सोचती थी कि तू इतना अच्छा क्यों है ?'

'कितना अच्छा हूँ ?'

कजरी मुस्कराई और फिर सुखराम के बालों में हाथ फिराने लगी। उसकी उंगलियाँ कंघी की तरह हो गईं।

'बता तो।' सुखराम ने फिर पूछा।

कजरी ने कहा : 'मैं कैसे बताऊँ तुझे। मन की बात कैसे समझाऊँ ? फिर मुझे कहना भी तो नहीं आता।'

'अगर पुलस को मालूम हो जाय' सुखराम ने कहा—'कि एक बहुत अच्छा आदमी यहाँ रहता है तो ?'

कजरी का मुँह उतर गया। उसने कहा : 'राज राज ही है, पर राज का अन्धेर कौन रोक सकता है ?'

बाहर आहट हुई। सुखराम ने पूछा : 'कौन है ?'

एक डाकू आया। कजरी उसे देखकर मन ही मन काँप उठी पर उसने अपने को दृढ़ बनाये रखा।

'अरे खडगसिंह !' सुखराम ने पूछा : 'आज बहुत दिन बाद दिखाई दिये। क्या है ? अच्छे तो हो ?'

'क्या है ?' खडगसिंह ने कहा : 'पूछता है क्या है ? डाकू कब अच्छा नहीं रहता ?' वह हँसा।

'बैठो हुक्का पी लो।' सुखराम ने कहा।

'सरदार ने बुलाया है।' खडगसिंह ने कहा। कजरी के कान खड़े हुए। वह कहता गया : 'फिर बैठ लूंगा। इस बखत चल ज़रा।'

सुखराम ने कजरी की ओर नहीं, बल्कि धरती की ओर देखा।

'नहीं भैया' कजरी ने कहा : 'हमें किसीसे कुछ नहीं चाहिए। वह नहीं आयेगा अब।'

'क्यों ?' डाकू ने पूछा।

'हमें सांसत मोल नहीं लेनी अब।' कजरी ने कहा।

'नहीं कजरी, सरदार ने बुलाया है।' सुखराम ने आगन्तुक की ओर देखते हुए कहा।

'वह सरदार है।' आगन्तुक ने कहा। 'सौ बार काम आता है यह समझ लो।'

'जाना ही होगा।' सुखराम ने कहा : 'वह दोस्त है।'

'ऐसे की दोस्ती भी बुरी' कजरी ने कहा : 'और बैर भी बुरा। तू जो करता है ऐसी ही गड़बड़ करता है।'

डाकू के दांत चमके।

'अरी तो मरी क्यों जाती है ?' सुखराम ने कहा : 'आदमी आदमी के ही काम आता है।'

'एक तू आदमी, एक वो आदमी। आदमी-सा तो मुझे कोई न लगै।'

जब सुखराम पहुँचा तो सरदार ने कहा : 'तू कहाँ था ?'

'कहीं नहीं।'

'क्यों ? तेरे सिर पर छत भी नहीं ?'

'डेरे में था सो तो।'

'तो यों कह।' सरदार ने कहा।

सुखराम बैठ गया। सरदार ने हुक्का दिया। उसने चिलम उतार कर दम लगाये।

'अब क्यों नहीं चलता ?' सरदार ने बातों के बीच में पूछा।

'कहाँ ?'

'किसी दिन मेरे साथ चल। मज़ा रहेगा। पड़े-पड़े तेरे पाँव अकड़ते नहीं ?'

'मैं दुनिया से ऊब गया हूँ।'

उसी समय वही स्त्री भीतर आई और उसने अन्तिम वाक्य सुनते हुए कहा : 'क्यों वह तेरी औरत क्या हुई ? मर गई ?'

'मरे तू।' सुखराम ने कहा : 'वह तो मजे में है।'

'तू उसे बहुत चाहता है !' स्त्री ने बैठकर कहा।

'तुझे मतलब !' सुखराम ने मुंह मोड़कर उत्तर दिया।

'क्या बताऊँ ? एक दिन मुझे भी ले चल वहाँ।' उसने कहा : 'सरदार, वैसे मैंने देखी है। इसके लिये ऐसी जोड़ी है कि देखके आँखें तिरपित हो जाती हैं।'

सरदार ने कहा : 'अरे जाने दे उसे, तू मुझे इससे बात करने दे। घूम-फिर

कर ले आई वही लुगाइयों वाली बात। हाँ सुखराम ! तू ऊबा क्यों ?'

'मैं नहीं जानता।'

'यार तू तो साधू हो गया।'

सुखराम ने सिर झुका लिया।

'पर तेरा यों जीना तो मेरे लिये खतरा है।' सरदार ने कहा।

'क्यों ?' सुखराम ने पूछा।

'भई, बखत की बात है। कल को तुझे पुलिस ने पकड़ लिया तो तू तो मुझे फँसा देगा।'

'तुम ऐसा मानते हो तो मैं चला जाऊंगा।'

'कहाँ ?'

'दूसरी किसी रियासत में।'

'नहीं, तू रह, मुझे ऐसा डर नहीं,' डाकू ने कहा : 'वह दरोगा तो गया, उसकी जगह दूसरा आ गया है।'

सुखराम ने सोचा। खचेरा गया या नहीं।

पूछा : 'वह एक खचेरा चमार था···'

'उसे फाँसी हो गई।' सरदार ने कहा।

सुखराम काँप उठा। उसका मन किया रो दे। पर रो न सका। निरोती को जेल हुई। हरनाम मरा, धूपो मरी, रुस्तमखाँ मरा, बाँके मर गया, और दीवान जी भी मर गया ! एक पेशकार रह गया है जिसे उस पर गौर करने की तबियत हो सकती है। और तो कोई नहीं।

'क्या सोचता है ?' सरदार ने पूछा।

'सोचता हूँ, गाँव लौट जाऊँ ?'

'चला जा, क्या डर है ?'

'एक पेशकार है। वह पहँचान लेगा। उसने नये दरोगा को भी बताया होगा।'

'सो तो है।'

'मैं किसीका बुरा नहीं चाहता सरदार, मैं दुश्मनी नहीं रखता, पर लोग जीने क्यों नहीं देते ?'

स्त्री हँसी। कहा : 'यही तो मैं कहती हूँ। राँड रँडापा तो तब काटे जब रँडुआ उसे काटने दे।'

सरदार ने ठहाका लगाया। आज सुखराम हँस नहीं सका। फीकी-सी मुस्कराहट होंठों पर डोलकर रह गई, जैसे बेचारी मन मार गई हो।

'तू जा सुखराम।' सरदार ने कहा : 'तुझसे कोई डर नहीं।'

'दगा न करियो!' स्त्री ने कहा।

'मैंने तुझसे की है?' सुखराम ने आँखें गड़ाकर पूछा।

'नहीं।' स्त्री के दाँत खिसियाकर क्षमा-याचना की मुद्रा में खुल गये।

लौटा तो कजरी रास्ते में मिली। सुखराम को आश्चर्य्य हुआ। पर गया तो देखा, उसकी आँखें लाल थीं, जैसे रोकर आई हो।

'तू रोई थी?' उसने पूछा।

'नहीं तो,' और कजरी ने नीचे का होंठ काट लिया, जैसे अपनी रुलाई को रोक रही थी।

'पगली!' सुखराम ने उसकी पीठ पर हाथ रखकर कहा : 'भला इसमें रोने की क्या बात थी।'

'तू नहीं समझेगा।' कजरी ने आँसू पोंछे।

'तू क्या कर रही थी यहाँ?'

'तेरी राह देख रही थी।'

'क्यों मैं क्या आता नहीं?'

'मैं तो डर रही थी।'

'डरने की बात ही क्या थी जो?'

कजरी ने आँखें तरेरीं।

'क्यों?' सुखराम ने उत्सुकता से पूछा।

'मुझसे बनता है। तू मेरे हिये की इतनी भी नहीं जानता?'

'हिये की होती तो जान जाता कजरी, यह जरूर तेरी अकल की होगी, और उसे समझना उड़ती चिड़िया पकड़ने के बराबर है।'

'कहीं उस डायन ने कुछ जाल न फैलाया हो, मैं तो यही सोच-सोचकर मन ही मन मरी जा रही थी।'

'अरे भला वह औरत है। वह क्या है।' सुखराम ने व्यंग्य किया।

'सच कहती हूँ!' कजरी ने कहा : 'मुझे तो बाद में ध्यान आया उसका, नहीं तो नहीं जाने देती! औरत? तू क्या जाने औरत को। जित्ती नरम दिखती है उत्ती पत्थर होती है, तू उसकी क्या जाने! सब कुछ छीनकर अपना

कर लेना चाहती है।' कजरी ने सोचते हुए कहा—'वह नहीं जानती कि वह क्या करना चाहती है, उसे लगता है कि उसका दुसमन और कोई नहीं, औरत ही है। सच अगर औरत औरत के खिलाफ़ न जाये, तो वह मरद को उल्लू बना सकती है। कुत्ता भी एक दूसरे से उतनी नफ़रत नहीं करता जितनी औरत औरत से करती है बलमा! मरद कैसा भी हो, औरत के सामने सिर झुकाता है क्योंकि वह औरत का जाया होता है। और लुगाई! लुगाई लुगाई के पेट से आती है। वह क्या है, इसे औरत ही जानती है।'

'तू तो प्यारी से नहीं करती थी कुछ।' सुखराम ने पूछा। उसे अब भी ताज्जुब हो रहा था। प्यारी का नाम सुनते ही कजरी को रोमांच हो आया। उसे फिर दुख ने घेर लिया।

'वह तो मुझे चाहती थी' उसने धीरे से कहा। उस स्वर में जैसे उसकी मन की भीतरी वेदना ने धीरे से झाँका और फिर जहाँ की तहाँ बैठ गई, जहाँ से संभवतः वह कभी भी निकल सकेगी, इसमें संदेह था।

सुखराम ने कहा : 'कजरी, मुझे वे बीते हुए दिन याद आते हैं।'

'मुझे क्या नहीं आते ?'

दोनों ने एक बार आँखों में झाँककर देखा। कहा कुछ नहीं।

वे डेरे में पहुँच गये।

दूसरे दिन दुपहर बाद एक व्यक्ति आया। वह करनट था। उसने सुखराम को दिखाया। पाँव में बड़ा ज़ख्म था।

सुखराम ने कहा : 'यह तो बहुत बढ़ गया है रे। पहले क्यों न आया। अच्छा जड़ी ले आऊँ तेरे लिये।'

'रात हो गई है।' कजरी ने उसे उठते देखकर कहा : 'अब तुझे दिखाई भी क्या देगा वहाँ ? जंगल का मामला। कीड़ा डोलता होगा, बघेर होगा। कल जो चला जइयो!'

सुखराम ने कहा : 'रात हो गई है ? तेरे लिये भी रूखड़ी ले आता हूँ।'

'क्यों ?'

'मुझे लगता है तुझे रतौंध शुरू हो गई है।'

'अबके सावन-भादों में नारी का साग खिला दीजो।' उस मरीज़ ने सच्चे दिल से राय दी।

कजरी ने खिसियाकर कहा : 'तेरी हरियाली में फूटी होंगी, जो सावन-भादों ही दिखाई दे रहे हैं !'

'अरी परमेसुरी ।' मरीज़ ने कहा : 'मुझसे तकरार करती है, वह कहता है तो कुछ नहीं कहती ?'

'वह तो मेरा खसम है ।' कजरी ने कहा ।

'बहू ।' मरीज़ ने कहा : 'तुझे लाज नहीं आती उसके सामने लड़ते ?'

कजरी ने जीभ दांतों में काट ली । मात खा गई । कहा : 'चलो देख लायें । पर मैं आटा लाने को थी । ला पैसे दे दे ।'

सुखराम ने कहा : 'अरी कल ले अइयो ।'

मरीज़ ने आठ आने निकालकर देते हुए कहा : 'तो बहू ले ! ले आ । मैं कल आ जाऊँगा सबेरे ।'

'नहीं, नहीं', सुखराम ने दिखावा किया, पर तब तक अठन्नी कजरी के हाथ की मुट्ठी में बंद हो चुकी थी ।

मरीज़ के जाने के बाद सुखराम बैठ गया । कजरी गेहूँ ले आई उस छोटी-सी दूकान से । और फिर पड़ोसिन को एक पैसा देकर गेहूँ की जगह रात लायक आटा माँग लाई । रोटी खाके चुके तो सूरज ढल रहा था ।

कजरी ने कहा : 'चलेगा नहीं !'

'कहाँ !'

'आज मेरा मन करता है, तू मुझे घुमा ला ।'

दोनों चल दिये । पहाड़ पर से देखा सामने ही अधूरा किला खड़ा था । आज सुखराम को लगा जैसे वह बहुत दूर हो गया था, बहुत दूर, इतनी दूर कि वह सुखराम की कल्पना के प्रसार से भी दूर था ।

'क्या देख रहा है !' कजरी ने समझ लिया ।

'मैं उसका मालक कभी नहीं हो सकूंगा ।'

'न सही । होकर ही क्या मिल जायेगा !'

'कजरी, तू कुछ नहीं चाहती ?'

'नहीं । मेरे पास सब कुछ है, जो कुछ है सो दूंगी नहीं, नये के लिये हाथ नहीं पसारती ।'

कजरी की बात ने सुखराम के मन में जगह बनाई । वह मन ही मन कजरी और अधूरे किले को तोलने लगा । और आज उसे पहली बार यह अनुभव

हुआ कि वह कजरी को चाहता है, अधूरे किले को नहीं। वह अधूरा किला उसके मन की हविस है, कजरी उसके मन का ठहराव है। वह कजरी के सामने अधूरे किले को धूल के बराबर भी नहीं समझता।

और उसे उस क्षण यह आश्चर्य्य हुआ कि वह क्यों इस पत्थर के ढेर के लिये व्याकुल था। उसके पास कजरी थी। कजरी उसके लिये सब कुछ थी। और सचमुच अगर वह अधूरा किला उसे मिल जाये तो ? तो क्या वह उसे संभाल सकता है ? उसे तो पढ़ना भी नहीं आता। कहते हैं, बड़े आदमी पढ़े होते हैं। और पढ़ाई से आदमी में अकल आती है। वह क्या है ? एक करनट। भले ही वह अपने को ठाकुर कहता रहे।

और आज वह चोरों की तरह मुँह छिपाकर पड़ा है यहाँ ! कजरी ही तो उसका एकमात्र सहारा है !

दोनों देर तक सोचते रहे। कजरी सोच रही थी : अगर कहीं काम लग जाये तो अच्छा हो। न काम है, न सही, पर आज़ादी तो चाहिये !

सुखराम ने कहा : 'कजरी ! मुझे किला नहीं चाहिये।'

'दे कौन रहा है ?'

'दे भी तो नहीं चाहिये।'

'बड़े भाग मेरे ! तुझमें अकल तो आई !'

'कजरी हम चलेंगे।' उसमें नया विश्वास था।

'कहाँ ?'

'अहमदाबाद !'

सूरज डूब चुका था। पर कजरी ने उस नवीन जागरण को देखा और उसे सुख हुआ। आज जैसे भय दूर हो गये थे। पूछा : 'कब चलेगा ?'

'कल ही। तेरे पास रुपये बचे हैं ?'

'हैं, पन्द्रह बचे हैं।'

'बहुत हैं, रास्ते का खर्च निकाल ही लेंगे। फिर वहाँ तो काम मिल ही जायेगा।'

कजरी ने कहा : 'चल, अन्धेरा छाने लगा।' वह चौंक उठी थी।

'पर मुझे आखिरी बार इसे देख लेने दे। तब चलूंगा जब अन्धेरा इसे मेरी आँखों से खो दे, ताकि इसे मन से भी संग-संग ही धो दूं।'

कजरी ने कहा : 'हाय मुझे डर लगता है।'

धीरे-धीरे किला अन्धकार में खो गया और फिर चारों ओर कालिमा छा गई। तब वे दोनों चल पड़े। सुखराम का मन भारी था।

'तूने जड़ी नहीं ली।'

'कल ले लूंगा।' सुखराम ने कहा।

'यही सोचती थी। उसे बता दीजो। वर्ना कल के बाद फिर कौन इलाज करेगा उसका।'

'दवा बना के दे दूंगा। ऐसे बहुत बता दी।' सुखराम ने कहा : 'गुरू का हुकम है, बता नहीं सकता।'

अचानक एक औरत की चीख सुनाई दी। अन्धकार की निर्जनता में स्वर भयानक बनकर गूंज उठा। कजरी सुखराम से लिपट गई।

'क्यों डरती है।'

'यह क्या हुआ ?'

'अभी तो मैं हूँ री।'

फिर चीख सुनाई दी। अब की बार और पास।

कजरी चौंकी। सुखराम ने उसकी कमर में हाथ डालकर उसे और पास खींच लिया। कजरी को चैन आया। उसने कान के पास मुँह ले जाकर कुछ बहुत धीरे से कहा।

'क्या है ?' सुखराम ने वैसे ही पूछा।

कजरी ने कहा : 'कोई औरत है।'

सुखराम ने इशारा किया। वह चुप हो गई। फिर सुखराम आहट लेने लगा। अन्त में कहा : 'आवाज़ उधर से आई है।'

फिर पग-ध्वनि सुनाई दी।

कजरी ने कहा : 'देख कोई चल रहा है।'

'चल ! देखें !'

दोनों भागे। पर पाँव सम्भाल कर। कुछ दूर चलने पर ही एक मशाल जलती हुई दिखी। उसकी आग हवा में फरफरा रही थी और उससे उजाला हो रहा था।

सुखराम ने कजरी का हाथ पकड़कर कहा : 'वह देख।'

चट्टान की आड़ से देखा। कजरी फुसफुसाई : 'अरे !'

'क्या हुआ ?'

'यह तो तेरा वही है ।' कजरी ने पहचानते हुए बताया ।

'कौन ? खडगसिंह और सरदार,' सुखराम ने कहा ।

'यह संग कौन है ?'

'कोई लुगाई है ।'

'बड़ी भभूका गोरी है ये ।' कजरी चौंकी ।

'मुझे तो मेम-सी लगती है ।' सुखराम और भी चौंका ।

'दैया री ! सच ? यह तो मेम ही है ।'

'यह कहाँ से ले आया ?' सुखराम ने कुरेदा ।

'मरने दे हमें क्या ?' कजरी को वह उत्सुकता भयकारक लगी ।

'नहीं कजरी । यह तो खतरा है ।'

'क्यों ?' वह घबराई ।

'कल ही डाँग में पुलस आ जायेगी ।'

कजरी काँप उठी । कहा : 'फिर !'

'इसे बचाना होगा ।'

'और सरदार न माना तो ?' कजरी ने खतरा दिखाया ।

'उसे मानना होगा ।' सुखराम ने दृढ़ता से कहा : 'वर्ना हम सब तबाह हो जायेंगे ।'

कजरी एकदम सामने पहुँच गई । चिल्लाई : 'औरत पर हाथ उठाते तुम्हें लाज नहीं आती ?'

'अरे कौन, तू ?' खडगसिंह ने कहा : 'चुप रह, भाग जा !'

'नहीं भागूंगी ।' कजरी ने कहा : 'पकड़ के ले जाते हैं दोनों। अरे तू कहाँ रह गया ?'

सुखराम ने आगे बढ़कर कहा : 'राम-राम भैया !'

'अच्छा !' सरदार ने कहा : 'और भी कोई है ?'

'कोई नहीं ।'

'तो हट जाओ सामने से ।'

'हट तो जायें,' सुखराम ने विनीत स्वर से कहा : 'पर तुमने यह भी सोचा है कि क्या कर रहे हो ?'

'क्या कर रहे हैं ?' सरदार ने पूछा ।

'यह मेम है जानते हो ?'

'देख इसकी खाल कैसी नरम और अच्छी है,' सरदार ने उस स्त्री का हाथ अपने हाथ में मसलकर कहा। वह स्त्री संत्रस्त-सी काँपकर चिल्ला उठी।

'सुसरी चिल्लाती है।' सरदार हँसा।

'यह ठीक नहीं है,' सुखराम ने कहा : 'तुम्हें फ़ायदा क्या? तुम्हें इसके बदले में कोई रुपया नहीं देगा। कल से ही पलटनें डाँग में गोली चला-चला के सबको भूनना शुरू कर देंगी। मूरख! ये राजों के राजा है।'

'अरे शेर को न जगा,' कजरी ने कहा : 'अपनी मौत अपने आप क्यों बुला रहे हो?'

मेम डरी हुई थी। पत्ते की तरह काँप रही थी। उसे भय के कारण पसीना आ गया था। उसके कटे हुए बाल कंधों पर लहेरा रहे थे।

उसने कहा : 'बचाओ! बचाओ·····'

और वह कजरी के पाँव पर गिर गई। सरदार चौंक उठा। वह आगे बढ़ा। पर सुखराम ने कहा : 'नहीं, नहीं, तू नहीं समझता। ऐसा मत कर! तू आगे की भी तो सोच!'

कजरी ने मेम को उठाकर कहा : 'डरो नहीं, बीबी जी। डरो नहीं। कोई तुम्हारा कुछ नहीं करेगा।'

उस आश्वासन को सुनकर मेम को चैन मिला। उसने कजरी को आलिंगन में कस लिया और रोने लगी, जैसे भय अब फूट निकला था।

सरदार ने कहा : 'छोड़ दे उसे!'

सुखराम ने कहा : 'मान जा सरदार!'

'नहीं!' सरदार चिल्लाया : 'छोड़ दे उसे तू।'

'क्यों छोड़ दे!' कजरी ने कहा : 'तेरे बाप की लुगाई है जो मैं छोड़ दूं? मेरे रहते तू एक औरत की इज्जत बिगाड़ लेगा? अरे मैं मर जाऊँगी पर हाथ न लगाने दूंगी।'

'ऐसी लुगाई मैंने आज तक न देखी।' खडगसिंह ने कहा—'बड़ी मूरख है।'

परन्तु स्त्री ने कजरी को अब और कसकर पकड़ लिया और कहा : 'तुम मेरी माँ हो।'

'किसीको क्या पता चलेगा।' सरदार ने कहा।

'अरे पहले तो ऊपर वाला ही देख रहा है।' कजरी ने डाँटा।

'सुसरी अकेली घूम रही थी।' खडगसिंह ने कहा।

'कहाँ ?' कजरी बोली।

'पहाड़ पर।'

'तो गाँव पर कल गोली चलेगी,' सुखराम ने जल्दी से बुड़बुड़ाकर कहा। मेम के हिन्दी बोल देने के बाद उसने जान-बूझकर ऐसी बात की, और वह सचमुच नहीं समझ सकी। परन्तु बाकी कजरी और वे दोनों समझ गये।

'और यह लौट गई तो ?' खडगसिंह ने पूछा और सरदार की ओर देखा। दोनों की आँखें चार हुईं। फिर इशारे हुए।

सुखराम ने सोचा और फिर कहा : 'लौट गई तो भी क्या ? हमें क्या डर है कि फिर क्या होगा ?'

'हमें तो है।' सरदार ने कहा।

'मैं तुम्हें नहीं जानता। यह जान लेगी ?' सुखराम ने धीरे-धीरे स्पष्ट स्वर से कहा : 'जाने तुम पड़ोस की किसी रियासत के लोग !'

'मैं नहीं मानता !' सरदार बड़बड़ाया।

'सौगंध है। दग़ा नहीं दूँगा।' सुखराम ने वैसे ही शब्द घुमाकर कहा। मेम डरती ही-सी दीखती थी।

सरदार सोचने लगा।

कजरी ने मेम से कहा : 'मेम सा'ब।'

मेम ने आँख खोलकर उसे देखा।

'तेरी तबियत आ गई है लुगाई गोरी देख के।' कजरी ने सरदार से कहा।

'क्यों न आयेगी ?' सरदार ने कहा : 'मरद नहीं हूँ ?'

'अरे तू मरद है तो क्या इसीलिये कि पराई लुगाइयों की बेइज्जती करे।'

'तुझे इस सबसे क्या ?' सरदार खीझ उठा।

'क्यों मैं क्या लुगाई नहीं हूँ ?' कजरी ने बात काटी।

'अच्छा !' खडगसिंह ने कहा : 'तो तू इससे अपना मुकाबला कर रही है नटिनी !'

'अरे चल दाढ़ीजार !' कजरी ने कहा।

सुखराम ने कहा : 'तो तूने इसे छोड़ दिया ?'

मेम ने डरकर आँखें फिर मींच लीं। मशाल के फरफराते उजाले में कजरी ने देखा। वह एक अठारह-उन्नीस साल की छरहरी और तन्दुरुस्त स्त्री

थी, जिसके बाल कुछ सुनहले थे और आँखें भी पीली-सी थीं। उसके होंठ पतले थे और उसके पास से खुशबू आ रही थी। वह पाउडर और लैवेन्डर की गंध थी। कजरी ने सोचा शायद कोई इतर होगा। उसने आराम से उस गंध को सूंघा और इसलिये स्त्री के इतना कसकर पकड़ने पर भी उसे बुरा नहीं लगा।

'छोड़ दूंगा।' सरदार ने कहा। 'पर यों नहीं।'

'तो कैसे ?' सुखराम ने पूछा।

'तू आज इसे ले जा, पर मुझे पहले हरा जा।'

'सो कैसे ?'

'तू मुझसे लड़ ले।'

'यह नहीं होगा।'

'क्यों ? जब तू मुझे जानता नहीं तो वैसे ही कैसे ले जायेगा ? बहुत दिनों से खटक रही है उस दिन की। आज तू मुझसे फैसला कर ले।'

सरदार ने पिस्तौल वाला हाथ उठाया।

'कायर !' कजरी चिल्लाई। 'वह निहत्था है।'

मेम ने आँखें खोल दीं और उसे लगा अब वह सब आशा मिट्टी में मिल जायेगी। उसने देखा सामने सुखराम---एक मजबूत आदमी अपने हाथ सीने पर बाँधे खड़ा था। वह मुस्कराया। उसने कहा : 'तो तू सचमुच लड़ना चाहता है ?'

'हाँ।' सरदार पुकार उठा।

'तो !' सुखराम ने झपटकर लात दी और पिस्तौल उछाल दी। और सरदार के चैतन्य होने के पहले ही अपने हाथ में ले ली तथा हँसकर उसने खडगसिंह को देकर कहा—'इसका क्या काम ? तू रख ले। हमारी इसकी बराबर की होगी।'

सरदार ने झपटकर पिस्तौल खडगसिंह से छीन ली और हंटकर तानकर खड़ा हो गया।

'तो ठहर जा !' सुखराम ने एक पत्थर का टुकड़ा फुर्ती से उठाकर कहा—'मुझे भी संभल जाने दे।'

'क्यों ?' सरदार ने पूछा।

'मुझे तैयार होने दे।'

'मंज़ूर है।'

दोनों आमने-सामने खड़े हुए। कजरी ने आकुल चिन्ता से मेम को और कस लिया और मेम ने आँखें भयार्त्त होकर फाड़ दीं और उसके मुख से निकला : 'क्राइस्ट !'

कजरी समझी नहीं। उसने कहा : 'डरो मत ! वह भी न रहे, पर मैं तो हूँ। जब मैं भी न रहूँ तब तुम भी न रहना।'

मेम चीख उठी।

सरदार ने गोली चलाई। पहाड़ी प्रान्त में एक बार की धूं भयानक आवाज़ गूंज गई। और साथ ही देसी तमंचे से धूंआ भी निकला। सुखराम उछला।

'कायर !' कजरी चिल्लाई। 'निहत्थे पर गोली चलाता है।' और उसने मुड़कर देखा।

सुखराम हँसा। कजरी की छाती फूल उठी और उसने मेम को फिर चिपका लिया, इस बार और ज़ोर से।

गोली सुखराम का हाथ छीलकर निकल गई। खून चुचा आया। और कुछ नहीं।

'अब तेरी बारी है।' डाकू ने कहा : 'फिर मैं देखूंगा। बोल मर्द है तो वार कर।'

खडगसिंह ने मशाल झुकाकर उजाला कर दिया जैसे स्पष्ट देखना चाहता था।

'अब संभाल' सुखराम ने कहा और घुमाकर पत्थर फेंका। पत्थर डाकू की कलाई में लगा।

'हाय माड्डाला !' करके वह नीचे बैठ गया और पिस्तौल छिटककर दूर गिरी। सुखराम ने झपटकर पिस्तौल उठा ली और सरदार पर कूदा। सरदार के सीने पर चढ़कर उसने पिस्तौल तानी कि सरदार ने कहा : 'दुहाई है।' सुखराम के हाथ से पिस्तौल गिर गई। उठ खड़ा हुआ। कहा : 'जा चला जा !'

सरदार उठा। क्षण भर कृतज्ञ और गद्‌गद् नेत्रों से वह विकराल व्यक्ति देखता रहा। सुखराम मुस्कराया।

सरदार ने पगड़ी उतारकर सुखराम के पाँव पर फेंक दी।

'क्यों ?' सुखराम ने पूछा।

'तू प्राणदाता है।' डाकू ने कहा।

'तू नासमझ है अभी, तभी ऐसा कहता है।'

कजरी ने सुना तो अपनी छाती से मेम को और कसके दबा लिया। वह उसके भीतर का उमड़ता हुआ आनन्द था।

'तुझसे मैं नहीं जीतूंगा।' सरदार ने कहा।

'मैं तेरा दुश्मन ही कब हूँ !'

'तेरे जैसे आदमी से मुकाबला करना भी बड़प्पन की बात है यह मैंने अब जाना।' सरदार ने मुग्ध स्वर से कहा।

कजरी ने मेम से कहा : 'देखा मेम सा'ब ! देखा ! मरद मानुस देखा है कभी। न देखा हो तो मेरे खसम को देख के दीदे सिहा लो।'

मेम उसकी जल्दी की बात समझी नहीं। पर उसमें अब उतना भय नहीं था। वह सुस्थिर लगती थी। परन्तु अभी-अभी जो युद्ध का दृश्य उसने देखा था, वह उसे देखकर चमत्कृत हो गई थी।

फटी-फटी आँखों से देखती रही।

सरदार ने बढ़कर कहा : 'मेम सा'ब ! माफ कर दो। अब ऐसी गलती नहीं होगी।'

कजरी ने कहा : 'कर दो मेम सा'ब।'

'कर दिया।' मेम ने काँपते स्वर से कहा।

'कहाँ जाओगी ?' कजरी ने पूछा।

डाकू अब पीछे आ गया और खडगसिंह से बातें करने लगा। मेम ने देखा। हिम्मत न खुली। वह डरती रही।

कजरी ने कहा : 'बताती क्यों नहीं ?'

'डाक बँगला।' मेम ने घबराये हुए कहा। और मुड़कर देखा। सरदार ने कहा : 'जाओ, कोई डर नहीं, हम जाते हैं।'

वह आगे बढ़ा। उसने सुखराम के पाँव छुए, फिर पिस्तौल धरती से उठा ली और फिर वे दोनों चलने लगे। कजरी ने टोका—'सुनो।'

'क्या है ?' खडगसिंह ने कहा।

'ये मसाल हमें दे दो। रात है। इसे घर पहुँचा दें। कहाँ-कहाँ गिरेगी नहीं तो !'

'दे दे,' सरदार ने कहा ।

कजरी ने मशाल ले ली । डाकू चले गये । मेम आतंकित-सी बार-बार उधर देख लेती थी ।

'चलो ! तुम्हें पहुँचा दें ।' सुखराम ने कहा ।

'चलो ।' कजरी ने भी राय दी, 'पर' उसने टोका—'वचन दो ।'

'क्या ? बोलती हो ?' मेम ने कहा ।

'कसम खाने को कहती है ।' सुखराम ने सहज किया ।

'बोलो ।' मेम ने कहा ।

'हमें गिरफ़्तार न कराना ।' कजरी ने कहा : 'हमारा कोई कसूर नहीं है ।'

'मैं वादा करती हूँ ।' मेम ने कहा । 'तुमने मुझे बचाया । मैं तुमसे दगा कर सकती हूँ ?'

वह धीरे-धीरे सोच-सोचकर बोल रही थी । 'कभी नहीं ।'

सुखराम ने कहा : 'मगर मेम सा'ब ! पुलस हमें पकड़ लेगी । कहेगी डाकुओं का पता बताओ । हम कहाँ से बता देंगे ?'

'हम वादा करती हूँ ।' मेम ने वचन दिया : 'हमारे रहते कुछ नहीं होगा । तुम हमको पहुँचाओ, हमारा बाप तुमको इनाम देगा ।'

वे चलने लगे ।

'आज तुमने हमको बचाया ।' मेम ने कजरी का हाथ पकड़कर कहा : 'वो लोग हमको पकड़कर ले जाते थे ।'

'डाक बँगला इधर है,' सुखराम ने कहा । 'उधर से तो दो मील का चक्कर पड़ेगा । इधर से चले चलो । रास्ता तो खराब है, पर आधा रह जायेगा ।'

'चलो', मेम ने कहा ।

'गिरोगी तो नहीं ?' कजरी ने पूछा ।

'नहीं ।' मेम ने कहा : 'मैं पहाड़ पर चढ़ना-उतरना जानती हूँ ।'

सुखराम ने कहा : 'तो ठीक है। आ जाओ ।'

'तुम्हें कैसे पकड़ लिया इन्होंने मेम सा'ब !' कजरी ने पूछा ।

'हम पहाड़ पर घूमती रही, वहाँ हमको अचानक पकड़ लिया । हम कुछ नहीं कर सकीं ।' मेम ने सरलता से कहा : 'तुम आईं । तुमने हमको बचाया । तुम बहुत अच्छी हो । तुम बहुत अच्छी हो ।'

उसने जैसे दुहराकर अपनी बात को दृढ़ किया और कजरी को स्नेह से देखा।

'हाय दैया !' कजरी ने कहा : 'कैसी बोलती है !'

सुखराम हँस दिया।

मेम ने सुखराम को नज़र भरकर देखा।

कजरी ने कहा : 'ऐ मेम सा'ब ! इसे खाओगी क्या ?'

मेम ने आँखें नहीं हटाई। उसी तरह विभोर स्वर में उसे देखते हुए मग्न होकर कहा : 'बड़ा बहादुर है।'

कजरी पर साँप लोटा।

'दैया री ! नजर लगाने लगी बलमा तुझे। मैं क्या करूँ ? हम गमार। यह राजों की रानी। तेरी बलिहारी भगवान।'

मेम कुछ नहीं समझी। उसने सुखराम की ओर देखा। वह केवल मुस्करा दिया। कुछ कहा नहीं।

'क्या कहती है ?' मेम ने पूछा।

सुखराम ने कजरी की ओर देखा। वह आँखें तरेरे हुए थी।

'हुज़ूर आपसे डरती है।' सुखराम ने कहा।

'डरै मेरी बला।' कजरी गोलमोल बड़बड़ाई। और फिर धीरे से उसने सुखराम को नोंचा।

'क्यों डरती है। हम अच्छी बात करती हैं।' मेम ने कहा।

'हाँ मेम सा'ब।' कजरी ने कहा : 'अब नहीं डरूँगी।'

'यह तुम्हारा आदमी है ?' मेम ने पूछा।

'हाँ हुज़ूर' कजरी ने कहा : 'यह मेरा आदमी है।'

'वेरी गुड !' मेम ने कहा : 'ठीक है।' फिर जैसे अपने आप ही प्रशंसात्मक स्वर में कहा : 'अच्छा है।'

कजरी ने सुना तो घबराई। उसे सारी दुनिया अपनी कल्पना में ही रँगी दिखाई देती थी।

'ऐ !' कजरी ने कहा। 'हाय मैया ! चल नासपीटे अब भी लौट चल।'

उसका इशारा सुखराम से था। पर वह चलता रहा।

'अरे सुनता नहीं ! देखो तो कढ़ीखाये को। छछूंदर के सिर में चमेली का तेल !' कजरी ने फिर कहा।

'किसका तेल !' मेम ने कहा, 'क्यों ? तेल का क्या हुआ ?'

कजरी ने झल्लाकर कहा : मेल-तेल नहीं मेम सा'ब !'

सुखराम हँसा।

कजरी बड़बड़ाई : 'बड़ा मजा आ रहा है तुझे ?'

सुखराम को जोर से हँसी आई।

'क्यों हँसते हो तुम ?' मेम ने पूछा।

'वैसे ही हुज़ूर।' सुखराम ने कहा।

'सरकार हम गरीब लोग हैं। गमार हैं।' कजरी ने कहा : 'हमसे गलती हो ही जाती है। आप हमें माफ कर दें।'

'पर तुम्हारा बड़ा बहादुर आदमी है।' मेम ने कहा : 'हमने ऐसा आदमी नहीं देखा।'

कजरी ने कहा : 'भगवान ! भगवान !!'

डाक बँगला आ गया। कजरी और सुखराम दोनों ही जैसे डरकर रुक गये। मेम समझी नहीं। सुखराम गंभीर था।

मेम ने कहा : 'आगे चलो।'

उस आगे का गलत प्रयोग गजब ढा गया। डर बढ़ गया।

'नहीं कढ़ीखाये। आज जेल भेजैगी ये।' कजरी ने सुखराम को टोक दिया। 'तू मेरे संग चल। छोड़ इसे। आप पहुँच जायेगी। मुझे तो डर लगता है। भाग चल। अभी मौका है।' कजरी पीछे भागी। सुखराम खड़ा रहा।

कजरी कुछ दूर जाकर रुक गई। देखने लगी।

'क्या बात है ?' मेम ने पूछा।

'सरकार डरती है।' सुखराम ने याचना-भरे स्वर में कहा।

'क्यों ?' उसने आश्चर्य्य से पूछा।

'हुज़ूर ! आप सा'ब लोग हैं। राजाओं के राजा हैं। हम ग़रीब लोग हैं।'

'ओह !' मेम हँसी। उसकी चेतना को अपनापन अनुभव होने लगा था। वह अब भी पूर्णरूप से मुखर नहीं हुई थी। बोली : 'उसको बुलाओ। बोलो हमसे डरने की जरूरत नहीं है।'

'आ जा री।' सुखराम ने कहा।

कजरी धीरे-धीरे आई। वह भयभीत थी। और झपटकर उसने मेम के

पाँव पकड़ लिये। रोने लगी। उसने घिघियाते हुए कहा : 'नहीं हुज़ूर! हमें छोड़ दो। हम यहीं से चले जायेंगे।'

मेम हँसी। कहा : 'रोती क्यों हो? तुमने हमको बचाया। हम तुमको पकड़ने नहीं ले जाती। हम तुमको इनाम के वास्ते ले चलना मांगती हैं। अगर तुम चाहो तो यहीं से जाओ। हम आगे अपने आप चली जायेगी।'

'नहीं हुज़ूर! अभी जानवर का डर है।' सुखराम ने टोका।

मेम के शब्दों में कजरी ने ईमानदारी की बू पाई। खड़ी हो गई। आँसू पोंछ लिये। वे आँसू क्या निकल गये, कजरी जब उठ खड़ी हुई तो लगा जैसे जंगली जानवर पालतू बनकर उठ खड़ा हुआ।

'तुम क्या करते हो?' मेम ने पूछा।

'सरकार मैं···' सुखराम ने कहना चाहा, पर कजरी ने कहा : 'हम गरीब हैं। हम नीच जात हैं। कुछ नहीं करते।'

'तो खाते क्या हो?'

'मेम सा'ब, रोटी!'

मेम हँस दी। उसने कहा : 'ओह नो नो! तुम्हारी आमदनी कैसे होती है?'

दोनों नहीं बोले।

'तुम नौकरी करोगे?'

'नहीं हुज़ूर' कजरी ने कहा : 'हमारी जात में·····'

सुखराम ने ज़ोर से बोलकर उसके स्वर को दबा दिया : 'सरकार हम नीच जात हैं, हमें कोई नौकरी नहीं देता।'

'हम देंगे तो करोगे?'

'करूँगा सरकार! वर्ना मर जाऊँगा।'

उसने याचना के स्वर में कहा।

पर कजरी ने काटा : 'कर लेंगे सरकार, पर हम दोनों करेंगे।'

'तुम भी चलना चाहती हो?'

'और मैं इसे छोड़कर कहाँ रहूँगी?'

मेम हँसी। पूछा : 'तुम इसको चाहती हो!'

कजरी ने जल्दी-जल्दी कहा : 'देखा दईमारे! क्या पूछती है? इसे शरम नहीं है!'

'चुप चुप।' सुखराम बुड़बुड़ाया।

'चलिये हुज़ूर।' कजरी ने आगे होकर कहा।

सुखराम ने कजरी के कान में धीरे से कहा : 'अहमदाबाद कब चलेगी ?'

कजरी हँसी। कहा : 'मेम सा'ब, आप हमारी माँ हैं। हम आपके बच्चे हैं।'

मेम ने कहा : 'ओह नो ! अभी हमारी शादी नहीं हुई है।'

दोनों मुस्करा दिये। जब वे डाक बंगले पहुँचे तो वहां एक अजीब समा था। भगदड़ थी। कभी सीटी बजती, कभी कोई लालटेन लिये इधर-उधर आता-जाता। जैसे सब घबरा गये थे।

मेम आगे बढ़ी। यहाँ उसकी चाल में अब हुकूमत भर गई। अभी तक का साधारणत्व उसमें से खो गया।

सिपाही दौड़े आ गये।

'मेम सा'ब आ गईं, मेम सा'ब आ गईं', चारों ओर यही स्वर गूंज उठा।

'हुज़ूर, आपको ढूंढ़ते-ढूंढ़ते साहब तो थक गये।' एक सिपाही ने कहा। मेम मुस्करा दी।

'हुज़ूर !' दरोगा ने कहा। 'खुदा का शुक्र है। लाख-लाख शुक्र है।' उसने बड़ी पवित्रता से हाथ उठा दिये, हालाँकि अब भी दिल में वह उसे गाली ही दे रहा था, क्योंकि उसकी वजह से उसे रात को तकलीफ़ उठानी पड़ी थी।

सुखराम को काटो तो लहू नहीं। एकदम पूरा थाना यहीं मौजूद है।

'इधर आओ।' मेम ने मुड़कर सुखराम और कजरी से कहा।

उन दोनों की यह खातिर देखकर वे सब जल उठे। मेम ने उन दोनों को अपने पास बरामदे में बुला लिया। दोनों सहमे हुए थे।

'हुज़ूर ये जेल से भागा था,' एक सिपाही ने कहा।

'जेल से ?' मेम ने कहा। 'कौन ?'

'हुज़ूर ये आदमी।' उसने उत्तर दिया।

'तुम चुप रहो ! हम सब देखेंगे।' मेम ने कठोरता से उत्तर दिया। सुखराम और कजरी दोनों स्तब्ध खड़े रहे। सुखराम के मुख पर तनिक भी विकार नहीं दिखाई देता था। मेम ने उसे देखा।

एक सिपाही ने कहा : 'हुज़ूर ! सा'ब आ गये ।'

मेम आगे बढ़ी । उसने आतुरता से पुकारा : 'डैडी !'

एक बूढ़ा आया । मेम को देखकर उसने उसका माथा चूमा । वह उसका बाप था । वह गद्‌गद हो गया था । सीने से लगाकर सिर पर हाथ फेरता रहा ।

उसने अंगरेज़ी में पूछा : 'सूसन ! क्या हुआ ?'

मेम ने उत्तर दिया जिसे दरोगा थोड़ा-थोड़ा समझ सका क्योंकि उसके लिये अंगरेज़ी का वह उच्चारण सुनना और समझना एक पूरी समस्या थी । वह तो दसवें दर्ज़े तक पढ़ा था । और क्योंकि ठाकुर था, इसलिये रियासत में वह औहदेदार था । काफी हिस्सा वह नहीं ही समझा ।

मेम ने अंगरेज़ी में कहा : 'मैं घूमने गई थी । डाकू पकड़ ले गया । इस आदमी ने मुझे बचाया । वह उसकी बीबी है । वह बहादुर हैं । उसने पिस्तौल वाले से नंगे हाथ मेरी रक्षा की है । सिपाही कहता है यह आदमी जेल से भागा है । यह नीच जात है । यहाँ इनको सताया जाता है । यह क्रिश्चियन नहीं हैं । मैंने वादा कर दिया है । इन्हें बचाइये । मैंने इन्हें इनाम देने और नौकरी देने को भी कहा है ।'

बूढ़े ने कहा : 'वैल दरोगा !' अपनी एकमात्र पुत्री की रक्षा करने वाले से वह मन में प्रसन्न हो गया था ।

'हुज़ूर ।' दरोगा ने झुककर कहा । 'हुकम !'

'तुम जाओ !'

'सरकार यह आदमी·····'

'उसको हमारा बेटी ने माफ़ कर दिया,' बूढ़े ने कहा और फिर प्रेम से अपनी पुत्री का मस्तक चूम लिया । आज वह कितना प्रसन्न दिखाई देता था । आज लगता था कि वह भी मनुष्य है, उसकी भी सुख-दुख की वही भावनाएं हैं, जो साधारणत: संसार के लगभग दो अरब मनुष्यों में हैं ।

सुखराम ने बढ़कर वृद्ध के पाँव पकड़ लिये और कहा : 'हुज़ूर !'

कजरी ने झपटकर उसके पाँवों को जकड़कर कहा : 'भगवान करे, आप अमर हों, आपकी बेटी का सुहाग अमर हो । आपका राज अमर हो ।'

बूढ़ा मुस्करा दिया । सुखराम की ओर नहीं, कजरी की ओर, क्योंकि अंगरेज़ स्त्री के लिये सदैव विनम्रता दिखाने की चेष्टा करता है ।

'वैल, वैल ।' बूढ़े ने कहा—और फिर हाथ का इशारा किया, जिसका अर्थ था पुलिस जा सकती है । कुछ सिपाही पहरों पर तैनात हो गये । बाकी चले गये ।

बूढ़ा दफ़्तर में चला गया ।

मेम ने कहा : 'तुम क्या नाम है ?'

'हुज़ूर, सुखराम ।'

'तुम हमारा अर्दली में रहना ।'

'बहुत अच्छा सरकार ।'

कजरी ने कहा : 'हुज़ूर मैं क्या करूँगी ?'

'तुम बोलो । तुम क्या चाहती हो ?' मेम ने पूछा ।

कजरी ने घबराकर इधर-उधर देखा और फिर जैसे कहना ही पड़ा, कह दिया : 'हुज़ूर ! मैं इसके पास रहूँगी ।'

मेम ज़ोर से हँस उठी । फिर कहा : 'वैल ! हमको मालूम है तुम इसकी औरत हो ।'

वह भीतर चली गई ।

कजरी ने लम्बी सांस ली ।

'क्या हुआ ?'

'कुछ नहीं ।' कजरी ने कहा ।

'मुझसे छिपाती है ?'

'छिपाती नहीं, सोचती हूँ ।'

'क्या !'

'अहमदाबाद चलते तो कैसा रहता !'

'मुसीबत !!'

'तुझे यह जगह भा गई है ?'

'क्यों न भायेगी ! तू देखती चल । क्या-क्या होता है !'

'क्या-क्या होगा ?'

'मुफ़्त तनख्वाह मिलेगी ।'

'काम नहीं करना पड़ेगा !'

'साहब के पास काम ही क्या है ? और भी कई नौकर हैं । यहाँ तो अब हम खुद सरकारी आदमी हो गये हैं । अब हम दूसरों को पकड़ सकते हैं, पहले

की तरह पकड़े नहीं जा सकते ।'

'हाय राम ।' कजरी ने कहा । 'यह क्या हो गया ?'

'अरी भाग पलटते हैं तो ऐसा होते क्या देर लगती है !' सुखराम ने कहा : 'वह तो नजर की बात है । जरा भगवान भौं सीधी करे कि सब काम ठीक !'

'अरे जा !' कजरी ने कहा : 'बस भगवान को कोई काम नहीं जो हम पर ही आँख गड़ाये बैठा होगा !!'

सुखराम ने कहा : 'तू मानती ही नहीं ।'

'फिर अब यहीं रहना तय हो गया है ?' कजरी ने पूछा ।

'कजरी चल सामान ले आयें ।' सुखराम ने कहा ।

'क्या है तेरा सामान ?' व्यंग्य से कजरी ने पूछा : 'यहाँ क्या मेम सा'ब को डराना है ? कहीं वह खूबसूरत खाट देख के मांग ली उसने, तो तेरा दिल न दुखेगा ?'

'अरी उसकी अठन्नी वापिस नहीं करनी है !' उसने मरीज़ की ओर इंगित किया ।

'वह तो आप आ जायेगा यहीं ?'

'यहाँ उसका न आना भला है ।' सुखराम ने उत्तर दिया और फिर कहा : 'और मेरा बकस !'

'बकस ! अरे हां,' कजरी ने कहा : 'वह तो ठीक है ।'

'और उसके भीतर क्या है ?'

'क्या है भीतर !' कजरी ने सोचा और फिर कह उठी : 'अच्छा !! अभी बके जा रहा है !! अधूरा किला !!! ठकुरानी की तस्वीर है उसमें । अब तू उसे भूलेगा कि नहीं ?'

'अरी तस्वीर क्या बिगाड़ती है भला । जा तो रहे ही हैं । क्या उसे फेंक आयें ?'

'और जो सरदार ने पकड़ा तो ?' कजरी ने कहा : 'वह तो डाकू है । कहीं रात में खिसिया कर ही गया हो, कौन जाने ? सामने तो तेरे कुछ चलती नहीं उसकी । कहीं पीछे से हमला किया तो जान लेकर ही छोड़ेगा । मैं हो आती हूँ । तू यहीं रहना ! खतरा आ गया तो !'

'तो ? ककड़ी की तरह तोड़कर धर दूंगा उसे ।' सुखराम ने कहा : 'कजरी ! मैं फिर आज़ाद हूँ । और तू जानती है मैं कहाँ हूँ ?'

'कहाँ है ?'

'मैं रानी की रानी के पास हूँ। यहाँ कोई डर नहीं। अब यह सब मुझसे डरेंगे।'

'तुझसे तो बिल्ली न डरेगी। पराई ओट में तू भोंकने क्यों लग गया ? अरे पेट है तो नौकरी की है। पर सच तू तो उल्लू का पट्ठा है। अब बहक उठा। ये डरेंगे, वो डरेंगे। क्या सब राजा के खान्दान के लोग तुझ जैसे बेवकूफ़ ही होते हैं !'

मेम फिर आई, दोनों विनीत हो गये।

'तुम कहाँ रहोगे ?' मेम ने पूछा।

'सरकार हुकम दें।' सुखराम ने सिर झुकाया।

'तुम उधर रहना।' उसने नौकरों के क्वार्टर दिखाकर कहा : 'अभी हम लोग यहाँ हैं। हम यहाँ से जायेंगे तब हमारे साथ चलोगे ? बोलो। मंजूर है !'

सुखराम ने कहा : 'सरकार जहाँ हुकम देंगी, हम वहीं चलेंगे।'

मेम प्रसन्न दिखाई दी।

'पूछ ले।' कजरी ने सुखराम को इशारा किया।

'हुजूर सामान ले आयें ?' सुखराम ने कहा।

'कहाँ है ?'

'डेरे पर।'

'फिर आयेगा ?' उसने सिर हिलाकर पूछा। 'कब ?'

'बस सबेरे तक आ जायेंगे मालकिन।' कजरी ने उत्तर दिया।

'जरूर सरकार।' सुखराम ने कहकर कजरी की ओर देखा। मेम भीतर चली गई।

'मालकिन नहीं नटनी ! हुजूर कह।'

'अरे मेरी तो जीभ घिसी जाती है।' कजरी ने कहा : 'चल लौट आयें।'

सबेरे तक ही वे लौट आये। बक्स आ गया, यानी अधूरा किला आ गया।

३१

भाभी ने कहा : 'उठोगे नहीं ?'

मैंने मुंह खोला। सरदी में मैं जल्दी नहीं उठ पाता। देर तक जाग सकता हूँ। उठते ही सिगरेट सुलगाई और बैठ गया। भाभी ने चाय का प्याला दे दिया। मैं पीने लगा।

'तुमने सुना।' भाभी ने कहा : 'मैंने नरेश से पूछा था।'

'नरेश ने जवाब दिया ?' मैंने दरयाफ़्त किया।

'कुछ नहीं।'

मैं चुप हो रहा।

'अब क्या होगा ?' भाभी ने व्यंग्य किया। तुमने ही तो लड़के को बहकाया है।'

मैं आगे बढ़ूं तो फ़ायदा क्या है, सोचकर मैंने कहा : 'मैंने बहकाया है ? वा भाभी ! यह भी खूब रही। बच्चे माँ-बाप पर जाते हैं।'

भाभी चली गईं। वह कुछ तिनक गई थीं। इधर नरेश का आना-जाना बदस्तूर था। वह उन्हें पसन्द नहीं था। मैं उठा और भीतर गया।

मैंने कहा : 'भाभी !'

'क्या है ?' भाभी ने आँखें उठाईं। वे आँखें लाल थीं। शायद रोई थीं।

'क्या बात है ?'

'कुछ नहीं।'

'बताती क्यों नहीं ?'

'बताने से फ़ायदा ही क्या है ?'

'क्यों ?'

'जो होना है वह तो होगा ही।'

'तुम भी भाभी भाग्य को ले बैठीं।'

'तुम चुप रहो', भाभी ने डाँटा।

'क्यों ?'

'मेरा पिण्ड छोड़ो तुम। जाकर अपने भाई साहब से टकराओ। लड़का तो हाथ से निकल ही गया।'

उन्हें इसका अत्यन्त दुख था। माँ चाहती है कि उसका पुत्र सदैव उसकी ही आज्ञा पर चले। पर पुत्र नहीं मानता। विलायत में पाल-पोसकर आज़ाद कर देते हैं, पर अपने यहाँ जानवरों में यह बात समझी जाती है। इन्सानियत के नाते इससे ऊपर सोचा जाता है। मैं सकपका गया। बगल के कमरे में मेरे दोस्त बैठे थे। मैं सोचता रहा। परिवार पति-पत्नी का होता है, पर हमारे यहाँ बड़ा परिवार होता है जो कुटुम्ब कहलाता है। यूरोप में पति-पत्नी सड़कों पर चिपटकर चुम्बन लिया करते हैं, और कोई इसे बुरा नहीं कहता। अपने यहाँ पति-पत्नी एकान्त में भी चुम्बन लेते समय झेंपते हैं क्योंकि भगवान तो फिर भी सब देखता ही है। विलायत में बात-बात पर मर्द-औरत हाथ पकड़ते हैं, अपने यहाँ हाथ पकड़ना कोई सहज खेल नहीं है। जनम-ज़िन्दगी निभाना पड़ता है। हिन्दुस्तान में तो आँखों का ज़ुल्म है। बोलेंगे नहीं, मिलेंगे नहीं, पर आँखों की याद बनी रहेगी।

मैं बगल के कमरे में गया।

भाई साहब उठकर चले गये थे। मैं वहीं बैठकर धूंआ उड़ाने लगा। सोचता रहा। गाँव अनगढ़ होता है। यहाँ प्रेम का अर्थ स्त्री-पुरुष का शारीरिक मिलन है। ठाकुरों और रजवाड़ों में प्रेम दो तरह का होता है, स्वकीया प्रेम यानी गुलामी का दस्तावेज़ और परकीया प्रेम यानी व्यभिचार! शहरों में आँखों का प्रेम चलता है, बच्चे पैदा होना अलावा बात है। विलायत में हमारे अनगढ़ गाँवों का-सा प्रेम चलता है, बल्कि वहाँ तो औरत को नंगी रहने की ज़रूरत आ पड़ती है। हमारे यहाँ की राजस्थानी पोशाक में औरत का सीना दिखाई देना रहता है, मुंह ढँका रहता है। और फिर भी वह प्राचीन माना जाता है। कैसा अजीब है! फ्रांस की औरतों को दुनिया नंगी कहती है, पर राजस्थान में कोटा की औरत अपनी छातियों को आधा खोलकर चलती है।

पोशाक अदब और धर्म से नहीं, समाज के कानून से ताल्लुक रखती है। अपने राजस्थान में मर्द नंगे बदन भी ठीक है, विलायत में मर्द का बदन दिखना बेअदबी की निशानी है। और मध्यवर्ग जो सबसे मज़ेदार चीज़ है, उसके अपने पैमाने इतने मज़ेदार हैं कि बयान नहीं किये जा सकते। मैं सोचते-सोचते अपने आपको भूल गया।

दुपहर हो गई थी। मैंने आवाज़ सुनी तो झांका। सुखराम बाहर खड़ा था। मैं समझा मेरे पास आया होगा। नीचे आया। अभी पौरी में ही था कि

सुना मेरे दोस्त कह रहे थे : 'सुखराम, आ गया ?'

'हाँ ठाकुर जी ।'

'अच्छा बैठ जा ।' उन्होंने कहा । वे मूंढ़े पर बैठ गये । सुखराम धरती पर उखरू बैठ गया ।

'सुखराम', मेरे दोस्त ने कहा : 'तू जानता है मैंने क्यों बुलाया है ?'

'नहीं ठाकुर जी ।'

'तो सुन । अपनी लड़की को समझा ले । वर्ना अच्छा नहीं होगा ।'

'क्या किया सरकार उसने ?'

'वह लड़के को फुसलाती है', दोस्त ने कठिनाई से ही कहा ।

'सरकार बड़े आदमी है', सुखराम ने कहा : 'चाहे जो कुछ कह सकते हैं, मैं ग़रीब हूँ । मैं क्या कहूँ ।'

ऐसा लगा जैसे वह खून की घूंट पीकर रह गया । मैंने देखा वह विक्षुब्ध था ।

'नहीं, नहीं', ठाकुर ने कहा : 'मैं पुराने विचारों का आदमी नहीं हूँ । मैं आदमी-आदमी का फरक नहीं मानता । तू कह सकता है ।'

'सरकार आपने मेरी बेटी पर दोस लगाया है ।' सुखराम ने कहा : 'मेरी बच्ची नादान है । फूल की तरह कोमल है । मैंने उसे बड़े लाड़ से पाला है । मेरी जिन्दगी का कोई सहारा नहीं है । चाहता हूँ उसका ब्याह हो जाये । वह सुख से रहे !'

'तो ठाकुर-खान्दान में ही तुझे लड़का ढूंढने की सूझ पड़ी', मेरे दोस्त ने व्यंग्य से कहा । 'तू जानता है मैं जुल्म के खिलाफ़ हूँ । मैं ठाकुरों की तरह गँवार नहीं हूँ । पर पढ़ाई-लिखाई क्या करेगी ? मैं दुनिया को तो नहीं बदल सकता ? कौन बाप अपनी बेटी को अच्छे घर नहीं भेजना चाहता ? इसके लिये तू मेरा घर बिगाड़ना चाहता है !'

'तो सरकार', सुखराम ने कहा : 'आप मेरी बच्ची पर दोस लगाते हैं, कौन नहीं जानता कि इस उमर पर लड़का क्या नहीं करना जानता !'

'ठीक है', मेरे दोस्त ने कहा : 'पर ताली दोनों हाथ से बजती है ।'

सुखराम सोचने लगा । उसने कुछ देर बाद कहा : 'सरकार एक बात, अरज करूँ ?'

'कह ।'

'तो मालिक ! छोटे सरकार को भी उधर आने से मना कर दें। मैं लड़की को समझा लूंगा।'

'तू उसे समझा, मैं भी इसे समझाऊँगा। मैं जानता हूँ कि तू और करनटों-सा नहीं है। मैं जानता हूँ।' मेरे दोस्त ने उठते हुए कहा और फिर अन्त कर दिया : 'बस मुझे और कुछ नहीं कहना। तू जा सकता है। और मुझे आशा है अब फिर तुझे बुलाने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी।'

सुखराम ने सुना और सिर झुका लिया। वह जैसे चिंता में पड़ गया था। मैंने देखा कि वह अब भी कुछ कहना चाहता है, किंतु संकोच ने उसे ऐसा जकड़ लिया है कि वह कह नहीं सकता। और शीघ्र ही उसने अपने ऊपर काबू पा लिया। मित्र भीतर चले गये।

सुखराम चलने लगा। मैंने आवाज़ दी। वह रुक गया। मैं बाहर आया। पूछा : 'कैसे आये ?'

'ठाकुर सा'ब ने बुल्वाया था।'

'कैसे ?'

'कहते थे·····ऐसे ही घरेलू-सी बातचीत थी।' वह कहते-कहते रुक गया और फिर एकदम बात बदल दी।

'अब पांव ठीक है ?' उसने पूछा।

मैं समझ गया। कुछ चलकर दिखाया।

वह बोला : 'ठीक है बाबू जी, अब तो आप आराम से चल लेते हो।'

'हाँ, चल सकता हूँ नहीं, भाग सकता हूँ।'

वह मुस्कराया। कहा : 'सरकार इनाम नहीं मिला।'

'मिलेगा।' मैंने कहा—और एक दस रुपये का नोट दिया। उसने अपन कोट में, सलाम करके, रख लिया।

'घूमने चल रहे हो उधर। मैं चलता हूँ।'

'चलिये। मैं इधर ही से घर चला जाऊंगा।'

जाड़े की दुपहर। अच्छी-अच्छी धूप। और ज्यादा अच्छी इसलिये कि धूप को हवा ठहरने नहीं देती, जैसे उड़ाये लिये जाती हो। और एक-एक रास्ते पर अब छाया हुआ सन्नाटा।

हम बातें करने लगे। पर उसने चंदा की बात नहीं की।

सुखराम जब घर पहुँचा तब शाम होने लगी थी। और वह आश्चर्य्य में

पड़ गया, क्योंकि चंदा वहाँ नहीं थी। कहाँ गई ? और सुखराम की समझ में आया।

वह उसे ढूंढने निकला।

सफ़ेद महल के पीछे झाड़ियों में से स्वर सुनाई दिया। वह धीरे-धीरे दबे पाँव वहाँ चला गया। वह स्थान भयानक कहलाता था। एक तो खंडहरों में डग-डग पर भूत और फिर उस हिस्से में जानवरों और साँपों का भय। उधर कोई आता-जाता नहीं।

गढैया वाले हनुमान अवश्य उस ओर थे और उनके उपासक भी धूप रहते ही लौट जाते थे। हनुमान के आसपास, शिवलिंग, नंदी, आदि रखे रहते थे, और न जाने इसी भारत की कितनी-कितनी जातियों के मिलन के पर्य्याय बनकर दिखाई देते थे। एक दिन उन्होंने आपस में मिलकर मनुष्य से होने वाली मनुष्य की घृणा को मिटाया था, संप्रदायों की असहिष्णुता को मिटाया था, किन्तु दुर्भाग्य से आज फिर नयी रूढ़ियों ने उनको घेर लिया था।

सुखराम झाड़ियों के पीछे खड़ा रहा और चारों ओर सांझ उतरती रही, अपना अंधियारा बरसाती रही। जंगल-जलेबी के पेड़ों पर कुछ ललाई लिये हरी-हरी फलियां गोल-गोल-सी दिखाई दे रही थीं और अब तोते झुण्ड के झुण्ड बांधकर उन्हें छोड़कर उड़ गये थे ताकि वे किसी उजले हरे पेड़ में जाकर छिप जायें।

आवाज़ आई।

नरेश ने कहा : 'आज तेरा सुखराम आया था।'

'कहाँ ?'

'दद्दू के पास।'

'क्यों ?'

'शायद मेरी शिकायत करने आया होगा।'

'ऐसा नहीं हो सकता।'

'क्यों ? उसे शायद मैं अच्छा नहीं लगता।'

चंदा ने कहा : 'तू नहीं जानता उसे। वह दुनिया में सबसे अच्छा आदमी है। वह बड़ा भोला है। उसे मुझसे बहुत प्यार है। वह कभी ऐसी बात नहीं कर सकता।'

सुखराम के मुँह पर तमाचा-सा लगा।

चंदा ! क्या कह रही है वह !!!

चंदा ने फिर कहा : 'सच कहती हूँ। मैं कोई बात कह दूं, वह कभी नहीं टालता। दूसरे लोग अपनी बेटी को यों ही डांटते हैं। वह कुछ नहीं कहता।'

नरेश बोला : 'तो दद्दू ने बुलवाया होगा।'

'क्यों ?' चंदा ने पूछा।

'मेरे दद्दू बड़े अच्छे आदमी हैं चंदा !' नरेश ने कहा : 'पर माँ अच्छी नहीं है। वह मुझे बहुत तंग करती है।'

चंदा ने हँसकर कहा—'अरे चल। कोई माँ के लिये भी ऐसा कहता होगा ?'

'क्यों न कहूँगा। बड़ा सवाल-जवाब करती है तुझे लेकर !'

'अरे नहीं।'

'सच कहता हूँ। पूछेगी—क्यों रे ? कहाँ गया था। तू तो मेरा खून पी ले,' नरेश ने धीरे से जवाब दिया, 'भला बता, मैं खून पीता हूँ ?'

चंदा ने कहा : 'तूने बताया न होगा।'

'क्या ?'

'कि तू कहाँ आता-जाता है।'

'बता दूं तो, तो आफ़त ही समझ।'

चंदा फिर हँसी, कहा : 'मारेगी ?'

'बहुत मारेगी तुझे।'

'मैं पिट लूंगी।'

'क्यों ?'

'तेरी अम्मा मारेगी तो पिटना ही पड़ेगा।'

सुखराम का हृदय टूक-टूक हो रहा था। चंदा सुपना देख रही थी। और वह स्वप्न टूटना ही था।

सुखराम बढ़ा। आज वह जाना नहीं चाहता था पर उसे सामने जाना पड़ रहा था। उस समय उसके भीतर कितना भयानक संघर्ष चल रहा था। उसी समय नरेश ने कहा : 'चंदा ! एक बार मेरे साथ चलेगी ?'

'कहाँ ?'

'माँ के पास।'

'क्यों ?'

'तुझे देखकर उन्हें दया न आयेगी ?'

'नहीं।' सुखराम ने कहा।

दोनों देखकर चौंक उठे।

'दादा तू !' चंदा ने कहा। आश्चर्य्य से उसका मुँह फट गया और फिर जैसे पकड़ी गई थी, इसलिये लाज से उसने सिर ढँक लिया।

परन्तु सुखराम ने उस पर ध्यान नहीं दिया। नरेश से कहा : 'छोटे सरकार !'

चंदा ने काटा : 'नाम लेके बात करो दादा !'

'नादान लड़की !' सुखराम ने कहा : 'तू जरा चुप रह। मुझे उससे पूछने दे।'

चंदा रुआँसी हो गई। पर रूठी-सी चुप हो रही।

'हाँ कुँवर बताओ।' सुखराम ने कहा : 'चंदा से ब्याह करोगे ?'

'करूँगा।' नरेश ने दृढ़ता से कहा।

सुखराम हँसा। कहा : 'फिर क्या होगा जानते हो ?'

'कुछ नहीं।'

'कुछ नहीं ! चंदा को वे मार डालेंगे।'

'तो मैं भी मर जाऊँगा !'

उस समय सुखराम ने नरेश को सीने से लगा लिया और रोने लगा। आज उसकी आँखों से आँसू रोकने पर भी छलक ही आये जैसे वह व्याकुल हो गया था। आज ममता ने उसे व्याकुल कर दिया था। पिता के हृदय में संतान के प्रति कितना बड़ा ममत्व होता है। और यह एक सत्य है कि माँ को पुत्र से अधिक प्रेम होता है, पिता को पुत्री से। समाज के बन्धन बेटी को दूर कर देते हैं, तब पिता अपने व्यवहार-ज्ञान के कारण मन समझा लेता है। माँ बेटी को चुरा-चुराकर माल देती है, किन्तु इस सबके रहते हुए भी पिता का ममत्व तब झलकता है जब वह पुत्री को किसी योग्य के हाथों में सौंपना चाहता है, ऐसे हाथों में जिन्हें पुत्री चाहती हो, जो उसकी बेटी को संसार में सुख दे सकें। और वही आज सुखराम का स्नेह था। परन्तु फिर उसका वह ध्यान डिग गया। उसने नरेश को छोड़ दिया और कहा : 'नहीं कुँवर ! इससे तुम्हारी जिन्दगी बिगड़ जायेगी।'

'क्यों ?' नरेश ने पूछा।

'तुम छोटे हो अभी, तभी नहीं समझ पाते, और सुखराम को अपने उस

अतीत की स्मृति हो आई और फिर प्यारी के संग बिताये हुए वे दिन याद हो आये।

'मैं क्या नहीं समझता।' नरेश ने कहा। 'मैं बताऊँ ?'

'बताओ।'

'जो राकेश का हुआ था सो मेरा होगा।'

'वह कौन है ?'

वह असल में 'माया' की एक कहानी का नायक था जिसने एक नीच जाति की स्त्री से विवाह कर लिया था और फिर दुख उठाये थे। नरेश अब सुखराम को कैसे समझाता। कहा : 'वह एक था ऐसे ही। उसने भी मन की शादी कर ली थी। और फिर तकलीफें आईं थीं।'

सुखराम ने देखा चंदा उसकी ओर आशय से देख रही थी। परन्तु वह कुछ कह नहीं सका। उन आँखों को देखकर न जाने अतीत की कितनी यातना उसके भीतर घुमड़ने लगी। बेहिसाब बूंदें झड़ गईं। दोनों गाल भींग गये। ऐसा लगा जैसे किसीने ऊपर रखा बोझ उठा दिया तो स्मृतियों के बहुत-से कागज़ चलती हवा में इधर-उधर उड़ गये। सुखराम उन्हें इकट्ठा करना चाहता है किन्तु कर नहीं पाता। वह करे तो क्या ? उसे लग रहा है कि बड़ा निरीह है और चंदा को देखता है तो उसका हृदय हाहाकार कर उठता है।

'मैं जानता हूँ।' नरेश ने कहा, 'पर मैं नहीं घबराता।'

सुखराम अवाक् देखता रहा। उसे लगा दोनों कितने अच्छे लग रहे थे बराबर-बराबर में खड़े। दोनों कितने सुंदर हैं। उन्हें देखकर दोनों आँखें ठंडी हुई जाती हैं।

'फिर क्यों नहीं मानते ?' नरेश ने कहा : 'तुम मुझ पर भरोसा नहीं करते ?'

सुखराम ने कहा : 'बड़े ठाकुर कह देंगे ?'

'नहीं।'

'फिर तुम खाओगे क्या ?'

नरेश सोचने लगा। चंदा ने कहा : 'थोड़े दिन तेरे पास ही जो रह लेंगे !'

वह बचपन की बात थी। सुखराम हँस दिया।

उसने चलते हुए कहा : 'चंदा बेटी ! महलों के सुपने न देख। मैं तेरा इन्तजाम कर दूंगा।' चंदा खड़ी रही।

'चल री चंदा।' उसने मुड़कर कहा : 'बेटी !'

चंदा को चलना पड़ा।

नरेश ने धीरे से कहा : 'कब आयेगी ?'

'थोड़ी देर में।'

सुखराम आगे बढ़ा। चंदा पीछे-पीछे चली। परन्तु उसने चुपके से ही मुड़कर नरेश को देखा। सुखराम कहता जा रहा था : 'तू मुझे बहुत प्यारी बेटी है। तुझे मैं मुसीबत में नहीं डालूंगा। रोज की सांसत से तो गरीबी भली··· अभी तू छोटी है, समझती नहीं···

पर उसकी बात न चंदा ही सुन रही थी, न नरेश ही सुन रहा था।

दोनों में कुछ इशारा हुआ। सुखराम नहीं देख सका। बाप-बेटी चले गये।

दूसरे दिन फिर चंदा घर से निकल आई और नरेश भी चला गया। दुपहर को वे कुछ सलाह करते रहे।

सुखराम जब घर पहुँचा तो चंदा न थी। वह खीझ उठा। बाहर निकला। पर तभी उसने देखा कि कंधे पर रस्सी रखे हुए कूंए की तरफ़ से बाल्टी हाथ में लिये चंदा आ गई।

वह प्रसन्न हुआ। पूछा : 'रोटी खा ली !'

'हाँ दादा। तू खायेगा।'

'ला दे दे।'

चंदा ने रोटी दे दी। सुखराम खाने लगा। चंदा उसे बैठी देखती रही।

परन्तु शाम का वक्त नई रोशनी लाया। आज अचानक ही कोई पक्षी फूलबाड़ी की तरफ़ बोल उठा। नरेश ने इधर-उधर देखा। और बाहर की ओर चला। भाभी बैठी थीं। पूछा : 'कहाँ जाता है ?'

'कहीं नहीं।'

'बैठकर पढ़ता नहीं ? अगले साल शहर भेज दूंगी तुझे। नाना के घर रहेगा तो मामा जी ठीक कर देंगे ! यह तो नहीं कि दिया बले, मर्द मानुस घर में भले।'

'वह पुराने जमाने की बात है,' नरेश ने कहा, 'शहरों में अब बिजली लग गई है, मालूम है ?'

'अरे बड़े नये जमाने का है तू।' भाभी बड़बड़ाईं।

नरेश हवेली से निकला। बाहर नौकर ढोरों को पानी पिला रहे थे। नरेश ने उन पर ध्यान नहीं दिया।

फूलबाड़ी में फिर पक्षी बोला।

भाभी ने खिड़की से देखा, इस वक्त हुक्का कैसे बोल रहा है? और वह भी भयातुर-सा! और देखा तो पाँवों के नीचे से धरती खिसक गई। दौड़कर गई। भाई साहब उस वक्त हुक्का पी रहे थे।

'सुनते हो!' भाभी ने कहा।

भाभी के स्वर में घोर घबराहट थी जैसे लुट गई हो। भाई साहब ने देखा तो घबराकर उठ खड़े हुए। बोले : 'क्या हुआ नरेश की माँ! क्या हुआ?'

परन्तु भाभी को तो जैसे साँप सूंघ गया। बोलने का प्रयत्न किया परन्तु बोल न सकीं।

'अरे हुआ क्या?' वे चिल्लाये।

'मैं मर गई।' नरेश की माँ ने बिस्तर में मुँह छिपाते हुए रोते हुए कहा : 'इस लड़के ने मेरे मुँह पर कालिख लगा दी। हाय! मैं क्या करूँ?'

'पर हुआ क्या?'

'वह नटनी के साथ फूलबाड़ी में था।'

सुनते ही ठाकुर को क्रोध आया। वह सीधा-सादा कांग्रेसी जो न्याय और अहिंसा चिल्ला-चिल्लाकर गला सुखाया करता था, इस समय ऐसे भड़क उठा जैसे आग की चिनगारी बारूद के ढेर में लगने पर एकदम विस्फोट से सब पर छा जाती है। और ठाकुर भी छाने लगा।

वह गरजा : 'जोरावरसिंह!'

'अन्नदाता घणीखया।' कहती हुई एक बाँदी बाहर भागी। उसने जाकर बाहर सूचना दी। और जोरावरसिंह कद्दावर जवान जो उस समय अफ़ीम खाने के फिराक में था, हड़बड़ाकर उठा और जल्दी-जल्दी फेंटा बाँधकर भागा। उसने जब ठाकुर को जुहार की तो ठाकुर का क्रोध नीचे की मंज़िल से ऊपर की मंज़िल में आग की तरह चढ़ गया था। वह चिल्लाया : 'तू सोता है कि पहरा देता है!'

'अन्नदाता!' जोरावरसिंह ने काँपते हुए कहा : 'हुकम!'

ठीक उस समय फूलबाड़ी में नरेश चंदा से कह रहा था : 'चल चंदा भाग चलें।'

'पर कहाँ चलेंगे ?'

उस समय फूलबाड़ी में लगा जैसे दो रूहें खेल रही थीं। दोनों किशोरावस्था की नवीन आहुतियों की तरह देदीप्यमान, अल्हड़, किन्तु संसार से अनभिज्ञ !

'दूर कहीं चलेंगे' नरेश ने कहा : 'जहाँ सिर्फ़ हम-तुम हों और कोई नहीं।'

'यह कैसे हो सकता है ?' चंदा ने हँसकर कहा।

'क्यों नहीं हो सकता चंदा। मैं सोचा करता हूँ, कहीं चले जायें, जहाँ ठंडी-ठंडी हवाएं चलती हों, सुनहली धूप हो, जहाँ कोई किसीको मारे नहीं, कोई किसी पर जुल्म नहीं करे। यह संसार एक स्वर्ग हो जाये और फिर मीठी-मीठी तान गूंजा करे !'

चंदा विभोर-सी देखती रही। पूछा : 'कहीं ऐसी जगह है ?'

नरेश ने कहा : 'चंदा ! तू मेरे संग चलेगी ?'

'चलूंगी।'

'डरेगी तो नहीं ?'

'डरूँगी क्यों ?'

ठाकुर के द्वार पर कोलाहल मचा। बूढ़े ठाकुर रघुनाथ ने कहा : 'अपणे जैसलमेर, उदैपुर में तो नट की हस्ती ही क्या। यह तो पूरब है भैया, तभी हल्ला होता है इनका·····।'

उसका वाक्य खत्म नहीं हुआ। भीड़ में नरेश आगे था। वह लड़ रहा था। दो नौकरों ने उसे पकड़ रखा था। वह चिल्ला रहा था : 'छोड़ दो मुझे, छोड़ दो।'

और चंदा को एक नौकर ने जकड़ रखा था।

भाई साहब ने झाँककर खिड़की से देखा। नरेश बुरी तरह चिल्ला रहा था : 'तुम कौन होते हो मुझे पकड़ने वाले। मैं नहीं चाहता। मैं यहाँ नहीं रहूँगा। मैं किसी ठाकुर का बेटा नहीं हूँ। मैं आदमी हूँ, मैं आदमी हूँ।'

तब नौकर आगे बढ़ आये। उन्होंने उन्हें छोड़ दिया पर अब दोनों को घेर लिया।

'मुझे जाने दो।' नरेश चिल्लाया।

'छोटे ठाकुर !' एक बूढ़ा तड़पा।

'मैं नहीं हूँ ठाकुर !' नरेश ने कहा। आज वह म्यान से आखिर निकल ही आया था। उसने चिल्लाकर कहा : 'तुम कौन हो ? मैं तुम्हें नहीं जानता··· ।'

'अभी कुंवर नाबालिग़ है।' एक वृद्ध ने कहा : 'बच्चा है। वह समझता नहीं।'

तभी ढोलिन बाहर आई। कहा : 'नटनी कहाँ है ?'

'यह रही।' एक ने कहा।

'हुकम हुआ है।' ढोलिन ने कहा : 'इसे भीतर छोड़ आया जाये।'

चंदा पकड़कर भीतर भेजी गई। नरेश पीछे भागा। वह चिल्ला रहा था : 'तू मार डाली जायेगी चंदा। तू नहीं जानती यह लोग आदमी नहीं भेड़िये हैं।'

उस वक्त ठाकुर विक्रमसिंह ने सिर पकड़ लिया था और महात्मा गांधी के चित्र के सामने फटी-फटी आँखों से देखते हुए खड़े थे और उनके कान में गूंज रहा था—

वैष्णव जन तो तेने कहिये, जो पीर पराई जाणे रे !

ढोलिन ने कहा : 'आ गई माजी सा'ब !'

ठकुरानी साहिबा इस समय पलंग पर बैठी थीं। उनका मुख गंभीर था। वह शेरनी की तरह देख रही थीं। उनकी दांई भौं ऊपर खिच गई थी।

चंदा शांत। अभीत। मुस्कराती हुई। उसे झकझोर डाला गया था ! पर वह अनिंद्य शोभा लिये अपराजित-सा खड़ी थी, जैसे अंधकार में दीप जल गया हो !

'मेरी बहू बनेगी तू ?' ठकुरानी ने गरजकर पूछा और उठ खड़ी हुईं।

चंदा ने आँखें भरकर देखा और आज वह श्रद्धा से नत हो गई। नरेश चिल्लाया : 'हाँ कह दे चंदा।'

औरतों ने जीभ काट ली।

'कुंवर ! लाज करो।' एक स्त्री ने कहा : 'तुम्हें शरम नहीं आती ?'

नरेश ने जलते हुए नेत्रों से उसे देखा। परन्तु चंदा और भाभी के नेत्र टँग गये थे। एक स्त्री ढलाव पर आकर नयी उठान का दुस्साहस देखकर क्रुद्ध हो गई थी।

और दूसरी ! वह अपने प्रेमी की माँ को देख रही थी। सोच रही थी

यही उसकी माँ है, जिसने उसे पाला है। एक ऐसे बंधनों में जकड़ी हुई थी कि आज़ादी को भूल चुकी थी, दूसरी की स्वतंत्रता ही उसका बंधन बन गई थी। एक अमरता का नाम लेकर जड़ की उपासना करती थी, दूसरी अपनी नश्वरता का एक-एक क्षण, उपासना में नहीं, अपने उपास्य में लय होने में सफल करना चाहती थी। एक जननी थी, दूसरी कुमारी थी। एक भयभीत थी, दूसरी भय से दूर, मुक्त थी। दोनों ने अपनी आँखें भरकर देखा। भाभी की आँखों में घृणा, विक्षोभ, अहंकार और क्रोध था। चंदा की आँखों में प्रेम, याचना, सरलता, शुद्ध साहचर्य्य, और मर्यादा की वास्तविकता थी। भाभी आकाश में लरजती हुई बिजली थी, चंदा डाल पर खिला हुआ सुरभि से भरा हुआ फूल।

भाभी उस दृष्टि को सह नहीं सकीं। उसे लगा वह सचमुच बहुत पवित्र थी। बहुत सुन्दर थी। उनका मन हारने लगा।

ढोलिन ने तभी कहा : 'बोलती नहीं नटनी !'

और ठकुरानी का मन फिर भयानक हो गया। वह विचार फिर चले गये। कहा : 'बोलती क्यों नहीं ! तू बनेगी मेरी बहू ?'

चंदा ने कहा : 'नहीं मां जी। तुम्हारी बाँदी बनूंगी।'

चटाक की आवाज़ हुई। ठकुरानी ने उसके मुँह पर आघात किया।

नरेश ने झपटकर माँ का हाथ पकड़ लिया पर चंदा ने कहा : 'नहीं-नहीं। रोको नहीं। मारने दो। मुझे अच्छा लगता है।'

तब ठकुरानी काँप उठीं। उन्होंने देखा। पुत्र ! जिसे पाला था ! वही ! उसने एक नटनी के पीछे हाथ पकड़ लिया ! अब वे दुनिया को मुँह दिखाने लायक कहाँ रहीं ! इतना अपमान ! अपने ही पुत्र से !

उन्होंने चिल्लाकर कहा : 'ज़ोरावर !'

'हां मां जी ! हुकम।'

'पकड़ लो कुँवर को।'

जोरावर ने झपटकर कुँवर को पकड़ लिया।

तब ठकुरानी गरजी : 'बेटा ! तुझे मैंने इसी दिन के लिये पाला था ! कपूत ! तूने रजपूतनी का दूध पी के नाहरनी का हाथ पकड़ा और वह भी नाहर के ज़िंदा रहते !'

ठकुरानी ने आगे बढ़कर कहा : 'ले बचा ले !' और फिर चिल्लाईं : 'हरामज़ादी ! अभी से तिरिया चरित्तर दिखाके लड़के को फुसलाती है हरजाई

नटनी, तुझे अच्छा लगता है, तो ले·····'

और ठकुरानी उसे मारने लगी। चंदा पिटती रही, पर रोई नहीं। पिटती रही। तब औरतों ने उसे मारा।

चंदा पिटते-पिटते मूर्च्छित होकर गिर गई, फिर भी उसकी आँखों से एक भी आँसू नहीं निकला। ठकुरानी ने गुस्से से अपने बाल नोंच लिये और कहा : 'ले जाओ इसे !'

चंदा के माथे पर मोटे-मोटे कड़ों की चोट से खून निकल आया था। और नरेश फटी आँखों से देख रहा था।

जब वे चंदा को उठाकर ड्योढ़ी पर ले जाने लगे तो ज़ोरावर ने कहा : 'कुँवर जी ! गम खाओ।'

पर नरेश चिल्ला रहा था : 'तू मेरी मां नहीं है ! डायन है ! तू डायन है ! तूने मुझे जनम देते ही क्यों मेरा गला घोंटकर नहीं मार डाला ! तूने मेरी चंदा का लहू नहीं बहाया, तूने मेरा लहू पिया है। तूने मेरा सीना फाड़कर मेरा लहू चाट-चाटकर पिया है !'

वह बक रहा था। औरतें अवाक् थीं। और हारी हुई-सी क्रोध-विह्वला हो भाभी रो रही थीं। आज वह क्या करतीं। खास पेट का जाया उनको गाली दे रहा था। वे डर रही थीं कि कहीं लड़का इस गुस्से में पागल न हो जाये। फिर क्या होगा। यह सब इसीके लिये था और अगर यही नहीं रहा तो ? क्या होगा यह सब ! व्यर्थ है। व्यर्थ है·····सब धरा रह जायेगा।

भाई साहब चक्कर में थे। गांधी की तस्वीर हँस रही थी। वह नंगा सामने खड़ा था। खान्दान की इज्ज़त की धूल पर वह मनुष्यता का प्रतिनिधि खड़ा जैसे उनके मनुष्यत्व को बार-बार ललकार रहा था। वे बार-बार सोचते थे, पर राह दिखाई नहीं देती थी।

बूढ़ा राजपूत पास आ गया। बोला : 'ठाकुर सा'ब !'

भाई साहब ने मुड़कर देखा। और फिर दोनों ने एक दूसरे की ओर देखकर सिर झुका लिया।

सुखराम बुलवाया गया।

जब वह आया तो सब गंभीर थे।

'क्या हुआ ठाकुर जी ?' उसने पूछा।

ठाकुर ने मुँह फेर लिया। सुखराम समझा नहीं। उसने ठाकुर की ओर देखा, पर पीठ सामने थी।

ढोलिन ने कहा : 'देख वह क्या है ?'

'क्या है भैना !' सुखराम ने कहा और उत्सुकता से वह उधर ही बढ़ा। देखा और ठिठक गया।

उसने चंदा को देखा। वह लहू से भींगी बेहोश पड़ी है। सांस हल्की-हल्की चल रही है। सुखराम बोला नहीं। देखता रहा। उसकी आँखों से दो बूंद आँसू गिर गये। और फिर उसने कहा : 'ठाकुर जी !'

उसका गला रुँध गया था। ठाकुर देख नहीं सके।

'तुम्हारे पाँव छूता हूँ।' सुखराम ने कहा : 'तुमने मेरी बच्ची को जान से नहीं मारा।'

फिर कहा : 'पानी ला दो कोई भैया। मेरी बच्ची बेहोश हो गई है।'

सबने ठाकुर की ओर देखा। सुखराम ने देखा। ठाकुर सह नहीं सके। उनकी आँखों से आँसू टपक पड़े।

सुखराम उठ खड़ा हुआ और उसने गर्व से झुककर चंदा के शरीर को हाथों पर उठा लिया और कहा : 'ठाकुर ! दुनिया के धंधे कुछ करायें, पर मुझे तुमने आज जो पानी दिया है, वह मेरी बच्ची के लिये बहुत है। बहुत है।'

वह कह नहीं सका। उसका गला अब गीला हो गया था। जोरावर ने आश्चर्य्य से देखा कि सुखराम पीछे हटा और धीरे-धीरे द्वार की ओर बढ़ने लगा। भीतर नरेश चिल्ला रहा था : 'छोड़ दो मुझे···छोड़ दो !' सुखराम ने सुना तो कहा : 'अरे ! कुंवर !' और फिर जैसे कहने को कुछ नहीं रहा। वह चला गया।

मैं घूमकर लौट रहा था। आज मेरा मन मस्त था। बाहर बेरों की गंध ने मुझे झूम दी थी, और पहाड़ पर चढ़कर मैंने डूबता हुआ सूरज देखा था। कितना भव्य था वह सब !

तभी देखा। सुखराम आ रहा था।

आवाज़ दी : 'सुखराम !'

वह ठहर गया। मैंने पास जाकर देखा तो चौंक उठा।

'क्यों ? डर गये ?' उसने मुस्कराकर कहा।

'किसने मारा इसे !' मैंने पूछा। मुझे क्रोध था।

'गुस्सा न करो बाबू जी।' सुखराम ने कहा : 'इसे ठकुरानी ने मारा है।'

'भाभी ने!' मैंने पूछा।

'हाँ।' उसकी आँखों में आँसू थे। बोला : 'अगर कोई मर्द होता तो मैं उसका सीना फाड़कर लहू पी जाता।'

मुझे ताज्जुब नहीं हुआ। क्यों कि मैं सुन चुका था। और यह वही सुखराम था!

'भैया थे।' मैंने पूछा।

'थे।' और उसने कहा : 'वे अच्छे आदमी हैं।'

मैं ताज्जुब में पड़ गया।

'क्यों?' मैंने पूछा।

'वह प्यार जानते हैं बाबू जी!' सुखराम ने कहा : 'ठाकुर रो दिये थे।'

वह भी रो दिया।

और मैंने देखा कि पिता का हृदय कितना विशाल था! उसकी बेटी के लिये किसीने उसे मारकर भी दो बूंद आँसू गिरा दिये हैं। यही उसके लिये बहुत है। वह मनुष्य क्या जो बच्चे के लिये ममता नहीं रखता। वह पवित्र निष्कलंक नयन, जो कल्मषों से दूर रहते हैं, वे ही मानव-जाति के शृङ्गार हैं। उनको सुधारने के लिये मारना पड़ता है, पर वह मार उनका नाश नहीं, निर्माण करती है।

ठाकुर विक्रमसिंह के प्रति मेरे हृदय में जो घृणा उत्पन्न हुई थी, वह घुल गई। मुझे लगा वह छटपटा रहे थे और मेरे हृदय ने कहा कि वह इन बन्धनों से व्याकुल एक ठाकुर है जो रूढ़ियों से विवश होकर क्रंदन कर रहा है। उसकी परम्परागत कायरता, लोक-लज्जा का भय जब उसे मनुष्यत्व छोड़ने पर मजबूर करता है, तब-तब वह उद्भ्रांत हो उठता है, वह अपनी इस असम सत्ता का न्याय नहीं दे पाता।

मुझे संतोष हुआ। जब मनुष्य अपनी करनी को गलत समझने लगता है, और केवल स्वार्थ से या भय से उससे चिपका रहता है, जब उसका विश्वास कुछ दूसरा हो जाता है, तब वह सचमुच निर्बल हो जाता है।

मैंने कहा : 'सुखराम!'

'बाबू भैया!' उसने आर्द्र कंठ से कहा।

'तुम डेरे चले जाओ।'

'जाता हूँ। चंदा बेहोश है।'

'जल्दी करो सुखराम ! जल्दी करो !'

वह चला गया। मैं तसल्ली से मन को बहला नहीं सका।

मैं उसके डेरे पर गया। ठाकुर विक्रमसिंह का सामना करके मैं उन्हें लज्जित नहीं करना चाहता था। मुझे जब सुखराम ने देखा तो वह विचलित-सा हो उठा। उसने मेरे पाँव पकड़ लिये।

'क्या करते हो तुम ?' मैंने कहा।

'बाबू भैया !' वह कह उठा : 'होश में आ गई है। बच गई।'

'चंदा !' मैंने चंदा के सिर पर हाथ फेरा। वह अब थकी हुई पड़ी थी।

मैंने अपने रूमाल से उसके माथे का लहू पोंछा और अचानक ही वह कपड़ा मैंने होठों से लगाकर चूम लिया। मैं सच कहता हूँ, मेरा हृदय रसहीन है, लोग कहते हैं मैं भावुक नहीं हूँ, कठोर हूँ, पर उस समय मेरी आँखों में आँसू-से छलक आये।

कितनी पवित्र है यह कन्या ! साक्षात् उमा हैमवती की भांति ! जैसे हिम-शृंगों की छाया में तपस्विनी खड़ी हो। वह भी तो प्रेम की ही पुजारिणी थी ! और तब इतिहास मेरी आँखों के सामने से घूंआ बनकर उड़ गया। मनुष्य की सत्ता का गौरव मेरे सामने जाग्रत हो उठा। वह घायल पड़ी थी, जैसे जीवन-संग्राम में लड़कर अपराजित ब्रह्मचारी भीष्म शर-शैया पर पड़ा उत्तरायण की प्रतीक्षा करता हुआ मृत्यु पर शासन कर रहा था।

मैंने कहा : 'क्या होना चाहिये सुखराम ! मुझसे पूछते हो। चारों तरफ़ मुझे एक खतरनाक खामोशी दिखाई देती है।'

'मैं नहीं जानता !' उसने कहा।

'सच है तुम नहीं जानते। तुम्हारा न जानना ही उन लोगों की मस्ती की वजह है जो तुम्हींको धोखा देकर, तुम्हारी ही कमाई पर धोखे से तुम्हारा पेट काटते हैं, और यह सब न्याय के नाम पर होता है। बड़े-बड़े नेता तुम्हें भाषण देते हैं। वे तुम्हें नीति और धर्म की बात सुनाते हैं। कोई तुम्हें कोई पुड़िया देता है, कोई तुम्हें कुछ देता है। पर यह सब फरेब की बुनियादों पर खड़े महल हैं।'

'बाबू भैया ज़माने की कहते हो ?' सुखराम ने कहा।

चंदा उठकर बैठ गई। मैंने कहा : 'कैसी है अब ?'

चंदा ने सुखराम के वक्ष में मुँह छिपा लिया। वह उसके सिर पर हाथ फेरने लगा। मुझे ऐसा लगा जैसे आश्रमवासी कण्व ने शकुन्तला के सिर पर हाथ फेर दिया हो !

'बेटा, अब तो ठीक है ?' सुखराम ने पूछा।

'मेरे लगी नहीं दादा।' उसने कहा।

'उन्होंने तुझे मारा था ?' मैंने पूछा।

'मुझे नहीं मालूम।' चंदा ने उत्तर दिया।

मुझे उस समय लगा मेरा सारा ज्ञान धूल है। यह केवल एक अहंकार है। मैं क्षुद्र हूँ। मैं अपने बन्धनों को ही सत्य बनाने के लिये अपने को न्याय्य कहने के लिये चारों ओर धोखे की टट्टी खड़ी करने में लगा हुआ हूँ।

परन्तु जीवन यह नहीं है, यह है जो चंदा ने कहा है।

तन्मयता की पूर्णता ! अपने समस्त रूपों में मुखर हो गई। इसीको ऋषि कहता था पूर्ण से पूर्ण को प्राप्त करो।

मैं अवाक् देखता रहा !

मेरी आत्मा में से उठता हुआ वह गम्भीर निनाद अब मुझे व्याकुल करने लगा। सब इस संसार को सुखी करना चाहते हैं। यहाँ अहंकार, धन का, कुल का, जाति का, औहदे का, सब एक-एक को ग्रसे हुए हैं। अयोग्य व्यक्ति किसी तरह खुशामदों से ऊपर चढ़ गये हैं, कुनवापरस्ती चल रही है, और फिर अपनी अयोग्यता को वे अहंकार में छिपाकर अपनी ही जड़ता को शाश्वत बना देना चाहते हैं। तर्क और सत्य के उज्ज्वल आलोक को सह सकना उनके लिये असंभव है, क्योंकि उसमें उनके स्वार्थों का पर्दाफ़ाश होता है। और एक की पोल में दूसरे की पोल ऐसी घुसी हुई है, कि सब उस पर पर्दा डाले रहना चाहते हैं।

यहाँ स्वाभिमान का कोई मूल्य नहीं है। स्वाभिमान का अस्तित्व उनमें बाकी है जो मृत्यु के पंजों में पंजा फंसाकर लड़ रहे हैं। क्रांति के नाम पर यहाँ अवसरवादी और चोरों की जमात पल रही है। यहाँ सुधार का बीड़ा उठाने वाले वही हैं जो पाप के ठेकेदार हैं। सब जानते हैं, फिर भी ऐसे ही लोग शासन करने है, क्योंकि जनता अभी नहीं जागी है। वह सिंह अभी अपनी मर्यादा को पूरी तरह से पहँचानकर गर्जन नहीं कर सका है, जिसकी एक

प्रतिध्वनि सुनकर ही यह दूसरों के खेतों को चरने वाले पशु चौंकड़ी भरकर भागने लगते हैं। दो-दो कौड़ी के मेधावी बनने वाले टुटपूँजिये आज ज्ञान की गद्दियों पर बैठकर अपने को संस्कृति का दावेदार कहते हैं!

अपराजित मानव उठ! इन जघन्यताओं में से सौंदर्य्य जन्म लेगा। जैसे नरकासुर पृथ्वी को महासमुद्र में लेकर डूब गया था, तब वराह बनकर भगवान इस धरती को उबार लाये थे, और वेद गूंजने लगे थे, उसी तरह, इस बार जनता ही इस कल्मष को धो सकती है और तब उसके अभय गीतों की जो अजस्र रोर उठेगी, वही मानवता का कल्याण कर सकेगी। मैं भावना में नहीं बह रहा हूँ। मैं ठंडे दिमाग से देख रहा हूँ कि यह पापी, यह शोषक, यह शोषकों के दास अफ़सर, यह शोषण की संस्कृति के पूजक अध्यापक, यह सब मैं वैसे ही इतिहास में मरे हुए देख रहा हूँ जैसे एक दिन कृष्ण ने भीष्म और द्रोण जैसे व्यक्तियों को पतंगों की तरह जल जाते देखा था। उस दिन कुलों के ऊपर उठकर व्यक्ति की विजय के स्थान पर अहंकार का दमन हुआ था, और अपनेपन की आड़ में पलने वाला वह दंभ, वह अनाचार, वह अत्याचार खंड-खंड करके फेंक दिया गया था।

घृणा का समुद्र उमड़ रहा है। ऐसा जैसा कभी नहीं उमड़ा था। परन्तु मनुष्यता का जहाज थपेड़े खाकर भी डूब नही सकेगा। उस पर जो कोलम्बस आज बैठा है, वह सोने-चाँदी की तलाश में नहीं निकला है, वह मिट्टी की नयी बस्तियाँ खोजने नहीं निकला है, वह यूलिसीज़ की भाँति व्यक्ति का पराक्रम दिखाने नहीं निकल पड़ा है, वह नूह और मनु की भाँति सृष्टि के बीजों की रक्षा करने को बाहर झटके नहीं खा रहा है, वह तो एक नये मन को बनाने निकला है, जिसमें इसी संसार के लिये एक नया स्वप्न साकार होता जा रहा है, प्रति-पल, प्रतिक्षण एक नया निर्माण करता चला जा रहा है।

वह अपराजित है। अदम्य है। वह नहीं मर सकता। समस्त सौंदर्य्य जब इसका मोल नहीं चुका सकता, तो मैं इसका अकेले क्या अनुमान कर सकता हूँ?

हम शाश्वत नहीं हैं। हम पीढ़ी दर पीढ़ी निरन्तर बढ़ते चले जा रहे हैं। युग-युग से अंधकार हमारी प्रगति को रोकने का यत्न करता चला आ रहा है। स्त्री का प्रेम और बच्चों का प्यार इसी कठोरता में जीवित रहा है। उसने ही पुरुष का उन्माद बार-बार झुकाया है। और उसीकी सहायता से

विजय मिली है, और यह विषमता जो आज मानवीयता के नये मूल्यों के लिये काटी जा रही है, उसका भी आधार यही है।

मैंने कहा : 'सुखराम !'

'क्या है बाबू भैया।'

'तुम जानते हो यह सब क्या है ?'

वह समझा नहीं। पर चंदा की आँखों में चमक दिखाई दी। वह मुझे बुद्धिशालिनी लगी।

'क्या बाबू भैया !'

'यह दुनिया बहुत गरीब है,' मैंने कहा : 'और पैसे की गरीबी ने लोगों के मन को भी गरीब कर दिया है।'

उसने कहा : 'आप जो कहते हो वह मैं नहीं जानता। लड़ाई में तो यहाँ लोगों के पास खूब पैसा था।'

'था,' मैंने कहा—'पर उससे क्या हुआ ! भैंस बेचकर जाट ने घोड़ा लिया। खूब बरातों पर बरबाद किया। फ़रेब, जालसाज़ी और झूंठ का बोलबाला हुआ। दो वक्त खाकर पैसा बचा तो सोना-चांदी जमा किया, पर लोगों का रहन-सहन तो नहीं उठा ! लोगों में बदमाशी बढ़ी, अकल नहीं।'

'सो तो है बाबू भैया !' उसने कहा।

'ठीक है सुखराम !' मैंने फिर कहा : 'पर भूखे-मरतों को रुपया फिर दूसरी हविस बन गया। सुख तो नहीं आया। आंधी के आमों की लूट से घर तो नहीं भरता ?' सुखराम ने सिर हिलाया। चंदा ने आश्चर्य्य से देखा।

'रियासतें खतम हो चुकी हैं। एक-एक कर यह ऐयाशी के अड्डे खतम हो रहे हैं। एक ज़माना था जब राजा प्रजा के लिये जान देते थे, देश की रक्षा करते थे। पर यह जो आज हैं यह सिर्फ ऐयाशी करते हैं। इनमें सिर्फ़ पुराने कानूनों की लकीरें पीटी जाती हैं। रजवाड़ों में ठकुरानी खाना तक नहीं पकाती, वह सिर्फ़ ऐश के लिये होती है। कोई पढ़ता-लिखता नहीं। वह सब जो दिखाई दे रहा है मर रहा है।' और मैंने रुककर गंभीरता से कहा—'सब ढह रहा है। इसका मोह बड़ा भयानक है। वही इसका भूत बनकर ज़िन्दा है।'

'भूत !!' सुखराम ने कहा।

'भूत !!' चंदा ने कहा।

'हाँ,' मैंने कहा : 'यह सब क्या है ? इस निज़ाम में सब कुछ लूट पर क़ायम है। और यह जो सैकड़ों बरसों से दुनिया एक ढर्रे पर चलती चली आई है, वह सब ऐसा लगता है जैसे बदला नहीं जा सकता।'

'बदला जा सकता है ?' चंदा ने पूछा।

'हाँ।' मैंने कहा। 'तुम देखते रहोगे और यह सब बदल जायेगा। छोटे-छोटे यहाँ के बहुत-से जागीरदार, धनी, आज अपने सामने आनेवाला कल देखकर ईमानदारी से समझ गये हैं कि कल दूसरा दिन आयेगा। पर वे भी छटपटा रहे हैं। एक आदमी से काम नहीं चलेगा। सुखराम, दुनिया एक आदमी की नहीं है। यहाँ तो बहुत, बहुत-से आदमी हैं। और वे सब इसे बदलेंगे।'

सुखराम ऊब गया था। उसने कहा : 'क्या कहते हो बाबू भैया। हम कोई पढ़े-लिखे तो नहीं हैं।'

'औरतों की-सी बात न करो सुखराम।' मैंने खीझकर कहा : 'समझने की कोशिश करो।'

'कहो बाबू भैया।'

'तुम गरीब हो ?'

'हूँ।'

'नीच जात हो ?'

'हूँ।'

'जो सब उलझा हुआ लगता है,' मैंने कहा—'आगे चलकर वह सब मिट जायेगा।'

'मैं नहीं समझता,' सुखराम ने कहा।

चंदा पास आ गई। उसने कहा : 'मैं समझती हूँ बाबू जी। थोड़ा-थोड़ा-सा मैं समझती हूँ।'

'तू समझ लेती है ?' सुखराम ने पूछा। चंदा ने सिर हिलाया।

सुखराम को और भी आश्चर्य्य हुआ।

'बाबू भैया !' सुखराम ने कहा : 'यह समझ लेती है। मैं नहीं समझ पाता ? सो क्यों ?' मैं क्या उत्तर देता ?

मैंने सोचा चंदा और नरेश को प्रेम करने का हक मांगना नहीं है, पाना

है। दुष्यन्त और शकुन्तला के युग से आज तक कोई भीख मांगकर नहीं पा सका है।

'बाबू भैया, मैं नहीं समझता सचमुच।' सुखराम ने कहा। और मैंने सोचा। जब न्याय अपने सत्य से प्रतिष्ठित हो जाता है, तब भीख मांगना भी अपने अधिकार लेने के समान हो जाता है।

चंदा ने कहा : 'तो क्या जात की ऊँच-नीच भी मिट जायेगी ?'

'ज़रूर मिट जायेगी ?'

'तब लोग हमसे घिन नहीं करेंगे ?'

'नहीं।'

'वह दुनिया कितनी अच्छी होगी।'

मैंने उसे खींचकर सीने से चिपका लिया।

मैंने कहा : 'सुखराम तुम नहीं समझोगे, पर यह समझती है। क्योंकि यह आज़ाद हिन्दुस्तान में बढ़ रही है। यह तब बढ़ रही है जब हमें किसीके सामने भी सिर झुकाने की ज़रूरत नहीं।'

मैंने उसका माथा सूंघा और कहा : 'अब हमने दुनिया में अपनी हस्ती को तो साबित कर दिया है, मगर अभी तक अपने घर की गंदगी को साफ़ नहीं कर सके हैं।'

चंदा ने कहा : 'कैसी गंदगी !'

'बेटी !' मैं कह नहीं सका। उस बच्ची को मैं कैसे समझाता।

उसने ही कहा। 'यही कि पुलस नटनियों को पकड़ ले जाती है ?'

'यह तुझे किसने कहा !'

'दादा ने !'

'इसने तुझे बताया है कि यह बुरा है ?'

'तुम इसे बेटी कहते हो बाबू भैया,' सुखराम ने कहा। उसने मेरी ओर श्रद्धा से देखा। और कहा : 'तुम ठाकुर सा'ब के रिश्तेदार हो ?'

'नहीं दोस्त हूँ।'

'ऊँच जात हो ?'

'हाँ।'

'तुम्हें यह कहते घिन नहीं हुई ?'

'नहीं।' मैंने कहा। वह सकपका गया।

'सबकी बुराई छोड़ दो सुखराम,' मैंने कहा : 'यह बुराई नहीं है। यह जात-पांत सब आदमी के बनाये हुए बंधन हैं। दुनिया में एक मुल्क अमरीका है। वहाँ काले हब्शी रहते हैं। उनपर अत्याचार होता है क्योंकि वहाँ के बाकी हुकूमत करने वाले लोग गोरे रंग के हैं !'

'अरे नहीं !!' सुखराम ने कहा।

'बुरा कौन है ?' मैंने पूछा।

'बुरा मन है।'उसने कहा।

'नहीं।' मैंने उत्तर दिया।

'तो !' चंदा ने पूछा।

'बुरा धन है, धन की गुलामी बुरी है।' मैंने कहा।

हम फिर भी बातें करते रहे। चंदा उठ खड़ी हुई। वह पानी का डोल लेकर कूंए की ओर चली गई, तब सुखराम ने बताया। बताया कि चंदा और नरेश का प्रेम सचमुच एक गंभीर बात थी।

३२

सुखराम वर्दी पहनने लगा। कजरी साड़ी। दुनिया बदल गई। मिसी बाबा का नाम था सूसन। सच तो यह था कि सूसन सिर चढ़ी थी। उसने क्रिलिंग पढ़ा था। रवीन्द्रनाथ की रचनाएँ भी पढ़ी थीं और उसका एक अलग ही ध्यान था।

विलायत में वह इतना अधिकार नहीं देख पाई थी। सीधी-सादी लड़की थी। फिर वह भारत आई। स्वेज़ नहर पार करते ही उसने एक दूसरी ही हालत देखी और फिर अपने आप यहाँ उसकी तृष्णा बलिष्ठ हो गई।

उसके पिता आये थे राजा का शासन देखने। बहुत शिकायतें पहुँची थीं। वायसराय को भी बोलना पड़ा था। किसानों ने बगावत-सी कर दी थी। उसका पिता पोलिटिकल एजन्ट सॉयर बड़ा चतुर व्यक्ति था। वह अपनी पुत्री को बहुत प्यार करता था। तभी सूसन मस्त थी। कभी वह अपने को 'क्वो वादिस'

की नायिका अनुभव करती और उसे लगता कि वह ऐसी ईसाइन है जो चारों ओर मूर्त्तिपूजकों के बीच में है। पर रोम के मूर्त्तिपूजक स्वामी थे, भारत के मूर्त्तिपूजक दास थे। और शोषित ईसाई अब शोषक बन चुके थे।

पियरेलुई की एफ्रोडाइट पढ़ने के बाद वह अपने को क्राइसिस समझती। वह चारों ओर अखण्ड व्यभिचार और विलास देखती। विलायत दूसरी दुनिया की चीज़ थी, जहाँ क्लब था, संघ-नृत्य था, संघ-भोज था, लोग समझते थे वे सभ्य थे, यहाँ जो था वह अपनी ही हुकूमत थी, बाकी लोग ऐसे थे जो सलाम करते थे। जो नहीं करते थे, वे कुचले जाते थे और फिर सूसन को लगता यह सब एक ऐतिहासिक घटना की भाँति ही अद्भुत था, आकस्मिक भी।

कभी उसे आइवनहो की रैबेका की स्मृति हो आती और घंटों बैठकर सोचा करती। फिर टॉड का राजस्थान पढ़ती और राजपूतों के शौर्य्य की यूरोप के वीर 'नाइट्स' से तुलना करती। फिर सोचती कि यह सब कैसे हुआ? यूरोप ने उसी नाइट्स की दुनिया में से यह नया जीवन कैसे निकाल लिया? उससे मिलते-जुलते सामन्तीय भारत में यह सब क्यों नहीं हुआ? वह इसका हल नहीं निकाल पाती।

वह सब उसे इतना विचित्र लगता जैसे वह रोम साम्राज्य के किसी बड़े अधिकारी की पुत्री थी। वह चलती तो लोग सिर झुकाने लगते। क्या यह सत्य नहीं था कि भारतीय वीर थे! वे फौजों में जाते हैं तो अखण्ड वीरता दिखाते हैं। पर वे राष्ट्र के लिये क्यों नहीं लड़ते?

बाप नौकरी का काम करता: और वह अकेली रहती। वह यह पढ़ती कि भारतीय उस समय सिर उठा रहे थे, पर क्या वह उसे उचित नहीं कह सकती थी? यदि इंगलैंड पर किसीका राज हो जाता तो क्या फिर उसका इंगलैंड सिर नहीं उठाता? दबा रहता!

तरुणाई के सुनहले सुपने उसकी पलकों में डोला करते। वह नयी जवानी उसकी देह पर अब फूटी थी। विलायत में थी तो उसके पुरुष मित्र थे। यहाँ उसे बाप ने लाकर कहाँ पटक दिया है! वह ही तो उससे ज़िद करती थी। बात करने को कोई नहीं। पियानो मँगाया था। अभी तक आया नहीं। बस ग्रामोफ़ोन सुना करती है। और कब तक सुने। अकेली कमरे में नाच भी लेती है, गत बजती रहती है। पर थककर बैठ रहती है। अगर माँ होती तो कितना अच्छा

रहता। माँ तो बचपन में ही स्वर्ग चली गई ! दूसरी माँ आई थी, वह भी दो साल पहले मर गई।

चारों ओर फैले हुए देश की विचित्रता उसे विभ्रांत कर देती। वह सोचती कि यह जीवन इतना सहज तो नहीं है जितना समझा जाता है। क्लाइव एक नीच और झूंठा आदमी था। उसने साम्राज्य बना डाला। वह महान हो गया। इंगलैंड के दृष्टिकोण से वह महान हो सकता है, पर मानवीयता के मूल्यों से भी क्या वह महान था ! यदि था तो फिर कोई भी अत्याचारी महान क्यों नहीं है ?

वह कुर्सी पर बैठ जाती और डूबते सूरज को देखा करती। कार्लाइल के शब्द कानों में गूंजते, भारत सदा नहीं रहेगा पर शेक्सपियर हमारा ही रहेगा।

सूसन कहती : 'तुमको कहानी आती है सुखराम !'

'हुज़ूर ! ऐसी ही एक-आद।' वह नम्रता से उत्तर देता।

सुखराम उसे बहादुर लगता था। वह उसे विचित्र दृष्टि से देखा करती थी। वह उसे एक जंगली कुत्ता समझती जो उसके लिये पालतू था। वह सोचती कि यदि यह अंगरेज़ होता तो कितना नाम पाता।

फिर भारत के बारे में सवाल पूछा करती। उसके सवालों का सुखराम बड़ी कोशिश करके उत्तर देने का प्रयत्न करता, किन्तु वह संतुष्ट नहीं होती। सुखराम कोई पढ़ा तो था नहीं।

'सरकार ! यह देसी बोली आप कैसे बोलती हैं ?' वह पूछता।

'हमने कैसी बोली है ?'

'सरकार खूब बोलती हैं।'

फिर वह पूछती : 'अच्छा डैडी का बोलना अच्छा है कि हमारा !'

सुखराम कहता : 'मिसी बाबा ! यह तो मालुम नहीं।'

'तुम डरता है।'

सुखराम मुस्कराकर सिर झुका लेता।

सूसन हँसती।

सुखराम पूछता : 'सरकार ने पढ़ी होगी ?'

वह कहती : 'हमने शौक से सीखी है। हम हिन्दुस्तान के बारे में जानना चाहती हैं। तुम कुछ जानते हो ?'

'सरकार मैं गँवार आदमी हूँ।' सुखराम कहता : 'विलायत में सब अंगरेज बोलते होंगे ?'

वह दया की दृष्टि से उसे देखती और अंगरेज़ी में कुछ बुड़बुड़ाती। इधर-उधर से मीर-मुंशी चश्मे में से देखते कि हाँ करनट बैठा है और मिसी बाबा उससे बातें कर रही है, तो उन्हें यह सह्य नहीं होता। वे चित्रगुप्त के वंशज थे। देखकर जलते कि करनट जन्नत की सीढ़ी पर पाँव धर रहा है। अगर मिसी बाबा कहीं उन पर इतनी मेहरबान हो जातीं, तो वे तो घर भर लेते, और मकान की गौख कभी की पक्की हो गई होती। पर करते क्या ? लाचार थे।

पर सुखराम से मिसी बाबा खुश थीं। वे उसे हर बात पर बुलवातीं और अपने काम उसीसे करने को कहतीं। बाकी लोग खुशामदी थे, वे उनसे परेशान थीं।

वे घोड़े पर बैठतीं, सुखराम घोड़ा पकड़ घुमाने ले जाता। और पहाड़ पर घूमकर शाम की अंधेरी के पहले जब वह लौटती तो सुखराम उनके कमरे में बड़ा लैम्प जलाता। और फिर मिसी बाबा पढ़तीं। पिता के आने पर वे साथ-साथ खाते, सुखराम कभी खड़ा रहता, कभी कजरी के साथ परोसता।

एक दिन घोड़े पर चलते वक्त मिसी बाबा ने कहा : 'सुखराम ! यह किला किसने बनाया था ?'

सुखराम का कलेजा मुँह को आ गया। अधूरा किला ! और मिसी बाबा पूछ रही हैं। मिसी बाबा ने नज़र फेंककर कहा : 'यह एक तरफ़ से अधूरा है। है न ? किसने इसको ऐसा बनवाया था ?'

'हुज़ूर ! राजा अनमोलसिंह ने !' सुखराम ने बताया। उसका हृदय धड़कने लगा था। आज उसीके पूर्वजों के बारे में पूछा जा रहा था ! और वह कह भी नहीं सकता था कि वह उन्हींका वंशज है ! कैसे कह देता वह ! वह क्या मान लेतीं ?

मिसी बाबा ने कई सवाल पूछे। सुखराम भरसक प्रयत्न करके उत्तर देता गया। पर वह उद्विग्न हो उठा था।

सुखराम से रहा नहीं जाता था। उसने कहना चाहा पर घुटकर रह गया। लौटकर आये तो मिसी बाबा ने फिर बुलाया। उस वक्त कजरी रोटी कर रही थी। टोका : 'कहाँ जा रहा है ?'

'मिसी बाबा ने बुलाया है।'

'जंगल में क्या-क्या किया था !'

उसका स्वर कठोर था। सुखराम ने कहा : 'घोड़े की सवारी कराके लाया हूँ।'

'और ?'

'कजरी तू क्या कहती है, मिसी बाबा·····'

'अरे तेरी बाबा होगी वह', कजरी ने रोष से कहा और रोटी धरती पर धप से पटकी। 'सुसरी छिनाल !' उसके मुँह से निकला।

सुखराम स्तब्ध हो गया।

'बड़ी मेम है। तूने काहे को सोचा होगा !' कजरी ने व्यंग्य किया।

'क्या ?'

'तू नहीं जानता ?'

'नहीं।'

'तो चला जा, जा।'

'कजरी !' सुखराम ने डाँटा।

'क्या है ? डराता है ?'

'तू जानती है, क्या कह रही है।'

'तू भी जानता है, मैं भी जानती हूँ।' कजरी ने कहा, जैसे वह और सह नहीं सकेगी। सुखराम ने क्रोध से कहा : 'बेवकूफ़ !'

कजरी रोयी। जैसे आज वह निस्सहाय हो गई थी।

परन्तु सुखराम ने कहा : 'यहाँ आ।'

कजरी नहीं आई।

क्रोध से सुखराम का मुँह लाल हो गया। कहा : 'मैं कहता हूँ यहाँ आ !'

कजरी उठी और ठुमककर खड़ी हो गई और सामने आ गई।

सुखराम को उसका वह रूप देखकर उस गुस्से में भी हँसी ने घेर लिया। कजरी खिसिया गई।

'क्या कहती थी तू !' सुखराम ने कहा।

'कुछ नहीं।' कजरी ने उत्तर दिया।

वह चला गया। वह देखती रही। पर फिर सुखराम लौटा।

'क्यों आ गया फिर ?'

'भीतर चल।' वह उसे कोठरी में ले आया और कहा : 'क्या कहती थी तू ?'

कजरी ने कहा : 'तू उसके साथ·····'

सुखराम ने उसके मुंह पर चांटा मारा। और बोला : 'तूने मुझे मेरे विसवास का यह बदला दिया !'

और इससे पहले कि कजरी जवाब दे कोठरी के बाहर चला गया। कुछ देर बाद जब वह सुस्थिर हो गया तो मिसी बाबा की सेवा में जाकर उपस्थित हो गया।

मिसी बाबा ने इशारा किया। उसने पानी पिलाया। वह हर तरीका देखता। सुखराम हाथ पर खाता, वह पलेटों में खाती। उसने यह जान लिया कि अंगरेज़ों का रहन-सहन आराम का होता है। ज्यादातर हिन्दुस्तानियों का नहीं होता।

मिसी बाबा ने कहा : 'अर्दली !'

'हुज़ूर !' इशारा पाकर खड़ा रहा। और जब मिसी बाबा ने इशारा किया, वह फ़र्श पर ही बैठ गया।

मिसी बाबा बोली नहीं। वह किसी गंभीर चिंता में मग्न थी। उसने सोचा कि वह कुछ बात शुरू करे, पर हिम्मत नहीं पड़ी। अंगरेज़ी साहित्य के प्रसिद्ध 'रैमडीन' (रामदीन) नामक अर्दली के बारे में सोचती-सोचती सूसन कुर्सी पर लेटी-लेटी ऊंघ गई थी।

सुखराम धीरे से उठा। मिसी बाबा ने आँख खोलकर कहा : 'सुखराम ! हमको किले की कहानी सुनाओ।' वह फिर बैठ गया।

जब लौटा तो कजरी ने कहा—

'क्यों रे तुझमें अकल है कि तू गधा है।'

'क्यों ?'

'तू बैठकर मिसी बाबा को अधूरे किले की कहानी सुना रहा था।'

'वह कहती थी इसकी कहानी बड़ी अजीब है। सुनकर मिसी बाबा को मज़ा आ गया ! मैंने ठकुरानी की कहानी सुनाई। उसकी तस्वीर भी दिखाई।'

'क्यों ?'

'वह चाहती थी।'

'चाहती तो तभी न जब तूने बताया होगा।'

'मैंने बताया ही था।' सुखराम ने कहा।

'तू समझता है वह तुझे राजा बना देगी ?' कजरी ने कहा और व्यंग्य से हँस दी।

'अब तेरा गुस्सा कहाँ है ?' सुखराम ने पूछा।

कजरी ने फिर मुँह फुला लिया।

'मिसी बाबा मुझ पर आसिक हो गई है ?'

'यह तो मैंने नहीं कहा।' कजरी झेंपी।

'तूने नहीं कहा।' सुखराम ने उसका कान पकड़कर कहा।

कजरी ने सिर झुका लिया।

'तूने सोचा होगा गोरी लुगाई को रानी बनाऊँगा ?' सुखराम ने फिर चोट की।

'मुझे तू माफ नहीं कर सकता ?' कजरी ने कहा : 'पहले तो तू मुझसे कुछ नहीं कहता था !'

'बेवकूफ ! वह मालिक हैं। तेरी इतनी मज़ाल कि तू यह सोचती है ?' सुखराम ने कहा।

'तेरे बारे में सोचा सो मेरी भूल थी।'

'और उसके बारे में ठीक था ?'

'कौन जाने !!'

'बावरी वे बड़े लोग हैं।'

कजरी ने कहा : 'अरे धन से क्या होता है। मैं तेरी तरह धौंस में नहीं आती किसीकी। औरत मरद चाहती है, मेम हो, चाहे बामनी, चाहे नटनी !'

'यह ग़लत है।' सुखराम ने कहा।

'अगर तेरी बात ठीक है तो तेरी ठकुरानी काहे को दरबान से फंस गई थी ? सच कह वह गोरी मेम तुझे अच्छी नहीं लगती ?'

'क्यों नहीं लगेगी ?' सुखराम ने कहा : 'जिसका नमक खाऊंगा, उसे बुरा कहूँगा।'

कजरी ने उसके पाँव छुए। कहा : 'तू सचमुच ठाकुर है। और मैं सचमुच नटनी हूँ। तू मुझे माफ़ कर दे। अब ऐसी भूल नहीं करूँगी।'

सुखराम ने उसका सिर पकड़कर कहा : पगली ! यह तो मैंने कभी सोचा भी नहीं।' और उसे उठाकर अपने वक्ष से लगा लिया। आज वे बहुत

दिन बाद फिर एक-दूसरे के इतने पास आ गये थे।

'दैया री मुझे कैसी चाहता दिखाता है।' कजरी ने लजाकर कहा। पर सुखराम उसकी ओर मुग्ध दृष्टि से देखता रहा। देखता रहा। कजरी ने शर्माकर सिर झुका लिया। वह तृप्त थी।

इतने में माली आया। देखा तो खाँसा। दोनों चौंककर अलग हो गये।

'क्या है ?' सुखराम ने पूछा।

'मिसी बाबा ने बुलाया है।' माली ने कहा और चला गया।

कजरी हँसी। कहा : 'जा ! यह तो भाग की बात है।' वह व्यंग्य नहीं था, मज़ाक था। सुखराम ने कहा : 'अब नहीं कजरी। अब मन नहीं करता।' वह मुस्कराया।

'अब ऐसा जोगी भी न बन। अभी से क्या बूढ़ी हो गई हूँ मैं !' कजरी ने इठलाकर कहा।

'मेरे लिये तू कभी बूढ़ी भी हो जायगी क्या ? मैं तो ऐसा सोच भी नहीं पाता।'

'भले न सोच।' कजरी ने कहा : 'जब हम-तुम पोपले मुँह से बैठकर भजन करेंगे, तो कैसा मज़ा आयेगा ?' दोनों ठठाकर हँसे। भविष्य तक की कल्पना थी।

सुखराम ने कहा : 'पर जब तू अभी से इतना कलेस करती है, तो बूढ़ी होकर तो न जाने कितनी खूसट बनेगी !'

'और तू न बनेगा खुर्राट !' कजरी ने हँसकर कहा।

सुखराम पहुँचा तो मिसी बाबा कमरे में घूम रही थीं। उन्होंने पग-ध्वनि सुनी तो मुड़कर देखा।

'बड़ी देर में आया।' उन्होंने कहा।

सुखराम ने घबराकर कहा : 'सरकार···वह···कजरी···मुझे·····।'

मिसी बाबा हँसीं। कहा : 'हम समझते हैं। काम के वक्त काम। बात के वक्त बात !'

'जी हाँ हुजूर !' उसने सोचा। मेज़ पर ही ठकुरानी का चित्र था। मिसी बाबा ने फिर चित्र देखा।

और देखती रही। सुखराम देखता रहा। उसकी समझ में उसका बड़बड़ाना नहीं आ रहा था क्योंकि वह अंगरेज़ी में था। वह चुप होकर सोचने

लगी और कुछ देर में फिर बड़बड़ाई।

फिर हिन्दी में कहा : 'रानी !!'

सुखराम ने देखा, वह कुछ जोश में थी। परन्तु उसकी आँखों में बड़ा गहरा चिन्तन था। वह जैसे आकाश में उड़ती चील की तरह सुदूर को भी देख लेना चाहती थी।

उसने चित्र रखकर कहा : 'सुखराम !'

'सरकार !'

और मिसी बाबा कुर्सी पर बैठ गईं। सुखराम फ़र्श पर फिर बैठ गया। मिसी बाबा चुप थीं। उन्होंने आँखें बन्द कर ली थीं। वह जैसे ध्यानमग्न थीं। सुखराम उसकी समाधि के टूटने का इन्तजार करने लगा।

'सुखराम !' अचानक उसने कहा।

'हाँ सरकार !'

उसने कहा : 'मर कर फिर जनम होता है ? हिन्दू ऐसा कहते हैं ?'

'हाँ हुज़ूर !' वह चकराया।

'तुमने देखा !' वह आँखें बन्द किये ही बोल रही थी।

'नहीं सरकार, सुना जरूर है।'

'तुम मानते हो ?'

'सब मानते हैं हुज़ूर।'

'ठकुरानी का फिर जनम हुआ है ?'

'कौन जाने सरकार। वह रानी थी। आप भी रानी हो, रानी की रानी ही जान सकती है।'

सुखराम थर्रा गया। वह यह कभी नहीं सोच पाया था। और मिसी बाबा ने कहा : 'आदमी मर कर फिर क्यों पैदा होता है ?'

'सरकार, उसके पाप-पुण्य का फल मिलता है। एक जनम में जो उसकी इच्छा अधूरी रह जाती है, वही वह दूसरे जनम में पूरी करने को आता है।'

'तुम जानते हो !' उसके स्वर में आश्चर्य्य था। फिर वह अंगरेज़ी में बड़बड़ाई। सुखराम नहीं समझा।

पर अब उसकी कल्पना जाग उठी। उसे डर लगने लगा। यह सब वह क्यों पूछ रही थी ! यह सब अचानक ही उसके दिमाग़ में आ कहाँ से गया ! बैठी-बैठी ही क्या मिसी बाबा सोच रही है कि वह फिर जनम लेकर आई

है। और उसकी कल्पना ने हिसाब लगाया।

कहाँ विलायत। कहाँ हिंदुस्तान! फिर पहाड़, डाकू, मिलन, नौकरी, और ठकुरानी, फिर जन्म·····

क्या यह·····

क्या यह वही·····

क्या यह वही ठकुरानी·····

और झटके से बात फिसली : 'क्या यह वही ठकुरानी है!'

'क्या यह उसीकी आत्मा है!'

'क्या वह उसका वंशज होकर ही जान नहीं सकेगा!'

मिसी बाबा ने कहा : 'तुमने खज़ाना देखा है सुखराम!'

उसकी विचार-धारा टूट गई। पूछा : 'सरकार! आप पूछती हैं! आप ठकुरानी हैं!'

'मैं ठकुरानी हूँ।' मिसी बाबा ने हँसकर कहा। वह प्रश्न था, यह विस्मय-सूचक वाक्य था, या स्वीकृति थी, यह सुखराम नहीं समझा। वह वैसे ही घबराया हुआ था। अब वह इतना घबरा गया कि देखता ही रह गया। मिसी बाबा ने कहा : 'तुमने खजाना कभी देखा?'

'नहीं सरकार!' वह उसे रहस्य-भरी दृष्टि से देखता हुआ बोला।

'हमको ले चलेगा?'

सुखराम के शरीर पर काँटे-से उग आये। बोला : 'सरकार मैं डरता हूँ।'

'क्यों?'

'सरकार वह बड़ी भयानक जगह है।'

'पर तुम बहादुर है।'

'सरकार आप डरेंगी·····'

'हम!' सूसन हँसी। कहा : 'हम! नहीं। मैन! हम नहीं डर सकती।'

'सरकार!' सुखराम ने कहा : 'बड़े महाराज के बखत एक जर्मनी का साहब आया था, खजाना ढूंढता था। वह उसमें घुसा था। उसमें देवता ने ऐसा चाँटा मारा कि साहब सबेरे ही भाग गया।'

'नहीं।' सूसन ने उठकर कहा : 'हम जायेंगे! तुम चलेगा?'

'चला चलूंगा सरकार,' पर उसका स्वर काँप उठा।

'तुम डरते हो!'

'हाँ सरकार !'

'क्यों ?'

'सरकार ! वहाँ जानवर भी हैं ।'

'हम बंदूक वाला लेकर चलेंगे ।'

सुखराम ने उसे स्फूर्ति से भरा हुआ देखा । वास्तव में वह कल्पनाशील स्त्री एक भारतीय नरेश के पुराने खज़ाने की कल्पना करके मस्त हो गई थी। वह खज़ाना निकालेगी । फिर वायसराय के साथ बैठेगी तो उसका नाम इंगलैंड में बार-बार दुहराया जायेगा ।

सुखराम की सामंतीय भूमि पर वह एक नयी इमारत बनी । वह ठकुरानी की आत्मा थी । तभी तो फड़क रही थी । और सारा तारतम्य अपने आप उसके मस्तिष्क में बैठ गया था, उसे विचलित कर रहा था। और उस अधूरे किले के वंशज की जड़ें हिल गईं । उसे यह भाग्य बड़ा आश्चर्य्यजनक-सा लग रहा था ।

मिसी बाबा चली गई किन्तु सुखराम खड़ा ही रह गया । माली आया । कहा : 'अरे सुखराम !'

'क्या है ?' वह चौंक उठा ।

'वह धोबी बीमार है ।'

'एक दूसरा बुला ले न ?'

'साहब का धोबी ! यहीं रहना होगा । गाँव वाले तो डरते हैं ।'

'अरे मैं-तू यहाँ के नहीं हैं ?'

'अच्छा ! बुलवाता हूँ ।' माली चला गया ।

कजरी बैठकर सी रही थी और धीरे-धीरे किसी गीत की कड़ी गुनगुना लेती थी ।

सुखराम जब लौटा तो वह थका हुआ था । वह आकर धम से खाट पर बैठ गया और फिर वैसे ही लेट गया । उसके मुख पर गम्भीर चिन्ता थी ।

कजरी घबराई ।

पूछा : 'क्या हुआ ?'

'कुछ नहीं ।'

'तो क्यों निढाल हो रहा है !'

सुखराम ने कहा : 'कजरी !!'

'क्या है ?' वह आश्चर्य्य में थी।

'वह मेम नहीं है । ठकुरानी है !' सुखराम ने जैसे आवेश में कहा—'तू समझी मैंने क्या कहा ?'

ठकुरानी !!

मेम नहीं ठकुरानी है !!!

कजरी के कानों में वे शब्द बार-बार गूंज उठे। विश्वास नहीं हुआ।

'तुझे कैसे पता चला ?' उसने पूछा।

'क्यों ?' सुखराम ने कहा : 'मैं क्या समझता नहीं !'

'पर कोई बात हुई ?'

'हुई।'

'क्या ! उसे बताता क्यों नहीं ?'

'कहती थी वह खजाने को ढूंढेगी।'

कजरी हँसी। कहा : 'तूने बताया होगा कि उसमें खजाना है।'

'हाँ। मगर वह तो खुद कहती थी·····'

'कि वह ठकुरानी है।'

'यही तो मैं सोचता हूँ।'

'यह नहीं हो सकता।'

'आतमा का कुछ ठीक नहीं कजरी।' सुखराम ने कहा।

'तूने पक्की कर ली !!'

'किसकी ? ले जाने की ?'

'नहीं, इसकी कि वह अब मेम नहीं है ? ठकुरानी है ?' उसके स्वर में उपहास था। सुखराम आहत हुआ। उसने कहा कुछ नहीं। केवल निराशा से दया की भीख माँगने वाली दृष्टि से देखा ! वह दर्द-भरी आँखें कजरी के मन को छू गईं। उसकी निरीहता पर उसे करुणा आ रही थी। क्या हो जाता है इसे, ऐसे मौकों पर ! अकल कहाँ चली जाती है इसकी ?

कजरी सुस्त पड़ गई थी। कहा : 'होगी !'

सुखराम समझा। कहा : 'तू मेरा दिल बहलाती है।'

'दिल बहलाती हूँ कि ठीक कहती हूँ। अब मुझे क्या मालूम। होगी ! शायद ! कौन जाने !' और उसने अन्त में जोड़ा : 'राम की माया, कहीं धूप, कहीं छाया !! वह ही बनाये, वह ही बिगाड़े। कौन समझ सकता है। बच्चा !

हम तो हाथ में लोटा, बगल में सोटा, तीनों लोक जागीरी में। रमते जोगी हैं। क्या ठिकाना है.....'

वह खूब खिलखिलाकर हँसी और उसने सुखराम का सिर पकड़कर कहा : 'अभी क्या है ? अभी तो तुझे आतमा दिखी है, कहीं भूत न दिखने लग जायें।'

दोनों एक दूसरे की तरफ़ देखते रहे। और अन्त में सुखराम ने शर्माकर मुँह मोड़ लिया। कजरी ने कहा : 'सुन तो !'

'क्या है !' उसने वैसे ही कहा।

कजरी ने चिराग़ बुझा दिया।

सुबह चाय पीते वक्त सूसन ने अपने पिता से कहा : 'डैडी !'

'हूँ।' बूढ़े ने टोस्ट खाते हुए कहा।

'डैडी, सुखराम कहता है कि यहाँ के किले में बहुत बड़ा खज़ाना है।'

वृद्ध हँसा। कहा : 'यूरोप के रहने वाले सारे एशिया की धरती में खज़ाने ही खज़ाने देखते हैं।'

सूसन का मन छोटा हुआ। कहा : 'डैडी !'

'तुम मालकिन हो। हुकूमत करने आई हो।' बूढ़े ने अपनी पतली आँखों से देखते हुए कहा। वह लम्बा-चौड़ा आदमी था। सिर के आगे के बाल गिर चुके थे, कुछ पके हुए बालों का एक लौंदा सामने रह गया था, और फिर दोनों कानों के ऊपर गच्छे थे। ऐसा लगता था जैसे पकी हुई घास के बीच से सख्त धरती चिकनी-चिकनी दिखाई दे रही हो। उसकी भौं बराये नाम रह गई थी। मुँह पर लाल रंग खरदरा-सा दिखता था। और उसके दाँत पीले थे, नाक में बीच में गांठ पड़ती थी और फिर वह ऊपर के पतले होंठ पर झुक जाती थी। उसकी गर्दन मोटी थी। पुतलियों का रङ्ग नीला था। बात करता था तो रुक-रुककर। वह महारानी विक्टोरिया के जमाने में जो शिक्षा-काल समाप्त कर चुका था, उसका जैसे उस पर अभी तक प्रभाव था।

सूसन नहीं समझी। पूछा : 'उससे क्या हुआ ?'

'यह गँवार देशी लोग हैं।' उसने कहा।

'पर किले में इतनी दौलत है !' सूसन ने कहा : 'कि अगर हम उसे ले जा सकें तो सारा इंगलैंड हमारी तरफ़ देखने लगेगा।'

वृद्ध अबकी बार नहीं हँसा। उसने गम्भीरता से कहा : 'फिर भी वह सीमित धन है। हिन्दुस्तान की उपजाऊ धरती का दाना-दाना दौलत है। उसे यहाँ का किसान जोतता है और हमारा खजाना साल के साल भरता है सूसन !'

सूसन को यह विचार पसन्द नहीं आया।

'तुमको सख्ती करनी चाहिये।' वृद्ध ने कहा।

'यह आदमी तो भला है।' सूसन ने कहा।

'ठीक है, पर हमारा गुलाम है। उसे बराबरी का दर्जा नहीं दिया जा सकता। इंगलैंड का हर गरीब, हिन्दुस्तान के बड़े से बड़े आदमी से भी ऊँचा दर्जा रखता है।'

सूसन को लगा कि अब जो उसके बाप ने सिर उठाया, तो इंगलैंड का झंडा फरफरा उठा।

बूढ़े ने फिर कहा : 'सारी सभ्य दुनिया हमसे जलती है, अमेरिका के लोग जनतन्त्र चिल्लाते हैं, क्योंकि वे अंगरेजों के गुलाम थे। आज वे बनिये हैं, मगर हम व्यापारी ही नहीं, हम राजा भी हैं। हमने हिन्दुस्तान को अपनी अक्ल और तलवार से दबाया है ! तुम्हारा वह नौकर है, उसे कुत्ता बनाकर पालो। हिन्दुस्तानी अच्छा होता है, पर उसे कभी यह महसूस न करने दो कि वह भी हमारा जसा आदमी है। वर्ना फिर अदब उठ जायेगा। डर पैदा करो। इन लोगों के भीतर सामंतीय भावना है, स्वामिभक्ति है। वे नहीं जानते कि इससे आगे क्या है। शहरों में शिक्षा ने इन्हें चेतन कर दिया है। वहाँ के लोग सिर उठाते हैं। यह लोग हमारे आने के पहले भी गुलाम थे। हमने सिर्फ़ उसीको पक्का किया है। इनके पुराने स्वामी भी हमारे गुलाम हैं। रियासतों का क्या होगा ? यह सब एक दिन अंगरेज़ों के हाथ में आ जायेंगी !'

सूसन ने आँखें फाड़कर देखा। बूढ़े ने कहा : 'हर अंगरेज़ को देशभक्त बनना चाहिये, वर्ना इङ्गलैंड का गौरव ही समाप्त हो जायेगा। क्या किया जाये ? डलहौज़ी के बाद हमारे हाथ कट गये हैं। हम किसीको अब खतम नहीं कर सकते। पर इनमें ताकत नहीं है। कांग्रेस के बढ़ने के साथ यह सब राजा इतने कमज़ोर हो गये हैं कि हमारी तरफ़ देखते हैं, हमसे उम्मीद करते हैं !'

'क्यों ?' सूसन ने पूछा।

'क्योंकि जनता इनके साथ नहीं है।'

'फिर भी तो यह अब भी बने ही हैं।'

'हम इन्हें खतम नहीं कर सकते। वैसे यह लोग खुद डरते हैं।'

बूढ़ा हँसा। सूसन नहीं।

'फिर क्रान्ति क्यों नहीं होती ?' सूसन ने पूछा।

'ओह लड़की !' बूढ़े ने कहा : 'उसके लिये अक्ल चाहिये। इन पर भाग्य का भूत लदा हुआ है। मेरी बच्ची ! यह यूरोप नहीं है, यह एशिया है, एशिया ! यह गधे पिसते हैं पर इसी राज खान्दान को चाहते हैं। उधर, कांग्रेस-मंत्रि-मंडल बन गये हैं तो यहाँ भी परचूनिये सिर उठाने की कोशिश करते हैं। याद है, फ्रांस में जैसे दुकानदारों ने सिर उठाया था। यह लोग कभी ताक़त में नहीं आ सकते। कभी नहीं। यह लोग जात-पांत मानते हैं और हम उसीका स्तैमाल करते हैं।'

सूसन ने कहा : 'लेकिन गव्नर !' (पिता)

बूढ़े ने प्रश्नवाचक दृष्टि से देखा।

सूसन ने कहा : 'यह सब कब तक चलेगा ?'

'जब तक इंगलैंड समुद्र का राजा है।'

'जर्मनी में हिटलर कितना बढ़ गया है।'

'वह जलता है।' बूढ़े ने कहा।

'मगर ताकत है !' सूसन ने जताया।

'अगर हम सफल हो गये तो हम जर्मनी और रूस को भिड़ा देंगे। दोनों आपस में लड़कर मर जायेंगे। सबसे बड़ा ख़तरा रूस है।'

'क्यों ? वे तो भगवान को भी नहीं मानते !'

'नास्तिक हैं। वे यूरोपीय तो नाम के हैं सूसन। वे भी असल में एशियाई ही हैं।'

'मैं अब बहुत व्यस्त रहूँगा।' वृद्ध ने कुर्सी छोड़कर कहा : 'लेकिन तुमको मेरी और इंगलैंड की मर्यादा के अनुकूल रहना चाहिये।'

'मैं योग्य बनने का प्रयत्न करूँगी।'

'क्राइस्ट तुम्हें मंगल देगा।' वृद्ध ने अत्यन्त स्नेह से देखते हुए कहा : 'और देखो ! तुम कहीं इधर-उधर न जाना।'

'क्यों !'

'मैं बहुत काम में लगा हूँ।'

'डैडी आप अपने काम में मुझसे मदद क्यों नहीं लेते।'

'तुम बच्ची हो, खेलो-कूदो। बहुत ज़िन्दगी पड़ी है।'

बूढ़ा चला गया, तब सूसन फिर पहले जैसी रह गई। वह आज हुकूमत की नयी शिक्षा पा चुकी थी।

दुपहर को सूसन ने खाना खाया। वह अपने कमरे में चली गई। जाकर सो गई। कजरी ने मसहरी डाल दी। और द्वार भेड़ गई।

इसी समय बाहर शोर मचने लगा। सूसन की नींद टूट गई। उसे बुरा लगा। वह उठी। सोचा चलकर डाँटे। चपरासी और माली कहाँ गये।

पुकारा : 'सुखराम !'

कजरी आई। कहा : 'हज़ूर !'

'यह क्या शोर हो रहा है ?'

'सरकार अभी पता चलाती हूँ।'

वह बाहर आई। सूसन ने कहा : 'जल्दी देखकर आओ।'

कजरी ने तलाश किया।

लौटकर आई तो सूसन ने गाउन पहनते हुए पूछा : 'क्या हुआ ?'

कजरी घबरा गई थी।

'क्या हुआ ?' सूसन से पूछा।

'माली को साँप ने काटा है सरकार !'

सूसन बाहर चली। पूछा : 'कहाँ है !'

'उधर है हुज़ूर।' कजरी आगे-आगे चली।

सूसन ने देखा माली मुँह से झाग डाल गया था। बेहोश था। सब देख रहे थे। सूसन को देखकर सब उसको कौतूहल से ताक रहे थे।

'क्या करता था ?' सूसन ने पूछा।

'सरकार घास काट रहा था।'

सब परेशान थे।

'पुअरमैन' (हाय बेचारा), सूसन ने कहा : 'इसका तो कोई भी इलाज नहीं। कैसा साँप था ?'

'काला था मिसी बाबा', एक चपरासी ने कहा।

सुखराम ने कहा : 'सरकार, एक आदमी जहर उतारना जानता है।'

कजरी ने देखा, सूसन चौंक उठी।

पूछा : 'क्या कहा तुमने ? जहर उतारना जानता है ?' और फिर अन्त में आश्चर्य्य से जोड़ा : 'सांप का ?'

'हाँ सरकार !' सूसन के मुख पर यह सुनकर भी अविश्वास ही बना रहा। वह एक नहीं मान सकी। सुखराम ने फिर सिर हिलाया जैसे हाँ यह ठीक है।

'उसको जल्दी बुलाओ।' सूसन ने कहा।

'सरकार वह गाँव में ही है।'

'उसको हमारा हुकम दो।'

सुखराम ने इशारा किया।

चपरासी दौड़े।

सूसन ने कहा : 'कजरी ! हम यहीं बैठकर देखेंगे।'

कजरी दौड़कर कुर्सी लाई। सूसन बैठ गई।

बूढ़ा गोरखी माली लाया गया। वह पचास बरस पार कर चुका था। सिर पर पूरे बाल थे, पर सब सफ़ेद और कटे न होने के कारण वे अब माथे पर पड़े थे, जैसे चीनी तवायफें सामने से गिरा लिया करती थीं। उसकी गालों की हड्डी उभरी हुई थी। माथे पर लकीरें थीं। साँवला था और ऊँची धोती तथा फितूरी पहने था। दोनों मैले कपड़े थे।

उसने आकर सलाम किया। सूसन ने देखा भर, जैसे वही उसकी सलाम का जवाब था। पूछा : 'तुम इसको ठीक कर देगा ?'

वह गम्भीर था। बोला : 'हुजूर ! करने वाला तो वह है !'

और उसका हाथ आकाश की ओर उठ गया। सूसन ने देखा। सब कुछ हो रहा है, पर सारा भारत उस सबकी ज़िम्मेदारी जैसे अपने ऊपर लेता ही नहीं !

सूसन ने देखा गोरखी माली माली के पास आ गया। बोला : 'खानी बेखानी तो नहीं खा गया था यहाँ ?'

जात का घमण्ड बोला था।

'नहीं,' सुखराम ने कहा : 'वह कुछ नहीं खाता था यहाँ।'

तब गोरखी पास बैठ गया। और फिर अपने हाथ जोड़कर आँखें मींचकर वह मंत्र पढ़ने लगा।

सूसन आश्चर्य्य और उपहास की मुद्रा से देखती रही। गोरखी माली उठा

और फिर कुछ बड़बड़ाता हुआ माली के चारों ओर घूमने लगा। फिर वह डाक बँगले में घूमा, कंकड़ियाँ बीन लाया और पास आ गया, वह जैसे हवा में से कुछ पकड़ रहा हो, वैसे ही हाथ चलाता था, उंगलियाँ फैलाकर, कुछ मोड़कर। फिर वह झूमता।

फिर उसने थाली मँजवाकर माली की पीठ पर चिपकवा दी और पीठ को देखकर मंत्र पढ़ने लगा। उस समय सब लोग स्तब्ध हो गये थे। सूसन ही ऐक थी जो अविश्वास से उस सबको देख रही थी।

माली ने कुछ मंत्र पढ़े और कुछ अजीब-अजीब शब्दों का विचित्र ढंग से उच्चारण करके वह चिल्लाया।

और आवाज़ उठने लगी। वह आवाज़ ही थी क्योंकि शब्द तो समझ में नहीं आते थे। सब श्रद्धा से नत हो गये थे। और गोरखी के मुख पर पूर्ण शांति थी। वह क्या कर रहा था!

वह गँवार, गन्दा आदमी, जो कुछ नहीं जानता, आज सारे यूरोप के ज्ञान को चुनौती दे रहा था। और सूसन ने हठात् जो देखा तो आँखें अब आश्चर्य्य से फटी की फटी रह गईं! क्या वह सच था!!

सूसन ने देखा—थाली स्याह पड़ गई।[1]

गोरखी ने मंत्र रोका और कहा: 'उतार लो।'

सुखराम ने थाली उठा ली। थाली माँज दी गई और गोरखी की आज्ञानुसार फिर चिपका दी गई।

सूसन ने आश्चर्य्य से देखा कि वह मंत्र पढ़ता जाता था और फिर थाली, जो अभी साफ़ होकर चमक आई थी, अब कुछ स्याही पकड़ने लगी थी।

गोरखी ने फिर मंत्र पढ़े और कुछ ही देर में थाली फिर स्याह पड़ गई।

'फिर उतार लो!' गोरखी ने कहा।

अबकी बार जब कजरी थाली को मिट्टी से माँजने लगी तो सूसन ने पास से देखा। सचमुच वह स्याह थी। और फिर उज्ज्वल-सी चमचमा उठी।

'अबके रखो इसे।' गोरखी ने कहा, जो सूसन के कौतूहल के प्रति ऐसे

---

१. यह सत्य है। एक एम० बी० बी० एस० डाक्टर भी भुसावर (भरतपुर राज्य) में यह इलाज करते थे, पर इसका रहस्य नहीं बताते थे। यह अनुसन्धान का विषय है।

देख रहा था, जैसे किसी साधू-संत की आँखों में नास्तिक बालक के प्रति करुणा, उपेक्षा, दया और दुख पैदा होता है।

तीसरी बार भी थाली स्याह पड़ी, उतरी, मँजी और फिर चिपका दी गई। इस बार माली तनिक हिला तो उपस्थित लोगों में खुशी की लहर-सी दौड़ गई। सूसन चकित थी।

चौथी बार थाली स्याही की हल्की छाया लिये आई।

माली ने आँखें खोल दीं। सूसन आश्चर्य्य में पड़ गई।

'माली !!' वह चिल्ला उठी।

माली मुस्करा दिया।

सूसन ने आज जादू देखा था। अब वे सब प्रसन्न थे। कजरी ने कहा : 'देखा मिसी बाबा !!'

भारतीयों की अबाध यातना का यह कैसा अजीब रूप था, सूसन ने सोचा कि इतनी करामात रखकर भी यह गँवार हैं, गरीब हैं, गुलाम हैं, ऐसा क्यों है ?

'तुमको इनाम देंगे हम।' सूसन ने माली से कहा।

'नहीं सरकार,' गोरखी ने सलाम करके कहा : 'हन धरम के लिये किये गये कामों का दाम नहीं लेते। गुर मंतर है। इसका पैसे से मोल होते ही यह झूंठा पड़ जायेगा। इसका बदला मानुस नहीं दे सकता, भगवान देता है।'

वह अहंकार नहीं था। स्वाभिमान था। कजरी को लगा कि सूसन नाराज़ होगी, पर वह नाराज़ नहीं थी, आश्चर्य्य में थी।

सब चले गये। वह आज थपेड़े खाने लगी। कजरी भी चली गई।

सूसन उठ खड़ी हुई।

पूर्व और पश्चिम का भेद अब समझ में आ रहा था। यह लोग दुख पाते हैं, परन्तु इनका पुनर्जन्म का सिद्धान्त इनको मरने नहीं देता। उसके कारण यह कुचले जाने पर सिर नहीं उठाते, उसे भी पापों का फल मान लेते हैं। परन्तु कितना भी वैभव और तृष्णा हो, उससे इनका मूल चिंतन नहीं घबराता।

रात हो गई थी।

वह गरीब माली था। उसने इनाम लेने से भी इन्कार कर दिया। यदि यूरोप में किसीको यह दवा मालूम होती तो वह इसे 'पेटेन्ट' करवा लेता, लाखों कमा लेता, दुनिया में नाम कर लेता।

वह घूमने लगी।

यह लोग क्यों इस सबकी चिंता नहीं करते ? फिर जब एक ओर यह लोग इतना त्याग दिखाते हैं, तो दूसरी तरफ़ इतना आपस में लड़ते क्यों हैं ? मुकदमे करते हैं। इतनी जात-पांत क्यों मानते हैं।

और इंगलैंड की वे भींगी हुई बर्फीली रातें याद आने लगीं। यहाँ सन्ध्या सन्नाटे में बीतती है, वहाँ ऑरगन (बाजा) की लय गतियों पर गूंजती थी, नाचा करती थी।

उसका मन किया कि वह किसी तरह हिन्दुस्तान के इस रहस्य को समझ ले। और उसे याद आया। जब वह बम्बई में पहली बार उतरी थी, तब समझी थी हिन्दुस्तान कुछ विशेष नहीं है। दुनिया के किसी भी बड़े शहर की नकल है।

वह बढ़ी। और उसके मन में आया वह किसीसे बात करे। कोई नहीं था। नौकर अपने-अपने क्वार्टरों में थे।

सामने एक द्वार खुला था। अन्दर से हल्की रोशनी आ रही थी। अपनी आतुरता में सूसन उधर ही बढ़ी। पिता का दिया हुआ सबक तो गोरखी माली का मन्त्र समाप्त कर ही गया था, और अब उस तरुणी को सारे हिन्दुस्तान के ज़र्रे-ज़र्रे में रहस्य ही दिखाई दे रहा था।

उसने जब लॉन पार किया तब कोठरी में हँसी का शब्द सुनाई दिया। खाट पर सुखराम लेटा था, और बीड़ी पी रहा था। कोठरी में धूंआ भर गया था। कजरी ने अपनी बीड़ी का आखिरी कश लिया और फेंक दी और फिर उसके पाँवों पर हाथ जमाये। सुखराम इधर-उधर की बातें करता जाता था और मुग्ध होकर कजरी पाँव दबा रही थी।

पति-पत्नी का स्नेह था वह !!

सूसन को देखकर दोनों हड़बड़ाकर उठ खड़े हुए। सूसन को शर्म ने घेर लिया। वह मालकिन। आज वह अचानक ही भूल से आ गई। वह यह भी भूल गई कि किसीके कमरे में घुसना नहीं चाहिये। और फिर अब याद आया कि वे पति-पत्नी भी थे। उसका कौमार्य्य उसे लज्जा से झुका गया। क्या यह उसने ठीक किया ! सुखराम मुस्करा रहा था। कजरी के दांत खुल गये थे।

आखिर कजरी ने ही कहा : 'सरकार ! बुला क्यों न लिया !'

सूसन सुस्थिर हुई। बोली : 'तुम साँप का जहर उतारना जानते हो सुखराम !'

अब समझ में आया। कहा : 'नहीं हुज़ूर !'

'कजरी !'

'हाँ सरकार !'

'तुम क्या करती थी ! इसका पाँव दबाती हो।'

कजरी ने माथा ढाँका, सिर झुका लिया।

'दर्द होता है ?' सूसन ने कहा।

'नहीं सरकार !' सुखराम ने पानी-पानी होकर कहा। कजरी को मज़ा आया। भीतर ही भीतर हँसी।

'फिर क्यों दबाती है ये ?' सूसन ने आश्चर्य्य से पूछा।

सुखराम उत्तर न दे सका। कजरी ने कहा : 'सरकार हमारी रीत है।'

'क्या है ?'

'सरकार हमारे यहाँ चलता है। एक कायदा है।'

'ओह' सूसन ने कहा : 'हमको बताओ।'

'औरत मरद के पाँव दबाती है।'

'लेकिन क्यों ?' सूसन ने ज़ोर देकर पूछा।

कजरी ने उसकी ओर देखा। वे आँखें थीं कि किताब खुली पड़ी थी। उसमें कितना आत्मविश्वास था ! जैसे अंगरेज़ निडर होकर गिरजे में जाता था, और अंगरेज़ी पढ़ा हिन्दुस्तानी मंदिर में जाने में झेंपता था, वैसे ही थोड़ी देर पहले वे दोनों सूसन के सामने घबरा गये थे। परन्तु अब भाव बदल गया था। कजरी को गव था। वह बाँदी नहीं थी। यह उसके प्रेम का प्रगटीकरण था। नारी का समर्पण था। वह जिस दुनिया में पली थी, जितना जानती थी उसमें यही सब कुछ आदर्श माना जाता था। उस दुनिया में नारी बराबरी का दावा नहीं करती थी, अपने को झुकाना जानती थी। नयी दुनिया की स्त्री वह सब करना नहीं चाहती, और नहीं करेगी, परन्तु कजरी तो इस सब नयेपन को नहीं जानती। वह उसीमें गौरव अनुभव करती थी।

सूसन ने देखा तो हँसी और कहा : 'ओह ! लव !'

'क्या सरकार !' कजरी ने पूछा।

'तुम उसको प्यार करती हो !'

कजरी ने स्त्री के विश्वास से उसकी आँखों झाँका। सूसन ने सरकार-हुज़ूर

करने वाली स्त्री की मर्यादा का अभिमान देखा। वह प्रचण्ड था। वह उसे अच्छा लगा।

'तुम भी कभी इसके पाँव दबाते हो !' सूसन ने सुखराम से कहा।

सुखराम झेंप गया। कजरी ने कहा : 'नहीं सरकार ! यह धरम नहीं है।'

'ओह !' सूसन अकारण हँस दी।

दोनों झेंपी-झेंपी हँसी हँसने लगे। सुखराम वहीं रह गया।

अब वे डाक बँगले की ओर चल रही थीं।

'सरकार, आप सोई नहीं ?'

'नहीं, नींद नहीं आई।'

कजरी ने पूछा : 'सरकार, आपकी शादी हो गई ?'

'नहीं।'

कजरी ताज्जुब में पड़ गई।

'शादी करना क्या जरूरी है ?' सूसन ने पूछा।

कजरी उत्तर नहीं दे सकी।

'तुमको मालूम है शादी बड़ा कठिन काम है।'

'सरकार, उसमें कठिन की क्या बात है !'

'तुम बोलो, तुमसे बात करने में अच्छा लगता है। शादी तुमने कब किया ?'

'सरकार, मैं तो चौदह बरस की थी तब।' वह असली बात छिपा गई।

'तुम्हारा आदमी तुमको छोड़ सकता है कजरी ?' कजरी से सूसन ने गंभीरता से पूछा।

कजरी के नेत्र फिर बल खाने लगे पर संभल गई। कहा : 'क्यों नहीं सरकार, चाहे तो छोड़ दे।'

'और तुम ?'

'सरकार मैं नटनी हूँ। छोड़ सकती हूँ।'

'तो क्या छोड़ने का सबमें कायदा नहीं है ?'

'नहीं सरकार, छोटी जातों में तो औरत फिर नया मरद कर लेती है, बड़ी जातों में नहीं होता।'

'पर हमारे यहाँ तो होता है।'

कजरी ने कहा : 'हुज़ूर ! तो आपके यहाँ तो हम नटों से मिलती-जुलती बहुत बातें होती हैं।'

'बताओ हमको !'

'हुज़ूर ! आपके यहाँ मर्द-औरत मिलकर नाचते हैं। उस दिन आपके अखबार में तस्वीर निकली थीं न, आपने दिखाई थीं, वैसे ही हम भी नाचते हैं। सरकार, ऐसे नाच हममें होते हैं, बड़ी जातों में नहीं होते।'

सूसन उसकी बात समझने की कोशिश कर रही थी। कजरी की बात में व्यंग्य नहीं था। वह तो प्रसन्न हो रही थी कि कितनी समता थी। उसने कहा : 'हुज़ूर ! आपके यहाँ औरतें मर्द के गले में सबके सामने हाथ डालती हैं, हमारे यहाँ भी डालती हैं। आपके यहाँ सब मिलकर शराब पीते हैं। हमारे यहाँ भी पीते हैं। पर सरकार, बड़ी जातों में यहाँ ऐसा नहीं होता।'

वह नहीं जानती थी कि वह अनजाने ही इतिहास का विश्लेषण कर रही थी। कबीले की ज़िन्दगी से मिलने वाले जीवनों में, रीतियों में, जो समता होती है, वह उसे दिखाई दे रही थी। एक ओर दरिद्रता थी, शोषण था, दूसरी ओर धन था, अधिकार था।

'सरकार यहाँ का तहसीलदार बड़ा बदमाश है।' कजरी ने कहा : 'वह तो नटनियों को यों ही पकड़वा लेता है।'

'क्यों ?'

'सरकार, बुरा काम करता है।'

'बुरा काम क्या ?' उसने पूछा।

'अ···सरकार···वो···वो·····' कजरी घबरा गई। सूसन हिन्दी ऐसी ही हिन्दी बोलती थी, पर मुहावरे क्या जानती ! कजरी की घबराहट से उसने स्त्री-सुलभ बुद्धि से अपने आप समझ लिया।

'फिर क्या होता है।' उसने पूछा।

'सरकार कुछ नहीं होता !'

'अच्छा ! लड़ाई नहीं होती !'

'सरकार नहीं।'

सूसन ने देखा। वह ग़ुलामी की एक कड़ी ही थी। कहा : 'अच्छी बात है, हम उसको यहाँ से हटवा देंगे।'

वे कमरे में आ गईं।

'सरकार आप लेट जाइये।' कजरी ने कहा : 'मैं आपको सुला दूँगी।'

सूसन लेट गई। कजरी उसके पाँवों को सहलाती हुई फ़र्श पर बैठ गई।

'सरकार एक बात पूछूँ ?' कजरी ने कहा ।

'पूछो ।'

'सरकार डरती हूँ । आप गुस्सा हो जायेंगी ।'

'नहीं-नहीं बोलो ।'

'सरकार कितनी उमर है आपकी !'

'उन्नीस ।'

'सरकार आप शादी क्यों नहीं कर लेतीं ।'

'अभी हमारा उमर ही क्या है !' सूसन ने कहा ।

'तो सरकार और उमर कब आयेगी ?'

'क्यों ?' सूसन ने कहा—'हमारे यहाँ दो सौ साल पहले लड़की की जल्दी शादी हो जाती थी । अब नहीं । पहले औरत वोट भी नहीं देती थी ।'

'सरकार बोट क्या ?'

'यहाँ नहीं होती ?'

'नहीं सरकार कभी नहीं ।'

'ओह !' सूसन चुप हो गई ।

'तो हुजूर', कजरी ने कहा : 'अब आपकी क्या उमर हो जायेगी तब आप शादी के लायक कहलायेंगी ।'

'अभी दस बरस तक हम कर सकती हैं ।'

कजरी ने कहा : 'हजूर ! मैं तो तेईस-चौबीस की होऊंगी । अभी से बूढ़ी हो गई । मेरी उमर की कुछ औरतें माँ हो गई हैं, तो वे तो और भी बड़ी लगती हैं । मैं तब पैदा हुई थी जब उस साल गिर्राज ग्वारिया की पचपन भैंस एकदम बीमारी में मर गई थीं ।'

सूसन ने करवट ली और उसे घूरने लगी । कजरी डरी । चुप हो गई । सूसन ने थोड़ी देर में कहा : 'कजरी तुमको कहानी आती है ?'

'आती है सरकार !' उसने झेंपते हुए कहा—'अच्छी नहीं आती । अच्छी तो बूढ़ा हरपाल सुनाता था । गीत भी बनाता जाता था । मैं तो ऐसे ही सुना लेती हूँ ।'

और सूसन को पुश्किन याद आ रहा था, जो इसी तरह जाकर कबीलों में रात बिताया करता था । सच तो यह था कि वह विलायत से सीधी यहाँ आ गई थी । कम उमर थी । विक्टोरिया के वैभव का विष उसमें चढ़ नहीं सका

था। नौकरानी मुँह लग रही है, यह वह नहीं जानती थी। और फिर अकेली करती भी क्या ? नहीं बोलती तो पागल हुई जाती है। कहा : 'कजरी बड़ा सा'ब नहीं आया।'

'हाँ सरकार ! कहीं मोटर में गये थे। आज तो पल्टन के जवान भी संग गये थे। क्या हो गया हुजूर !'

'पता नहीं।'

'सरकार मरदों को तो काम लगा ही रहता है। इन्हें जाने कहाँ से इतने काम आ जाते हैं। सरकार, आप एक दुनिया में औरत ही औरत रखिये और रानी बन जाइये।'

'तुम्हारी ठकुरानी थी न ?' सूसन ने हँसकर कहा : 'वह तो औरत ही थी, रानी थी न ?'

कजरी को काटो तो लहू नहीं। थूक निगलकर मुश्किल से कहा : 'हाँ हुजूर !'

'वह तो मार डाली गयी थी।'

'हाँ हुजूर !' कजरी ने फिर कठिनाई से कहा। सूसन अपने ही ध्यान में मग्न थी।

'कजरी तुम ठकुरानी है ?' उसने पूछा।

'नहीं सरकार।'

'सुखराम ठाकुर है ?'

'हाँ सरकार।'

'फिर तुम उसकी बीबी है न ? उसकी जात की नहीं है ?'

'नहीं सरकार मैं तो नटिनी हूँ।' कजरी ने साफ़-साफ़ कह दिया : 'सुखराम की माँ नटनी थी, पर बाप ठाकुर था। यह ठकुरानी के बंस में ही है !'

'ओह तो !' सूसन चौंक उठी। कजरी ने कहा : 'सच हुजूर !'

सूसन सोच में पड़ गई।

'नट ! क्या काम करते हैं ? 'उसने थोड़ी देर बाद पूछा।

'बस खेल करते हैं इधर-उधर, शिकार मार लाते हैं। शहद बेचते हैं, औरतें खेल करती हैं।' पर जाने क्यों वह नहीं कह सकी कि औरतें पेशा करती हैं और फिर इसीसे मर्द उनकी इज्जत करते हैं। जितनी जवान होगी उतनी ही उसकी कदर भी होगी।

सूसन की जिज्ञासा बढ़ी। उसने पूछा : 'क्या खेल करते हैं ? कुछ तमाशा करते हैं ?'

कजरी ने बताया, रस्सी पर चलना, बाँस पर लटक जाना, सब बताया। सूसन चुपचाप सुनती रही। जब वह सुन चुकी तो उठी और एक किताब निकाल लाई और कुछ पढ़ती रही। फिर कहा : 'कजरी ! देख !'

कजरी ने देखा। नटों की तस्वीरें थीं।

'हाँ सरकार, यही !' कजरी ने दाँत निकालकर कहा : 'अरे किताब बन गई इसकी तो !' उसने आश्चर्य्य और गौरव से सिर हिलाया।

'जग्लर ! हौज़लिट्स जग्लर !' सूसन ने कहा और गाल पर उंगली रखकर मुस्कराई। सूसन ने वह उसका आनन्द देखा और कहा : 'तुम अपना फोटो हमको देगा।'

'क्या देगा सरकार !'

'तस्वीर ! हम खींचेगा।' सूसन ने सिर हिलाया।

सूसन फिर लेट गई।

'सरकार विलायत में नट होते हैं ?' कजरी ने पूछा।

'नही। कोई-कोई खेल सीख लेता है।'

'ऐसी जात नहीं होती ?'

'नहीं।' कजरी यह सुनकर उदास हो गई।

'कंजर होते हैं।' सूसन ने दिलासा दिया।

'हेकावाले ?' कजरी ने पूछा।

'कौन ?' सूसन चौंकी।

कजरी ने कहा : 'हेकावाले।'

'वह क्या होते हैं ?'

'सरकार वे तो सबका जूंठा खा लेते हैं।'

सूसन नहीं समझी। कहा : 'हम नहीं समझा।'

कजरी ने पूछा : 'सरकार विलायत बहुत बड़ा है !'

'छोटा है। हिन्दुस्तान बहुत बड़ा है।'

'सरकार हिन्दुस्तान तो हमारा ही मुलक है न ?' उसने ज़ोर लगाया।

'हाँ।'

'सरकार मुलक तो सबका होता है। मानुस तो धरती पर चाहे जहाँ रहे।'

सूसन नहीं बोली । कजरी ने कहा : 'सरकार, विलायत में औरत के पीछे मर्दों में झगड़ा होता है ?'

'ओह कजरी ! वैल स्पोक ! विलायत में मर्द के पीछे औरतों में झगड़ा होता है ।' वह हँसी । कजरी ने भेड़ की तरह देखा । सूसन अपने ध्यान में मग्न थी । वह सोच रही थी । यह औरत अपने हिन्दुस्तान को नहीं जानती । पर वह कहती है सारी दुनिया आदमी के लिये है । वह सोचने लगी । रोम में गुलाम थे । तब क्राइस्ट ने उनको आज़ादी दिलाई थी । हम भी वैसे ही हैं । परन्तु हमारे पास वे अधिकार कहाँ हैं ? उसका उन्मत्त हृदय तब एक अज्ञात, पर हृश पिपासा से काँप उठा ।

रात के ग्यारह बजे थे । टं टं टं करके घड़ी बज उठी ।

'ओह ! कितनी रात बीत गई ।' सूसन ने जँभाई लेकर कहा ।

'सरकार, आप सो जाइये ।'

'हमको नींद नहीं आती ।'

'सरकार पानी लाऊँ ?'

'ले आओ ।'

कजरी ने पानी दिया । सूसन पीकर फिर लेट गई ।

कजरी ने कहा : 'सरकार आप कितनी अच्छी हैं ।'

'क्यों ?'

'आप रानी हैं, फिर भी मेरे हाथ का पानी पी लिया ।'

'हम सबके हाथ का खाते हैं । साफ़ होना चाहिये ।'

'सरकार अब तो मैं रोज नहाती हूँ ।'

'गुड् ।' सूसन ने कहा ।

'सरकार !' कजरी ने कहा ।

'क्या है कजरी ?'

'सरकार·····' वह रुक गई ।

'बोलो डरो नहीं ।'

'सरकार, एक साबुन मुझे दे दें, मैं कल साबुन से नहाकर आऊँगी । गाँव में तो मिलता नहीं ।'

'साबुन ! तो तुम लोग सिर किससे धोती हो ?'

'मुल्तानी मट्टी से, रीठे से, या दही से । पर सरकार, आपकी नौकरानी

होकर मैं उनसे नहीं धोऊँगी ।' उसने बालक की भाँति कहा—'मैं तो एक साबुन लूंगी । आपका वह आधा घिसा रखा है । वह ले लूं ?'

'ले लो ।' सूसन ने मुस्कराकर कहा ।

'हजूर !' कजरी ने पाँव पकड़कर गद्‌गद स्वर से कहा : 'भगवान आपको मनचाहा मरद दे । आपके चंदा-से बच्चे हों । खूब सुखी रहें ।'

सूसन हँस दी ।

कजरी लौट आई ।

सुखराम लेटा था । उसके सिर पर ले जाकर कजरी ने साबुन रख दिया । उसकी खुशबू से सुखराम चौंक उठा । पूछा : 'चुरा लाई ।'

'जा कह दे ।' कजरी ने कहा : 'मैं नहीं डरती । सुसरी वह नहायेगी इससे, मैं नहीं नहाऊँगी ?'

बूढ़ा सा'ब लौटा तो सुबह हो चुकी थी । उजाला घने-घने पेड़ों के पीछे अब दमदमा रहा था । मोटर उसे उतारकर सामने दगरे पर रुक गई । सुखराम दौड़कर आया ।

खानसामा ने मेज़ सजा दी । कजरी उसका हाथ बँटाने लगी ।

मेज पर खाते वक्त सूसन ने पूछा : 'डैडी ! रात क्यों नहीं आये ?'

बूढ़े ने कहा : 'काम बहुत है ।'

'मुझे लगता है यह काम आप पर बोझ बन गया है ।'

'नहीं मेरी बच्ची ! मुझे इससे फ़ायदा है ।'

'क्या ?'

'शायद तुम्हारा यह बुड्ढा बाप अगले दो साल में ही एजन्ट टु द गवर्नर जनरल हो जाये ।' बूढ़े ने कहा : 'रियासत में बड़ा घपला है ।'

'वन्डरफुल !' सूसन की आँखें फैल गईं ।

'होगा अगर यह काम हो गया ।'

'काम क्या है ?'

'इस रियासत में नया इन्तजाम करूँगा ।'

'फिर क्या होगा ?'

'फिर उम्मीद बँध जायेगी । इतना खराब वक्त है कि कांग्रेस का रियासतों में भी असर बढ़ रहा है ।'

'सब सरकार की गलती है ।' सूसन ने कहा, 'कांग्रेस-मंत्रि-मंडल भंग क्यों

नहीं कर देती। सब ठीक हो जायेगा ! यह जाहिल लोग जानते ही क्या हैं ! हिटलर ने क्या किया है !'

बूढ़ा हँसा। कहा : 'ब्रिटिश न्याय बहुत ऊँची चीज़ है सूसन । हम ऐसा नहीं कर सकते !'

'क्यों ?'

'क्योंकि हिटलर के पीछे जर्मन है, और हमारे साथ यहाँ की जनता नहीं है, राजा है ।' बूढ़े ने नीतिज्ञता से कहा और समझाने लगा : 'मेरी बेटी ! यहाँ का राजा ऐयाश है। वह कुछ नहीं जानता। वह दो बार इंगलैंड गया है, पर वहाँ से उसने फ्रांस जाकर केवल फ़िज़ूलखर्ची की है, वह बड़ा कामुक है।'

'उसे उतारकर फेंक क्यों नहीं देते।'

'दूसरा उसी खान्दान का आदमी तैयार किया जा रहा है जो उसकी जगह बैठेगा। कमबख़्त के कोई छोटा बच्चा होता तो काम यों ही हो जाता।'

बूढ़े से तो सूसन पूछ न सकी पर उसने सोचा कि बाद में पूछेगी, और किससे, यह भी उसकी समझ में आ गया। चुपचाप खाती रही।

जब वृद्ध चला गया और फिर निस्तब्धता छा गई तब वह एक आराम-कुर्सी पर बरामदे में बैठ गई। उसने अखबार पढ़ा और फिर उसे भी धर दिया।

उसने सुखराम को बुलवाया। वह आया। बैठ गया।

'हज़ूर ने बुलाया है ?' उसने पूछा।

'हाँ', सूसन ने कहा : 'सुखराम ! राजा को जानता है !'

'कौन राजा हुज़ूर !'

'तुम्हारा राजा !'

'अरे हुज़ूर ! आप भी कैसी बात करती हैं ! मैं गरीब ! भला महाराज को कैसे जान सकूंगा ?'

'ओह !' सूसन को निराशा हुई। फिर पूछा : 'तुमने उसका महल देखा है ?'

'हाँ हुज़ूर, बाहर से तो देखा है।'

'तुम उसके बारे में कुछ नहीं जानता।'

'हुज़ूर, वह मालिक है, इतना ही जानता हूँ।'

'तो तुम जाओ। कजरी को भेजो।'

'अभी लीजिये सरकार।'

वह चला गया। कजरी डरी हुई आई। बोली : 'सरकार ! उसने कहा होगा ! पर मैं तो आपसे ही ले गई थी ?'

'क्या ?' सूसन ने पूछा।

'हुज़ूर साबुन !' कजरी ने कहा—'मैं ले गई थी तो कहता था कि मैं चोर हूँ, चुरा लाई हूँ।'

सूसन खूब हँसी। कहा : 'उसने तुमसे ऐसा कहा ?'

'हाँ हुज़ूर ! डराता था। आपने डाँटा नहीं उसे।'

सूसन खिलखिलाई। कहा : 'वह नहीं पूछती मैं। बैठ जा।'

कजरी बैठ गई। बोली : 'सरकार तो क्या बात हुई ?'

'तू राजा को जानती है ?'

'ऐल्लो हुज़ूर !' कजरी ने कहा : 'राजा को मैं क्या जानूँ ? वह बड़ा आदमी है ! मैं गरीब ! हुज़ूर ! मुझ जैसी तो सैकड़ों उसकी बादियाँ भी नहीं बन पातीं। ऐसी गोरी-गोरी खूबसूरत लुगाइयाँ चुनकर रखी जाती हैं !'

सूसन जो चाहती थी वही मिल गया। पूछा, बिल्कुल निरासक्त बनकर : 'क्या होता है उनका वहाँ !'

'अब हुज़ूर', कजरी ने कहा : 'छोटा मुँह बड़ी बात कैसे कहूँ, मुझे तो लाज आती है। फिर आपका अभी ब्याह भी तो हुआ नहीं। मैं नहीं कह सकती।'

'राजा के कितनी शादी होती हैं ?'

'सरकार उसका भी कोई बयान है ? राजा तो बड़ी चीज़ है, उसके सरदारों के ही कई-कई होती हैं। सरकार आप राजा हैं। आपके यहाँ भी ऐसा ही होता होगा !'

'नहीं, हमारे यहाँ एक आदमी की एक औरत होती है', सूसन ने कहा : 'जब दूसरी शादी होती है, तो पहली को तोड़ना पड़ता है।'

'हाय दैया।' कजरी ने कहा : 'बिल्कुल हम नटों का-सा कायदा है, पर पहले हममें भी कई-कई रखी जाती थीं। अब कोई नहीं रहती सरकार। मन आये की बात और है। इधर किसी पर मन आ गया तो हम तो अपने पहले नाते को तोड़ देती हैं।' कजरी ने हाथ उठाकर कहा : 'पर हुज़ूर बड़ी जातों

में ऐसा नहीं होता। वहाँ तो एक-एक की कई-कई औरतें होती हैं। बेचारी बहुत-सी मरद का मुँह भी नहीं देख पातीं, वैसे ही उमर निकल जाती है। और किसीसे नाता जोड़ें तो अधरम हो जाय। बड़ी साँसत है सरकार, बड़ी जात का होना भी पूरी आफत ही समझो !'

सूसन सुनती रही। सुनती रही। कजरी कहती रही : 'और हुजूर ! जहाँ कोई खूबसूरत लुगाई देख ली, राजा पकड़वा लेता है। कोई पूछता थोड़े ही है। बस आप लोगों का तो डर है। आपसे तो सब डरते हैं सरकार।' उसने सिर हिलाकर कहा : 'पर सरकार ! आप तो कभी-कभी आती हैं। सरकार वहाँ तो रोज देखने की बात है। रोज नाच-रंग होते हैं।'

सूसन ने कहा : 'एशिया ! एशिया ! कितना बर्बर ! कितना अद्भुत !' और उसने रुककर फिर कहा : 'हाउ पेगन ! हाउ पेगन !'

'क्या सरकार ?' कजरी ने पूछा।

'रानी क्या करती है ?'

'अरे सरकार,' कजरी ने कहा : 'रानी करती है कुछ। वह तो हुकम देती है। मजे में रहती है। और करेगी क्या !'

सूसन उस विलास की रोमांचकारिणी कथा को सुनकर झनझना गई। उसे क्राइसिस याद आने लगी। वही विलासिनी ! वह रूपवती ! यह भी इंडिया है !!

उसने खड़े होकर अंगड़ाई ली, जैसे कुमारी के अंगों में काम ने संचरण किया। और सारा रस लेकर दिखाने को वह बोली : 'सब कितना गंदा है।'

कजरी ने चौंककर कहा : 'गंदी नहीं हूँ सरकार ! आज तो मैं आपके साबुन से नहाई हूँ।'

सूसन ठठाकर हँसी। वह हास्य बड़ा मुखर था। कोई भी मनोविज्ञान का विद्यार्थी बता सकता था कि वह असल में अपूर्ण वासना की ही एक झंकृति थी, जिसका यह एक वाह्य प्रगटीकरण था।

सुखराम समझा नहीं। दूर से देख रहा था। मिसी बाबा ठठाकर हँस रही थी और कजरी खड़ी हो गई थी। सूसन भीतर चली गई। कजरी लौटी तो सुखराम ने पूछा। कजरी ने कहा : 'जाने सुसरी क्यों हँसी ? मैं तो समझी नहीं। न उसने बताया। मैंने सुनाया तो बैंगन, बैंगन करने लगी।'

और उसने ऐसी मुद्रा दिखाई जैसे भगवान जाने।

रात होने लगी थी।

'सरकार बड़े सा'ब नहीं आये अभी।' कजरी ने भीतर आते हुए कहा।

सूसन पढ़ रही थी। लेट गई। और औंधी पड़ी-पड़ी पांव हिलाने लगी। आज वह पतलून पहने थी। ऊपर कालरदार कमीज़ थी। पढ़ते वक्त उसके बाल आगे झूल आये।

अचानक एक बड़ी मोटर आई। सुखराम बाहर गया।

बाहर मोटर का दरवाज़ा खुलकर बंद होने की आवाज़ आई।

मोटर से, सुखराम को, एक अंगरेज़ ने, निकलकर देखा। सुखराम ने सलाम ठोंकी। उसने पूछा : 'बड़ा सा'ब है !'

'सरकार दौरे पर गये हैं।' सुखराम ने सतर होकर कहा।

साहब कुछ सोचने लगा।

सूसन लेटी थी तो आलस से भरी हुई थी। कहा : 'बड़े सा'ब आ गये !'

'देखती हूँ।' कजरी चली आई।

देखा तो पास गई। अंगरेज़ ने कहा : 'यहाँ कौन है ?'

'सरकार।' सुखराम ने कहा : 'मिसी बाबा हैं।'

कजरी लौट गई।

'कौन है कजरी ?' सूसन ने पूछा।

'वे बड़े सा'ब नहीं हैं हुज़ूर।' कजरी ने कहा।

'तो कौन है ?'

सरकार मैं नहीं जानती।'

'मोटर में कौन आया है ?'

'सरकार कोई साहब आये हैं।'

सूसन उठी। बाहर गई।

बरामदे में वह लंबा व्यक्ति खड़ा था। उसने सूसन को देखा तो बहुत हल्के से मुस्कराया।

सूसन ने खुशी से कहा : 'लॉरेंस !'

उसने हाथ बढ़ाया। लॉरेंस ने मिलाया। फिर सूसन फूट पड़ी। अंगरेज़ी में धारा प्रवाह बोलने लगी : 'ओह ! यह मुल्क ! क्या है ! यहाँ कुछ नहीं है। मैं तो ऊब गई हूँ। कोई आदमी नहीं। कुछ नहीं। तुम आये हो। मैं तो बच गई। किससे बात करूँ।' और उसने प्रेम से कहा : 'कितना सुन्दर है, हम

लंदन में मिले थे, और आज एक गाँव में मिले हैं। तुम कहते थे कि कभी ट्रॉपिक्स[1] में मिलेंगे। लो मिल ही गये। और वह भी रात को। ऐसा अचरज है। तुम आ गये। मैं कब से यहाँ आदमी की बाट जोह रही थी।'

लॉरेंस ने प्रेम से देखा और कहा : 'और तुम्हारे पिता कहाँ हैं ?'

'पिता।' उसने झल्लाकर कहा : 'साम्राज्य ! साम्राज्य ! हमेशा उसीमें लगे रहते हैं। क्या है इस साम्राज्य में। हमारा इंगलैंड दुनिया में सबसे अच्छी जगह है। क्या ज़रूरत है इंगलैंड को इन सबको सभ्य बनाने की ज़िम्मेदारी लेने की। मैं तो ऊब गई हूँ। मेरी तो तबियत कोफ़्त से भर गई है। वह तो बस दफ्तर, फ़ाइल, राजा···उफ़ !'

कजरी ने लॉरेंस की ओर देखा। गिटपिट-गिटपिट करती हुई सूसन जाने कितने दिन का गुबार निकाल रही थी। बाप बात नहीं करता था। अंगरेज़ों में ज्यादातर हमउम्रों में ही बात होती है। दुनिया के लोग आपस में बातें करते हैं। अंगरेज़ चुप रहने में गौरव समझता है। किसीसे बात करना उसे हेठा काम मालूम देता है।

कजरी मुस्कराई। आज वह अच्छे कपड़े पहने थी। लॉरेंस हठात् कठोर दिखाई दिया। बोला : 'चलो भीतर चलें।'

उसने बैठते ही बोतल खोली और सुखराम को इशारा किया। सुखराम ने दो गिलास मेज़ पर रख दिये। तभी लॉरेंस ने सूसन का मुँह चूम लिया। कजरी को देख सूसन शर्मा गई।

'यह कौन है ?' लॉरेंस ने अंगरेज़ी में पूछा।

'नहीं लॉरेंस,' सूसन ने कहा : 'इन लोगों के सामने यह क्या किया तुमने। यह गँवार हैं। नहीं समझते। यह इंगलैंड नहीं है।'

कजरी ने सुखराम की ओर उड़ती नज़र से देखा और फिर लॉरेंस पर आँख टिका दी।

'मेरी नौकरानी है।' सूसन ने कहा। 'अच्छी औरत है।'

सूसन और लॉरेंस पीने लगे। लॉरेंस झटके से बात करता था और कम बोलता था। सूसन चकड़-चकड़ करती चली जा रही थी।

---

१. समशीतोष्ण भू-भाग। विलायत शीत देश है।

सुखराम ने कहा : 'हुज़ूर ! हुकम हो तो जाकर सा'ब के आदमियों का इंतजाम करवा दूँ !'

'यस, यस ।' लॉरेंस ने कहा ।

इतनी अंगरेज़ी तो सुखराम भी सीख गया था । वह चला गया ।

'यह इसका आदमी है ।' सूसन ने कहा । 'बड़ा बहादुर है ।'

'तुम सबको जानती हो यहाँ ? लॉरेंस चौंका ।

'मैं कुत्ते तक को बता सकती हूँ । मुझे यहाँ और काम ही क्या था ? एक की गर्दन पर काला दाग़ है । एक तो बिल्कुल टेरियर का-सा लगता है । भयानक ! यहाँ बालदार कोई नहीं है ।'

सूसन ज़ोर से हँसी । लॉरेंस मुस्कराया । उसने कहा : 'तुम्हारा तो बड़ा गहरा अध्ययन है ।'

'क्या करूँ ?' सूसन ने कहा—'वक्त ही नहीं कटता था !'

कुछ देर बाद ही दूसरी मोटर आई । बड़ा सा'ब आ गया । लॉरेंस उठ खड़ा हुआ । दोनों ने हाथ मिलाये । बूढ़ा इस वक्त भी व्यस्त लगता था ।

खाने के वक्त मेज पर बैठे तो बातें होने लगीं ।

सुखराम बाहर खड़ा रहा । क्या बातें हो रही थीं यह तो समझ में नहीं आया ।

कजरी भीतर गई । लॉरेंस ने देखा तो मुस्करा दी । सुखराम ने चिक के पीछे से देख लिया । बाहर आई तो कहा : 'क्यों ?

'ठहर जा जरा !' कजरी ने कहा ।

'क्यों ?' वह कुछ चौंका ।

'तू कहता था यह बड़े लोग हैं । सुसरे मेरे सामने चिपट रहे थे । जिस पर यह अभी क्वारी है !'

'अरी यह तो इनकी बिरादरी में चलता है ।'

'दैया री ! इतना तो नटों में भी नहीं चलता ।' कजरी ने कहा : 'तू मज़े देखे चल ।'

'कैसे ?'

'देखा है तूने इसे ? मैंने इसे बेध तो दिया है ।'

'चल अपनी सूरत तो देख आ ।'

'अच्छा !' कजरी ने कहा : 'अब तू भी यह कहने लगा । क्यों ?'

'अरी मरद तो कच्चा होता ही है, यह तू मुझे क्या बताती है।'

'अरे बुद्धू ताली दोनों हाथ से बजती है।' कजरी ने कहा। 'देखता रहियो यहीं से।'

सूसन को बुख़ार-सा आ गया था। बराबर बके जा रही थी। लॉरेन्स सुन रहा था। कजरी सूसन के पीछे जा खड़ी हुई। लॉरेंस जब सूसन को देखता तब ही उसकी नज़र कजरी पर पड़ती जो उसे एकटक देख रही थी। लॉरेंस सहम गया। कजरी धीरे से चली आई। सुखराम से कहा : 'बोल !'

'क्या !'

'यह भी आदमी हैं।' कजरी ने कहा। 'राजा भी मानुस ही होता है। इनसे डर क्या ?'

'गांव वाले तो डर के मारे इनकी छाया को सलाम करते हैं।'

'दूर जो रहते हैं। जानते नहीं।'

'कहते हैं गाँधी महातमा इनसे नही डरते।'

'वह महातमा है जो।' यही वह नाम था जो कजरी भी जानती थी। उसके यश की गाथा भारत के चप्पे-चप्पे पर पहुँच गई थी।

खाना खाने के बाद सूसन ने ग्रामोफ़ोन चढ़ा दिया। नृत्य की गत बजने लगी। बूढ़ा तो सो गया, पर लॉरेंस और सूसन नृत्य करते रहे। यह अंगरेज़ में सिफ़त होती है कि ज़रा भी बस चल गया तो जहाँ खड़ा होगा, उसी जगह को विलायत बनाने की कोशिश करने लगेगा।

सुबह नया रंग आया। सैकड़ों किसानों से डाक बँगले के बाहर की ज़मीन भर गई थी। हाहाकार मच रहा था। उन्हें पीटा गया था। वे मजबूर होकर आ गये थे।

बूढ़ा सा'ब बाहर आया। इस समय वह बिल्कुल दृढ़ दिखाई देता था। सूसन और लॉरेंस उसके पीछे निकले। बूढ़ा नंगे हाथ था। वह गम्भीर-सा भीड़ के सामने आकर खड़ा हो गया। उसकी सिंह-मुद्रा देखकर कोलाहल शांत हो गया। वह चुपचाप गृध्र-दृष्टि से देखता रहा।

भीड़ कांप-सी गई। बूढ़े ने कहा : 'तुम किसलिये आया है !'

भीड़ में सन्नाटा रहा। फिर एक बोला, दूसरा बोला और फिर वे सब विक्षोभ से बोलने लगे।

एक सिपाही चिल्लाया : 'खामोश !' भीड़ चुप हो गई।

बूढ़े ने कहा : 'तुम एक-एक करके बोल सकता है। तुमको कुछ फरियाद करना है ?'

'हाँ सरकार।' एक ने कहा। 'पटवारी ने तमाम ज़मीनों का पट्टा उल्टा-सीधा कर दिया है। हम क्या करें ? क्या खायें ?'

'ज़मीन किसका है ?'

'हुजूर सरकारी है।'

'हम देखेगा। और कुछ कहना माँगटा है ?'

लोगों ने कहा : 'सरकार पुलिस बहुत जुलम करती है।'

'राजा का पुलिस !' साहब ने कहा।

'हाँ गरीब परवर !' एक ने कहा—'जबर्दस्ती दरोगा जी की लड़की की शादी के लिये कर उगाहा जा रहा है। सरकार गवरमेण्ट में तो ऐसा अत्याचार नहीं होता।'

'हुजूर।' एक कायस्थ मास्टर साहब ने कहा—'आपके राज में बकरी और शेर एक घाट पर पानी पीते हैं ! मगर यहाँ जागीरदार साहब ने हुजूर, कानून अपने हाथ में ले लिया है।'

तब बूढ़ा झल्लाने लगा। बोला : 'हम नहीं जानता। हम को लिखकर दो। और हम इस तरह भीड़ देखना नही मांगता। समझा !!'

'तो हुजूर हमारी कोई सुनता ही नहीं।'

बूढ़े ने जवाब दिया : 'राजा को बोलो। राजा साहब सुनेगा।'

इस समय तक थाने के हथियार-बन्द सिपाही आ गये थे।

'जाओ !' हाथ उठाकर बूढ़े ने कहा।

भीड़ क्षण भर देखती रही। फिर उठी हुई बन्दूकें देखकर उसका साहस कम हो गया। भीड़ छँट गई। साहब मुस्कराया। इसी समय फूलबाड़ी में से भीड़ की गरज सुनाई दी : महात्मा गांधी की जय !

जवाहरलाल नेहरू की·····जय !

अंगरेज़ी राज का·····नाश हो !

नौकरशाही का·····नाश हो·····

बोल वन्दे ···मातरम् !

प्रायः रियासतों का उस समय का आन्दोलन इतना ही था। बूढे ने सामने बन्दूक के बल पर दबा लिया था, पर आग सुलग रही थी।

उसने क्रोध से होंठ चबाया ।

दरोगा बढ़ा । कहा : 'सरकार ! ये कांग्रेसी हैं !'

'यू स्वाइन (सूहर) ।' बूढ़ा चिल्लाया : 'गेट आउट (भाग जाओ) !'

दरोगा सिटपिटा कर हट गया । बूढ़ा भीतर चला गया और मुट्ठी बांधकर घूमने लगा । सूसन और लॉरेंस भी भीतर चले गये ।

सूसन ने लॉरेंस से कहा : 'आग बढ़ रही है ।'

लॉरेंस ने मुस्कराकर कहा ; 'दबा दी जायेगी ।'

कजरी ने सुखराम से पूछा : 'यह क्या था ?'

सुखराम ने कहा : 'जुलम के खिलाफ़ बग़ावत ।'

'हाय मैं तो डर गई ।'

बूढ़ा सूसन को बुलाकर समझाने लगा ।

लॉरेंस को रहने को कहकर बूढ़ा मोटर में बैठकर चला गया ।

दूसरे दिन शाम हो गई थी । धूप अब छन-छन पेड़ों से आ रही थी क्योंकि सूरज झुक गया था ।

सुखराम दो घोड़े लिये खड़ा था । वह अपनी वर्दी पहने था । कजरी आज सफ़ेद साड़ी पहने थी ।

कजरी कह रही थी : 'मुआ ! मुझे बड़ा घूरता है । सच ! तू तो मानता ही नहीं !!'

भीतर से बिरजिस पहने सूसन और लॉरेंस निकले । वे आज हथियारों से लैस थे । सूसन के कंधे पर हल्की बंदूक थी । लॉरेंस के पास बंदूक के अलावा पिस्तौल भी थी । वे घोड़ों पर सवार हुए । घोड़े चलने लगे । तब उनके साथ-साथ, तेज़-तेज़ कदम रखकर उनके सामने ही सुखराम चल पड़ा ।

जब सुखराम चलने लगा तो कजरी ने कहा : 'ठहर !'

वह नहीं रुका ।

कजरी बढ़ी । और दौड़कर पास पहुँच गई ।

'तुम कहाँ चलती हो ?' सूसन ने कहा ।

'सरकार मैं भी घूम आऊँगी ।' कजरी ने हँसकर उत्तर दिया ।

'तुम पैदल चलोगी ?' उसने आश्चर्य्य से पूछा ।

'हाँ सरकार क्या हुआ ?' उसने ऐसी मुद्रा बना ली जैसे कुछ बात ही नहीं हुई ।

लॉरेंस ने कुछ कहा. वह अंगरेज़ी में था। कजरी और सुखराम नहीं समझे। सुनकर सूसन हँसी।

घोड़े अहाते के बाहर आ गये।

उस समय अपने बैलों को हाँकते हुए धीरे-धीरे उठती हुई धूल में थके हुए किसान घर लौट रहे थे। उनको भूख लग रही थी। घर जाकर बैलों और अपने पेटों को भरने की आतुरता उनमें उमड़ आई थी।

चिड़ियाँ चहचहाती हुई अपने-अपने थानों को लौटती जा रही थीं, झुण्ड के झुण्ड। उनकी उड़ान एक सीध में होती, या वे गोल-गोल चक्कर देकर गायब हो जातीं। पहाड़ खड़ा था। काला नीला-सा। गंभीर। शाम के धुँधलके में धीरे-धीरे डूबता हुआ।

लॉरेंस ने देखा। खरगोश! वह सफ़ेद-सा फुदका और फिर आहट पाकर कान उठाये। लारेंस ने कहा : 'लवली!' (सुन्दर)

उसने घोड़ा भगाया। टपाटप आवाज़ सुनकर ही खरगोश ने लम्बी उछाल मारी और देखते ही देखते दूर हो गया।

कजरी ने कहा : 'सरकार!'

पर लॉरेंस नहीं रुका।

'उसको यह बात नहीं आती,' सूसन ने कहा : 'वह बहुत कम समझता है।'

'सरकार! लौट रहे हैं!' कजरी ने कहा।

खरगोश भाग गया था। लॉरेंस का घोड़ा पास आ गया। सूसन ने उसकी ओर भौं उठाई। तब लॉरेंस ने कहा—'एक पत्थर बीच में आ गया।'

कजरी हंसी। वह उसकी बात तो नहीं समझी थी।

सुखराम ने धीरे से डाँटा : 'मूरख! चुप रह।'

कजरी ने मुँह बिचका दिया। वह न मानी। उसकी हिम्मत खुल गई थी। कहा : 'सा'ब भाग गया।' और लॉरेंस को इशारा किया और फिर उसे टेढ़ी आँखों से देखा। लॉरेंस खिसिया गया। पर मुस्कराकर चुप हो रहा। कजरी की निगाह चुभ गई थी। वह सूसन की ओर देखकर गंभीर हो गया।

कुछ दूर चलने पर मोटी पूँछ की लोमड़ी दिखाई दी।

कजरी ने बढ़कर लॉरेंस का पांव पकड़ लिया।

'सरकार!' उसने इशारा किया।

'फॉक्स!' लॉरेंस ने देखा।

'नहीं सरकार लोमड़ी है,' कजरी ने कहा—'वह रही।'

लॉरेंस ने पिस्तौल निकाली और उसने निशाना लगाने को हाथ उठाया।

'ना सरकार।' कजरी ने इशारा किया। लॉरेंस समझा नहीं। उसने सूसन से पूछा : 'क्या बात है !'

'मैं लाती हूँ।' कजरी ने इशारा किया कि ठहर जाओ, मैं ही ले आऊँगी। लॉरेन्स ने हाथ नीचा कर लिया।

वह भागी। उसको पीछे आते देखकर लोमड़ी ने सतर्क होकर कन्नी काटी। कजरी ने घेरा। लोमड़ी ने चक्कर काटे। जब कजरी ने उसे भागने नहीं दिया, तब वह फुर्ती से रपटी और झट से भिट में घुस गई। कजरी हँसी। पास से एक बार धूल में से उसने बड़ा-सा पत्थर लिया और फिर भिट के पास चली गई। पहले झुककर देखा और मारा। दो-तीन बार मारते ही धप्प-धप्प की आवाज़ हुई और अर्रा कर छोटा भिट दब गया। लोमड़ी भीतर छटपटाई और कजरी को काटने का यत्न किया। पर कजरी ने दबाया। लोमड़ी निकली। निकलते ही कजरी झपट पड़ी और उसने हाथ फैलाकर गर्दन पर ज़िन्दी पकड़ ली। लोमड़ी ने छूटने की चेष्टा की और निराश होकर अन्त में गर्दन टेड़ी कर उसने काटने की कोशिश की। कजरी समझ गई। धरती पर भींचकर उसने उसके सिर पर दिया ज़ोर का धप्प। दो-तीन बार कसके हाथ जड़े और चौथी बार की चोट के बाद लोमड़ी लटक गई। फिर उसने विजय से देखा। तीनों देखते रह गये और आकर उसने लॉरेंस के पाँव पर पटककर सलाम किया। सुखराम के मुख पर अद्‌भुत उल्लास था। लॉरेंस देखता रह गया। कजरी की शान देखने लायक थी। उसने झुककर सूसन को सलाम किया। सूसन खुश हुई। लोमड़ी घोड़े पर टाँग ली गई। तब वे लोग घोड़े लेकर आगे चले।

धुंधलका छाने लगा था और गहरा होने लगा था। अब रास्ता उतना नहीं दीखता था। सूसन ने घोड़ा रोक दिया।

'क्यों ?' लॉरेंस ने कहा : 'क्यों रुक गईं ?'

'वह जंगली इलाका है।' सूसन ने कहा : 'आगे जाना ठीक नहीं है, खतरा है।'

'तुम डरती हो ?' लॉरेंस ने कहा।

सूसन ने डाकुओं का किस्सा सुनाया।

लॉरेंस ने हँसकर कहा : 'उस दिन तुम अकेली थी। आज मैं हूँ। फिर तुमको किसका डर है ?'

घोड़े बढ़े। सूसन अनमनी थी। सुखराम ने कहा : 'हुज़ूर ! अब रास्ता साफ़ नहीं है, लौट चलिये सरकार !'

झाड़ियाँ आ गई थीं। लॉरेंस बढ़ रहा था। सूसन लाचार थी।

हठात् घोड़े हिनहिना उठे। उसको देखकर सुखराम चिल्लाया : 'लौट चलिये सरकार !'

झाड़ी के पीछे बघेर गरजा और फिर गर्जन बढ़ा। उस गर्जन को सुनकर कजरी घबरा गई। घोड़े भागे। लॉरेंस ने पूरे ज़ोर से रास खींची। पचास गज़ चलकर वह घोड़ा रुका। सूसन तो मुश्किल से रोकने में समर्थ हुई।

कजरी पैदल थी। सुखराम चिल्लाया : 'कजरी ! भाग !'

वह भागी। परन्तु क्या करती। बघेर बढ़ा आ रहा था। उसको भागते देखकर अब बघेर पीछे भागा।

सुखराम के पास एक मिनट का भी मौका न था।

वह झपटा। उसने बघेर पर चोट की। बघेर मुड़ा और उसी पर झपट पड़ा। अब बघेर और सुखराम की कुश्ती होने लगी। क्षण भर में ही इतना सब कुछ हो गया। और आज सुखराम को अपने बाप और मां की याद आई। आज उसमें लहू मचलने लगा। और यही कजरी को भी मारना चाहता था !

उसने कमर से कटार निकाली और मुट्ठे तक बघेर के कंधे में उसे घुसेड़ दिया। उसकी पीड़ा से क्रुद्ध होकर बघेर मचमचा उठा। सुखराम ने दूसरा हाथ मारा। बघेर दहाड़ रहा था। सुखराम ने बायां हाथ बगल से बघेर के मुँह में दे दिया था। बघेर बार-बार ज़ोर लगाकर उससे अपने को छुड़ा लेना चाहता था पर सुखराम दबा रहा था। बघेर गुरगुरा रहा था। वह उसे गिराना चाहता था। और तब वह उछला।

लॉरेंस ने पिस्तौल निकाली और हाथ उठाया किन्तु तभी आगे बढ़कर निर्भीक कजरी ने हाथ पकड़ लिया।

सूसन चिल्लाई : 'छोड़ दो कजरी !'

'सरकार ! मेरे मर्द को देखिये !' कजरी ने कहा : 'अभी ठहरिये। तब मार दीजियेगा। यह इस कुत्ते को अभी मार देगा ! सरकार मरद है मरद !!'

दोनों लुढ़कने लगे थे। बघेर ऊपर, कभी सुखराम ऊपर। बघेर चिल्लाने लगा था।

सूसन का कलेजा मुँह को आ गया था। वह कितना भयानक दृश्य था!

लॉरेंस के रोंगटे खड़े हो गये थे। उसका हाथ रह-रहकर काँप उठता था। परन्तु वह दृढ़ था। बघेर के पंजों से सुखराम छिल गया था। कजरी चिल्लाई: 'मार दे कुत्ते को।'

सुखराम अब बघेर के ऊपर था जैसे उसमें बिजली दौड़ गई थी। वह स्त्री की पुकार थी। और फुर्ती से वह उसके पेट में कटार भोंकने लगा। उसकी पीड़ा से व्याकुल आर्त्त होकर बघेर अब गरजा।

सुखराम ने उसका पेट फाड़ दिया।

और सुखराम बेहोश होकर बघेर पर लेट गया था। लहू धर-धरकर बह रहा था परन्तु बघेर मृत था।

लारेंस और सूसन घोड़ों से कूदे।

सूसन ने देखा कजरी डगमगा रही थी और वह जैसे गश खा गई। सूसन ने आगे बढ़कर उसे पकड़ लिया। और सचमुच कजरी का साहस चरम सीमा तक पहुँच चुका था। आखिर वह अपने पति की शक्ति की सीमा देखना चाहती थी और आज उसके नयन जैसे सफल हो गये थे। मंज़िल पर पहुँचकर जैसे मुसाफ़िर बैठ जाता है वह गश खा गई थी।

कजरी होश में आई तो देखा। सुखराम के पास दौड़ गई। उसने गोद में सुखराम का सिर रख लिया। वह अब होश में आ रहा था।

कजरी मुस्कराई और उसने लॉरेंस को देखा। वह ऐसे देख रहा था जैसे आश्चर्य्य में डूब गया हो। सूसन ने बैठकर सुखराम के सीने पर लगे घाव को छूआ।

'न न मिसी बाबा', कजरी ने कहा। और हाथ झटक दिया।

सूसन ने झिझककर हाथ हटा लिया। उसकी समझ में नहीं आया। वह प्रभावित थी। सूसन ने फिर हाथ बढ़ाया परन्तु इस बार पहले से दृढ़ स्वर में गंभीरतापूर्वक ही उसे कजरी ने फिर टोका।

सूसन झल्लाई।

उसने कहा: 'बेवकूफ़!'

'कजरी,' सुखराम ने डाँटा: 'तू नहीं समझती! यह कौन है? मालकिन

है। कसूर की माफी मांग ! पाँव पकड़।'

कजरी रो दी।

'क्यों रोती है ?' सूसन ने पूछा।

सुखराम ने कहा : 'सरकार इसका कहना है कि इसके रहते, इसके आदमी को कोई दूसरी औरत नहीं छू सकती।'

सूसन की समझ में आया। सुखराम ने कहा : 'माफ़ करें सरकार। आप मालकिन हैं, पर यह नहीं समझती।'

सूसन हँस दी और उसने अंगरेज़ी में लॉरेंस को बताया। लॉरेंस ने आश्चर्य्य से कजरी की ओर देखा और उसे तब और भी अधिक आश्चर्य्य हुआ जब उसने देखा कि कजरी सुखराम के सीने पर लगे घाव को अपनी साड़ी से साफ कर रही है। वह कितनी महिमान्वित थी। कितना गर्व था उसको !

और एक लॉरेंस था। सूसन ने अंगरेज़ी में उससे कहा : 'कम लारेन्स ! जंगली ने शेर मारा, सुसभ्य से खरगोश भी निकल भागा।'

लॉरेंस की आँखों में प्रतिहिंसा जगी और उसने सूसन को ऊपर से नीचे तक आँका।

कजरी ने कहा : 'सरकार ! आपके पास पिस्तौल है। आप ठहरें, मैं लोगों को ले आती हूँ। वे इसे ले जायेंगे।'

सुखराम कोठरी में लेट गया। सूसन ने सिपाही भेजकर डाक्टर को कस्बे से बुलवाया। डाक्टर रात ही को आया।

डाक्टर हि-हि-हि करके हँसकर खुशामदी ढंग से बात करता था। कजरी को ताज्जुब हुआ। यही डाक्टर कितनी हुकूमत और साहबियत दिखाया करता था। लॉरेंस ने अंगरेज़ी में कुछ कहा। डाक्टर समझा नहीं। सूसन हिन्दी पर उतर आई। डाक्टर मरहम-पट्टी करके चला गया। कजरी ने देखा। वह फ़र्क कितना बड़ा था। डाक्टर इन लोगों के सामने कितना देसी साबित हुआ, जब कि वह पहले नस्ल से अंगरेज बनने की कोशिश किया करता था !

डाक बँगले में आकर शराब उंडेलते हुए लॉरेंस ने कहा : 'मुझे अब आदत नहीं रही।'

सूसन ने व्यंग्य से कहा : 'तुम भी तो फौज में हो।'

लॉरेंस ने कहा : 'मगर अब मेरी दिलचस्पी साहित्य में बढ़ गई है। तुम कुछ पढ़ती भी हो !'

'अखबार पढ़ती हूँ।'

'किताबें नहीं ?'

सूसन ने बताया। वह पढ़ी क्यों नहीं है। लॉरेंस ने उसे साहित्य की ओर मोड़ दिया और मनोविज्ञान की वे पेचीदी पहेलियाँ सुनाने लगा जिनका आधार यौन सम्बन्धों से था। कँवारी लड़की। इस मामले में नादान। दिलचस्पी से सुनती रही। लॉरेंस का साहस खुला। उसने उसे कविताएं सुनाईं। वे सब दर्द-भरी थीं।

सुखराम सो गया तो कजरी उठ खड़ी हुई। उसने सिर पर साड़ी ढँकी। रोई थी इसलिये मुँह धोया और फिर बीड़ी पी। फिर डाक बँगले में आ गई।

मेज़ सज गई। आज कजरी अकेली थी। लॉरेंस उसे बीच-बीच में देख लेता। खाना खाकर वह शराब पीने लगा। सूसन बक-बक करती रही। लॉरेंस ने किसी बात पर उसका चुम्बन लिया। सूसन हँस दी। कजरी देहलीज़ पर बैठी-बैठी ऊब गई थी। सूसन सोने चली गई। साहब उठा। द्वार पर ठोकर लगी। देखा कजरी थी। वह उठी और उसने उनींदे नेत्रों से उसे देखा। लॉरेंस घूरकर देखता रहा। उसकी आँखों में मस्ती थी। वह चली आई। लॉरेंस खड़ा रहा।

उसकी मनःस्थिति विचित्र हो रही थी। वह क्या करे ?

उसने पुकारा : 'सूसन सायर !'

सूसन आई। घबराई-सी। बोली : 'क्या हुआ ?'

'मैं सो नहीं सकता।'

'क्यों ?'

'यह सारी ज़िंदगी !' उसने बढ़कर कहा—'यह क्यों है सूसन ! मैं समझ नहीं पाता। यह ओहदे, यह दौलत, यह सब मुझे खोखले-से लगते हैं। यह सब क्या है ?'

सूसन हँस दी। कहा : 'तुम कवि हो गये हो न ? सो जाओ।'

'सो जाऊंगा सूसन। सदा के लिये सो जाऊंगा। दूर, इंगलैंड से बहुत दूर !'

'चलो सो जाओ !' लॉरेंस का हाथ पकड़कर सूसन ने कहा।

लॉरेंस ने उसे पकड़कर चूम लिया।

'तुम शराब के नशे में हो।' सूसन ने कहा। 'चलो सो जाओ।'

लॉरेंस पालतू की तरह आ गया। सूसन ने उसे सुला दिया और ओढ़ा दिया। हल्का चादर था। फिर वह चली गई। उसके जाने के बाद लॉरेंस

के दोनों हाथ इधर-उधर, कुहनी पर मुड़कर, उठ गये, और उसने दो बार मुट्ठियाँ बंद कीं, और फिर दोनों बार खोल दीं, किन्तु तीसरी बार जो मुट्ठियाँ बँधी तो उंगलियाँ फिर खुलीं नहीं·····

३३

बड़ा सा'ब दौरे पर था। आस्मान में बादल घिर गये थे। सुखराम गांव आया था। उसे वर्दी पहनकर देखा तो वे ज़मींदार साहब चौंके जिन्होंने उसे एक दिन थाने में बन्द करवा दिया था। आज वे उसकी कुशल-क्षेम पूछने लगे। सुखराम ने फ़र्क देखा। बखुद इंसान की पूछ नहीं, उसके ओहदे की कद्र होती है। वह कुल अर्दली था, पर साहब का अर्दली भी साहब का ही आदमी होता है, जैसे पूंछ भले ही हो, मगर है तो आखिर शेर की ही।

बिजली चमक रही थी। सुखराम बाज़ार में गया। वहाँ आज जो मिलता वह सम्मान से। बराबरी से बात करता। आज बनिये भैया-भैया करके बात करते थे। एक ने पीछे से कहा : 'कन्नट है। अंगरेजों के पास कोई भला आदमी तो रहता नहीं, कन्नट, भंगी, धोबी, सईस बस यही रहते हैं। इन्हींके हाथ का वे खाते-पीते हैं। मलेच्छ हैं मलेच्छ। भागवत में लिखा ही है कलजुग में मलेच्छों का राज हो जायेगा।'

पानी बरसने लगा।

सुखराम ने जाना चाहा, पर हिम्मत नहीं पड़ी। बादल तो ऐसे आ गये थे जैसे आस्मान में बाढ़ आ गई हो। घर पहुँचते-पहुँचते तो तार-तार भींग जायेगा। फिर कजरी लड़ेगी। मिसी बाबा का काम नहीं हो सकेगा।

वह चला। पानी ज़ोर से आ गया। चलने की इच्छा ने और बढ़ाया, परन्तु आखिर रुक गया। अब वह ठीक हो गया था। उसका यश फैल गया था। साहब उस पर अत्यन्त प्रसन्न होता, परन्तु वह अभी आया नहीं था। मिसी बाबा ने कहा था कि वह उसे इनाम दिलायेंगी। कजरी ने सुना था तो प्रसन्न हो उठी थी। उसके सुखराम को इतने आदमियों के बीच में बिल्ला मिलेगा।

कजरी अब एक नई बात अनुभव करती। उसके चेहरे पर कुछ पीलापन

आ गया था। होठों पर की मुस्कान बड़े गौरव से चेहरे पर चमका करती थी। क्या हो गया था उसे। सारी देह सालस रहती, पलकों पर जैसे एक उनींदा खुमार छा गया था।

कल उसने सुखराम से कहा था। सुखराम देखता रह गया था। कजरी ने कहा था : 'सुनता है !'

'क्या !'

'मैं मैं माँ·····'

सुखराम को खुशी हुई थी। वह कह नहीं सकी थी।

'सच ?' सुखराम ने पूछा था।

कजरी उसके सिर को सहला उठी थी। उसकी आँखों में चमक थी। देखकर लगता था जैसे वह गरिमा से भर गई थी। उसकी आँखों में एक अद्भुत स्वप्न था। सुखराम उसे एकटक देखता रह गया था।

वह लजा गई थी। और सुखराम ! वह चित्र उसकी आँखों में सदा-सदा के लिये अमर हो गया था। उसने गर्व से उसको वक्ष से लगा लिया था।

कजरी सोने लगी थी। आज देही टूट रही थी। सुखराम नहीं आया था। कहाँ रह गया वह ! आस्मान में मेघ-गर्जन होता था। रात हो गई थी। अंधकार बरस रहा था। हवा काली हो गई थी और जब चलती थी तो सारी धरती और व्यापक आकाश को काले रंग से भिगोये दे रही थी। बाहर सुनसान था। साँय-साँय गूंज उठती थी।

पर वह काया का कष्ट कजरी को प्रिय था। प्रत्येक स्त्री जब माँ बनने को होती है तो उसे एक सहज गर्व होता है। वह धरती का-सा गर्व होता है।

बाहर अभी तक पानी बरस रहा था। कमबख्त झड़ी लग गई है, जाने कहाँ होगा वह ! रुक ही गया होगा। अच्छा है इस पानी में नहीं आया। बिजली है कि कान फाड़े डालती है। गरजती है तो कजरी को लगता है, कोई उसके भीतर डर रहा है, वह कितना कोमल होगा। कैसे सहता होगा इस सबको ! पर वह शेर का बच्चा है। वह भी शेर ही होगा। और कजरी कल्पना करती है। वह बूढ़ी हो जायेगी। तब सुखराम भी बूढ़ा हो जायेगा।

उस समय उसका पुत्र उन्नत भाल, प्रशस्त वक्ष बगल में खड़ा होगा। कितना सुन्दर लगेगा वह ? सुखराम से भी ज्यादा सुन्दर, ऐसा कि जैसा कोई नहीं हुआ। वह उसे पालेगी। अपना सब कुछ उस पर न्यौछावर कर देगी। अब वह उसके लिये छोटे-छोटे कपड़े बनाकर रखेगी। पैदा होते ही उसे छाती से लगाकर दूध पिलायेगी। कैसे पियेगा वह दूध। उसे कौन बता देता है जो वह मुँह चलाने लगता है। कजरी का खून दूध बन-बनकर उतरेगा उसके लिये।

ममता का यह चमत्कार किस स्त्री को विह्वल नहीं कर देता। जीवन के निर्माण और सृजन की यह शक्ति जिसमें हो, वह क्यों न उसका गर्व करेगी ? कैसा आता है यह इंसान ! क्या जानता है ! और उसी मांस के लौंदे को जब माँ पालती है, अपने समय को नष्ट करती है, तब वह कितना बड़ा निर्माण करती है, जैसे पल-पल वह सृष्टि में एक नयी शक्ति, एक नये सौंदर्य्य का सृजन कर रही हो।

क्वाँ-क्वाँ करके वह दुधमुँहा, बिना दांत के मुँहवाला, फूले-फूले गालों वाला, छोटे-छोटे हाथ-पाँव चला-चलाकर रोयेगा। कजरी उसे झुलायेगी और वह चुप हो जायेगा। वह नींद में मुस्करायेगा जैसे फूल खिलता हो। क्या वह सुपना देखता है तब ? लोग कहते हैं स्यार डराता है उसे। डराता है तो डरता क्यों नहीं वह !

फिर जब वह घुटनों पर चलेगा, उसके दूध के दाँत निकलेंगे। धूल में भर-भर जायेगा। कजरी उठायेगी तो लड़ेगा। रोयेगा, मचलेगा। पर कजरी तब उसे मट्टी खाने को छोड़ थोड़ा ही देगी ! भले ही उसकी मासूम आँखों में पानी भर-भर आये।

और फिर वह एक दिन चट्टान की तरह खड़ा हो जायेगा। सुखराम बघेर से लड़ा है, वह शेर से लड़ेगा। फिर उसका ब्याह होगा। बटुआ-सी बहू आयेगी।

यह भी कोई बात हुई। वह इत्ता लम्बा होगा तो बहू बटुआ-सी क्या अच्छी लगेगी ? नहीं बहू तो छोटी ही अच्छी। छमछम करती आंगन में डोलेगी !

और कजरी कहेगी : 'बहू ! तेरा यह इत्ता-सा था। मैंने ही इसे इत्ता बड़ा बना दिया है। छोटा-सा था।'

छोटा-सा था। तब कजरी का कहना नहीं मानता था तो वह उसे हाथ-पाँव बाँधकर बिठा देती थी। वह अपनी भोली-भोली आँखों में गुस्सा भरे देखता था। कजरी झूंठे को गुस्सा दिखाती थी, मन ही मन हँसती थी। नादान रोकर उसी-से तो चिपटता था।

और कल्पना फैलती चली गई।

सूसन कमरे में लेटी पढ़ रही थी। लॉरेंस ने बोतल खाली कर दी और उठ खड़ा हुआ। वह चुपचाप चला। सूसन के कमरे का पर्दा हटाकर देखने लगा। सूसन पढ़ने में लगी थी। वह दबे पाँव पास चला गया।

आज वह उन्मत्त हो गया था। कजरी ने जो ज्वाला जगाई थी वह कुछ भस्म करना चाहती थी। कजरी को छूने की उसमें हिम्मत नहीं पड़ी क्योंकि वह सुखराम की शक्ति को देख चुका था। वह अतृप्त व्यक्ति अपने आप व्याकुल था।

सूसन को पता नहीं चला।

लॉरेंस उसके पलँग पर बैठ गया। आज वह सूसन के प्रति वासना के ताप से जल रहा था। कौन जानता है। सुदूर ! भारत में एक गाँव ! क्यों न वे आनन्द मनायें। वह इंगलैंड में था तब स्त्रियों के बीच रहता था। यहाँ सारा जीवन निष्फल था।

सूसन को लगा उसकी जांघ पर कुछ पड़ गया। वह लॉरेंस का हाथ था। एकदम से सूसन चौंककर उठ बैठी।

'सूसन !' लॉरेंस ने भर्राये स्वर से कहा : 'डर गई ?'

सूसन ने कहा : 'नहीं। सोते क्यों नहीं ?'

'मैं सो नहीं पाया। यहीं सो जाऊँ ?'

सूसन ने देखा। तब स्त्री समझी और उसका कौमार्य्य एक बार भीतर ही भीतर काँप उठा। उसने कहा : 'यहाँ ? क्यों ?'

'तुम मुझे अच्छी लगती हो। सूसन !!' लॉरेंस ने कहा : 'बताओ ! इस साम्राज्य में क्या रखा है ? हम तुम दोनों तरुण हैं, पर वह क्लब नहीं, वह आनन्द नहीं, वह जीवन नहीं। दोनों वक्त पेट भर खा लेना ही तो जिन्दगी नहीं है !' लॉरेंस ने समझाने की चेष्टा करते हुए कहा : 'कैसे सो जाऊँ ? सोने की कोशिश करता हूँ पर नींद नहीं आती। न जाने कहां चली गई है।'

'तुम इतने व्याकुल क्यों हो ?'

'मैं व्याकुल नहीं हूँ,' लॉरेंस ने कहा और उसने कसकर सूसन का मुख चूम लिया।

सूसन घबरा गई। कहा : 'क्या करते हो ?' वह मुस्कराया।

सूसन समझी नहीं।

'आओ सूसन।' लॉरेंस ने कहा : 'यह अंधेरी रात, गरजती हुई बिजली, तूफ़ानी हवा। क्या तुम्हारे अन्दर कोई हलचल नहीं होती ?'

'कैसी हलचल !' सूसन ने कहा, परन्तु उसका स्वर काँप गया था। वह लॉरेंस का संबल बन गया।

'तुम कुँआरी हो सूसन। मैं जानता हूँ, पर यह सब पुराने खयाल हैं। इंगलैंड तरक्की कर रहा है। अमेरिका को देखो। वहाँ कितनी मस्ती है।'

लॉरेंस आगे बढ़ा। उस पर जुनून छा रहा था। उसकी आँखों में नशा लाल हो चुका था और उसकी हर साँस से बू आ रही थी।

उसे इस प्रकार अपने शरीर से सटता हुआ देखकर हठात् पलँग से उछलकर सूसन झटके से खड़ी हो गई।

लॉरेंस बैठा रहा। उसने कहा : 'पुरानी दुनिया बदल रही है सूसन !'

'मैं जानती हूँ।'

'ज़िद न करो। आओ ! जीवन में सुख वही है जो प्राप्त कर लिया जाये।'

'पर मैं औरत हूँ।' सूसन ने कहा और द्वार की ओर बढ़ी।

लॉरेंस ने रास्ता रोक लिया।

'मुझे जाने दो लॉरेंस !' सूसन ने कहा : 'तुम शराब पी गये हो। तुम नशे में हो। तुम नहीं जानते तुम क्या बक रहे हो। यह इंगलैंड नहीं है। इंडिया है। ग़नीमत है कि पानी बरस रहा है। कोई है नहीं। वर्ना नौकरों को मालूम हो जायेगा।'

'कोई नहीं जान सकेगा सूसन,' लॉरेंस ने उसके कंधे पकड़कर कहा : 'बस हम तुम होंगे। और कोई आयेगा ही क्यों ? तुम सुन्दरी हो। जब से मैंने तुम्हें देखा है, मेरे हृदय में आग जल रही है। तुम मेरे साथ इंगलैंड चलो सूसन ! वहाँ मेरे चाचा की जायदाद बेचकर मैं तुम्हें कहीं दूर किसी प्रशान्त महासागर के द्वीप में ले चलूंगा ! कैसा साहसिक कार्य रहेगा वह !'

'वैसा ही जैसे तुमने खरगोश का शिकार किया था !' सूसन ने मुस्कराकर कहा। लॉरेंस के भीतर प्रतिहिंसा जाग उठी। उसने कहा—'सूसन ! तुम उस देशी कुत्ते की तारीफ़ करती हो ?'

'वह बहादुर है।' सूसन ने कहा।

'बहादुर!' लॉरेंस ने कहा—'बोझ ढोने वाला गधा हमेशा आदमी से ज्यादा बहादुर है। इन्सान की ताकत जिस्म की नहीं, दिमाग़ की होती है।'

'ठीक है।' सूसन ने व्यंग्य से कहा—'आज तभी तो तुम्हारा दिमाग़ मेरे सामने ताकत दिखा रहा है। क्या करूँ बाप की इज्ज़त का ध्यान है, वर्ना नौकरों को बुलाकर अभी निकलवा देती।'

लॉरेंस क्षुब्ध हो गया। उसने कहा : 'तुम मुझसे घृणा करती हो सूसन!'

'मैं तुम पर दया करती हूँ लॉरेंस।' सूसन ने कहा—'घृणा भी योग्य व्यक्ति से की जाती है। तुम समझे थे कि मैं कोई चरित्र-हीन स्त्री हूँ। मैं क्रिश्चियन हूँ। मैं पवित्र हूँ। मैं वासना की कठपुतली नहीं हूँ। तुमने क्या मुझे किसी गरीब क्लर्क की स्त्री समझा था! मेरे पिता तुम्हें यहाँ अपने देश का समझकर छोड़ गये हैं तो तुम उनसे ही दग़ा कर रहे हो? चले जाओ यहाँ से। तुम्हें इतनी हिम्मत हुई कैसे?'

लॉरेंस पीछे हट गया। उसने होंठ चबाये और धीरे से कहा : 'मैं चला जाऊँगा सूसन! लेकिन तुम्हारा यह अहंकार नहीं रहेगा। जो बर्त्ताव तुमने मुझसे किया है, उससे अच्छा बर्त्ताव तो तुम इन ग़ुलाम हिन्दुस्तानियों से करती हो? तुम्हें बड़े बाप का घमंड है, पर इंगलैंड में ऐसे पोलिटिकल एजेंट जो भारत से धन लूट-लूटकर ले जाते हैं, वे सम्मान नहीं पाते। तुम समझती हो तुम्हारी इंडिया के वायसराय के साथ शादी होगी! मैं दग़ा कर रहा हूँ? अगर मैं इतना घृणित हूँ तो मुझे क्षमा करो सूसन, मुझे क्षमा करो·····'

उसने सूसन के पाँवों को पकड़ लिया। ससन पिघल गई। उसने कहा : 'उठो लॉरेंस!'

'नहीं मुझे यहीं रहने दो। मैं पापी हूँ।'

सूसन ने कहा : 'नहीं लॉरेंस। इसे भूल जाओ।'

उसने लॉरेंस को उठाया। उसका मुँह उतरा हुआ था।

'तुमने मुझे माफ़ कर दिया सूसन!'

'भूल जाओ लॉरेंस। भूल जाओ इस सबको।'

'भूल जाऊँ!' लॉरेंस ने कहा—'यह तो मरते वक्त तक मेरे अन्दर कांटे

की तरह गड़ता रहेगा।' उसने सिर पकड़ लिया। सूसन उसके पास चला गई और उसने कहा : 'रोओ नहीं लॉरेंस। मर्द बनो। मर्द! एक औरत के सामने तुम रोते हुए अच्छे नहीं लगते।'

'तुम पवित्र हो सूसन!' लॉरेंस ने कहा—'यदि तुमने क्षमा कर दिया है, तो मुझे मेरे माथे पर चूम लो।'

सूसन ने अपना मुँह उठाया और तब लॉरेंस ने उसकी कमर में हाथ डाल दिया और अपने गर्म-गर्म होठों से उसके होठों को कुचल दिया। क्रोध से सूसन लड़ने लगी। लॉरेंस ने छल किया था। उसने चेष्टा की किन्तु वह उसके आलिंगन से अपने को छुड़ा नहीं सकी। लॉरेंस घुटती हुई हँसी हँसा और बोला : 'बुला लो नौकरों को। तुम्हारे इस अस्त-व्यस्त रूप को देखकर वे समझ जायेंगे कि तुम अब भी कुँवारी हो!' सूसन ने उसे नोंच खाया पर लॉरेंस ने उसे पलंग पर पटक दिया। और उसने उसके हाथों को पकड़ लिया। झगड़े में सूसन का गाउन फट गया। उसका शरीर चमकने लगा। लॉरेंस भड़क उठा। सूसन ने लात दी। वह लॉरेंस के सीने में लगी और वह सम्भल नहीं सका। लॉरेंस पीछे लुढ़का। परन्तु तभी उसने पाँवों से उठती हुई सूसन को दबा लिया। लॉरेंस की पीठ के धक्के से बगल की मेज़ हिल गई और उस पर से गिलास गिरकर झन्न करके टूट गया।

हालांकि कजरी सो रही थी, और पानी बरस रहा था, पर वह आवाज़ पहुँच ही गई। कजरी की आँख खुल गई।

'क्या हुआ?'

वह भागी। मिसी बाबा के कमरे में रोशनी!!

'क्या हो रहा है आखिर!'

कमरे में जाकर देखा कि लॉरेंस ने सूसन को दबा लिया है और वह लड़ रही है। 'सरकार!' कजरी ने फूत्कार किया।

लॉरेंस ने कजरी को देखा और वह पागल-सा खड़ा हो गया। उसने कहा : 'भाग जाओ!'

कजरी डर गई। सूसन ने घबराहट में बोलने का यत्न किया। पर लज्जा के कारण बोल नहीं सकी। हकलाती-सी रह गई।

लॉरेंस चिल्लाया : 'निकलो·····'

सूसन ने दोनों हाथ फैला दिये जैसे बचाओ·····

कजरी नहीं हटी । वह समझ गई । उसकी आँखें चमकने लगीं । उसने कहा : 'ऐ सा'ब ! चल अपने कमरे में चला जा !' उसने हाथ से उसे द्वार से बाहर जाने का इशारा किया और कहा : 'मालकिन हुकम दें ! अभी इसकी अकल ठिकाने कर दूंगी ।'

सूसन ने आँख खोल दी और बोली : 'इसको मार दो कजरी ·····

कजरी के हाथ में कटार चमक उठी । सूसन उठ बैठी । लॉरेंस ने कटार देखी तो गुस्से ने उसे पागल कर दिया और सूसन ने कहा : 'कमीना ! नीच ! कुत्ता·····

पर लॉरेंस ने तकिया खींचकर मारा और कजरी जो सूसन की बात में ध्यान बँटा गई थी, उसके हाथ पर तकिया लगा और छुरे पर घुस गया । लॉरेंस ने आगे बढ़कर घुमाकर लात दी ।

कजरी बचा गई । परन्तु कटार को वह खाली नहीं कर सकी । उस पर तकिया भुक से घुस गया था । सेंमल की मुलायम रूई थी, गिलाफ़ रेशमी था । लॉरेंस ने दूसरी लात चलाई ।

कजरी के नितंब पर पड़ी । वह भहरा गई और कुर्सी से टकराई । तभी लॉरेंस ने पैशाचिक क्रोध से उसके मुख पर घूंसा मारा । उसे गश-सा आ गया ।

वह गिरी । और बेहोश-सी हो गई । सूसन झपटकर उसके पास आ गई और लॉरेंस को उसे मारने को झुका देखकर उसने उसका हाथ पकड़ लिया ।

'हट जाओ !' लॉरेंस ने फूत्कार किया ।

'नहीं, नहीं, तुम उसे नहीं मार सकते ।' सूसन ने रोते हुए कहा और लॉरेंस का हाथ काट खाया । लॉरेंस ने उसे एक चाँटा दिया और पकड़कर बिस्तर पर दे मारा । सूसन दर्द से चिल्ला उठी ।

लॉरेंस हँसा । आज वह बिल्कुल पशु हो गया था । उसने कजरी का पाँव पकड़ लिया और खींचने लगा । सूसन डर के मारे गुरगुराई ।

लॉरेंस ने खींचकर उसे बाहर पटक दिया । और फिर उसने सूसन की ओर देखा और हँसा, तभी बाहर कड़कड़ाकर आकाश और पृथ्वी को विदीर्ण करती हुई बिजली गिरी । खिड़कियों के शीशे चमक उठे और फिर सब शांत हो

गया। मूसलाधार वर्षा होने लगी, जैसे प्रकृति रोने लग गई थी। कजरी बेहोश पड़ी रही।

जब उसे होश आया सन्नाटा था। बदन में दर्द हो रहा था। पेट में भी कुछ कष्ट था। माथा अभी तक भनभना रहा था। वह धीरे से उठकर बैठ गई। आँख खोलकर देखा। पानी बरस रहा था। गगन से अनवरत धारासार वेदना बरस रही थी।

कजरी बल लगाकर उठी। देखा द्वार बंद था। एक छोटा-सा आलोक का विंदु शीशे में से निकलता दीख रहा था।

उसने शीशे की दरार से देखा।

अब कोई हलचल नहीं थी। कमरे में पूर्ण निस्तब्धता थी। रोशनी में गिलास के टूटे हुए टुकड़े चमक रहे थे। मेज़पोश गिर गया था। किताब खुली हुई धरती पर उल्टी पड़ी थी। तकिया एक कोने में पड़ा था जिसमें अभी तक कटार भुकी हुई थी।

सूसन रो रही थी। उसके मुँह से आवाज़ नहीं निकल रही थी। केवल आँखों से पानी निकल रहा था। उसके नीचे का होंठ बार-बार बाहर निकल आता था जिसे वह दांतों से चबा लेती थी। उसके हाथ उसके मुँह पर रखे हुए थे जैसे वह कुछ देखना नहीं चाहती थी। उसके वस्त्र अब भी अस्त-व्यस्त थे और उसके फटे गाउन में से उसका शरीर चमक रहा था।

लॉरेंस अब उठ खड़ा हुआ था। वह सूसन के पास गया। उसने अनुनय के स्वर में कुछ कहा। फिर रुका रहा, पर सूसन नहीं बोली।

लॉरेंस ने कहा : 'सूसन !'

फिर क्या कहा कजरी नहीं सुन सकी, न समझ सकी क्योंकि वह सब अंगरेज़ी में था।

सूसन ने उसकी ओर नहीं देखा। लॉरेंस उसके बालों को सहलाता रहा। जैसे वह उसे सांत्वना दे रहा था। वह सामने बैठ गया और फिर मुस्कराया। सूसन ने अपने बाल नोंच लिये।

लॉरेंस दरवाज़े की तरफ़ बढ़ा। फिर रुक गया। कहा : 'अब तुम क्या करना चाहती हो ?'

सूसन ने उत्तर नहीं दिया।

'सच कहो सूसन ! तुम्हें कुछ अच्छा नहीं लगा।'

सूसन ने जलते नेत्रों से देखा।

लॉरेंस ने हँसकर कहा : 'औरत !'

वह द्वार के पास आ गया।

सूसन ने नहीं देखा। वह रोने में मग्न थी। लॉरेंस ने दरवाज़ा खोला। कजरी हटकर एक ओर छिप गई। उसने इधर-उधर देखा और जब कजरी न दिखी तो उसने कहा : 'सूसन ! वह कुतिया तो भाग गई। अब अगर अपनी इज्ज़त रखना चाहती हो तो शोर-गुल न करो और चुप बनी रहो। फिर दोनों ऐसे ही आनंद किया करेंगे। ठीक है ?'

सूसन नहीं बोली। वह चला गया। जब वह अपने कमरे में आया तब उसने शराब की बोतल निकाली और पीने लगा। आज जो कुछ उसने किया था वह उसे उद्‌भ्रान्त कर रहा था। सोच रहा था। कहीं बूढ़े के आने पर इसने कह दिया तो ! पर कहेगी कैसे ? मैं उसे तब तक आदत डाल दूँगा। ससेक्स में उसने ऐसे ही बर्टी से किया था। पहली बार के बाद बर्टी रोक ही नहीं सकी थी। नहीं। यह आनन्द एकतरफ़ा नहीं होता। औरत सिर्फ धर्म-वर्म में जकड़ी हुई बेवकूफ़ होती है। वह व्यर्थ ही आनन्द नहीं लेती, और न ले तो कोई बात नहीं, अपने से मिलने वाले आनन्द से पुरुष को व्यर्थ ही वञ्चित कर देती है।

लॉरेंस की राय में यह सब उसने ठीक किया था। इस समय यदि वह इतना दुस्साहस नहीं करता तो वह उसे कुचल देती। बुड्ढे से तो वह उस समय भी कहती। फिर अब शायद नहीं कहेगी। कहेगी तो बुड्ढा भी शर्म से दब जायेगा। नौकरों की मदद वे नहीं ले सकते। बदनामी का डर है। दूर-दूर तक खबर फैल जायेगी। सॉयर कहीं मुँह दिखाने लायक नहीं रह जायेगा।

लॉरेंस अब सोच रहा था। उसे डरने की वजह दिखाई दी। कजरी देख गई है। पर क्या हुआ। उसकी कोई नहीं मानेगा। अगर वह सूसन की बात फैलायेगी तो उसे निकाल दिया जायेगा। सूसन खुद कहेगी यह झूंठ है। सूसन क्या यह कहेगी कि हाँ मेरे साथ लॉरेंस ने बलात्कार किया था ! कभी नहीं।

वह एक सभ्य औरत है और अपने सम्मान की रक्षा करना क्या वह नहीं जानेगी ? और लॉरेंस भी सूसन को समझायेगा कि इस सबको छिपाने के लिये जरूरी है कि प्रेम चालू रखा जाये। उससे संदेह नहीं होगा। मगर क्या वह सूसन से विवाह कर लेगा !

सूसन सुन्दरी है। उसके शरीर का सौन्दर्य्य उसे अभी तक व्याकुल किये दे रहा था। पर लॉरेंस का मन खट्टा हो गया। प्रेम एक वस्तु है, विवाह और वस्तु है। दोनों एक जगह नहीं रह सकते। जब वह अमेरिका में था तब वह नंगी औरतों के नाच देखता था। गुप्त क्लब थे। क्या मज़ा रहता था। वह एक फ्रांस की स्त्री थी जो बिल्कुल नंगी होकर नाची थी। उसे कोई लज्जा ही नहीं थी। लेकिन सूसन कुमारी थी !!!

उसकी पैशाचिक वासना अब भी उद्दाम थी और उसने फिर प्याला भरकर गट-गटकर गले के नीचे उतार लिया और सिगरेट जलाकर पीने लगा।

लॉरेंस के चले जाने पर कजरी अपने स्थान से बाहर आ गई और जब उसे विश्वास हो गया तब वह चुपचाप सूसन के कमरे के भीतर घुस आई। द्वार बंद कर लिया और उसके पास गई।

वह बोली नहीं। सूसन उस समय घुटनों के बीच में सिर दिये चुपचाप बैठी थी। कजरी ने देखा तो आँखों में दया उमड़ आई। वह कितनी अपमानित-सी, लुटी हुई-सी बैठी थी। जैसे वह अनुभव कर रही थी कि वह निरीह थी, और केवल घृणा ही उसे चारों ओर दिखाई दे रही थी।

'मिसी बाबा !' सूसन की ओर देखकर कजरी ने कहा।

परन्तु वह वैसी ही बैठी रही।

'वह कहाँ गया ?' कजरी ने पूछा।

उत्तर नहीं मिला।

'मिसी बाबा !!' कजरी चौंकी।

सूसन ने मुँह छिपा लिया। कजरी ने कहा : 'रोती क्यों है ? मिसी बाबा।'

वह यह सुनकर रोने लगी। उसका फफकना धीरे-धीरे बढ़ चला और कजरी ने कहा : 'मिसी बाबा !'

'कजरी !' कहकर सूसन फूट पड़ी। नारी नारी ही थी। और इस समय सांत्वना ने उसे हिला दिया था।

कजरी ने उसका सिर सीने में छिपाकर हाथ फेरा। वह हाथ जब सूसन के बालों पर फिरा तब उसके भीतर से आर्द्र वेदना गल-गलकर बहने लगी। और उसकी असहाय व्याकुलता उसे बार-बार रुलाने लगी, जैसे आज उसकी सत्ता पानी बनकर बह जाना चाहती थी। यह पाप था। पाप की भयानकता से अधिक अपमान की जघन्यता उसे जर्जर किये दे रही थी। कजरी उसके सिर को सहलाती रही। और उसका वक्ष सूसन के आँसुओं से भींग-भींग गया। सूसन रोती रही।

कजरी ने कहा : 'कब तक रोओगी मिसी बाबा ! दुनिया में मर्द ऐसे ही होते हैं। मुझे भी ऐसे ही एक ने बिगाड़ दिया था।'

इस सांत्वना ने सूसन के मुँह पर कालिख फेर दी। वह हिचकी ले-लेकर रोने लगी। बाहर का पानी थम गया था, पर यहाँ दूसरी बरसात शुरू हो गई थी।

सुखराम लौट आया था। वह आज बड़ा प्रसन्न था। बच्चे के लिये पहले ही कपड़े ख़रीद कर ले आया था। सोच रहा था कजरी कितनी खुश होगी इन्हें देखकर।

कोठरी में पहुँचा तो चौंका। द्वार खुला था और रोशनी नहीं थी। उसने अन्धेरे में ही कपड़े उतारे और सूखे कपड़े पहने। सामान एक ओर रखकर लालटेन जलाई।

कजरी कोठरी में न थी ! खाट खाली पड़ी थी। कहाँ गई वह ! इस वक्त ! आधी रात की बेला है ! वह तो समझा था कि वह रोटी लेकर बैठी इन्तज़ार कर रही होगी। पर रोटी तो एक कोने में रखी है करी-कराई। वह खुद कहाँ चली गई।

सुखराम का हृदय आतुर हो उठा। वह विह्वल-सा बाहर निकल आया। सब ओर सन्नाटा छा रहा था। परन्तु मिसी बाबा के कमरे में अभी तक लम्प जल रहा था !

वह रोशनी देखकर वहाँ गया तो देखा द्वार बन्द था।

तब तो वह सो रही होगी।

फिर कजरी कहाँ गई ?

वह चुपचाप लौटने लगा। बूट की हल्की आहट सुनकर कजरी ने कहा : 'कौन ?'

'मैं हूँ।'

'कौन ?'

'सुखराम !'

कजरी बढ़ी पर सूसन ने कहा : 'मत खोल कजरी ! यह वही शैतान है।'

सुखराम ने धीरे से कहा : 'कजरी ! तू मेरी आवाज़ नहीं पहँचानती ? अरी मैं हूँ सुखराम ! दरवाज़ा क्यों नहीं खोलती !'

कजरी ने सूसन को देखा।

द्वार खुल गया। सुखराम ने प्रवेश किया। उसको देखकर सूसन झपटकर उठी और उसके सीने पर सिर रखकर फूट-फूटकर रो उठी। सुखराम हक्का-बक्का रह गया।

'क्या हुआ ?' उसने पूछा।

सूसन ने कहा : 'सुखराम !!'

आज वह फिर अपने प्राण-रक्षक की शरण में आ गई थी। उसीने तो उसे उस दिन बचाया था। उस दिन उसीने तो उसकी लाज को बचाया था। सूसन का रोदन देखकर सुखराम का हृदय पसीज गया। उसने कहा : 'कजरी ! बताती क्यों नहीं ?'

कजरी ने कहा : 'तू क्या करेगा जानकर। यह औरतों की बात है।'

सूसन उस समय कजरी की महानता को देखकर व्याकुल हो गई। उसके सम्मान के लिये कजरी झूंठ बोल गई थी। परन्तु सूसन ने कहा : 'नहीं कजरी ! बता दे। इसको बता दे।'

'मिसी बाबा के साथ नये सा'ब ने पाप किया है।'

'पाप !!' सुखराम ने सूसन को धक्का दे दिया। वह शैय्या पर गिर गई।

'फिर रोती है ?' सुखराम ने पूछा।

'उसने ज़बरस्ती की है। बिचारी ने बहुत रोका, पर वह जीत गया।'

'जीत गया !' सुखराम को हठात् क्रोध चढ़ आया। उसने दांत पीस लिये

और वह फड़कने लगा। उसने झुककर सूसन के पाँव छूकर कहा : 'जब-जब मैं महिसासुर की बात सुनता हूँ तब-तब मुझे भवानी की याद आती है कजरी। धूपो का बदला याद है न ? मिसी बाबा हुकम दें। मैं तुम्हारा नौकर हूँ। मैंने तुम्हारा नमक खाया है !'

सूसन उठ खड़ी हुई। उसके नेत्रों में अब गुस्सा फिर से आ गया था। वह प्रतिहिंसा-सी लरज उठी थी।

उसने कहा : 'सुखराम !'

'सरकार !'

'तुम डरोगे तो नहीं।'

'सरकार जब तक जान है तब तक तो कोई डर नहीं।'

कजरी सकते में पड़ गई। क्या होने जा रहा है। अब क्या लड़ाई होगी। उसने कहा : 'मिसी बाबा !'

'क्या है ?' हठात् सूसन ने कहा।

'कहाँ जाती हैं ?'

'क्यों ?'

'सरकार आप गुस्से में हैं।'

'तो क्या इस वक्त मुझे हँसना चाहिये।'

कजरी उत्तर नहीं दे सकी। सूसन ने द्वार की ओर पग बढ़ाया और कहा : 'सुखराम !'

'जी सरकार !'

कजरी ने बढ़कर सुखराम को रोकना चाहा परन्तु उसका वह क्रुद्ध रूप देख-कर उसकी हिम्मत नहीं पड़ी।

हवा सांय-सांय चल रही थी। इतनी तेज कि कुछ सुनाई नहीं देता था। चारों ओर सूं-सूं सां-सां गूंज रही थी।

'मेरे साथ आओ।' सूसन ने कहा।

कजरी ने टोका। 'सरकार !'

'क्या है कजरी !'

'आपके हाथ में कुछ नहीं है।'

सुखराम पीछे चला : उसने कहा : 'वह है क्या जो मैं हथियार उठाऊँ। कजरी अवाक्-सी पीछे-पीछे चली।

सूसन ने इशारे से दोनों को द्वार के बाहर रोक दिया और अकेली कमरे में घुस गई।

लॉरेंस कमरे में खड़ा था। उसने सिगरेट का कश खींचकर ढेर-ढेर धुँआ उगला और फिर मस्ती से अँगड़ाई ली!

सूसन रुक गई और उसे जलते नेत्रों से देखने लगी।

'कौन!' लॉरेंस ने कहा।

'मैं हूँ, सूसन।' सूसन फुंकार उठी।

वह सूसन को देखकर चौंका तो था, परन्तु उसकी शैतानियत फिर जाग उठी थी। उसने सूसन को देखा तो उसके मुख पर वह एक कुटिल मुस्कराहट बनकर खेल गई। और आँखें खेलती हुई कहने लगीं मैं जानता था तुम अपने आप आओगी।

सूसन ने झपटकर चांटा मारा।

लॉरेंस हँस दिया। कहा : 'और मारो।'

सूसन दोनों हाथ चलाने लगी, तब लॉरेंस ज़ोर से हँसा और उसने पीछे हटकर कहा : 'शाबाश! इसके बाद!!' सूसन चिल्ला उठी : 'कमीने! कुत्ते!' पर लॉरेंस ने उसका हाथ पकड़ लिया और कहा : 'इसके बाद तुम फिर मेरी हो सूसन! यहाँ तुम्हें बचाने वाला कोई नहीं। और मैं जानता हूँ तुम्हारा यह क्रोध कितना कच्चा है। असल में तुम मेरे पास खुद आई हो।'

सूसन चिल्लाई : 'हट जाओ!'

द्वार पर सुखराम आ गया था।

सूसन ने सुखराम को इशारा दिया। लॉरेंस ने देखा तो एक बार वह सिटपिटा गया। वह सूसन का हाथ छोड़कर खड़ा हो गया था। उसने गरजकर कहा—'गेट आउट·····(निकल जाओ) यू स्वाइन इंडियन बास्टर्ड····· (तू सूहर हिन्दुस्तानी दोग़ला)'

सुखराम शेर की तरह झपटा और लॉरेंस को उसने ज़ोर का धक्का दिया। लॉरेंस का सिर भट से दीवार से जाकर टकराया और उसे हल्का-सा चक्कर आया। पर साहब का बच्चा अपने को मालिक समझता था। उसने छूटने की चेष्टा की। सुखराम ने उसकी गर्दन दबाई और औंधा करके टँगड़ी मारकर उसने लॉरेंस को गिरा दिया। लॉरेंस ग़ुस्से से ग़ुरगुराने लगा। सुखराम ने

उसकी नाक धरती से घिस दी और दो हाथ ऐसे करें जड़े कि उसकी आँख से पानी निकल आया।

तब सूसन रोष से आगे बढ़ आई। और कजरी का मुख खुल गया क्योंकि सूसन उसके ठोकर लगाने लगी। उसने अत्यन्त घृणा से बार-बार उसकी पसलियों में ठोकर दीं। जूते की चोट से वह बिलबिला गया। सूसन कह रही थी : 'मैं आई हूँ तेरे पास कमीने कुत्ते·····'

वह दाँत पीसती जाती थी और इतनी जोर से मुट्ठी बाँधे थी कि उसके नाखून उसकी हथेली में घुस गये थे।

लॉरेंस ने सुखराम के पंजे से छूटने की कोशिश की परन्तु वह असंभव था। सुखराम ने उसकी थूथड़ी घिस दी। लॉरेंस चिल्लाया नहीं, पिटता रहा। उसे क्रोध था, किन्तु पाप अब उसे दबाने लगा था। उसकी आधुनिकता अब मध्यकालीन धर्म की रूढ़ियों और सतीत्व के विचारों के नीचे कराहने लगी थी। अब वह पिटकर स्वयं उस नयेपन से डर रहा था। वह सतीत्व को रूढ़ि से तोड़कर अलग करते समय जब नारी को मुक्त कर रहा था, तब वह यह भूल गया था कि संभोग अपने आप में भले ही पाप नहीं हो, किन्तु स्त्री को पशु बनाकर उसका भोग करने की प्रवृत्ति पाशविकता ही है और जघन्य है क्योंकि वह स्त्री को समान स्वतंत्रता देना नहीं है, वरन् उसे दासी से भी बदतर बना देना है। और सूसन उसे एक नौकर से पिटवा रही थी। यह कितना अपमान था। द्वार पर खड़ी कजरी देख रही थी और अवाक् देख रही थी। उसे उसके पिटने में संतोष हो रहा था।

लॉरेंस फुफकार उठा : 'मैं गोली मार दूंगा !'

सूसन ने पाँव रोककर पुकारा : 'कजरी !'

'हाँ सरकार !!'

'एक रस्सी ले आ।' सूसन ने कहा।

कजरी रस्सी ले आई। सूसन ने कहा : 'बाँधो इसे, वर्ना यह गोली मा देगा।'

'तू हट जा कजरी।' सुखराम ने कहा।

कजरी हट गई। वह डर रही थी। क्या होगा अब ! जब बड़ा सा' आयेगा तो यह कहेगा नहीं ? परन्तु सुखराम निश्चिन्त था। उसने कहा

'सरकार ! इससे कह दें कि अगर यह उठा तो मैं इसकी हड्डी तोड़ दूंगा। पड़ा रहे यों ही।'

सूसन ने अंगरेज़ी में कहा : 'यू डैविल ! स्टे व्हेयर यू आर ! आइ'ल गेट योर बोन्स क्रशड बाई हिम ! यू थॉट आई वॉज़ हेल्पलेस। आइ'ल प्रिफ़र टु डाई, दैन टु सरवाइव एन इगनोबिल एण्ड सरवाइल एक्ज़िज़्टेन्स !'[1]

किन्तु लॉरेंस उठकर भागा। सुखराम ने उसकी टाँग पकड़ ली। वह धड़ाम से गिरा किन्तु सुखराम ने उसे बीच में ही थाम लिया। उसने कहा : 'सरकार ! यह शोर कर रहा है। लोगों को बुलाना चाहता है ! मैं इसे भीतर के कमरे में ले चलता हूँ।'

और उसने उसे उठा लिया जैसे वह बहुत हल्का था और भीतर के कमरे में ले जाकर धरती पर पटक दिया। कहा : 'कजरी ! रस्सी कहाँ है ?'

सूसन रस्सी लेकर बढ़ी। लॉरेंस पाँव चला रहा था। कजरी ने कहा : 'मिसी बाबा·····बचकर····· '

तब सुखराम ने उसका पाँव ज़ोर से धरती पर दे मारा। सूसन ने रस्सी उसके चारों ओर डाल दी। सुखराम उसे ज़ोर से दबाये रहा और दोनों ने उसे कसकर बाँध दिया। उस समय सूसन विकराल लग रही थी।

कजरी ने कहा : 'सरकार !'

'क्या है ?'

'अब रहने दीजिये।'

'नहीं।' वह फुफकार उठी।

लॉरेंस पड़ा था। उसके हाथ-पाँव बंध गये थे, वह धरती पर सीधा पड़ा था। उठने की चेष्टा की तो करवट के बल आ गया। उस समय सूसन ने ठोकर दी तो धरती पर औंधा हो गया।

'सरकार और कोई हुकम ?' सुखराम ने कहा।

सूसन ने आँखें उठाईं। वह आँखें अब फटी पड़ती थीं। लगता था अब वह सुलग उठी है, और थोड़ी ही देर में ज्वालामुखी की भांति फट पड़ेगी।

---

१. ओ शैतान ! ऐसे ही पड़ा रह। आज मैं इससे तेरी हड्डियों को तुड़वा दूंगी। तूने सोचा था कि मैं निस्सहाय थी ! मैं एक अपमानित और दासता की सत्ता से मर जाना ज्यादा पसन्द करती हूँ !

'इधर खड़े रहो तुम ।' सूसन ने कहा ।

कजरी नहीं समझी ।

सुखराम ने कहा : 'जो हुकम हुज़ूर !'

सूसन आगे बढ़ी ।

कजरी ने सुखराम से धीरे से कहा : 'अब क्या होगा ?'

'मैं क्या जानूँ ?' सुखराम ने कहा : 'भवानी से पूछ । मैं उसका नौकर हूँ, इस वक्त ।'

सूसन कमरे में गई । कजरी ने कहा : 'अरे मर जायेगा । वह तो पागल हो रही है । ऐसे नहीं हर लुगाई भवानी हो जायेगी !'

'कजरी !' सुखराम ने डाँटा, पर आवाज़ नहीं उठी ।

सूसन लौटी तो बाप का घोड़ा चलाने का हंटर लेकर आई । जिस वक्त उसने हंटर खोलकर फटकारा तब कजरी ने हाथ पकड़ लिया । कहा : 'मिसी बाबा ! आप पागल हो गई हैं ।'

सूसन ने उसे धक्का देकर अपने से दूर कर दिया और फिर वेग से आगे बढ़ी और फिर उसने मारना शुरू किया । लॉरेंस की पीठ पर सड़ासड़ हंटर पड़ने लगे । जिस हंटर की मार से मोटी खाल वाला घोड़ा हिरन हो जाता है, उसकी मार ने लॉरेंस के छक्के छुड़ा दिये । परन्तु वह होंठ चबाता रहा और सूसन का हाथ नहीं रुकता था । वह हर बार हाथ उठाती और साड़-साड़ उसे मारती । इस समय वह कितनी भयानक बन गई थी ।

लॉरेंस बेहोश हो गया पर चिल्लाया नहीं ।

कजरी ने तब उसे पकड़ लिया ।

'छोड़ दे मुझे ।' सूसन ने कहा·····

'सरकार ! वह मर गया है ।' कजरी ने कहा और ज़बर्दस्ती हंटर छीन लिया । वह उसे उसके कमरे में खींच ले चली । सुखराम पीछे-पीछे गया । कजरी ने कहा : 'मिसी बाबा ! बैठ जाइये ।'

वह बैठ गई । उसने सिर उठाया । सामने ही सुखराम था । सूसन ने कहा : 'अब, तुम जाओ सुखराम ।' सुखराम बाहर आ गया ।

बाहर भयानक हवा चिल्लाती फिर रही थी । फिर से बादल इकट्ठे हो रहे थे, पहले से भी काले और तूफ़ानी ।

अपने कमरे में आकर सूसन फूट-फूटकर रोने लगी । कजरी पास आ गई ।

उसने कहा : 'सरकार, रोने से क्या होगा ?'

'कजरी !!' वह फफक उठी।

'सरकार', कजरी ने कहा : 'दुनिया में औरत और मरद यही तो करते हैं।'

सूसन रोती रही।

कजरी ने कहा : 'हज़ूर !'

सूसन ने देखा।

कजरी ने कहा : 'आपकी तबियत नहीं थी। उसके लिये आपने मार-मार उसकी धज्जियाँ तो उड़ा दीं। आपने देखा नहीं था। उसकी कमीज़ तार-तार हो गई थी और पीठ जख्मों से भर गई थी। पर हज़ूर ! यह भी बड़ा कातिल आदमी है। आपने इतना मारा और वह चिल्लाया तक नहीं।'

'बस !' सूसन ने पूछा। जैसे वह पूछ रही थी कि क्या यही उसके सतीत्व का, उसकी पवित्रता का मोल है ?

'और क्या मालकिन जान दे देंगी ?' कजरी ने कहा।

मरना कितना कठिन था ! सूसन को लगा कि वह बिना मरे ही मर गई थी।

कजरी ने कहा : 'सरकार ! मेरी मानेंगी ?'

'बोल।'

'जो हो गया उसे भूल जायें।'

'कजरी ??' सूसन ने अनुनय किया जैसे चुप रह, ऐसी बात न कर।

परन्तु कजरी ने कहा : 'आप अभी छोटी हैं सरकार ! दुनिया की जानकारी नहीं है आपको। आप बदनाम हो जायेंगी। मुझे तो डर है कि कहीं रात को आहट नहीं पहुँच गई हो। वैसे तो भगवान आपकी तरफ था। बड़ी तेज़ हवा चल रही है। कुछ सुनाई नहीं देता। फिर भी कौन जानता है ! कोई देख ही गया हो तो। आप तो ज्यों का त्यों मामला दबा दीजिये।'

सूसन चुपचाप दीवाल पर नज़र गड़ाये रही। वह सोच रही थी। अगर वह यहाँ से चली जाये तो ! कौन जान सकेगा ? कोई नहीं। कजरी ठीक ही तो कहती है ! आत्महत्या तो पाप है। एक पाप मिटाने के लिये वह दूसरा पाप करेगी ? क्या और औरतें नहीं करतीं ? यही समझने में क्या हर्ज है कि वह पहले आदमी से तलाक़ दे बैठी ?

और जितना ही वह अपनी आधुनिकता से अपनी पाप-पुण्य की भावना को कचोटती, उतने ही उसके मध्यकालीन संस्कारों के अवशेष अपनी व्यंग्य-भरी हँसी हँस उठते।

तो राह किधर है ? न आत्महत्या, न मुक्ति। यह क्या ? स्त्री है तो क्या केवल जघन्य यातना में तड़पा करे ? उसका तो कोई अपराध नहीं ? उसने तो कुछ नहीं किया था। वह तो अन्त तक रोकती रही थी।

क्या भगवान इसको भी पाप कहेगा ?

वह जितना सोचती उतना ही उलझती। और लॉरेंस अब भी उसे डरा रहा था। वह सुखी थी। यह कौन था जो अचानक ही उसके जीवन में आ गया था। पर्वत से गिरते स्वच्छ झरने में, यह किसने आकर विष मिला दिया था ? कितना क्रूर था वह !

उस कमीने ने उसकी पवित्रता को खंडित कर दिया था। क्या वह सचमुच अब अपवित्र हो गई थी !

'जा कजरी।' सूसन ने धीरे से कहा। उसकी आँखें अब भी काँप रही थीं।

'नहीं हुजूर, आप अकेली हैं।' कजरी ने कहा : 'मैं आपको अकेले ही छोड़कर नहीं जाऊंगी। आपका मन अपने हाथ में नहीं है।'

कजरी उसका सिर सहलाने लगी।

तभी सूसन की दृष्टि कजरी क. पसली पर पड़ी।

'यह खून क्या है ?' उसने पूछा। 'तेरे यह चोट कब लगी ?'

कजरी मुस्कराई।

'हजूर मैं बेहोश हो गई थी।' कजरी ने कहा : 'अगर नहीं होती तो बता देती। आजकल मेरे पेट में बच्चा है, इससे मैं डरती-डरती-सी रहती हूँ, वर्ना यह क्या था ?'

'बच्चा !!' सूसन घबरा गई।

'कहीं उसे चोट तो नहीं लगी ? कजरी !' सूसन ने आर्त्त स्वर से पूछा, जैसे वह ही इसके लिये दोषी थी।

'सरकार वह ठीक कर लेगा,' कजरी ने कहा। वह अर्थात् सुखराम। 'वह दवाई जानता है।'

उस आपत्ति में भेद नहीं रहे। सूसन भूल गई कि कजरी एक नौकरानी थी और वह रानियों की रानी थी।

सूसन ने उठकर दवाई का बक्स खोला। दवा लाई। लगाई। और उसके रोकते रहने पर भी उसके पट्टी बाँधी।

'अब कैसा है ?'

'हुजूर ठीक हो जायेगा। अब आप सो जायें।'

सूसन नहीं सोई। बैठी रही। और कजरी उसके पास धरती पर बैठी रही। जब चार बज गये तब सूसन झपक गई। उसका शरीर निढाल हो गया था। और यों ही रात बीत गई। फिर उजाला छाने लगा।

कजरी चाय बना लाई।

सूसन खड़खड़ाहट सुनकर उठ बैठी।

'सरकार चाय पी लीजिये।'

सूसन ने मनाकर दिया। उसका मुख उतर गया था, सफेद-सा पड़ गया था, निर्जीव, मलिन, परन्तु आँखों में अब भी घृणा चमक उठती थी।

कजरी न मानी। कहा : 'पी लीजिये सरकार ! आपको मेरी कसम है।'

और सूसन ने बुरा नहीं माना। कजरी उसे चाय पिलाने लगी।

सुखराम चाय लेकर लॉरेंस के पास गया। उसे होश आ गया था। उसकी आँखें अब लाल थीं। लॉरेंस ने आँखें मींच लीं। वे जल रही थीं। उसका क्रोध अदम्य था।

सुखराम ने कहा : 'हुजूर ! मालिक का हुकम था। मेरा कोई कसूर नहीं।'

लॉरेंस ने मुँह फेर लिया। वह शायद समझा नहीं था।

सुखराम चाय लिये खड़ा रहा। फिर चला गया।

कजरी मिली तो पूछा : 'क्या हाल है ?'

'पागल-सी बैठी है।'

'ऐसा ही होता है।'

'अरे हो गया, हो गया,' कजरी ने कहा।

'तू नहीं जानती कजरी।' सुखराम ने कहा।

'सब जानती हूँ।' कजरी ने कहा। 'तू यों कहता होगा कि मैं नटनी हूँ। ये ऊँचे हैं ? यही न ?'

'हाँ,' सुखराम ने कहा : 'गलत है यह ?' और फिर पूछा : 'अरे यह तो बता अब होगा क्या ?'

'राम ही बचावे। अभी तो वह आयेगा।' कजरी ने कहा और हाथ को झटका देकर हथेली ऊपर करके उंगलियाँ फैला दीं।

बाहर मोटर रुकी। बड़ा साहब उतरा। वह आज ही आ गया! सुखराम ने सोचा था एक-आद दिन बाद आयेगा, तब तक सूसन भी ठंडी हो जायेगी। और अब क्या होगा?

सुखराम उसके पास गया। बूढ़ा सदा की भांति कठोर था। सुखराम हिम्मत करके उसके पास गया। सुखराम की मुद्रा देख साहब मन ही मन चौंक गया। सुखराम ने सलाम किया। वृद्ध ने अभिवादन का उत्तर सिर हिलाकर दिया। सुखराम ने कहा: 'हुज़ूर!' वृद्ध ने सुना नहीं।

'हुज़ूर!' सुखराम ने दबी मगर रहस्यमय आवाज़ में कहा। उस स्वर को सुनकर वृद्ध में कौतूहल जाग उठा।

'क्या है?' उसने कहा। किन्तु बाहर उसकी मुद्रा वैसी ही प्रशान्त बनी रही। यह साम्राज्य का दम्भ था जो अपने शासितों के सामने अपना दूसरा ही अमानुषिक रूप रखता था।

'भीतर चलिये।' सुखराम ने कहा और आगे बढ़ गया।

बूढ़ा समझा नहीं। क्या बात है। यह तो हुक्म दे रहा है और इतना गंभीर है। वह नहीं जानता कि वह बातें किससे कह रहा है। उसे बिल्कुल डर नहीं लगता!

साहब घबराया। हो न हो कोई बात ज़रूर हो गई है तभी वह सब क़ायदा भूल गया है। परन्तु बाहर से फिर भी वह गंभीर ही बना रहा। वह तो झंडा था। झुकना नहीं चाहता था।

सुखराम आगे-आगे था। वृद्ध पीछे-पीछे चल रहा था। सुखराम ने मुड़कर इशारा किया। वृद्ध आगे बढ़ा। जब सुखराम ने आगे जाने का इंगित किया तो वह सूसन के कमरे में गया। उसके पीछे ही सुखराम भी दाखिल हो गया। वृद्ध ने देखा सब सामान अस्त-व्यस्त पड़ा था। सुखराम ने कहा: 'सरकार! कल पानी बरसा था, मैं उसीमें फँसा रह गया। जब लौटा तो यह सब हो चुका था। कजरी ने बचाने की कोशिश की पर नहीं बचा सकी।'

सूसन उसे देखकर हिचकी बाँधकर रो पड़ी।

वृद्ध आगे बढ़ा। कहा : 'सूसन !'

सूसन ने मुँह छिपा लिया। वह अब फफक-फफककर रो रही थी। यही तो उसका बाप था ! उसके सामने भी न रोयेगी जिसने गोदी में खिलाया था।

साहब समझा नहीं। देखा। तकिये में छुरा घुसा था।

'यह क्या है ?' उसने पूछा।

'सरकार !' सुखराम ने कहा : 'कजरी ने वार किया था, मगर वह चूक गई।'

वृद्ध कातर हो उठा। किसने किस पर वार किया था ! क्यों ?

उसने अंगरेज़ी में पूछा : 'सूसन ! क्या हुआ मेरी बच्ची·····'

पर सूसन ने कहा : 'मैं पाप से भर गई हूँ, मुझे छूओ मत, मुझे मत छूओ···'

सूसन रोने लगी।

बूढ़ा समझ गया। लगा जैसे वह पत्थर का-सा हो गया था। उसकी बेटी पर बलात्कार !

किसने किया इतना साहस ! ऐसा दुस्साहस !

वृद्ध अविचलित खड़ा था। अब भी बाहर से बिल्कुल शांत था। आँखों में भी बल नहीं था।

उसने कजरी की तरफ़ देखा। कजरी ने देखा तो समझ गई, परन्तु उसका साहस नहीं हुआ। वह नहीं कह सकी। साहब उससे एकटक दृष्टि से जैसे पूछ रहा था।

कजरी ने सुखराम की तरफ आँखें कीं। वृद्ध ने सुखराम की ओर देखा। उसने कहा : 'जल्दी बोलो।'

'छोटे सा'ब ने !'

वृद्ध अब काँप उठा। जंगल की लकड़ी ! कुल्हाड़ी की बेंट ! उसने अविश्वास से फिर देखा। पर सुखराम ने कहा : 'हाँ सरकार ! छोटे सा'ब ने ही !'

बुड्ढे के हाथ ग़ुस्से से काँपने लगे। और अचानक ही उसके हाथ में उसके जेब की पिस्तौल निकल आई। सुखराम काँप गया। कजरी ने इशारा किया—रोक !

बूढ़ा खटखट करता बाहर निकला और उसने कहा : 'कहाँ है !'

सुखराम आगे चला। बूढ़ा पीछे। जब वह लॉरेंस के कमरे में पहुँचा तो देखकर पूछा : 'यह किसने किया !'

'मिसी बाबा ने।'

'किसने बाँधा इसे !'

'मिसी बाबा ने हुकम दिया था हुजूर।'

वृद्ध के नयनों में कृतज्ञता दिखाई दी। लॉरेंस ने देखा तो चेहरा सफेद हो गया। बूढ़े ने पिस्तौल वाला हाथ उठाया, पर सुखराम ने बढ़कर पकड़ लिया।

'हट जाओ !' वृद्ध ने धीमे गुस्से से कहा।

पर सुखराम ने परवाह नहीं की। वह बूढ़े को ज़बर्दस्ती दूसरे कमरे में खींच लाया। वृद्ध अब भी क्रोध से कांप रहा था।

'हुजूर !' सुखराम ने उसके पाँव पकड़ लिये : 'आप चाहें तो मुझे गोली मार दीजिये।'

वृद्ध का हाथ झुक गया।

'क्या करते हैं हुजूर।' सुखराम ने कहा : 'गुस्से ने आपको अन्धा कर दिया है। आप इतने बड़े आदमी होकर नहीं सोच पाते। इसका नतीजा भी तो सोच लीजिये मालिक। बदनाम हो जायेंगे। आपकी बेटी है, बेटा नहीं है।'

वृद्ध रुक गया।

सुखराम ने फिर कहा : 'दिन में पिस्तौल चलेगी तो हुजूर सारा गाँव जान जायेगा। फिर कहाँ जाकर मुँह छिपायेंगे। सरकार सब जगह ख़बर पहुँच जायेगी।

और बूढ़े के सामने चित्र आ गया। ख़बर गाँव में फैलेगी। गाँव वाले हँसेंगे। राजा हँसेगा। रियासत हँसेगी। और जितनी रियासतें उसके नीचे हैं, वे सब ठहाका लगा-लगाकर हँसेंगी। स्त्री और पुरुषों का वह अट्टहास जब दिल्ली में गूंजेगा तो वायसराय चौंक उठेगा। फिर वह अट्टहास समुद्र पार करके इंगलैंड में पहुँचेगा। दुनिया हँसेगी पोलिटिकल एजेंट की कन्या से ! और वह भी एक अंगरेज़ ने !! अगर कोई हिन्दुस्तानी ऐसा करता तो वह राष्ट्र के द्वेष की बात बन जाती। पर इसमें तो इंगलैंड का गौरव धूल में लोट रहा था। लेकिन वह यह क्या सोच रहा है। यह हिन्दुस्तानी सामने खड़ा

है । गँवार ! नीच ! गुलाम ! और उसने उसकी लड़की की रक्षा की है। उसने आततायी को पकड़ा है ! उसने पोलिटिकल एजेंट को घोर अनर्थ करने से रोक दिया है। यह नीच है कि लॉरेंस नीच है ? यही है वह आदमी जो उस दिन उसकी लड़की को जान पर खेलकर पहाड़ों में से बचाकर लाया था । यह दास है, परन्तु मनुष्य है। असभ्य है, परन्तु इसमें जीवन की गरिमा है। यह उपहासास्पद है, किन्तु इसमें सत्य के लिये मर-मिटने की साध है । यह हिन्दुस्तान है ! लॉरेंस जिस लूट पर पला है, उसने वही तो किया है जो उस लूट की नैतिकता हो सकती है ! यही है इंगलैंड का भविष्य !!!!

बूढ़े का हाथ गिर गया था। पिस्तौल छूट गई थी। सुखराम उठकर खड़ा हो गया। उसने देखा वृद्ध शिथिल हो गया था। उसने देखा। आज देखा। वह तो सिर्फ एक बूढ़ा आदमी था, परन्तु उसके अधिकार ने कभी ऐसा लगने नहीं दिया था कि वह भी किसी प्रकार निर्बल हो सकता है। अब उसके माथे पर पसीना छलक आया था। वह कितना दीन-सा दिखाई देता था !

सुखराम को लगा जैसे पेड़ कटकर गिरने के पहले डाँवाडोल हो रहा हो। वह कल तक कितना रोबीला था। लगता था कि यह तो फ़ौलाद है, सिर्फ हुकूमत करने को पैदा हुआ है !

सुखराम ने देखा उसने मुँह छिपा लिया। आज वह सचमुच किसीको मुँह दिखाने लायक नहीं रहा था। उसे एक-एक परिचित दिखाई दे रहा था। वे सब उसे व्यंग्य से देख रहे थे। और वह इसी लॉरेंस से स्नेह करता था ! उसीने इसे नौकरी दिलाई थी ! यही था कृतज्ञता का नतीजा !! यही था !!

बूढ़ा कुर्सी पर गिरा और मेज़ पर हाथों के बीच सिर रखकर रो पड़ा।

पत्थरों में जैसे खडर-बडर हो रही थी और चट्टान फोड़कर सोता फूटा पड़ रहा था। यही तो वे आँखें थीं जिन्होंने सैकड़ों-लाखों आदमियों की गरीबी देखकर भी, उन्हें कुचला था। उस वक्त न्याय और कानून का आश्रय लिया था ! दूसरों की मौत पर ये आँखें झूँठी हमदर्दी दिखाया करती थीं !

सुखराम को आश्चर्य्य हुआ। उसे सचमुच यह देखकर आश्चर्य्य हुआ कि यह आदमी इतना दिल रखता है कि उसमें भी तपिश से भाफ पैदा हो सकती है ? वह तो यह समझता था कि ये तो मालिक हैं। जो राग-द्वेष साधारण मनुष्य में हैं, वे इनमें नहीं हैं। यह तो सिर्फ आराम करने के लिये पैदा हुए हैं। इन्होंने तो हुकूमत करने को जनम लिया है।

परन्तु आज उसका वह भाव खंडित हो गया। और उसकी मनुष्यता देखकर सुखराम का वह डर दूर होने लगा।

बूढ़ा कुछ देर में खड़ा हुआ। उसने झुककर पिस्तौल उठा लिया।

सुखराम ने कुछ नहीं कहा। बूढ़ा आगे बढ़ा।

'हुज़ूर!' सुखराम ने टोका।

'क्या है?' वृद्ध ने मुड़कर पूछा।

सुखराम आगे बढ़ा। कहा : 'इसे मुझे दे दीजिये हुज़ूर।'

'नहीं।' वृद्ध ने कहा : 'मैं उसको गोली नहीं मारूँगा।'

सुखराम ने कहा : 'तो फिर इसे हाथ में आपने क्यों उठा लिया है हुज़ूर! मुझे डर लगता है। आप अभी गुस्से में हैं। बाद में क्या होगा जानते हैं? इसका नतीजा क्या है मालूम है?'

'क्या है?' और फिर वृद्ध के कानों में दिशांतों से उसी जनता के अट्टहास सुनाई देने लगे। उसे लगा एक लपट फरफरा कर उठी और चढ़ी और इंगलैंड का झंडा धू-धू करके जलने लगा।

'पिस्तौल यहीं धर दीजिये सरकार,' सुखराम ने कहा। वृद्ध की आँखों में सुखराम के प्रति एक आत्मीयता आई। वह बड़े अनमोल क्षणों में जन्म लेने वाला तादात्म्य आज सहज ही उसके मुख पर आ गया था।

बूढ़े ने पिस्तौल जेब में धरकर कहा : 'मेरा बेंत लाओ।'

सुखराम बेंत ले आया। वृद्ध लॉरेंस के पास गया। वह इस समय तनिक भी उत्तेजित नहीं लगता था, जैसे उसमें अब ठंडा गुस्सा भर गया था। और फिर उसने निर्दयता से लॉरेंस को मारना शुरू किया। वह बेंत क्या था, उसकी तड़पती हुई लचक थी। मांस पर पड़ता था तो दांत की तरह घुसता और फिर लॉरेंस रोने लगा जैसे उसके सहन करने की भी पराकाष्ठा हो गई थी।

लॉरेंस ने कहा : 'मुझे माफ़ करो डैडी·····।'

बूढ़ा मारता जा रहा था। कजरी ने सुना तो सूसन का हाथ पकड़कर कहा : 'चलो मिसी बाबा।'

'मैं नहीं जाऊँगी।'

'चलो रानी जी।' उसने आज़िज़ी से कहा।

जब दोनों पहुँचीं तो लॉरेंस कराह रहा था : 'तुम मेरे बाप हो, मुझे माफ़ करो····· मैं इंगलैंड चला जाऊँगा·····मुझे माफ़ करो·····।'

बूढ़े का क्रोध आज थकने का नाम नहीं लेता था।

सूसन ने देखा तो रुकी नहीं। चुपचाप कमरे में लौट आई और सामने आकाश के व्यापक प्रसार को देखती रही। बाहर से कोई देख न ले, इसलिये सुखराम ने उधर का द्वार बंद कर दिया था।

लॉरेन्स कराहा : 'मुझे छोड़ दो····· इंगलैंड के लिये मुझे छोड़ दो····· इंगलैंड·····।'

वह और न कह सका। उसका सिर लुढ़क गया। वह बेहोश हो गया था। कहते हैं रावण का भेजा हुआ मारीच जब सोने का हिरन बनकर राम को छल से भगा लाया था और अन्त में राम ने उसे बाण से मार ही दिया था, तब वह चिल्लाया यही था : 'हा लक्ष्मण·····हा राम·····' और इसी तरह जब लॉरेंस चुप हुआ तो भला-बुरा उसने घूम-फिरकर इंगलैंड को ही समर्पित कर दिया था।

वृद्ध को पता नहीं चला था कि वह मूर्च्छित हो गया था। कजरी ने सुखराम से कहा : 'रोक अब ! मर जायेगा !'

सुखराम ने बूढ़े का हाथ पकड़ लिया और कहा : 'हुज़ूर बस !'

एक चपरासी की यह हिम्मत ! कि उसने पोलिटिकल एजेन्ट का उठा हुआ हाथ पकड़ लिया ! परन्तु नहीं। आज वृद्ध अपनी सारी जड़ता को छोड़कर खड़ा था। यह गुस्सा न्याय के लिये था। मनुष्यत्व के लिये था। यह अन्याय और साम्राज्य के लिये नहीं था। इसीसे इसमें अहंकार, जड़ता और दम्भ का प्रभाव नहीं था।

बूढ़े के हाथ से सुखराम ने बेंत ले लिया। बूढ़े के माथे पर पसीना आ गया था। कजरी दौड़कर पानी का गिलास ले आई।

डर छोड़कर कहा : 'पी लीजिये हुज़ूर।'

वृद्ध ने काँपता हाथ बढ़ा दिया और गट-गट करके पानी पी गया, जो कल तक मेज़ पर मदमस्त होकर जब खाने बैठता था तो शेर बनने के लिये चाट-चाटकर शराब पीता था, क्योंकि वह भूखे पेट नहीं खाता था, उसके औहदे का अहंकार, नित्य उसकी मनुष्यता को हराया करता था। आज वह सब टूट गया था, इस पल, केवल इसी क्षण·····।

सूसन कपड़े बदल चुकी थी।

बूढ़ा उसके कमरे में घुसा तो वह उसकी ओर मासूम आँखों से देखती रही।

'कैसे इतना बर्बर हो सका वह।' वृद्ध ने कहा और उसे हृदय से लगा लिया।

'सूसन मेरी बच्ची,' वृद्ध ने फिर कहा, 'सूसन मेरी बेटी !'

भावावेश गद्‌गद कर गया। कहने को सांत्वना के शब्द नहीं मिल रहे थे। वह आज कंगाल हो गया था।

पर बच्ची ने आँखें नहीं मिलाईं। उसने धीरे से कहा—'तुम मुझसे तो नाराज़ नहीं हो डैडी ! मेरा कोई अपराध नहीं है। मैंने कभी उसे तरह नहीं दी थी।'

उसे ग्लानि थी। बूढ़े ने कहा : 'नहीं बेटी। मैं जानता हूँ तू निष्कलंक है, जैसे चन्द्रमा होता है, जैसे श्वेत हंस होता है। पर मैं क्या करूँ। मेरी समझ में नहीं आता।'

सूसन नहीं बता सकी।

बूढ़ा बैठ गया। वह अब पाइप पीने लगा था।

'और कौन-कौन जानता है ?' उसने सूसन से अंगरेज़ी में पूछा।

'कोई नहीं। बस ये दोनों जानते हैं। डैडी, यह दोनों बहुत अच्छे हैं।'

वृद्ध ने केवल हूँ कहा।

सुखराम उसके सामने हाथ बांधे खड़ा रहा। वृद्ध कुछ सोचने लगा था।

कजरी ने सुखराम की ओर देखा। फिर सूसन की ओर। सूसन की कृतज्ञता आँखों के बाहर उमड़ी पड़ रही थी। वह कितनी सुन्दर लग रही थी। वेदना ने तो कंचन को निखार दे दिया था।

बूढ़े का ध्यान उचटा। कहा : 'सूसन !'

'हाँ डैडी।'

'अब भी तुझे दुख है !'

पुत्री कैसे कहे कि वह इसे भूल नहीं सकेगी।

सुखराम ने कहा : 'सरकार।'

वृद्ध ने चौंककर देखा। बेटी का सिर झुका हुआ था। उसने अनुभव किया कि कुछ भी हो, वह नारी थी। और स्त्री स्वामिनी हो या दासी, यहाँ उसकी

सत्ता का एक ही मूल्य लगाया जाता है। अधिकार, सम्पत्ति, सबका नियन्त्रणात्मक संवेदन एक ही है।

सुखराम ने फिर आवाज़ दी।

'क्या है सुखराम ?' बूढ़े ने पूछा।

'अब क्या होगा सरकार !'

वृद्ध उत्तर नहीं दे सका। बल्कि आज उसने ऐसी प्रश्नवाचक दृष्टि से देखा जैसे मैं नहीं जानता, तुम ही बताओ कि अब क्या करना चाहिये। सुखराम समझ गया।

'सरकार छोटे सा'ब को यहाँ से भेज दीजिये।' उसने कहा।

'कहाँ !'

'जहाँ वे जाना चाहें।'

'और अगर वह जाकर कहेगा तो ?'

'सरकार उनका कहने का मुंह नहीं रहा। अभी तो उन्हें जाकर घर में छिपकर दवा करनी पड़ेगी। फिर कहेंगे तो मानेगा कौन ?'

'तुम ले जायेगा ?' वृद्ध ने पूछा, जैसे स्वयं उसमें इतना सा'हस नहीं था।

'हाँ सरकार।'

'कैसे ?'

'सरकार स्टेशन ले जाकर गाड़ी में टिकिट लेकर बिठा दूँगा।'

'किसीको मालूम हुआ तो ?'

'कोई जानेगा कैसे ?' सुखराम ने पूछा।

'ओह !' वृद्ध के मुँह से निकल ही गया। 'जाओ ऐसा ही करो।'

सुखराम ने जाकर लॉरेंस को खोल दिया। और उसे उठाया, पर वह थोड़ी देर तक सीधा खड़ा नहीं हो सका।

कजरी एक डबल रोटी और चाय ले आई। उसने कहा: 'बैठ जाओ साहब।'

वह समझा नहीं तो उसको उसने बिठा दिया और पास बैठ गई। उसे चाय पिलाने लगी। वह अपने हाथ देख रहा था, जिनमें जगह-जगह नील पड़ गये थे। कजरी को दया आई। करुणा से उसने हाथ पर हाथ फेरकर कहा: 'हाय कैसे नील पड़ गये हैं। बेचारे को कित्ता मारा है।'

वह सचमुच इतनी मार देखकर विचलित हो गई थी। वह उससे आ षत

हुआ था। कजरी के मन में इसका स्नेह था। और यह एक जीवन का बड़ा सत्य है कि स्त्री विवाहित होकर भी अनजाने ही एक काम करती है। जब तक उसमें जवानी रहती है तब वह अपने को दूसरे लोगों की आँखों की कसौटी पर अपने रूप और यौवन को आँका करती है। वह देखती है कि उसमें अब भी कोई आकर्षण है या नहीं। और यदि है तो अवश्य वह अपने पति को अभी तक अच्छी लगती होगी। बस उसमें इससे अधिक कोई भाव नहीं रहता।

कजरी की यह दया देखकर लॉरेंस को लगा वह अभी तक मनुष्य है। इतना घृणित होते हुए भी उसमें दया के योग्य कुछ है। वह कजरी के कन्धे पर सिर धरकर फूट-फूटकर रो उठा। कजरी ने उसका सिर थपथपाया। उसे बिठाया। फिर इशारा किया कि मेरे साथ चल।

लॉरेंस उसके पीछे चला। कजरी ने इशारा किया। लॉरेंस ने बूढ़े के सामने ही जाकर सूसन के पांव पकड़ लिये और ऐसे रो उठा जैसे वह जन्म-जन्मांतर का जघन्य पापी था। उसको ऐसे रोते देखकर भी वे दोनों चुप रहे। सूसन ने पाँव हटा लिये। कजरी कहना चाहकर भी नहीं कह सकी कि मिसी बाबा माफ़ कर दो।

बूढ़े ने कहा : 'इसे ले जाओ।'

कजरी उसे ले आई। वह रो रहा था। कजरी ने उसके आँसू पोंछ दिये।

सुखराम कपड़े ले आया। लॉरेंस चुपचाप तैयार हो गया।

सुखराम ने बाहर कहा : 'रात भर साहब बुखार में बर्राता रहा। मिसी बाबा तो रात भर रो-रोकर परेशान हो गई। बुखार था। पूरा सरसाम समझो। उठ-उठकर भागता था। तब उसे बाँधकर पटकना पड़ा। मैं तो उसे ले जा रहा हूँ।'

'कहाँ ?' माली ने कहा—'शहर ?'

'अजी यहाँ क्या इलाज होगा। रेल में बिठा आता हूँ। तू ज़मींदार जी की घोड़ा-गाड़ी तो ले आ।'

माली ने कहा : 'पर रात तो तूफान था। हमें मालूम भी नहीं पड़ा। अच्छा जाता हूँ।'

गाड़ी आ गई। जमींदार धन्य हो गये। लॉरेंस बैठ गया। सुखराम ने गाड़ी हँकवा दी। उसने गाड़ीवान के बगल से झाँककर देखा लॉरेंस सो गया था।

शाम को जब वह लौटा तो कजरी को देखा। पड़ी थी। कोठरी में सन्नाटा था। माली खड़ा था। और एक चपरासी भी था।

वह कोठरी में घुसा। सूसन ने देखा तो इशारा किया—धीरे बोलो।

सूसन उसके मुँह में थर्मामीटर लगाये थी। उसने निकालकर देखा।

'क्या बात है ?' सुखराम ने पूछा।

'कुछ नहीं है।' कजरी ने मुस्कराकर कहा।

सुखराम ने छूकर देखा देही तप रही थी।

'बुखार है।' माली ने कहा।

कजरी ने कहा : 'अरे तुम लोग जाओ अब। अब तो यह आ गया।'

माली और चपरासी चले आये। कजरी ने कहा : 'मिसी बाबा ! आप जाओ। अब कोई डर नहीं।'

सूसन ने बताया।

सुखराम को अब पता चला कि कजरी के पेट में चोट थी।

सूसन ने कहा : 'मैंने पट्टी बाँध दी थी।'

उसने पेट दिखाया।

कजरी ने हँसकर कहा : 'ठीक हो जायेगी मिसी बाबा। आप तो दया भी इत्ती करती हैं। मानुस कौन है जिसे कभी बुखार नहीं आता ? इसका भी इतना सोच।'

सुखराम सिर पकड़कर बैठ गया।

'तुझे क्या हुआ ?' कजरी ने पूछा।

सुखराम ने उत्तर नहीं दिया।

सूसन समझी नहीं। पूछा : 'क्या हुआ ?'

'कुछ नहीं।' कजरी ने कहा : 'चक्कर आ गया होगा इसे।'

पर वह समझ गई थी। कहा : 'अरे रहने दे।'

सूसन ने पूछा : 'मुझको बताओ।'

'अजी कुछ नहीं है मिसी बाबा !' कजरी ने कहा—'वैसे ही दिखाता है। आप जाओ। आराम करो।'

सूसन चली आई।

सुखराम अभी तक वैसे ही बैठा था।

'क्यों रे उठेगा नहीं ?'

वह फिर भी चुप था।

कजरी उठी। कहा : 'नहीं बोलेगा तू ?'

'क्या बोलूं मैं ?'

'छोड़ आया उसे ?'

'हाँ।'

'कुछ बताता नहीं। हाँ। बस ! साँप सूंघ गया है जो।' हंसते हुए कजरी ने कहा : 'क्यों रोता है ?'

'कहाँ ? मैं कहाँ रोता हूँ ?'

'तो तेरी सूरत ऐसी कब से हो गई है ?'

सुखराम ने पूछा : 'बहुत दर्द है ?'

'अरे ऐसा पूछता है। उस बखत भी तू बँटा लेगा जो अब पूछता है।'

सुखराम मुस्कराया। आशा बंधी।

'मैं मरूँगी नहीं।' कजरी ने कहा : 'मैं क्या तुझे सहज छोड़ दूँगी !'

'कजरी ! तू प्यारी की तरह मुझे छोड़ तो न जायेगी ?'

'तू चाहेगा तो क्या नहीं होगा। डरै मत ! बड़ा भोला है न तू ? क्या पूछ रहा है।'

'क्यों ?'

'मुझे मालूम है कि कब आऊँगी, कब जाऊँगी !'

'भगवान जनता है कजरी। तूने रात का सामान देखा ?'

'मैंने तो नहीं देखा।'

'मैं कपड़े ले आया हूँ। तू बना लीजो।'

'सच ! तो मुझे दिखा दे। अच्छे लाया है न ?'

'देख कित्ते अच्छे हैं.....'

सुखराम मे वह कपड़े उसके हाथ में दे दिये। तभी सूसन ने कोठरी में प्रवेश किया। वह कह रही थी : 'अब कैसी हालत है कजरी। डैडी पूछते हैं।'

'हुज़ूर ! अच्छी है।' कहते हुए उसने लाज से कपड़े छिपा लिये। परन्तु सूसन ने देख ही लिये।

'यह क्या है ?'

'कुछ नहीं हुज़ूर।' कजरी ने कहा। और हाथ पीछे कर लिया।

सुखराम बड़े अदब से शर्माए हुए, सिर एक ओर तनिक झुकाए, बड़ा खुश।

'और तो सिर्फ़ कपड़े थे, पर टोपा कमबख्त रेशमी था, छोटा-सा बना हुआ। उसके पास दो खिलौने थे। साहब का अर्दली था। कोई गरीब था !!'

'अरे !' सूसन के मुँह से निकला। स्त्री ने समझ लिया।

उसने कहा : 'कजरी ! तूने पहले क्यों न कहा ! उसने तेरे पेट में लात मारी थी !!'

उस पर आतंक छा गया था।

कजरी ने हँसकर कहा : 'मिसी बाबा ! कहकर क्या आप पर अहसान जताती ? बच्चे का क्या है ? फिर हो जायेगा।'

असल नटनी बोली थी ! सूसन को लगा उसका सिर अब जो झुका है वह कभी नहीं उठ सकेगा।

वह लौट गई। सुखराम उसे बँगले तक पहुँचाने आया। पर वह चुप थी। बोली नहीं।

'वृद्ध उस समय आराम से पाइप पी रहा था।

'डैडी !' सूसन ने कहा : 'उसका स्वर कंपित था।

वृद्ध ने धूंआ उगलकर कहा : 'क्या हुआ ?'

'डाक्टर बुलवाइये फौरन।'

'क्यों ?'

'कजरी बीमार है।'

'कजरी ! अपने आप ठीक हो जायेगी बेटी। यह लोग डाक्टर-वाक्टर नहीं बुलवाते। और फिर तुम उनसे इतनी हमदर्दी करोगी तो लोगों को शक नहीं होगा ?'

परन्तु सूसन ने मुँह फेर लिया और कहा : 'आपको कसम है। एक बार चलकर तो देख लीजिये। वह गर्भवती है। उसका हाल तो देखिये।'

बूढ़ा उठा। उसको देखकर कजरी चौंक उठी, सिर ढँक लिया।

'क्या हुआ ?' उसने पूछा।

सुखराम उसके साथ भीतर आ गया। देखा और समझा। उसका हृदय झनझना उठा। तब बूढ़े ने कहा : 'यह किसने किया !'

कजरी नहीं बोली। सूसन ने रोते हुए कहा : 'वह जंगली !!'

बूढ़ा गंभीर हो गया।

'सुखराम !!' उसने अवश मुद्रा में कहा। सुखराम ने देखा उसकी आँखों

में लाचारी थी और आज वह स्वामी बनकर नहीं, मनुष्य बनकर देख रहा था। वह आँखें कितनी क्षमा माँग रही थी। याचना कर रही थीं।

कजरी ने कहा : 'सरकार ! आप घबराते क्यों हैं ? मैं ठीक हो जाऊंगी।'

वृद्ध का सिर झुक गया।

'जाइये हुजूर कोई डर नहीं,' सुखराम ने कहा : 'मरना-जीना तो भगवान के हाथ है। इसमें किसीका क्या ?'

वृद्ध सुन नहीं सका। वह बाहर चला गया। आज उसे असभ्यों ने महानता का पाठ पढ़ाया था। जिनको वह तुच्छ समझता था वे ही आज उसे मनुष्यता की बारहखड़ी पढ़ा रहे थे ! उसका हृदय ग्लानि से भर गया था। वह अहंकार आज पत्थर के नीचे दबे सांप की तरह कुलबुलाकर जैसे दम तोड़ रहा था। उसने हाथ पसारे थे और धूल की आशा की थी, किन्तु उसको मोती मिले थे। वे मोती काँच के-से नहीं थे, आँखों से उमड़े थे, उनमें हृदय की गरिमा थी।

उसके जाने पर सूसन ने सिपाही भेजकर डाक्टर को कस्बे से बुलवाया। सुखराम बाहर चला गया। डाक्टर सूसन को उस कोठरी में देखकर चौंका पर हिम्मत नहीं पड़ी कि ज्यादा पूछताछ करता। उसने पेट देखा।

कहा : 'कोई खतरा नहीं है। चोट बाहरी ही है।'

सूसन की सांस लौटी।

डाक्टर ने कहा : 'यह कैसे हुआ ?'

कजरी ने सूसन की ओर देखा। और अपने आत्मसम्मान की भीख मांगने वाली नारी को देखकर उसका हृदय काँप उठा। भारी-भारी दयनीय आँखों से अब सुसन ने कजरी को देखा तो कजरी का सारा स्वार्थ चूर-चूर होकर गिर गया। वह मुस्करा दी।

डाक्टर उसे, कभी सूसन को देखता।

कजरी ने कहा : 'गिर पड़ी थी मैं।'

'देखकर नहीं चलती ?' उसने कहा।

'डाक्टर सा'ब !' कजरी ने कहा—'भगवान ने पांव में आँखें तो दीं नहीं।'

'बड़ी बातून है !!' डाक्टर ने कहा।

जब डाक्टर चला गया सूसन ने कजरी को छाती से लगा लिया। आज स्वामिनी ने दासी को हृदय से लगा लिया था। आज कहाँ थी वह घृणा !

वह नृशंसता जैसे आज सहनशीलता की गरिमा में तिरोहित हो गई थी। वह सम्मोहन कितना मादक और कितना अटूट था।

सुखराम ने देखा कि औरत को इज्जत से प्यारा इस संसार में कुछ नहीं होता।

इज्ज़त! क्यों चाहती है स्त्री यह सम्मान? क्योंकि वह पशुत्व से घृणा करती है। वह जड़ता से नफरत करती है। वह माँ बनती है तो पुरुष की जघन्य तृष्णा और बर्बरता की परितृप्ति के लिये नहीं, वरन् सृष्टि की मूल भावनाओं से स्पंदित होकर सृष्टि को पूर्णता देने के लिये अपना व्यक्तित्व पूर्ण करती है। तब क्या वह उन कष्टों को नहीं झेलती! परन्तु वह अपने मातृत्व का सम्मान चाहती है। अपनी सत्ता का सम्मान चाहती है, ताकि आने वाला व्यक्ति—बालक—अपनी जननी का सम्मान करना सीख सके—ताकि यह परम्परा मनुष्यत्व की जय का प्रतीक बनकर दिन दूनी, रात चौगुनी बढ़ती रहे·····।

कजरी चंगी होने लगी। सूसन उसे तन्दुरुस्त देखती तो उसके मुख के स्थायी विषाद पर आनन्द सञ्चारी बनकर डोल उठता। जब कजरी ठीक हो गई तो उसने जाकर देखा।

शाम हो गई थी। सूसन घुटनों के बल बैठी ईश्वर से प्रार्थना कर रही थी।

दिन आते, चले जाते, रात आती, ढल जाती, और इसी तरह कुछ महीने निकल चले।

एक दिन कजरी ने कहा: 'सुनता है!'

'यह मैंने बनाये हैं।'

कपड़े सामने धर दिये। बड़े उम्दा थे। सुखराम चौंका। पूछा: 'यह कहाँ से आये?'

कजरी मुस्कराई।

'अरी बताती नहीं? तुझे इस हाल में भी कोई दे जाता है। बात यह है, बेवकूफों की दुनिया में कमी तो है नहीं।'

'मैं तो तुझे देखकर यही सोचा करती हूँ।' कजरी ने कहा।

'क्यों री,' सुखराम ने कहा : 'तू मुझे ऐसे जवाब देती है कहीं तेरा बेटा भी ऐसे ही मुझे जवाब दे उठेगा तो ?'

'मारूँगी नहीं उसे ?' कजरी ने कहा : 'सुसरा बाप को जवाब देगा ! पालूंगी तो मैं ही । तेरा जैसा बेवकूफ नहीं बनने दूंगी उसे मैं ।'

'चलो अच्छा है,' सुखराम ने कहा : 'मेरी तरह वह दुख भी न पायेगा ।'

'तो मैं तुझे दुख देती हूँ ?' कजरी ने चिढ़कर कहा ।

स्त्री सब कुछ सह लेती है, लेकिन अपने और अपने मायके के बारे में मज़ाक सुनना उसकी ताकत के बाहर होता है ।

सुखराम हँसा । कहा : 'यह भी सिखायेगी उसे कि बात-बात पर तिनक उठे ।' उसने हाथ जोड़कर कहा : 'हे भगवान ! अगर देने पर ही दया की है, तो मेरी अकल और इसकी शकल देना ।'

कजरी का क्रोध दूर हो गया । उसकी शकल की जो तारीफ़ हो गई थी, उससे मन सन्तुष्ट हो गया था ।

बोली : 'लोग कहते तो हैं कि लड़की बाप की सूरत पर जाये और लड़का माँ की सूरत पर तो दोनों भागवान होते हैं ।'

'भागवान न होते तो उनके पेट में रहते ही कोई यह कपड़े दे देता !'

'अरे जा ! यह तो मिसी बाबा ने दिये हैं ।'

सुखराम ने कहा : 'किसने, मिसी बाबा ने ?'

'हाँ ।' वह हँसी । और बोली : 'और यह दिया है ।'

उसने दिखाया । पूरा, नया साबुन !

'अरी नटनी कहीं कला तो नहीं दिखा रही है ?' सुखराम पूछ बैठा ।

'तू जाके कह दे,' कजरी ने कहा : 'जैसे पहले साबुन लाई थी तब कह आया था !'

'मैंने तो नहीं कहा ।'

कजरी चौंकी । अब समझी मिसी बाबा क्यों हँसी थीं ।

३४

मेरे दोस्त ने सुखराम को बुलाया। डाँटा। जाने क्या किया, वह मैं नहीं जानता। पर उसका परिणाम निकल ही आया।

चंदा का ब्याह सुखराम ने नीलू से करा दिया।

'नहीं करूँगी', चंदा चिल्लाती रही। परन्तु मंगू की मदद ली गई और नीलू ढूंढ लिया गया। वह लड़ाका था और चंदा की एक नहीं चली। उसने कूएं में कूदने का प्रयत्न किया किन्तु रामा की बहू उसे पकड़ लाई। और एक लड़की करती भी क्या।

जशन भी हुए। शराबें भी चलीं; सुखराम का भारी मन भारी ही बना रहा, लड़की की आँखें रो-रोकर सूज गईं; पर सुखराम जैसे पत्थर का हो गया था।

चंदा रोई। कहा : 'नहीं जाऊंगी इसके साथ।

'तो क्या करेगी ?' सुखराम ने पूछा।

'कूएं में डूब मरूँगी।'

'जा डूब मर।'

पर नीलू उसे ज़बर्दस्ती ले गया। चंदा को जाना ही पड़ा परन्तु घर जाकर उसने वह भयानक उत्पात किया कि नीलू बाहर ही सो गया और चंदा डेरे के भीतर रात भर रोती रही।

एक दिन मैंने सुना। मुझे आश्चर्य्य हुआ। सुखराम कैसे इतना कठोर हो गया होगा ! मैं सुखराम से मिला। मैंने कहा : 'यह सच है कि तुमने उसका ब्याह कर दिया ?'

'हाँ ब्याह कर दिया', सुखराम ने कहा : 'बाबू भैया ! मैंने उसकी ज़िन्दगी बना दी।'

'तुम सुखराम ?' मैंने कहा : 'तुमने उस बच्ची पर सख्ती की किस तरह !'

'मैं क्या करता बाबू भैया। अगर वे चंदा को मार डालते तो ?' सुखराम ने कहा : 'जान है तो क्या नहीं है !'

'तुम डर गये हो ?' मैंने पूछा।

तभी नरेश दिखाई दिया। मैंने उसे बुलाया। सुखराम ने कहा : 'आओ कुँवर जी।'

मैंने देखा नरेश उदास था। उस पर जैसे वज्र गिर गया था।

'कुँवर', सुखराम ने कहा : 'उसका तो ब्याह हो गया। पर तुम रोज़ आते हो। यहाँ अब रखा ही क्या है !'

मुझे यह सुनकर दारुण दुःख हुआ। लड़का शायद भूल नहीं सका था। कितना स्नेह था वह !

मैंने पूछा : 'नरेश ! तुझे मालूम है उसका ब्याह हो गया है ?'

उसने सिर हिला दिया जैसे मालूम है।

'फिर भी तू आता है !' मेरे मुँह से निकल ही गया।

सुखराम ने आँखें फिरा लीं और ऐसे मींडने लगा जैसे तिनका गिर गया हो। पर मैंने देखा कि आँसू पोंछ रहा था।

नरेश चला गया। सुखराम ने धीरे से एक लम्बी सांस ली और कहा : 'देखा बाबू भैया ! वह कुछ बोला नहीं। वह अब कुछ नहीं बोलता। रोज आता है, और देखता रहता है।'

सुखराम की आँखें भर आई थीं। उसने फिर कहा : 'वह भी नीलू से बात नहीं करती। सब समझाकर हार गये। पर किसीकी नहीं मानती। जैसी जबर्दस्ती उसकी मां के साथ हुई थ., वैसी ही भूल से इस बार भी हो गई है।'

'पर यह तुमने किया है।' मैंने कहा।

'अपने लिये नहीं चंदा के लिये।' सुखराम ने उत्तर दिया।

मैं चुप हो गया। आकर भाभी से कहा। बोलीं : 'चलो टंटा कटा। अब तो कुंवर अपने आप नहीं जायेगा।'

'क्यों ?' मैंने पूछा।

'वह जात की नटिनी है।' भाभी ने कहा : 'और क्या ? अब ढर्रे से लग जायेगी।'

मैं समझ गया वे दुनियादारी की बात कर रही थीं। उनका खयाल था कि अब तो उसका ध्यान बँट जायेगा।

मैंने कहा : 'भाभी ! वह कन्यादान से नहीं गई जो गरीब बेबस हो ! उसने अभी अपने पति को अपना शरीर भी छूने नहीं दिया।'

'उसे पराये मरद का तो डर ही नहीं देवर', भाभी ने कहा : 'क्या पतबरता बना रहे हो उसे !'

'मैं बना रहा हूँ ? जानती हो नरेश उसे भूला नहीं है ।'

'अरे नहीं भूला तो क्या करूँ ?' भाभी ने कहा : 'एक इसके लिये भी लाऊँगी । देखूँ कैसे नहीं भूलता । क्या बखत आ गया है । जरा-जरा-से लड़के-लड़कियाँ । आस्मान में थेगली लगाते हैं । हमने तो न किया, न सुना । इसी जमाने में आकर यह कमाल शुरू हुए हैं ।' उनके स्वर में उन सबके प्रति घृणा और अपमान का भाव था ।

मुझे विक्षोभ हुआ । मैंने कहा : 'भाभी ! पर जितना तुम आसान समझती हो, यह सब उतना सहज है नहीं ।'

वे बोली नहीं । नरेश कहीं से आया । चुपचाप भीतर चला गया । भाभी को देखा तो शून्य दृष्टि से ।

'क्यों अब भी खुश नहीं हो ?' भाभी ने कहा : 'देखा क्या हाल हो गया है इसका ।'

'क्यों ऐसी क्या बात हुई है', मैंने पूछा, 'जो मैं शीरनी बाँटूं ।'

'अरे मैं उसकी माँ हूँ ।' भाभी ने कहा : 'तुम मुझे समझाने बैठे हो !'

दूसरे दिन नरेश घूमने गया । मैंने देखा तो मैं भी उसीके पीछे-पीछे चल दिया । मुझे डर था । अतः कौतूहल ने कहा कि चलो देख आओ । क्या वे अब भी आपस में मिलते हैं !

परन्तु मैंने देखा वह सफेद महल में ठहर गया । देर तक खड़ा-खड़ा सोचता रहा । मैं पहले तो समझा नहीं, पर फिर अचानक मेरे भीतर की कल्पना जागी । उसने कहा तू जानता है यह क्या कर रहा है ? दुनियादारी का स्वार्थ जो अपना एक क्षण भी नष्ट नहीं करना चाहता वह बोला—मूर्ख है । मैं क्या जानूं ! तब मनुष्यत्व ने कहा—यह उन पुरानी जगहों की याद कर रहा है, जहाँ एक दिन वह चंदा से मिलता था ।

नरेश हठात् चल पड़ा । मैं उसके पीछे था ।

चंदा राह में मिली । वह चली आ रही थी । उसका मुँह उतरा हुआ था । बाल बिखरे हुए थे । नरेश को देखा तो ऐसी खड़ी रह गई जैसे क्या करे ?

और नरेश ने देखा तो देखता ही रह गया ।

'तू !!' चंदा ने कहा । वह पास आ गई ।

'मैं जानती थी। तू आयेगा।' चंदा ने कहा : 'तू जानता है उन्होंने मेरे साथ क्या किया है ?'

'जानता हूँ।'

'फिर तूने क्या किया ?'

'क्या करता मैं ?'

'कुछ नहीं ??'

'तब तो', चंदा ने फिर कहा : 'तू बड़े-बड़े वादे करता था ?'

'तब तू मेरी थी चंदा।'

'अब किसकी हूँ ?' चंदा ने कहा। उसने स्वर उठाकर पूछा : 'अब क्या तू मुझे अपनी नहीं समझता ?'

नरेश ने मुँह मोड़ लिया।

'नहीं ?' चंदा ने रुआँसे स्वर से पूछा : 'तूने मुझे यही दिया है नरेश ! मैं समझती थी तू तो मुझे दिलासा देगा ? पर तू ! तू उनसे ज्यादा पत्थर है।'

'मैं पत्थर नहीं हूँ।' नरेश ने कहा : 'चंदा ! मैं···मैं कैसे कहूँ कि अब तेरा ब्याह हो गया है, तू मेरी नहीं है·····तू मेरी नहीं है·····'

उसका वाक्य सुनकर चंदा तड़प गई। उसने घूरकर देखा। नरेश देख न सका। चंदा ने कहा : 'कल तेरा ब्याह हो जाये तो ?'

चंदा ने घन पर हीरा रखकर पूरी ज़ोर से हथौड़ा चला दिया था। हीरा पिस गया था। मैंने सुना तो सुख हुआ। अनजाने ही नारी आज पुरुष से प्रतिद्वन्द्विता कर रही थी। नितांत अशिक्षित। वह नहीं जानती कि वोट किसे कहते हैं किन्तु जीवन का संघर्ष आज बोल रहा है। नारी पूछती है कि यदि मैं शरीर से निर्बल हूँ तो क्या सभ्यता इसीमें है कि सबल अपने से निर्बल को कुचल दे !

'तू औरत है।' नरेश ने कहा।

शताब्दियों का अन्धकार घुमड़ा और इन तीन शब्दों में संचित हो गया। जैसे जंगल के राजा शेर ने मृगों के झुण्ड पर अपना अधिकार समझकर आक्रमण कर दिया हो क्योंकि उसकी खूराक उनका लहू और मांस ही है। मैंने अनुभव किया कि यह भाव इतना पक्का है कि पुरुष ही नहीं, अब नारियाँ भी इसीका अनुभव करती हैं। उन्हें भी यही सत्य लगता है। किन्तु ऐसा क्यों है ? क्योंकि अभी हम पितृसत्ताक समाज से पूर्ण विकास नहीं कर सके हैं।

'तो क्या हुआ ?' चंदा ने पूछा।

नरेश ने कहा : 'जो होता है वही तो मानना पड़ता है।'

मैंने सुना तो मुझे ताज्जुब हुआ। मुझे कितना हर्ष होता यदि यह नई पीढ़ी का पुरुष—यही नरेश इस समय कह देता कि नहीं यह सत्य नहीं है, तू भी स्वतन्त्र है, मुक्त है। पर फिर इसका मतलब होता कि पुरुष अपनी जड़ें आप ही काट देता। उसका मत था चलो जो हुआ सो हुआ।

लड़की नये पुरुष के सम्बन्ध से अपवित्र हो जाती है। पुरुष नहीं होता। स्त्री की वासना बदलती है या फिर बच्चा हो जाने पर उसकी ममता दूसरा केन्द्र पा जाती है और फिर वह पुराना प्रेम देखकर स्वयं वह डरती है, उस पुरुष से घृणा करने लगती है, जिसे जीवन की प्रारम्भिक चाँदनी वह लुटा देती है। अतः उसके दृष्टिकोण से पुरुष ही श्रेष्ठ है।

कितनी कम उम्र में यह सबक सीख लिया जाता है ! जैसे माता जब बालक को दूध पिलाती है तब उसी दूध में उसके भीतर अहंकार उतरता जाता है, क्योंकि स्त्री भी तो पुत्र को जन्म देकर ही गर्व करती है। क्या यह इसी समाज की विषमता है, या यह भी प्रकृति का नियम ही है।

'अगर', चंदा ने कहा : 'तू यही समझता था तो तूने मुझे क्यों इतना बहकाया। तू नहीं जानता था मैं नटनी हूँ और तू ठाकुर है ? तू मेरे ऊपर अहसान कर रहा था !'

मेरे मन में आया नरेश से कहूँ कि देख आज जीवन की वास्तविकता बोल उठी है !

नरेश ने कहना चाहा पर कुछ उत्तर नहीं दे सका। वह घुटकर रह गया।

किन्तु वह मेरी संकुचित धारणा थी। नरेश इतने में ही पूर्ण नहीं था। वह तो विकास कर रहा था। हृदय का मंथन कर रहा था। कभी वह बोलता था, कभी उसका संस्कार बोल उठता था।

चंदा उसके बाद नरेश से फिर मिली।

'तू मुझे नहीं चाहता ?'

'चाहता हूँ।'

'फिर मुझे छूता क्यों नहीं ?'

'यह पाप है, मैं डरता हूँ।'

'पाप ? कैसा पाप ?'

'तेरे लिये क्या कुछ पाप नहीं है ?'

'पाप !' चंदा ने कहा : 'यों नहीं कहता कि तू मुझे असल में चाहता ही नहीं। बातें बनाता है।'

'अगर मैं तुझे चाहता न होता तो क्यों आता ?'

'पर मुझमें पाप क्या है ?'

चंदा ने दृढ़ता से पूछा। नरेश ने उसकी आँखों में झाँका। और फिर धीरे से कहा : 'तू पराये की है न ?'

'कैसे ?' चंदा ने पूछा।

'तेरा ब्याह नहीं हुआ ?'

'हुआ।' चंदा ने कहा : 'पर मैं अब भी वैसी ही हूँ। मैंने उससे आज तक जब नाता न जोड़ा तो मैं पराये की कैसे हुई ?'

नरेश कह नहीं सका।

'मैं अब भी तेरी हूँ नरेश।' चंदा ने याचना की।

'वह नहीं हो सका चंदा।'

'क्यों ?'

'क्योंकि तू पराये के घर भेजी जा चुकी है, और दुनिया तुझे उसीकी मानेगी।'

'तेरी भैंस खोलकर कोई तेरे सोते में ले जाये और अपने नौहरे में बाँध ले तो वह उसकी हो गई ?' चंदा ने पूछा।

'नहीं।'

'क्यों ?'

'वह मेरी है।'

'तू उसके लिये लड़ेगा ! पर मेरे लिये नहीं लड़ेगा !'

'नहीं।'

'क्यों ?'

'क्योंकि जग हँसेगा।'

'फिर तू मुझे छोड़ देगा ?' चंदा ने रुंआसी होकर पूछा।

'हाँ।'

'और तू मुझे भूल जायेगा ?'

नरेश की आँखों में आँसू आ गये। बोला नहीं।

चंदा मुस्करा दी। उसका साहस लौट आया। कहा : 'तू सच कहता है !'

'मैंने तुझसे कभी झूंठ भी कहा है चंदा !' चंदा की ओर द्रवित दृष्टि से देखकर नरेश ने कहा।

'नहीं ! तो बिना भूले तू जियेगा कैसे ?'

'मैं नहीं जानता।' नरेश ने हथियार डालते हुए कहा।

'फिर मुझे ले चलेगा ?'

'नहीं।'

चंदा हतप्रभ हो गई। कहा : 'मैं मर जाऊँ ?'

'मैं क्या जानूँ चंदा। तू मर जा, मैं भी मर जाऊँगा।'

'तो चल।' चंदा ने कहा—'मैं नहीं डरती। यहाँ नहीं मिलेंगे तो वहाँ मिल जायेंगे।'

पर नरेश लौटा। चंदा देखती रही। वह उसे छोड़कर चला जा रहा था। वह देखती रही और फिर वह भागी।

उसने सामने आकर कहा: 'तू मुझे सदा के लिये छोड़कर जा रहा है ?'

नरेश ने कहा : 'मैं तुझे छोड़कर नहीं जा रहा हूँ चंदा। मैं बिछुड़कर जा रहा हूँ।'

चंदा ठिठक गई। नरेश देखता रहा और फिर आगे बढ़ गया। चंदा फिर भागी।

उसने उसे पकड़ लिया।

नरेश ने कहा : 'मुझे छोड़ दे।'

'नहीं।' वह चिल्ला पड़ी।

नरेश बढ़ा। चंदा ने पाँव पकड़ लिये। इसी समय नीलू दिखाई दिया। उसने झपटकर नरेश पर हमला किया। नरेश गिर गया।

नीलू ने हटकर चंदा के बाल पकड़ लिये।

नरेश ने कहा : 'हट जा कायर !'

नीलू ने कहा : 'जा-जा !'

नरेश झपट पड़ा, कुश्ती होने लगी। नरेश नीचे आ गया था। चंदा ने नीलू के बाल खींच लिये। नीलू नीचे आ गया। चंदा उसे ठोकर मारने लगी। नरेश ने उसके मुँह पर घूँसे मारे।

नीलू गुस्से से पागल था। वह उसकी स्त्री थी और नरेश ! वह चिल्लाया :

'साले तेरी सारी ठकुराई निकाल दूंगा।'

नरेश ने इसका उत्तर नहीं दिया, एक कसकर घूंसा दिया। नीलू गिर गया पर जो उठकर झपटा तो नरेश धरती पर गिरा। उस समय अत्यन्त क्रोधित होकर नीलू ने बढ़कर चंदा की कमर में कसकर लात दी। चंदा भहरा कर गिरी। फिर नरेश नीलू पर टूटा। अब की बार वे दोनों बड़ी ज़ोर से भिड़े। नीलू ने नरेश को बुरी तरह मारा। उसने उसके सिर को धरती पर बाल पकड़-पकड़कर दे मारा। लहू बहने लगा। नरेश गिर गया था।

नीलू उठकर खड़ा हो गया।

'अरे तेरा सत्यानास जाये कसाई।' चंदा चिल्लाई और नरेश से चिपट गई। वह रोने लगी और उसने कहा : 'निरदई ! तूने इसे मार डाला !'

नीलू ने उसके बाल पकड़ लिये और खींचकर उठा लिया। चंदा लड़ने लगी। नीलू ने कहा : 'कुतिया !'

किन्तु नीलू चंदा को कन्धे पर उठाये चला गया।

कुछ देर बाद जब होश आया तो नरेश ने आँखें खोलीं। सिर में दर्द हो रहा था। खड़े होकर देखा। दूर नीलू चंदा को लिये चला जा रहा था। उस समय नरेश को क्रोध आया और फिर वह अचानक बोल उठा : 'करनट !! तेरी इतनी हिम्मत !!'

नरेश खड़ा नहीं रहा। वह बदला नहीं चाहता था, वह अपने अपमान को धोना चाहता था।

जब नरेश घर पहुँचा तो ठाकुरों ने देखा।

'क्या हुआ छोटे सरकार।' जोरावरसिंह ने कहा।

'मुझ पर करनट ने हमला किया था।' उसने कहा।

'नटों की यह हिम्मत।'

आठ-दस लठैत तैयार हो गये।

वे चले। कोई तर्क नहीं हुआ। सवाल नहीं उठे। जैसे यह सब अपने आप में न्याय था।

नटों को पकड़ लिया गया। नट समझे नहीं। आखिर बात क्या थी! परन्तु इतना ताव किसे था!

लट्ठ बरसने लगे। नट पहले तो चुप रहे। पर तभी एक चिल्लाया : 'अरे क्या पिटते ही रहोगे ?'

सुखराम बाहर आया। नटों ने लट्ठ लेकर हमला किया। सुखराम चिल्लाने लगा 'रोको-रोको' पर किसीने नहीं सुना। उस समय नरेश भागता हुआ आया और चिल्लाया, 'रोक दो-रोक दो', परन्तु शीघ्र ही सुखराम और नरेश। घायल होकर गिर गिये। ठाकुर लौट गये।

जब मुझे मालूम हुआ तो दौड़ा-दौड़ा गया। सुखराम घायल पड़ा था। मैंने उसे उठाया। उसने कहा : 'तुम क्यों आये हो बाबू भइया।'

मैंने कहा : 'देखने आया हूँ जुल्म के कितने पहलू हैं।'

'मत देखो बाबू भइया।' उसने करुण स्वर से कहा।

'क्यों ?'

'छाती फट जायेगी।' और दारुण वेदना से कह उठा : 'अब नहीं सहा जाता।'

वह लहू से भींग गया था। उसने पूछा : 'मगर यह हुआ क्यों ?' नरेश लाठी की चोट खाये सामने खड़ा था।

'तुम भी कुँवर !!' उसने पूछा।

चंदा ने कहा : 'नीलू ने नरेश को मारा था पहले। ठाकुरों ने इसे भी मारा। यह तुम्हें बचा रहा था।'

'तूने ?' सुखराम क्रोध से उठा और उसने नीलू के ज़ोर का थप्पड़ दिया। नीलू की घिग्घी बँध गई। फिर सुखराम ने कुँवर के सिर पर हाथ फेरा और अचानक ही वह बदल गया। 'तू फिर गई थी वहाँ ?' वह मुड़कर चंदा पर चिल्लाया।

'नहीं जाऊँ ?' चंदा ने तड़पकर पूछा। 'तूने मुझे नीलू से बाँधा है इसलिये ?'

'हाँ !' वह गरजा।

'तो तू मेरा मन बांध लेगा ?' चंदा ने डपटकर पूछा।

सुखराम को झटका लगा। उसने सिर पकड़ लिया और बैठ गया। चंदा रोती हुई 'दादा, दादा' पुकारती उसके पांवों से लिपट गई। सुखराम स्थिर बैठा रहा। वह रो दिया।

'तुझे दुख होता है ?' चंदा ने पूछा ।

'नहीं ।'

'फिर रोया क्यों ?'

'तूने मुझे जवाब दिया चंदा ।'

'तो तू क्या मुझे मार नहीं सकता ?'

'मेरी बच्ची !' उसने चंदा को सीने से चिपका लिया। मैं देखता रहा ।

'मुझे न भेज दादा ! इसके पास न भेज ।' उसने नीलू की ओर उंगली उठाकर कहा : 'मुझे न भेज ! मैं नरेश के पास नहीं जाऊँगी, पर इसके पास से मुझे बचा ले दादा तू !' वह ऐसी रोई कि सुखराम का हृदय टुकड़े-टुकड़े हो गया।

'तू मेरे पास रहेगी चंदा,' सुखराम ने कहा : 'तू सुनता है नीलू ! यह अब तेरे पास नहीं रहेगी । और जो तूने इस पर हाथ उठाया तो उसे तोड़ दूँगा ।'

नीलू कांप गया ।

एक नट आ गया था । बोल उठा : 'लड़की के साथ जुलम न कर सुखराम ।'

'तो क्या करूँ ?'

'यह तो सोच ठाकुर उसे रख लेगा ?'

सुखराम उत्तर नहीं दे सका । एक नटनी ने कहा : 'छोरी का क्या ? दो-चार बार इसके संग हो आयेगी, फिर तू ही जो बसा लीजो नीलू । फिर आ जायेगी यह । मैं कहती हूँ बुखार है । उतर जाने दे । तेरा क्या बिगड़ जायेगा जो उसके पास हो आयेगी ये ?'

'क्या कहती है तू ।' सुखराम ने कहा ।

तभी मंगू और उसकी बीबी आ गई ।

नटनी ने कहा : 'अरे रहने दे किसीके साथ भाग जायेंगी !'

सुखराम जवाब न दे सका ।

नटनी चली गई । मंगू की बहू ने कहा : 'अरे सुखराम ? तेरी ठकुराई ने तीन-तीन पीढ़ी से सांसत सही, रस्सी जल गई, पर तेरा बल नहीं गया ।'

'बकती है उस्ताद ।' मंगू ने टोका । 'सब ठीक हो जायेगा ।'

मैंने कहा : 'सुखराम, तू चल मेरे साथ ।'

'कहाँ बाबू भैया !'

'मैं कुछ बात करना चाहता हूँ ।'

'चलो।' वह कठिनाई से उठा।

मंगू चंदा के पास रह गया। उसकी बहू उसके बाल काढ़ने में लग गई।

हम दोनों एकान्त में आ गये।

मैंने कहा : 'सुखराम ! तुमने शादी क्यों कर दी ?'

'क्या करता मैं ?'

'नरेश तो छोड़ता ही नहीं।'

'मैं करूँ क्या ? बाबू भैया !' वह लाचार था।

'चंदा की भी चिन्ता की है ?'

'वह तो नटनी नहीं है बाबू भैया। उसमें हुकूमत है, तुमने कभी देखा है ?'

'नटनी नहीं है ?' मैं चौंका।

मैंने नहीं बताया था उस दिन ?' उसने पूछा : 'शायद इसलिये नहीं बताया होगा कि मैं डरता था।'

'तो यह लड़की कजरी की नहीं है ?'

'नहीं।' उसने कहा।

'इसका तुमसे कोई सम्बन्ध नहीं ?'

'नहीं।' उसने निश्चयात्मक स्वर में कहा।

'फिर !' मैं ने पूछा।

'मैं डरता हूँ बाबू भैया। यह बात सिवाय मेरे कोई नहीं जानता।'

मुझे झटका लगा। कहा : 'पर तुमने तो मुझे बहुत कुछ बताया था ?'

'वह सब मेरे बारे में था।' उसने स्पष्ट कहा।

'और यह ?'

'यह चंदा के बारे में है।' जैसे यह तो एक रहस्य था।

'फिर क्या हुआ ?'

'मैं सोचता हूँ अगर नरेश जान गया तो ?'

'मैं नहीं बताऊँगा उसे।'

उसे विश्वास हुआ। कहा : 'सिर्फ नरेश से डरता हूँ। ठाकुर ने मुझसे भीख मांगी है। जानते हो यह मिसी बाबा की है।'

'किसकी ?'

'मिसी बाबा की।' मैंने सुना और फिर भी विश्वास नहीं हुआ।

'मिसी बाबा की ?' मैंने दुहराया।

सुखराम के नेत्रों में जैसे कोई सुदूर की स्मृति हो आई हो।

'हाँ।' उसने कहा।

उत्सुकता मेरे अन्दर जाग उठी थी। मैंने कहा : 'खून से कुछ नहीं होता सुखराम ! यह तो तुमने उसे ऐसा सिखाया है। तुमने उसे नटनी की तरह नहीं पाला। वक्त बदल गया है वर्ना क्या तुम उसकी हिफाज़त कर पाते ? मैं सुनना चाहता हूँ। सुखराम ! मुझे बताओ।'

वह चिन्ता में पड़ गया था। उसने कहा : 'बाबू भैया ! इसे मैं फिर बता दूँगा।'

'आखिर क्यों ?'

'क्योंकि इसमें मेरा दिल कांपता है। मुझे ऐसा लगता है कि यह बात अगर खुल गई तो नरेश ज़रूर ठाकुर सा'ब से कहेगा। कौन जाने तुम ही कह डालो। तुम सोच सकते हो कि ठाकुर ने मुझसे क्या कहा था ? उन्होंने कहा था : सुखराम ! मेरे एक ही बेटा है। उसको छोड़ दो। मैंने कहा : ठाकुर सा'ब मैं तो कुछ नहीं करता। बच्चे नहीं मानते तो मैं क्या करूँ ? वे कहने लगे— मानता हूँ, ज़माना बदल रहा है, और आगे चलकर यह सब बदल जायेगा। पर क्या मैं और तू इस सबको आज ही बदल सकते हैं ? बाबू भैया ! कभी कोई ठाकुर किसी करनट से ऐसे बात कर सकता है ? वे बड़े नरम दिल के आदमी हैं। मैं उन्हें दुख नहीं देना चाहता। मैं गरीब हूँ। आज तक ऐसे ही रहा हूँ। मेरी अब ज़िंदगी ही कितनी बची है ! थोड़ी और है। वह भी ऐसे ही निकल जायेगी। लेकिन चंदा ! वह कभी सुख पाने के लिये नहीं आई। वह अपने को उस दिन ठकुरानी कहती थी। याद है ? अव्वल तो यह अंगरेज़ की बेटी ! फिर इसमें ठकुरानी की चाह है। यह आगे दबेगी कैसे ?'

मैं सुनता रहा। सुखराम कहता रहा : 'बाबू भैया ! इसे मैंने जितने आराम से पाल सकता था पाला। मुझे चलते वक्त अपने पास के सात हजार रुपये मिसी बाबा ने दे दिये थे। उन्हींसे मैंने इसे भूखा नहीं मरने दिया। पर डर के मारे में किसीसे भी नहीं कह सका।'

'ठाकुर से तुमने कहा था यह सब ?'

'नहीं बाबू भैया !' सुखराम ने कहा।

'क्यों ?'

'क्या होता !'

'कहकर देखने में हर्ज क्या था ?'

सुखराम ने कहा—'हर्ज कुछ नहीं था बाबू भैया ! पर मैंने ठीक नहीं समझा। चंदा दुनिया की आँख में तो नटनी ही है, वह ठकुरानी नहीं है। मेरे पास इसका सबूत ही क्या है कि वह मिसी बाबा की लड़की है। और वह भी तो बहुत अच्छी बात नहीं है ?'

'क्यों ?' मैंने पूछा।

'वह चोरी की औलाद है।'

वह कहकर चुप होकर मेरी ओर देखने लगा। शायद मेरी तरफ़ देखकर मेरी प्रतिक्रिया देखना चाहता था।

मैंने कहा : 'माँ-बाप गन्दे और अपवित्र हो सकते हैं सुखराम ! बच्चे कभी अपवित्र नहीं होते।'

'तुम ऐसा मानते हो बाबू भैया ! कजरी भी यही कहती थी।'

'कजरी कहाँ गई सुखराम ? तुमने मुझे नहीं बताया।'

उसने एक लम्बी साँस ली जैसे सारी पुरानी स्मृतियाँ जाग उठी हों। वह अतीत कितना भारिल था, वेदना से अभिभूत ! समय की सेना उस दुनिया को कुचलती हुई आगे बढ़ आई थी, किंतु जैसे वह अभी तक उन घायल, बेपनाह सैनिकों की तरह सुन रहा था। वह उसका वह जीवन था, जो बीत गया था, किन्तु जिससे मिलकर ही उसके आज तक को पूर्णता प्राप्त होती थी, जैसे मिट्टी और फूल के बीच की वह एक लम्बी हवा में हिलने वाली लचकदार डाली हो·····

परन्तु वह उसे कह नहीं पा रहा है·····

यह गेय भाव नहीं है, यह तो अनाहतनाद से भी दुरूह और रहस्यमय है, जिसमें चित्र बनते हैं, बिगड़ते हैं और एक झलक-सी रह जाती है।

मिसी बाबा उदास रहती। बड़ा साहब दौरे पर था।

कजरी ने सुखराम से कहा : 'तूने सुना ?'

'क्या हुआ ?'

'मिसी बाबा के पेट रह गया है।'

'सच !'

सुखराम को धक्का लगा।

पूछा : 'कब ?'

'उसी दिन।'

सुखराम ने कहा : 'उसी दिन ? कैसे ?'

'अरे कौन जानता है। यह तो भाग की बात है।'

'बहुत बुरा हुआ।'

सुखराम सोचने लगा।

'क्या सोचता है ?' कजरी ने पूछा।

'यही कि अब क्या होगा ?'

'बच्चा,' कजरी ने कहा। 'और क्या ?'

'वह बेफिक्र है ?'

'वह बड़े सोच में पड़ी हुई है, मरी जाती है।'

'यही तो।'

'किसीसे कह नहीं सकती,' कजरी ने कहा।

'हूँ।' सुखराम ने उत्तर दिया।

'सा'ब से क्यों नहीं कहती ?' उसने पूछा।

कजरी ने कहा : 'मैंने तो समझाया था। पर वह कह ही नहीं पाती। जाने क्यों कहते सरमाती है।'

'क्वारी है वह !'

'फिर ?'

'फिर क्या ?' सुखराम ने पूछा।

'मैं पूछती हूँ लजाकर फायदा ही क्या ? गरभ हुआ है, तो बच्चा तो होगा ही। जो हो गया सो तो हो ही गया। अब वह तो आ गया है। कहीं छूमंतर तो हो नहीं सकता। फिर क्या उसका कोई इन्तज़ाम नहीं करना है ?'

'मैं क्या बताऊँ कजरी। तभी वह तुझे बच्चे के लिये इतनी चीजें देती है।' कजरी समझी नहीं।

'तो आखिर होगा क्या ?' सुखराम ने पूछा।

और सुखराम ने सोचा। माँ तो माँ है। पर पाप का डर उसे अपनी ममता को फलने-फूलने नहीं देता। उसे वह पूरा करती है कजरी की ममता को बढ़ावा देकर।

'मैं क्या जानती हूँ जो मुझसे पूछता है ?' कजरी ने कहा।

सुखराम बीड़ी पीने लगा। कजरी ने बीड़ी पीते हुए कहा : 'अकेला-अकेला

पीता है तू । मुझे पूछता भी नहीं ।'

'अरे हाँ । भूल गया था ।'

'अभी तो बीड़ी भूला है, आगे चलकर कहीं मुझे ही भूल गया तो !'

'तो क्या होगा ?'

'कुछ नहीं होगा ?'

'अरे भूल गया तो भूल ही गया ।'

कजरी रूठी ।

'क्यों ?' सुखराम ने पूछा, 'क्या हुआ ?'

'कुछ नहीं ।'

'तू मानती है कि मैं तुझे भूल जाऊंगा ?'

'मानती तो नहीं ।'

'उसका जापा कहाँ होगा ?' सुखराम ने बात बदलकर कहा : 'गांव में तो हो नहीं सकता । यहाँ तो साहब की भद्द उड़ जायेगी ।'

'सो तो मैं जानती हूँ ।'

'तो तैंने पूछा नहीं ?'

'मैंने नहीं पूछा । वह सोच में मरी जा रही है वैसे ही ।'

'लेकिन यह तो कोई बात नहीं । वह मर रही है तो तू भी मरी जा रही है । क्यों ?'

'मैं क्यों मरी जाती हूँ ?' कजरी ने पूछा ।

'उससे सब पूछ, वह क्या कहती है । साहब से कहना ही होगा । वह ही इसका इन्तजाम करेगा ।'

'फिर ? जो वह कहेगा ही क्या ?'

'यह मुझे क्या खबर !' सुखराम ने कहा : 'बड़ी जातों में बच्चा गिरा देते हैं, यह तू नहीं जानती क्या ? हम लोग तो ऐसा नहीं करते कजरी । मानुस का जनम मिलता है जो फिर !'

'फिर ? फिर ?' कजरी ने मुँह चिढ़ाया—'बड़ा मानुस का जनम लिया । अरे जनम सब लेते हैं । कोई भला कोई बुरा ।'

'पर जनम लेना भी मामूली बात नहीं है ।'

'उसमें क्या मुस्किल है ?' कजरी ने पूछा ।

'तू समझती ही नहीं । मैं क्या करूँ ?'

कजरी बोली : 'लुगाई का क्या ? अपनी बात बताती हूँ। मरद को उल्लू बनाती है वह। ताकि अपनी इज्जत करवा सके।' कजरी फिर हल्के से हँसी और कहा : 'बच्चा होना मरद को बहुत बड़ी बात लगती है, औरत को तो नहीं लगती।'

सुखराम ने देखा वह कल्पना में मग्न थी। उसने फिर सुखराम की ओर देखकर कहा : 'सबके होते हैं। और जिसके नहीं होते उसका मन धुक-धुक करता है दारी का, दूसरों के देखके छाती फटती है उसकी। दुनिया में उस लुगाई की इज्जत ही क्या जो बाँझ हो। बंजर धरती कौन लेता है ? मैं तो समझती हूँ कि मिसी बाबा के बच्चा हो रहा है सो इसमें कोई बुरी बात नहीं है।'

'लेकिन यह तो ठीक नहीं है न ?' सुखराम ने कहा।

'क्यों ?' कजरी ने पूछा—'माँ होना क्या लुगाई के लिये अच्छा नहीं है। औरत माँ न होती तो तू कहाँ से आ जाता ?'

'पर वह क्वारी है', सुखराम ने कहा।

'उससे क्या हुआ ?' कजरी ने कहा : 'ब्याह तो बिरादरी की बात है। बच्चा होना भगवान की कुदरत की बात है। यों हो चाहे त्यों हो पर बच्चा तो बच्चा ही है, और उसका जनम तो एक ही-सा होता है। पहले पाप हो जाये, फिर पुन्न हो जाये, यह समझ में नहीं आता।' और फिर उसने जैसे सोचकर कहा : 'तो ब्याह क्यों नहीं कर लेती वह ? अगर इतनी ही साँसत है, तो कर-करा ले।'

'अब पेट वाली से कौन करेगा ?'

कजरी हँसी। कहा : 'मैं अपना कल करके दिखा दूं तुझे।'

'अरी हमारी बात और है, उनकी और है, वे बड़े लोग हैं, हम छोटे आदमी हैं।'

'अच्छा तो बड़े लोग हम लोगों की तरह नहीं जीते-मरते ? हम क्या मानुस नहीं हैं !'

'पर उसका बच्चा पाप कहलायेगा।'

'क्यों ?'

'दूसरा मरद, दूसरे मरद का बच्चा क्यों पाले ?'

'अच्छा !' कजरी ने कहा : 'दूसरी औरत दूसरी औरत का बच्चा कैसे पाल लेती है ?'

'कहाँ ? सौतेली माँ को देखा नहीं तूने कभी ?'

'पर सब तो बुरी नहीं होतीं।' कजरी ने कहा : 'दुनिया है ये। झट से नाम धर दिया सौतेली माँ। बदनाम कर दिया औरतों को। यह भी सोचा है कभी कि इस दुनिया में सौतेले बाप होते तो मरद कितने खून करते ?'

'वह सब ठीक है !' सुखराम जवाब नहीं दे सका। उसने कहा : 'मतलब की बात कर।'

'इससे भी बड़ी कोई मतलब की बात हो सकती है ?' कजरी ने कहा : 'दैया री ! लुगाई माँ बने और वह पाप हो जाये। लुगाई की कोख तो धरती माता है। धरती कहीं पाप करती है ?' और फिर बच्चे का इसमें क्या दोष है ?'

'तू उससे पूछ, मुझसे बहस मत कर।'

'अब जवाब नहीं बनता तो खिस्याता है। अरे तुम मरद हमींसे जनम लेके हमारे ही हाथ-पाँव बांधो ! तुमने लुगाइयों को बेवकूफ़ बना रखा है। पतबरता-पतबरता कहके तुमने खूब बनाया है। अब मैं क्या औरों के संग नहीं रही हूँ ? पर मजबूर थी। अब मुझमें कुछ खोट आ गया है ? तू प्यारी के संग था तो खोट आ गया है तुझमें ?'

'तो फिर तेरी राय में दुनिया में आदमी बस ऐसे ही जगह-जगह खाते-पीते रहें।'

'वारे ! बड़े खाने की बात करता है। आदमी आजाद होगा, अकल होगी तो कूंए का पियेगा कि मनमानी नाली का भी पीता रहेगा ?'

'पर सब तो ऐसे नहीं होते ?'

'सब ही भोले-भाले आते हैं बलमा दुनिया में।' कजरी ने कहा—'लुगाई भगवान जैसे भोले-भाले को जनम देती है। यह सब तो यहाँ दुनिया में आके वह सीखता है।'

शाम को कजरी ने सूसन से पूछा।

सूसन ने कहा : 'क्यों पूछती है ?'

'वह पूछता था !'

'तूने सुखराम से कह दिया क्या ?'

'हाँ मिसी बाबा !'

सूसन का चेहरा लाल पड़ गया।

'नहीं कहना चाहिये था ?' कजरी ने पूछा।

सूसन का मुख नीचे हो गया।

'आपको दुख होता है मिसी बाबा !' कजरी ने कहा : 'मुझे क्या खबर थी !'

'उसने क्या कहा ?' मिसी बाबा ने पूछा।

'परेशान हो गया वह।'

सूसन को कौतूहल बढ़ा। पूछा : 'उसने कहा क्या वह नहीं याद है ?'

'पता नहीं फिकर में पड़ गया वो।' कजरी छिपा गई।

सूसन सोचने लगी।

'सरकार क्या सोच रही हैं ?' कजरी ने पूछा।

'कुछ नहीं।'

'क्यों मिसी बाबा यह तो खुशी की बात है !'

'क्यों ?'

'हुजूर आप माँ होंगी तो क्या यह अच्छी बात नहीं है ? दुनिया ऐसे ही तो बढ़ती है।'

सूसन ने कहा : 'नहीं कजरी।'

'क्यों ?'

सूसन ने कहने को मुँह खोला, पर होंठ फड़ककर रह गये।

'हाँ तुम क्वारी जो हो' कजरी ने कहा, जैसे बाद में अचानक याद आ गया हो।

तब मातृत्व का प्रेम उमड़ा। कैसी विवशता थी। पुरुष के अत्याचार का परिणाम गर्भ में नारी का वरदान बन गया था और वह उसे प्यार करने लगी थी। सूसन रोने लगी। कजरी उसके सिर पर हाथ फेरती खड़ी रही। कहा : 'मिसी बाबा ! मुझे तो बड़ा अच्छा लगता है। आपको भी लगता तो होगा। पर यह भी क्या दुनिया है ! इतना सब कुछ है, पर फिर भी आपको आजादी नहीं, आपके लिये तो सब कुछ होकर भी नहीं के बराबर है।'

रात को बूढ़ा सा'ब आया। अब वह अकड़ता नहीं लगता था। वह देर तक कुछ सोचा करता था। परन्तु कहता कुछ नहीं था। वह सूसन से भी कम बोलता था। सूसन भी कम बोलती थी। अब वह बात नहीं रही थी। कजरी बका करती, सूसन सुना करती। पहले की तरह सवाल-जवाब नहीं होते थे। सुखराम एक ओर खड़ा था। वृद्ध ने देखा।

सूसन उसके सामने बैठ गई।

कुछ देर सन्नाटा छाया रहा। फिर कजरी ने सुखराम की ओर देखा। कजरी ने कहा : 'सरकार ! हुकम मिल जाय तो एक बात अरज करूँ ?'

वृद्ध ने देखा और भौं से ही इशारा किया जैसे कह सकती है, बोल दे।

कजरी ने कहा : 'हजूर···'

पर फिर जीभ तालू से सट गई।

वृद्ध ने सुखराम की ओर देखा और जब सुखराम ने मुँह फेर लिया तो कजरी ने कहा : 'क्या बोलता है तुम ?'

'हुजूर माफ़ करें मैं···मैं···'

'बोलो, बोलो।' वृद्ध ने आश्वासन दिया।

'हुजूर' उसने धीरे से कहा : 'मिसी बाबा माँ होने वाली हैं।'

माँ !!

मिसी बाबा माँ !!

सूसन पत्थर की मूर्त्ति की तरह बैठी थी निष्प्रभ, प्राण-हीन। वह इस आघात के लिये तैयार होकर भी तैयार नहीं हो सकी थी। वृद्ध ने देखा।

सूसन !!

माँ !!!

बुड्ढे ने सिर पीट लिया। उसको देखकर सुखराम चौंक उठा।

वह देर तक चुप बैठा रहा।

सन्नाटा तोड़कर उसने कहा : 'सुखराम !'

'हुजूर !'

'तुम कभी बाहर गया है ?'

'कहाँ हुजूर ?'

'गाँव के बाहर।'

'सरकार रियासत में घूमा हूँ।'

'और कोई शहर देखा है बड़ा ?'

'नहीं सरकार।'

बूढ़ा चुप हो गया। फिर कहा : 'सूसन !'

सूसन ने सिर उठाया। आँखें डबडबा आई थीं। वह झटके से खड़ी हो गई। उसने सिर के बाल नोंच लिये और दीवार से सिर टकराने लगी। वह चिल्ला रही थी : 'मैं मर क्यों नहीं जाती···मैं मर क्यों नहीं जाती···'

कजरी ने उसे पकड़ा। लाकर बिठाया। वृद्ध की आँखें भीग गईं। फिर उसने कहा : 'सूसन ! तुम बम्बई चली जाओ। और सुखराम ! तुम और कजरी सूसन के साथ चले जाओ। वहाँ जापा कराओ और लौट आओ। सूसन ! तुम सीधी इंगलैंड चली जाओ। हिन्दुस्तान उस अंगरेज़ के लिये नहीं है जो हिन्दुस्तानी औरत को छेड़ता है और हिन्दुस्तान उस अंगरेज़ औरत के लिये भी नहीं है जिससे इंगलैंड का सिर झुक सकता है।'

बूढ़ा थक गया था। सूसन चुप बैठी रही।

'सुखराम !' वृद्ध ने कहा।

'सरकार !'

'तुम समझा !'

'मालिक जान रहेगी तब तक खिदमत करूँगा।'

'दगा तो न देगा ?'

'अगर भरोसा नहीं हो तो नहीं जाऊँगा।'

बूढ़ा उठा। घूमने लगा। उसकी मुट्ठी बँध-बँध जाती थी। फिर उसने मुड़कर अपने बाल नोंच लिये और वह कराह उठा : 'इंगलैंड !'

सूसन फिर भी चुप बैठी रही।

कजरी डरी। पुकारा : 'मिसी बाबा !'

कजरी कह गई पर सूसन ने सुना नहीं।

कजरी ने फिर पुकारा : 'मिसी बाबा !'

सूसन चौंकी और वह फूट-फूटकर रो पड़ी।

'रोती है ?' बूढ़ा गुस्से से बढ़ा।

'सरकार !' सुखराम ने कहा—'आपकी बेटी है। औरत है। वह क्या करतीं ?'

बूढ़ा हार गया। वह हारकर बैठ गया। फिर वह बड़बड़ाया : 'मैं

आया था·····मैं जीत गया·····पर मैं हार गया हूँ·····क्राइस्ट····· माफ़ कर·····हमें माफ़ कर·····

वह प्रार्थना करने लगा । मन हल्का हो गया । फिर उसने कहा : 'कजरी !'

'जी मालिक !'

'वह बच्चा क्या होगा ?'

'सरकार जो कहैं ।'

'तुम पाल लेगा उसे ?'

'पाल लूंगी सरकार !'

'हम तुमको रुपया देगा !'

'द्यो नहीं पालूंगी सरकार ।'

'क्यों ?'

'सरकार बच्चे का मोल नहीं लूंगी । वह तो देवता होता है । आपका नमक खाया है । उसे निभाऊँगी । दुनिया में सबके बच्चे तो नहीं पाल लेती मैं ?'

वृद्ध के हाथ काँप उठे । उसने कहा : 'इंगलैंड ! इंगलैंड !!!'

जैसे वह घोर यातना में था, फिर उसने सूसन को सीने से लगाकर कहा : 'मेरी बेटी ।'

सूसन सिसक उठी ।

वृद्ध बड़बड़ाया : 'मेरी बेटी का बच्चा मेरा नहीं होगा·····' लगा जैसे वृद्ध की आत्मा भीतर ही भीतर मरोड़ा खा रही थी ।

दूसरे दिन ही वे चल पड़े । वृद्ध ने बेटी को स्टेशन पर बिदा दी । कजरी सूसन के साथ ही रही । पूरा फ़र्स्टक्लास का डिब्बा था । सुखराम 'सर्वेन्ट्स' में था । कजरी ने आँखें फाड़कर देखा और जब सूसन एक सीट पर लेट गई तो नीचे बैठ गई । पर सूसन ने हाथ पकड़कर कहा : 'ऊपर बैठ कजरी ।'

'अरे नहीं मिसी बाबा । आप मालकिन हैं । मैं मर न जाऊँगी ?'

'तू मेरे बच्चे की माँ होगी कजरी ! मेरे पास बैठ । इस सारी दुनिया में तू ही उसके हँसने-रोने पर हँसेगी-रोयेगी । यहाँ मैं और तू हैं । कोई नहीं

है, मेरे पास बैठ···तुझे मैं बच्चा नहीं, अपना हृदय दे रही हूँ···तू उसकी माँ होगी।'

कजरी को बैठना पड़ा ।

सुखराम जब आया तो आँखें फटी रह गईं ।

इशारा किया, नीचे बैठ ।

कजरी ने मुँह बिचकाकर मोड़ लिया। सुखराम उल्लू-सा देखता रह गया। पर वह फिर-फिर इशारा कर रहा था । कजरी ने देखा और नीचे बैठने लगी।

'क्या हुआ ?' सूसन ने पूछा ।

'वह कहता है !' कजरी ने इशारा किया।

सुसन ने हंसकर कहा : 'उसको कह दे चुप रहे।

कजरी ने इशारा किया जा जा·····

और सीट पर ही बैठी रही ।

◇ ◇ ◇

सुखराम गाँव लौट रहा है। उसकी गोद में बच्ची है। एक गोरी-सी छोटी-सी बच्ची। आज वह फिर गाँव लौट आया है। पर वह हृदय में रो रहा है। वह संरक्षक बन गया था, और आज फिर संरक्षक बनकर लौट आया है। उसे एक बात याद आ रही है।

बंबई को देखकर कजरी की आँखें फटी रह गई थीं। उसने कहा—'दैया री ! दुनिया कित्ती बड़ी है।'

सूसन ने कहा था : 'इससे भी बड़ी है ये दुनिया।'

'तभी,' कजरी ने कहा—'बूढ़ा हरपाल कहा करता था कि आस्मान में जो तारे हैं उस पर भी हमारी ही जैसी दुनियाएं बसी हुई हैं।'

पर वह बात रास्ते की थी। बंबई !! विराट बंबई ! हाहाकार ! वैभव !! अनंत उन्माद !! पिसते ! मरते ! सड़ते हुए आदमी ! और वहीं वे लोग एक होटल में टिके थे। कितना विलास था वहाँ !

सुखराम की इच्छा होती है वह इस सबको भूल जाये। भूल जाये क्योंकि उसकी याद करके उसका हृदय फटने लगता है।

कजरी ने कहा था : 'मिसी बाबा !'

'क्या ?' सूसन ने पूछा था।

'तुम्हारे मन में माँ का प्यार नहीं आता ?'

'आता है कजरी।'

'फिर तुम बच्चा छोड़ोगी कैसे ?'

सूसन रोने लगी थी।

डाक्टर आता था। देख जाता था।

और सुखराम आँखें पोंछ लेता है।

वे हवा-पानी के झोके बंबई में नहीं थे। कजरी बीमार हो गई थी। सुखराम दुबिधा में फँस गया था। दुतरफ़ा काम था। कजरी बीमार थी, सूसन आराम में पली जच्चा थी। सूसन कहती थी—'तुझे अच्छा होना है कजरी, वर्ना मेरे बच्चे को कौन संभालेगा !' सुखराम अब जात के लिये लड़ता न था। उसके सामने एक नये इन्सान का धुंधला-सा सुपना आता था। वह सब खो गया था, पर एक वह पल अमर था।

और कुछ याद नहीं आ रहा है। अब भी उसे लगता है कजरी सो गई है। वह सामने बैठा है। सूसन पास बैठी है।

कजरी जो हिरनी-सी कुलाँच मारती थी, इस बद्ध जीवन में रुग्ण होकर मृत्यु-शैय्या पर पड़ी छटपटा रही है। किन्तु सुखराम भारालस हृदय से, वेदना के उन गहन स्तरों को खोलने में आज समर्थ हो गया है। कजरी छटपटाकर अन्त में शांत हो गई है। डाक्टर पेट फाड़कर बच्चा निकाल रहा है। किन्तु सुखराम की आँखें रो-रोकर सूज गई हैं। वह कुछ समझ नहीं पा रहा है। उसे लग रहा है यह सारी सत्ता एक दारुण यंत्रणा है, जिसमें निर्दोष और स्नेही व्यक्ति केवल अत्याचार सहने के लिये हैं।

वह कजरी के पलंग के पास बैठा रो रहा है।

वह पूछता है : 'मिसी बाबा ! कजरी क्यों मर गई है। क्या मैं अपने बच्चे का मुँह नहीं देख सकूंगा ?' सूसन उत्तर नहीं देती। वह बेहोश हो जाती है। और उस बेहोशी के परिणामस्वरूप अठमाही बच्ची का जन्म होता है। सूसन माँ बनकर पड़ी है। कितनी भव्य लग रही है वह ! जी करता है उसे शत-शत नमस्कार किया जाये। माँ ने जन्म दिया है। सुखराम देख रहा है। बच्ची, कितनी कोमल, कितनी गोरी है। वह अपने नन्हें-नन्हें हाथों को मुँह में देकर चूस रही है। ठीक एक गुड़िया-सी। उसकी आँखों की तारा अभी स्थिर नहीं हैं। वे न जाने किस अज्ञात लोक की ओर अभी तक देख रही

हैं। सुखराम स्तब्ध है। सूसन की आखें भर आई हैं।

सुखराम पूछता है : 'मिसी बाबा ! कजरी कहाँ चली गई है ?'

'वह मर गई है सुखराम !' सूसन कहती है—'मेरी बच्ची की माँ को भगवान ने छीन लिया है।'

सुखराम कहता है : 'नहीं, मिसी बाबा नहीं। ऐसा खेल अच्छा नहीं है। कजरी ! देख मैं तुझे कब से पुकार रहा हूँ।'

सूसन देख नहीं सकती, वह तो रो उठी है। तभी बच्ची का वह असहाय क्वाँ-क्वाँ का शब्द गूँज उठा है।

और सुखराम ने उसे अपने हाथों में उठा लिया है। वह उसे कभी सीने से लगाता है, कभी हाथों पर झुलाता है, कभी उसके फूले-फूले गालों को प्यार से चूम उठता है। वह कहता है—'कितनी प्यारी है। कैसा चंदा का-सा मुँह है इसका ! मिसी बाबा ! इसका नाम चंदा है। इसे मुझे दे दो मिसी बाबा ! कजरी इसे देखेगी तो कितनी खुश होगी। मैं पूछूँगा कजरी कैसी है तो वह···

पर सूसन फूट-फूटकर रो रही है। भयानक ! कितना आर्द्र स्वर है वह। धरती की कठोर पर्त्तों को फोड़कर जैसे संगीतमय आलोक की अतीन्द्रिय चेतना निकल रही है। वह कोलाहल, वह विस्मय, वह वैभव, वह दैनंदिन जीवन की उथल-पुथल, वह हृदयों को व्याकुल करने वाला आलोडन-विलोडन, वह मृत्यु की विकराल छाया की दुर्दमनीया वेदना, वह निराश्रित सूनापन, वह माता का सन्तान से बिछुड़ने का भीषण दुख, जैसे धरती अपने ही क्षितिज से अलग कर दी गई हो, और वह पुरुष की अतलान्त घुटन, सब खो गये हैं और नये जीवन का वह स्वर, उस बच्ची का वह कोमल-कान्त रुदन, वह रुदन जिसमें इतिहास की विभिषिकाएं खो गई हैं; वह बच्ची, जिसके पवित्र नयनों में नया जागरण ऐसे देदीप्यमान हो रहा है, जैसे आदि—महान् आदि में सृष्टि के प्रारम्भ में—जीवन कुलबुलाया था, केवल वही अब रह गया है, जो अब सुखराम के सामने स्थित है।

वह कह रहा है : 'बैरिन, तुझे जाना ही था, तो चली जाती, पर तूने कहा था तो इस चंदा-सी बच्ची को दूध तो पिला जाती, अभागिन, अभी तक कहीं तेरी चिता में दूध न उफन आया हो, क्योंकि वह तो भगवान भी तुझसे नहीं छीन सकता था !'

सूसन को चक्कर-सा आ गया है। पर सुखराम बच्ची का मुँह चूम रहा है।

'चंदा !' वह कह रहा है—'चंदा ! तू मेरी है। मैं तुझे तेरी माँ से छीन लूंगा। क्योंकि तेरे सिवाय अब इस दुनिया में मेरा कोई भी नहीं है, कोई नहीं है।'

सुखराम हँस रहा है। और सूसन कह रही है—'मेरे साथ चलो सुखराम ! यह लड़की तुम अपनी कह देना, पर यह मेरी ही बनी रहेगी। मैं इसको पालूंगी, पालूंगी···

'परन्तु सुखराम ! नहीं···नहीं···'

उस समय उस अर्द्ध विक्षिप्तावस्था में न जाने कहाँ से दिगंत भेदकर एक विराट कोलाहल उसे सुनाई दे रहा है, और एक पाषाणी रूप उसके सम्मुख उठा आ रहा है···भयानक···भयानक···वह अधूरा किला है···

कब सुखराम चला, कब सूसन रोई, कब माँ के हाथ से लोक-लाज ने उसकी संतान छीन ली, कब पत्नी की मृत्यु के दुख में सुखराम ने अपने जीवन का समझौता उस नये जीवन से कर लिया, कब अपने हाथ का सब कुछ सूसन ने सुखराम के मना करते रहने पर भी उसे सौंप दिया, वह सब याद नहीं है। वह तो इतना जानता है कि वह गाँव लौट आया है।

आज वह अपने झोंपड़े में पहुँचकर फूट-फूटकर रो रहा है। मंगू और मंगू की बहू पास बैठे हैं।

मंगू की बहू चंदा को गोद में लिये हुए रूई भिगो-भिगोकर दूध पिला रही है। बच्ची हँस रही है। कितनी मुलायम और हृदयहारिणी मुस्कान है वह ! और मंगू की बहू कहती है : 'अरे रो नहीं। निरदई है भगवान·····पर तू क्यों रोता है·····देख इसका मुंह तो देख·····कैसा चंदा है·····तू क्यों कहता है कजरी चली गई·····तुझे दे तो गई है·····अपना लहू, अपनी देही·····अपनी आत्मा·····देख·····कैसा चंदा-सा मुँह है·····

मैं सोच रहा हूँ। जिस वेदना का रूप निश्चित है, वह सचमुच उतनी बड़ी नहीं है, जितनी कि अव्यक्त वेदना। इतना सब कुछ हुआ, इतनी घटनाएं हो गईं, आना-जाना, नया जीवन, बंबई का प्रभाव, माँ का दुख, और न जाने

क्या-क्या नहीं हुआ, परन्तु वह सब मिट गया है, केवल इतना ही चित्र याद है कि कजरी चली गई है, सूसन संतान से बिछुड़ रही है, और एक अज्ञात रहस्य बनकर अंतस्थल की वह गुप्त वासना—वह अधूरे किले की स्वामित्व की भावना की छलना, उसे गाँव की ओर, चंदा के साथ खींच लाई है। उस चंदा के साथ जो उसके जीवन के समस्त सिंधु-मंथन के परिणामस्वरूप एक अमृत विंदु बनकर आ गई है। सुखराम ने सहर्ष विवशता को स्वीकार कर लिया है, उसने हथेली फैलाकर वह कालकूट पी लिया है, क्योंकि चंदा उसके पास है। वह अमानत है. किसीकी लाज ने ममता के सामने जब सिर झुकाया था, तो नये सत्य का विकास हुआ था, और वह ही सुखराम के जीवन का संबल हो गया है। प्यारी मरी थी तो उसकी जीवन और मृत्यु की रेखा तो खिच गई है, किंतु कजरी के लिये वह अभी तक नहीं खिच सकी है। प्यारी की वेदना स्पष्ट थी, कजरी की वह यातना अपने आप उसमें इतनी लय हो गई है कि वह उसे स्पष्ट नहीं कर सकता, न कभी भी कर ही सकेगा। वह तो ऐसा डूब गया है कि वह सुखराम नहीं है, स्वयं कजरी बन गया है।

मैं इस आर्त्त वेदना को क्या समझूंगा, क्योंकि मैंने जीवन में कभी प्रेम की इस महान गरिमा को अनुभव ही नहीं किया। आकाश में पँख फैलाकर उड़ने वाले विहंगम की मुक्ति और प्रसन्नता का, उस विराट् के तादात्म्य का अनुभव पृथ्वी पर रेंगने वाला कीड़ा कर भी क्या सकेगा·····

३५

शुक्रवार था। चारों तरफ़ एक नीरवता छा रही थी। आज की उदासी बहुत गहरी थी। बहुत गहरी !

सुखराम डेरे में लेटा था। उसके दिमाग़ में तरह-तरह की बातें घूम रही थीं। वह जीवन में क्या स्वप्न लेकर प्रारम्भ में उठा था ! वह एक आकस्मिक-सी घटना थी जिसने अचानक ही उसके विचारों को ले जाकर किले पर केन्द्रित कर दिया था। और इतने दिन बाद भी उसका वह स्वप्न झाड़ी पर ही टँगा हुआ था। उसके हाथ में तो कुछ भी नहीं था।

दोपहर की बेला ढलने लगी थी। वह उठकर बैठ गया था। उसके सामने चंदा की समस्या थी। क्या उसने उसे कष्ट नहीं दिया था ? उसे क्या हक़ था कि उसने उस पराई बच्ची को कष्ट दिया था ! आज वह अगर पाप की संतान न होती तो क्या वह आज किसी बड़ी जगह नहीं होती ? वहाँ उसकी भौं के इशारे पर काम चला करते। अच्छा खाती, अच्छा पहनती। उसे किस बात की कमी होती। वह यहाँ की तरह एक-एक चीज़ के लिये तरसती रहती ?

गाँव थका-सा पड़ा था। उसमें जातियाँ थीं, वर्ग थे, एक उचाट कर देने वाली घनघोर विषमता थी, किन्तु देखने को वह शान्त लगता था। उसमें दासता थी, किन्तु अहंकार भी था। भारत की धरती पर असंख्य शासक आकर चले गये थे, पर गाँव अब भी थोड़ा ही-सा कुलबुलाया था। उसमें व्यक्ति निर्बल था, किन्तु मनुष्यत्व फिर भी अबाध था।

दगरों में कीचड़ थी क्योंकि पानी बरस चुका था और उनमें गाड़ियों के पहियों के चलने से गहरी लीकें पड़ गई थीं। जिनमें पानी भरकर स्थिर हो गया था। पनहारिनें जब निकलतीं तो घुटनों तक कीचड़ में सन जातीं। किसान निकलते तो जूते बिगड़ने के डर से नंगे पांव ही निकलने की कोशिश करते।

मेघों ने अंधेरा-सा कर रखा था। ऊने-ऊने, घने-घने, दल के दल छा गये थे। सारा आकाश ढँक रहा था। कभी-कभी उनमें गर्जन हो उठता। बादल अलग-अलग दिखाई नहीं देते थे, वहाँ तो आस्मान ही बादल हो गया था, एक छोर से दूसरे छोर तक फैलकर जैसे अनंत वारि-राशि से वह अछोर हो गया था जैसे निराश व्यक्ति के सामने केवल विपत्तियाँ ही विपत्तियाँ आकर छा जाती हैं। वह आकाश गम्भीर था जैसे कपाल का ऊपरी भाग होता है, सख्त और घटाटोप छायी रहने वाली हड्डी की गोलाई·····

कड़कड़ाती सर्दी पड़ रही थी। जगह-जगह अलाव जल रहे थे। मनुष्य की आदिम अवस्था से अभी अधिक उन्नति नहीं हुई थी। लोग आग को सीने से लगाये बैठे थे। बाहर जाने का धर्म नहीं था क्योंकि हवा चीरे डालती थी और दाँत से दाँत बजाती हुई वह अपनी झांझ-सी बजाती, पेड़ों में लात मार-मार-कर ठहाके लगाती थी। फिर कभी बरसते मेघों की गिरती जलधारा को पकड़ने जाती तो वे बौछारें तिरछी हो जातीं और धरती पर सीधी चोट न

'दुनिया बहुत बड़ी है बेटी ! तूने अभी कुछ देखा नहीं है, तभी तू ठकुरानी बनने का सुपना देखती है।'

'मैं ठकुरानी हूँ। नरेश के पास मैं तभी जा सकती हूँ जब मैं ठकुरानी हो जाऊँ।' चंदा ने कहा।

सुखराम ने बात टाली : 'अरे बेटा ज़िद न कर !'

'पर मैं जाऊँगी' चंदा कहती रही। वह आज डटी हुई थी। उसके गोरे मुख पर एक दृढ़ता थी जिसे देखकर सुखराम घबराने लगा था।

'कहाँ ?' सुखराम सोच में पड़ गया।

'अभी तो बताया।' चंदा ने कहा 'फिर बताऊँ। वह जो सामने वहाँ है·····' उसने उंगली उठाई।

अधूरे किले में !

वह रह-रहकर काँप उठता था।

चंदा ! सुखराम को लगा वह एक कोमल फूल था और क़िला ! भूतों का अड्डा !

'नहीं चंदा तू वहाँ न जा।' सुखराम ने कहा।

'क्यों ?'

'वहाँ साँप-बिच्छू हैं, बघेर है, कौन जाने वहाँ क्या है ! तू क्या करेगी चलकर।'

'तुम भी चलो मेरे साथ', चंदा ने कहा। वह उल्टे संग ले जा रही थी। सुखराम ने सुना : 'दादा मैं ठकुरानी हूँ !'

ठकुरानी !!

'नहीं तू चंदा है।' सुखराम ने कहा : 'तू मेरी चंदा है, सिर्फ मेरी प्यारी बेटी चंदा है। यह सब तुझे किसने बहकाया है ?'

वह हँस दी। सुखराम हतबुद्धि बैठा रहा।

चंदा ने बाहर देखा। बोली : 'अरे पानी बरसा है ?'

'हाँ बेटा', सुखराम ने कहा : 'बड़ी ठंड है।'

'है तो।' चंदा ने कहा : 'पर फिर नहीं रहेगी।'

'फिर कब ?'

सुखराम सोचने लगा। चंदा ने कहा : 'जब हम तुम वहाँ से लौटेंगे ?'

'कहाँ ? किले से ?'

'हाँ ।'

'क्यों ?'

'फिर तो बड़ा धन होगा हमारे पास ! दादा ! फिर सब लोग हमारी इज्जत करेंगे, सब सिर झुकायेंगे । दादा इस संसार में धन का बड़ा मान होता है न ? अगर मैं किसी बड़े आदमी की बेटी होती तो सोने से लदी रहती·····

सुखराम ने आँखें पोंछीं ।

'तुम क्यों रोते हो दादा ?'

'कुछ नहीं, कुछ नहीं, ऐसे ही ।'

'तुम समझते हो, मैं तुम्हारी बेटी होने से बुरा समझती हूँ ? नहीं दादा । तुम बहुत अच्छे हो ।'

'अच्छा नहीं हूँ चंदा, मैं अच्छा नहीं हूँ । तू सचमुच रानियों की रानी है, पर भाग ने तुझे भी यह दिन दिखा दिया है·····' वह कह नहीं सका, गला रुँध गया ।

'चलोगे न दादा !'

कजरी याद आई । सुखराम के सामने उसका मुस्कराता हुआ चेहरा डोलने लगा ।

'नहीं चंदा !' सुखराम ने कजरी का मुख सामने से हटाते हुए कहा : 'उसे भूल जा, उसे भूल जा·····

'लेकिन दादा···' चंदा ने कहा—'मैंने वहाँ एक बिल्ली देखी थी·····

सुखराम फिर थर्रा उठा । उसने हठात् कहा । 'वह गूजरी है चंदा । वह गूजरी है···'

चंदा हँसी । कहा : 'वह गूजरी है । तुम उसीसे डरते हो । और मैं ठकुरानी हूँ । मैं रानियों की रानी हूँ । अधूरा किला मेरा है । मंगू की बहू को मैंने तुम्हारे बकस की तस्वीरें दिखाकर सब पूछ लिया है । दादा ! तुम भी तो ठाकुर हो·····'

'नहीं, नहीं···बेटी', सुखराम ने कहा : 'मैं ठाकुर नहीं हूँ । मैं करनट हूँ, नीच करनट हूँ ।' उसने डरकर कहा : 'भूल जा ! भूल जा !'

उस समय उसे लगा जैसे उसकी माँ ठठाकर हँसी और बोल उठी, सुखराम ! देख । यह आग अब तुझे ही जलाने लगी । देख तू ही इससे भस्म होने लगा ।

'क्यों ?' चंदा ने कहा : तू छिपाता है दादा ।'

'नहीं छिपाता नहीं ।'

'तो फिर तूने मुझे क्यों नहीं बताया कि तू ठकुरानी के बंस में है । और मैं तेरी बेटी होने के नाते उसी बंस में हूँ·····

सुखराम ने कहना चाहा, पर कह नहीं सका । वह कैसे कह दे कि चंदा एक पाप की संतान है । वह फिर नरेश के सामने कैसे जायेगी ? यही क्या उस के अभावों की प्रामाणिकता नहीं है कि वह एक नटनी कहलाती है । नटनी हरजाई । दुनिया तो नहीं मानेगी कि सुखराम ने उसे पवित्रता से रखा है । जिस सबसे वह घृणा करता था, उस सबको उसने चंदा पर छाया भी नहीं डालने दी है ।

जब कजरी और प्यारी जवान हुई थीं तब जरायम पेशा करके नटों को जब चाहे गिरफ्तार कर लिया जाता था, अब नये हिंदुस्तान में वैसा नहीं होता । तभी तो वह पुलिस से उसके कौमार्य्य की रक्षा कर सका है । और चंदा भी तो नीलू के साथ एक बार भी उसकी स्त्री बनकर नहीं रही । वह आने को अभी तक भविष्य की किसी आशा में नरेश के लिये सुरक्षित रख रही है । उससे सुखराम कैसे कह दे कि वह हराम की औलाद है ।

चंदा ने फिर कहा : 'दादा !'

'क्या है ?'

'मैंने साफ़ देखा है ।'

'क्या ?'

'ढ़ेरों सोना-हीरे पड़े हैं और एक साँप बैठा है । वह मुझे देखकर चुपचाप सिर झुकाकर चला जाता है ।'

और सुखराम के भीतर हलचल होने लगी । दौलत !

कौन जाने लड़की ठीक कहती हो ! अगर वह सब मिल जाये ! चंदा राज करेगी । वह राजाओं के राजा की नवासी है, रानियों की रानी की बेटी है । वह उनकी बेटी है जो पहले हिन्दुस्तान पर लोहा बरसाकर राज करते थे । और वही अंगरेज़ एक बार इन ठाकुरों के मालिक थे । उनके सामने यह ठाकुर नाक रगड़ते थे । अगर वह दौलत मिल गई तो चंदा महलों में रहेगी । वह नरेश को खरीद लेगा । और वह सब खंडहर-सी ज़िन्दगी पुकारने लगी । अधूरे किले की ईंट-ईंट पुकारने लगी : उठ सुखराम ! लड़की की ज़िंदगी के

लिये उठ ! अपनी नींद छोड़ ! आज फिर उसे याद आता। बघेरों से लड़ते हुए उस बाप की शकल याद आई जिसने माँ के सामने कहा था कि सुखराम तू असल में ठाकुर है, तू नट नहीं है। आज ठकुरानी आई है। वह अपनी हवस पूरी करना चाहती है। उसीने अपना खजाना आज खोल दिया है। और अपने ही लिये। आज चंदा के रूप में वह लौट आई है।

उसे नहीं लगा कि वह वही नहीं है जो कुछ देर पहले था। वह सोच रहा था : दौलत ! दौलत से दुनिया दबती है। सारा गाँव पाँवों पर गिर जायेगा। और यही ठाकुर फिर जात छोड़कर आ मिलेगा। दौलत !! वह हीरे और सोने के ढेर !

वह अथाह पिपासा अब चिल्लाने लगी थी। उठ···उठ···जल्दी कर··· जल्दी कर·····

सुखराम उठ खड़ा हुआ। उसने कहा : 'चंदा ! चल। देख आयें। आज अगर भाग साथ देता है तो तुझे मैं महलों में घूमते देखूँगा। शायद जो सुपना मैं पूरा न कर सका, वह तेरे ही भाग में लिखा हो।'

चंदा पुलक उठी और उठ खड़ी हुई।

चंदा ने मशाल ले ली और टाट ओढ़ लिया। टाट में से मशाल के भींगने का डर नहीं था। सुखराम ने कोट की जेब में दीयसलाई रख ली। धोती कस ली। चंदा लहँगा पहने थी। उसने पीछे लाँग-सी खोंस ली। वह बढ़ चली। सुखराम भी टाट ओढ़े पीछे चला।

बाहर पानी पड़ रहा था। हवा काटे खाती थी।

'चंदा ! संभलकर चल बेटी।'

'जानती हूँ दादा।'

तालाब भरा हुआ था। लबालब। सुखराम ने कहा : 'इधर से नहीं। पता नहीं कितनी धरती रपट गई है। उस तरफ़ हो ले।'

चंदा हरियाली की तरफ़ बढ़ चली। सब जगह गीली थी।

जाड़े की बारिश से फूलवाड़ी की रविशों में पानी भरकर सब एकमएक हो गया था। पता नहीं चलता था कि वे कब गड्ढे में चले जायेंगे। चंदा लड़-खड़ाई। सुखराम ने पकड़ लिया। पर वे चलते रहे।

सब तरफ़ धूंआ-धूंआ-सा था। निर्जन सुनसान सफेद महल पानी से भींग-भींगकर चमकने लग गया था। पत्ते धुल-धुलकर हिल रहे थे। जैसे ठंड से

काँप रहे हों। उस समय घर-घर में आग जली हुई थी, मगर ये दोनों कभी टखने, कभी घुटने-घुटने पानी में छपाक-छपाक करते हुए बढ़ते चले जा रहे थे।

पानी से भींगकर टाट भारी हो गये थे। तनिक सामने से हटाते तो पानी की ठंडी बूंदें आकर लगतीं। बाँई तरफ़ का सारा जंगल हराहरा रहा था। उसमें जगह-जगह बरसाती पानी 'अररर' करता हुआ भागा जा रहा था, जैसे मोटे-मोटे अजगरों में बिजली की-सी गति आ गई हो और वे भागने लगे हों। मिट्टी कटती थी, उससे तालाब में छपक-छपक आवाज़ होने लगती थी।

जब वे बावड़ी में पहुँचे तो उन्होंने झील का गर्जन सुना। आज उसमें ऊपर से बरसते पानी का धारासार शब्द तो था ही, इधर-उधर से मोटी धारों के प्रवाह जो उसमें अपना लय कर रहे थे उनका प्रचण्ड निर्घोष गूंजता हुआ सुनाई देता था। कल तक जो किनारे के सिवार कंधे तक ऊँचे-ऊँचे दिखाई देते थे, वे आज घुटने-घुटने तक की ऊँचाई के दिखाई दे रहे थे।

सुखराम तिवारे में घुस गया। उसने कहा : 'भीतर आ जा चंदा। इधर ही से चलेंगे।'

'तुम कभी आये हो यहाँ ?' चंदा ने भीतर खड़े होकर कहा।

'हाँ। जब मैं जवान था, तब कजरी के साथ आया था।'

'कौन ? मेरी अम्मा के साथ।'

'हाँ !' सुखराम ने हिचककर कहा।

उन्होंने टाट उतार कर रख दिये।

'कोई ले गया तो।' सुखराम ने पूछा।

'कौन आता है यहाँ ?' चंदा ने हँसकर कहा—'यहाँ आने की हिम्मत किसमें है दादा। यह मेरा घर है। मैं आ सकती हूँ। घर दो यहीं, कोई नहीं आता।'

उसके स्वर को सुनकर सुखराम का मन सशंक हो गया। इतनी निडर ! क्या यह चंदा ही है। यह चंदा नहीं हो सकती। यह ज़रूर ठकुरानी है।

दिन में भी तिवारे में अन्धेरा-सा छा रहा था, और अब जो बाहर घन-घोर वर्षा होने लगी थी उसके कारण वह और भी बढ़ गया था। धरती पर गिरी बूंदों के छितर जाने के कारण, और तिरछी बौछारों से वह सब भींग

गया था। बावड़ी का नीचे का भाग पानी की धारा के कारण दिखाई नहीं देता था।

'मशाल जला दे न दादा !' चंदा ने उसे उठाकर कहा।

सुखराम ने दियसलाई जलाई। दो-तीन तीलियाँ सीलन के कारण नहीं जलीं, किंतु फिर तेल से भींगे कपड़े ने लौ को पकड़ लिया। मशाल फरफरा उठी। उसका आलोक अब तिवारे में कांपने लगा तो ऐसा लगा जैसे सारे पत्थर छोटे-बड़े होने लगे। वह सारा तिवारा हिलने लगा।

चंदा हँस उठी। कहा : 'दादा ! देखता है। मेरे लिये सब सलामी दे रहे हैं। नरेश ठाकुर है तो मैं भी ठकुरानी हूँ दादा। तूने मुझे पहले क्यों नहीं बताया। अब हम जब इसके भीतर की ढेर सारी दौलत के मालिक हो जायेंगे न ? तब क्या होगा जानता है ? नरेश मेरा हो जायेगा ! नरेश को देखती हूँ फिर कौन छीनता है।'

सुखराम डर रहा था।

चंदा ने कहा : 'दादा तू आया था तो इधर ही से गया था ?'

सुखराम ने याद किया। कहा : 'इधर से गया था, पर कुछ भी नहीं मिला था।'

चंदा आगे बढ़ी। पूछा : 'अम्माँ तब मेरे बराबर होगी ?'

'नहीं तुझसे बड़ी थी।'

'अम्मा बहुत अच्छी थी क्या ?'

सुखराम पीछे था। कहा : 'बहुत अच्छी थी।'

'और मेरी बड़ी अम्माँ कैसी थी दादा।'

'वह भी बड़ी अच्छी थी।' सुखराम ने कहा।

वे आज दूसरी जगह पर थे। चंदा आगे बढ़ी। सुखराम ने कहा : 'ला मशाल मुझे दे दे। तू पीछे हो जा।'

'नहीं दादा। तू पीछे-पीछे आ। यहाँ तू डर जायेगा।' चंदा ने कहा। सुखराम सकपका गया।

यह एक कमरा था। बड़ा-सा था। उसकी दीवारें बड़ी-बड़ी और बड़ी भयावनी दिखाई देती थीं। काली-काली थीं। कहीं-कहीं पत्थर उखड़ गये थे जिनमें से पीपल की जड़ें फूट निकली थीं। सुखराम चंदा के पीछे था। चंदा ने मशाल घुमाकर चारों ओर देखा। आगे बढ़े। एक और कमरा था।

वे घुसे कि फुफकार सुनाई दी।

'चंदा !' सुखराम ने कहा : 'कीड़ा लगता है।'

'यही तो मुझे मिला था दादा।' उसने कहा।

सुखराम ने कहा : 'तू पीछे आ जा चंदा।'

देखा सांप था। उसने चौड़ा फन खोल दिया और फिर देखा। चंदा ने कहा : 'दादा ! यह काटेगा नहीं। मंगू बताता था कि पहले यहाँ बनजारे आते-जाते थे। बहुत-सा तो कहते हैं उन्हींका धन इस धरती में गड़ा हुआ है।' साँप आगे सरका।

सुखराम पीछे हट गया।

'दादा डर मत।' चंदा ने कहा, 'वह तो आप चला जायेगा।'

'पीछे आ जा चंदा।' उसने अनुनय किया।

पर चंदा नहीं हटी। उसने मशाल सामने तिरछी करके झुका दी। साँप कुछ दूर से देखता रहा। चंदा ने कहा : 'दादा देख ! तिलक है न इसके सिर पर। नाग है पूरा।'

मशाल की आग साँप को ताप पहुँचाने लगी थी। उसने पीछे को सरककर देखा। मशाल की आग उल्टी हो जाने से बढ़ गई थी। उजाला हो रहा था। साँप उन्हें देख आग से डरकर दीवार में घुस गया।

चंदा हँसी। कहा : 'देखा दादा ! मैंने कहा था न ? वह अपने आप चला गया। वह तो पुरखों का देवता है। वह क्या काट सकता था कभी !'

सुखराम हतबुद्धि होकर खड़ा रहा। वह कहे तो क्या कहे ! वह कुछ डरने लगा था।

'आ न दादा' चंदा ने कहा।

'तू कहाँ जा रही है चंदा।'

'अरे यहाँ तक तो आ गये। अब क्या और बहुत दूर चलना पड़ेगा ?' चंदा ने विश्वास से कहा।

सुखराम घबरा रहा था।

यह सब क्या हो रहा है ! चंदा को डर क्यों नहीं लगता ? क्या वह लड़की नहीं है ? लड़कियाँ तो इस उम्र पर बहुत डरती हैं।

फिर चंदा तो जैसे पत्थर है। उसे कोई भाव नहीं हिलाता। और सुखराम को याद हो आया। एक दिन वह जब कजरी के साथ आया था तब क्या यही

भयानकता थी। नहीं तब इंसानियत थी। कजरी डरती थी। वह खुद डरती थी। पर आज वह क्यों डर रहा है! क्या वह आज आदमी नहीं रहा। क्या वह कायर है!

उसे अपने ऊपर आश्चर्य्य हुआ। क्यों? कहाँ चला गया था उसका आत्म-विश्वास! तब वह जवान था। उससे क्या हुआ? तब कजरी थी। वह स्वयं उसे अपना रक्षक समझती थी, और आज। आज वह लड़की जिसे उसने गोदी में खिलाया था, वह उसको राह दिखा रही है, कहती है डर मत, जैसे वह ही सचमुच उसकी मालकिन हो!

चंदा बगल का ज़ीना उतरने लगी। सुखराम को लाचार जाना पड़ा, पर वह आज लौटना चाहता था। उसे लग रहा है कि कुछ बहुत ही भयानक होने वाला है। यह भूतों का डेरा है। यहाँ क्या हो सकता है कौन जानता है। वह मन ही मन कहने लगा—जय हनूमान! भूत-परेत से रच्छा करो। जय भैरो! आज बचा लो।

मशाल की लपट पतले ज़ीने में काँपने लगी। उसके अन्दर लगे हुए चमगादड़ चेंऊ-चेंऊ की पतली आवाज़ करके पंख फटफटाते हुए उड़ने लगे। और बार-बार भीतर ही चक्कर काटने लगे। ऐसा लगता था जैसे वे अपनी शांति में व्याघात पड़ने से काँप उठे हों।

नीचे उतरे तो एक कमरा मिला। उसके बीचो बीच एक चौकोर कुण्ड था। वे उसके पास गये। चंदा ठहरकर कुछ देखने लगी। सुखराम ने आँखें फाड़कर देखा। कुण्ड में चार-पाँच ठठरियाँ पड़ी थीं। सबके सिर अलग पड़े थे और कुछ नहीं। धूल चारों ओर जमी हुई थी। हवा इधर से उधर तेज़ी से भागकर निकलती थी तो लगता था जैसे हँसती हुई ठुमका मार रही हो, और मशाल की फरफराती लौ को घेरने के लिये दीवारों पर बड़े-बड़े रीछों की तरह उजाले को पकड़ने के लिये अंधेरा लपकने लगता। सुनसान, खामोश, और जब सुखराम उसको देखकर काँप उठा, तब चंदा हँस रही थी। वह खिलखिलाहट उस समय डरावनी-सी गूंज उठी। लगा जैसे बगल के कमरे में कोई औरत हँसी। दीवारों पर लगे मैले पड़ गये काँच के टुकड़ों पर फिसलती मशाल की रोशनी अब कभी जगमगाती कभी मंद हो जाती। संभवतः यह स्नानागार रहा होगा। और चंदा ने कहा : 'दादा!'

'क्या है?'

'तू देखता है यह कौन लोग हैं।'

'कौन हैं।' उसका स्वर भर्रा गया।

'यह !' चंदा ठठाकर हँसी—'यह कोई दुश्मन होगें।'

उस वक्त सुखराम को लगा वह सचमुच ठकुरानी के साथ खड़ा था। और उसको कंपन ने ग्रस लिया। ज्ञात भय नहीं, अज्ञात भय, जिसमें लगता था रगों में लहू जम जायेगा, दम घुट जायेगा और सुखराम उसमें ज़िंदा मर जायेगा। वह किला क्या है ? वह इंसानों की कब्र तो है ही। उसमें कितना अंधकार है। जैसे उसमें से अतृप्त आत्माएँ पृथ्वी पर रहने के अभिशाप का मोल माँग रही हों।

'चंदा' उसने पुकारा !

उस प्रतिध्वनित हास्य को सुनकर जो चंदा अब विभोर हो गई थी, उसकी आवाज़ सुनकर रुक गई। उसने अपनी आँखें बड़ी-बड़ी पूरी खोल दीं और फिर अपने अधिकार की सत्ता में उसने डाँटकर ही कहा: 'चंदा नहीं, ठकुरानी कहो।'

'ठकुरानी !!' सुखराम के मुँह से निकला, 'ठकुरानी !!'

'ठीक है।' चंदा ने कहा : 'देखते नहीं मैं कहाँ हूँ ? यहाँ तुम मेरा नाम लेकर पुकारोगे तो देखो यह लोग सब क्या समझेंगे ?'

चंदा आगे बढ़ी। उसका हाथ 'यह लोग' कहते वक्त जैसे अनजान ही उन ठठरियों की ओर उठ गया। सुखराम को लगा वे ठठरियाँ अब खड़ी हो जायेंगी। खड़ी हो जायेंगी।

भीतर एक फैला हुआ दालान था। सुखराम दौड़कर चंदा के पीछे गया। वह दालान भींग गया था, उसमें कहीं से पानी आ रहा था और मशाल की रोशनी में वहाँ सुखराम ने देखा एक बहुत मोटा मेंढक बैठा भारी स्वर से डर्र-डर्र कर रहा था। देखते ही देखते वह एक छोटा साँप निगल गया।

चंदा वहाँ रुकी और देखने लगी और उसने कहा : 'सुनता है दादा !'

'क्या हुआ ?' सुखराम ने पूछा।

'देख हम अब उल्टी दुनिया में आ गये। यहाँ मेंढक साँप को खाते हैं।'

घोर घुप्प अंधेरे कोठे थे। मशाल का हल्का प्रकाश उनकी कालिमा को भंग नहीं कर सका। जब वह उजाला लौटता तो लगता कि उनमें से फिर अंधेरे के अनगिनत हाथ निकल रहे हैं। और फिर वे ही चारों ओर से घेर

लेते हैं और मेंढक का स्वर गूंजता है—डर्र···डर्र ।

वे कोठे में से कोठा पार करते गये । सुखराम अब वहशी-सा है । सिर्फ़ पीछे चला जा रहा है । चंदा मशाल उठाये आगे बढ़ती चली जा रही है । सुखराम सिर्फ देख लेता है पर समझता नहीं कि वह कहाँ जा रहा है । वे इतनी बार इधर-उधर घुसते-निकलते ही चलते चले गये, यहाँ तक कि फिर रास्ता भूल गये ।

फिर वे एक बड़े कमरे में निकले । वहाँ पहुँचते ही कोई जानवर एक दर्द-नाक-सी आवाज़ करता हुआ भाग निकला । सुखराम लड़खड़ा गया । उसने कटार हाथ में ले ली ।

चिल्लाया : 'चंदा !'

कोई उत्तर नहीं मिला ।

चारों ओर अंधेरा था और अंधेरा चिल्लाने लगा, ठकुरानी ! उसे लगा सब कह रहे हैं कि मूरख ! ठकुरानी कह । वह मालकिन है ।

वह चिल्लाया : 'ठकुरानी !'

चंदा ने कहा : 'क्या है दादा ।'

सुखराम की चेतना स्थिर हुई । उसने आगे बढ़कर चंदा को देखा । चंदा ढूँढ़ रही थी । सुखराम ने कहा : 'यहाँ कुछ नहीं है ।'

'क्या नहीं है ?'

'खजाना-वजाना कुछ नहीं है ।'

परन्तु उसकी बात का कोई असर नहीं हुआ ।

चंदा ने कहा : 'दादा, यहाँ है ! मुझे मालूम है । उसी पर वह नाग जाकर बैठ गया है । जानता है । वह मुझे बताने आया है । हो सकता है वह बच्चे की तरह हँसता-रोता हुआ भी लगे । मंगू बताता था कि पुराने ज़माने में जब बंजारों के पास इतना धन हो जाता था कि वे ले जा नहीं पाते थे, तो अपने बच्चे को धरती में धन के साथ गाड़कर उस पर आटे का साँप बनाकर रख जाते थे । वह साँप फिर उस धन की रच्छा करता था । वही तो यह साँप है । जिसका भाग होगा, उसे ही यह धन मिल जायेगा ।'

सुखराम अभी सोच ही रहा था कि चंदा ने कहा : 'बहुत दिन से इसकी देख-भाल नहीं हुई । जब से मैं गई तब से सूना पड़ा है ।'

सुखराम का खून जम गया । अब धीरे-धीरे उसका हृदय कठोर होने

लगा। अब वह आवेश उसमें भर रहा था। एक तरह का जुनून !

दीवारों पर ठंडक थी, धरती ठंडी थी, हवा के ठंडे लेकिन बदबूदार झोंके आ रहे थे और उस बदबू में सुखराम ने देखा एक ओर एक आग का-सा गोला दूर किसी कोठे में उठता था और पृथ्वी से ऊँचा उठकर चलने लगता था, लौटता था, फिर गिर जाता था और हवा द द द द करके टकराती हुई बिखर जाती थी। फिर लगता था दलदल-सा कहीं चमकता था। झील का पानी रिसता हुआ लगता था। वह आग उस दलदल में से पैदा होती थी।

सुखराम नहीं समझा। पानी में से आग निकल रही थी।

उसने कहा : 'चंदा !'

'क्या है दादा !'

'वह क्या है !'

'वह आग है !'

'पानी में आग ?' सुखराम चिल्लाया।

'हाँ दादा।' चंदा ने कहा—'पानी में आग लग गई है।'

उसका वह स्थिर वाक्य, स्थिर स्वर, अनागत के भय से सुखराम को भर उठे। उसने कहा : 'चल चंदा। लौट चलें।

'अपने घर आई हूँ तो आज मैं लौट जाऊँगी ?' चंदा ने कहा। उसकी आँखों में गौरव था। उसने कहा : 'तू क्या जानता है। तूने ठकुरानी के बंस में होकर नट, और नटनियों में जिन्दगी गुजार दी। धिक है रे तुझे।'

चंदा ने सीना ठोककर कहा—'मैं ठकुरानी हूँ। मैं अपने महल में आई हूँ। यहाँ से जब मैं निकलूंगी तो ठाकुर विक्रमसिंह अगवानी करते दिखाई देंगे। मेरा दूल्हा सिर पर मौर सजाये आयेगा। शहनाई बजेगी। ढोल बजेंगे, फुलझड़ियाँ छूटेंगी, आतिशबाजी होगी, आस्मान में उजाला हो जायेगा, और मैं निकलूंगी हीरे और मोतियों से झुकी, जिस पर किसीकी आँख नहीं ठहरेगी, लोग मेरे ऊपर सोने के गहने देखकर कहेंगे—अरे पीली आई, पीली आई और मैं दोनों हाथों से ढेर-ढेर अशरफियाँ उठाकर लुटाऊँगी। कहूँगी—ले जाओ ! भूखे मत मरो ! ले जाओ ! मैं तुम्हारी ठकुरानी हूँ।'

'चंदा !' सुखराम भयार्त्त-सा दारुण यातना से भरा हुआ-सा चिल्ला उठा। 'तू पागल हो गई है। तू नहीं जानती तू क्या बक रही है।'

'क्या है ?' चंदा ने मुड़कर कहा : 'तू नहीं समझता ! समझेगा भी कैसे ?

तू करनटनी का जाया ! तू समझेगा ! तू नहीं समझेगा।' वह आगे बढ़ी। सुखराम पीछे-पीछे गया।

बाहर आवाज़ आ रही थी। ठीक वही आवाज़ जो बरसों पहले आई थी जब वह कजरी के साथ आया था। वह उस दिन भी धक-धक धक-धक करती हुई गूंज रही थी। उस दिन भी सुखराम डर गया था। असल में बाहर झील टकरा रही थी।

'दादा !' चंदा ने कहा—'सुनता है !'

'क्या !! चंदा ! क्या !!!!'

ठकुरानी हँसी। उसने कहा : 'देख मैं आई हूँ, मेरे आने पर नगाड़े बजे हैं। आज न दीखने वाले हाथ नगाड़े बजा रहे हैं। क्योंकि मालकिन आई है.' फिर वह हँसी।

उसका वह विकराल हास्य सुनकर सुखराम को लगा उसका सिर फट जायेगा। वह हँसी पतली-पतली तीखी-तीखी फिर पत्थरों को जैसे ठंडा कर गई।

'चंदा !!' सुखराम चिल्लाया।

'मैं ठकुरानी हूँ।' चंदा ने कहा—'यह सब मेरा ही है। मैं इसकी मालकिन हूँ···मैं मालकिन हूँ···देख नाच शुरू होने वाला है, तोपें छूटने वाली हैं··· मैं रानी हूँ·····।'

चंदा भाग चली·····

'चंदा !!!' सुखराम चिल्लाया—'तू कहाँ जा रही है·····

'मुझे न रोक !' चंदा ने भागते हुए कहा—'आज देख मेरे लिये कितना जसन सजेगा, कैसे मोती की लड़ियाँ टूट-टूटकर गिरेंगी·····

पर सुखराम ने उसका हाथ पकड़ लिया। वह डर के मारे काँप रहा था। जैसे उसमें ताकत ही नहीं थी।

चंदा ने उसे धकेल दिया·····

सुखराम ने संभलकर उसकी ओर हाथ बढ़ाया और चिल्लाया : 'चंदा··· न जा···ठहर···ठहर···चंदा···' पर इधर-उधर भागती हुई चंदा दीवार से टकराई और उसका सिर घूम गया। उसके हाथ की मशाल धरती पर गिर गई·····

सुखराम का मुँह भय से खुला का खुला रह गया।

चंदा चीखकर बेहोश हो गई और धड़ाम से गिर गई। मशाल के धरती पर गिरते ही वहाँ की धूल उसे चारों ओर से चापने के लिये सन्नद्ध हो गई। अब वह ऊपर ही ऊपर की तरफ़ जल रही थी। और सुखराम ने चंदा को हाथों पर संभाल लिया। तभी उसने देखा चंदा फिर भी मुस्करा रही थी। बेहोशी में !! सुखराम ने उसे कंधे पर उठाया, पर तभी उसकी मशाल पर नज़र गई और वह उठाने को झुका कि उसे भय बढ़ गया। लगा कोई फिर हँसा। भयानक स्वर से हँसा। अब वह हास्य कोठे-कोठे में प्रतिध्वनित होने लगा।

सुखराम को उसकी अपनी ही छाया डराने लगी, जैसे वह दीवार पर नाचने लगी थी। अब पकड़ लेगी, अब पकड़ लेगी, और वह विकराल हास्य गूंजता चला जा रहा था। वह अब जैसे भीड़ का विराट हास्य था। जिसमें पतले स्वर से कभी-कभी हवा चिंघाड़ती थी, और सारा किला उसे लगा एक विराट वीभत्स हास्य बनकर गरज रहा था—हा-हा-हा-हा·····हा-हा-हा-हा·····

सुखराम भागा।

चंदा कन्धे पर थी। और वह घुप्प अन्धेरे में भाग रहा था। कभी वह दीवाल से टकराता, कभी वह पाँव में चोट खा जाता, पर वह सब अब उसे डरा नहीं रहा था। उसे एक अज्ञात का भय था। वह ठकुरानी को कन्धे पर उठाये हुए है।

सुखराम पसीने से तर-बतर हो गया। और किले के इस ओर किसी युद्ध की तैयारी में जैसे धक-धक धक-धक करके नगाड़े अनवरत स्वर से बज रहे थे। आज ठकुरानी जो आई थी। आज अनदेखे हाथों ने, बाजे बजाये थे। और सुखराम चिल्लाने लगा—'छोड़ दे···मुझे छोड़ दे···नहीं···नहीं···मैं चंदा को नहीं दूंगा···वह धरोहर है···अरी ठकुरानी···तू मर···तू मर गई···अब तू फिर क्यों जी उठना चाहती है···

वह भागता जाता था, कहाँ जाये···क्या करे···अन्धकार·····

और वह भयानक अट्टहास करता हुआ किला। चारों ओर नितान्त घोर अन्धकार···

सुखराम फिर चिल्लाया···ठकुरानी तू चली जा···जीतों की दुनिया में न आ···चंदा मेरी है···यह दौलत···यह···खजाना···नहीं चाहिए···

मगर सारी इमारत अपनी भयभीत अन्धेरी को लेकर प्रतिध्वनि में चिल्लाई ···चाहिए···चाहिए·····

सुखराम को लगा वह गिर जायेगा···आज, आज वह···नहीं गिरेगा··· चंदा है···चंदा को वह कैसे छोड़ दे·····

और वह पुरुष सुखराम उस समय भी मूर्च्छित नहीं हुआ। वह भागता रहा·····

लगता था भीतर ही भीतर घूमते-घूमते वह दोनों मर जायेंगे···कहाँ जाये ···कोई रास्ता नहीं·····

चिल्लाता हुआ अन्धेरा, गरजती हुई हवा, पुकारते हुए पत्थर···भूखी-भूखी आत्माओं की प्यासी ललकार···और हँसता हुआ भय दिगन्तों तक टकराता हुआ ···जैसे हाथियों के झुण्ड के झुण्ड बढ़े आ रहे हों·····

एक तुमुल निनाद·····अछोर प्रतिध्वनि·····अन्धकार·····और फिर अन्धकार का कठोर व्यंग्य-भरा वह विकराल दुर्दमनीय हास्य·····

उसने पुकारा—परमेसुरी छोड़ दे···मेरी बच्ची को···छोड़ दे ···मैं चला जाऊँगा ···मुझे छोड़ दे···

पर अंधेरा चिल्लाया··· नहीं, नहीं··· नहीं छोड़ूंगी·····

छोड़ दे·····मुझे छोड़ दे···

सुखराम की चिल्लाहट से इमारत के उस भाग के समस्त जीवित निशाचर जो वहाँ छिपे हुए थे चिल्लाने लगे और उनके स्वर से वह स्थान बार-बार भर गया···

फिर उसे लगा सारा अंधेरा ठठाकर हँस रहा है।

सुखराम भागते-भागते रुक गया,···जिधर देखता है···उधर कुछ दिखाई नहीं देता···अब क्या करे···यह पत्थर तो उसे चबा जायेंगे···पर वह नहीं रहेगा यहाँ·····

वह फिर भागा···

वह भूतों में भूत बनकर नहीं रहेगा···यह सब कितना भयानक है·····

उसकी सांस फूल गई थी···आँखें निकली पड़ती थीं···

भागते-भागते वह एक कोठे में पहुँचा जहाँ कुछ रोशनी थी। वह तनिक भी नहीं रुका। तेज़ी से ज़ीने पर चढ़ गया। आखिर वह तिवारे में आ गया था···पर भय नहीं छोड़ रहा था···

वह बाहर आया। उसे लगा वह नरक में से निकल आया था। उसने मुड़कर भी नहीं देखा। टाट पड़े रह गये। इस समय भी घनघोर वर्षा हो रही थी, परन्तु रुकने का समय नहीं था। सुखराम नीचे उतरा। पानी में पांव घुटनों तक डूब गये।

बावड़ी का पानी चढ़ आया था। ऊपर की सीढ़ियाँ भी डूबने लगी थीं।

सुखराम बड़ी मुश्किल से पत्थरों पर पाँव जमा-जमाकर चढ़ने लगा। ठंड से उसकी आँखें निकल आई थीं। वह कभी-कभी काँप उठता था। आख़िर वह बावड़ी के बाहर निकल आया।

सुखराम चंदा को लिये भाग चला। इस समय उसमें उत्तेजना बढ़ गई थी। लगता था सारा किला पीछे से पकड़ने के लिये भागा आ रहा था। वह ठकुरानी को लिये जा रहा था। वह फिर अपने भूतों में चली जाना चाहती थी!

जब वह झोंपड़े पर पहुँचा तब उसे होश आया।

तो इस दुनिया में वह लौट आया है। वह सारी फूलबाड़ी, सफ़ेद महल, वे सब उसी दुनिया के पहरेदार थे, जो अदृश्य हाथों से पकड़ने की कोशिश करते थे।

चंदा को उतारकर धरा। और उसने दौड़कर इधर-उधर से सारी लकड़ी, जो सूखी, झोंपड़े में जमा थी इकट्ठी की। सारी घास सामने लाकर पटक दी। एक लक्कड़ पड़ा था, वह भी रख दिया। फिर जलाने के लिये राख में दबी आग को निकाल उसने खूब आग सुलगा दी। शीघ्र ही धूंए के बाद लपट लचकने लगी।

उसने चंदा के कपड़े बदले और आप भी तापने बैठ गया। उसने चंदा को आग के पास लिटाया और खूब उसके हाथ-पाँवों को रगड़ा। उसका पेट रगड़ा। माथा रगड़ा। वह तो बिल्कुल ठंडी-सी पड़ गई थी। बार-बार यों किया, तब शरीर गर्म हुआ। तब चंदा को होश आया।

उसने कहा : 'कौन ठाकुर ?'

'नहीं मैं हूँ।' सुखराम ने कहा। वह उस शब्द को भी डर के मारे दुहराना नहीं चाहता था। 'अरी मैं ही हूँ। दादा!'

'दादा।' चंदा ने स्वर पहँचानकर कहा।

'क्या है बेटी ?'

'हम किले में कहाँ हैं ?' उसने पूछा ।

'हम डेरे पर हैं ।'

'तो क्या हम किले में नहीं गये ?' उसने पूछा ।

सुखराम उस सबको भुला देना चाहता था । वह अभी तक काँप रहा था। कहा : 'कैसा क़िला बेटी !'

'अरे अधूरा क़िला ।'

'क्यों ? तू तो सो रही थी न ?'

चंदा सोच में पड़ गई । वह बैठ गई । उसने कहा : 'दादा ! मुझे ऐसा लगता है जैसे मैं और तुम वहाँ गये थे, वहाँ बड़ी दौलत थी । हम पास पहुँच गये थे । पर फिर क्या हुआ मालूम नहीं दादा । चलो एक बार हो आयें न ?'

'नहीं, नहीं', सुखराम ने काँपकर कहा—'पागल हुई है । जाने क्या-क्या सुपना देखती है । अगर तू ठीक से नहीं रहेगी तो मैं तुझे अपने पास नहीं रखूँगा ।'

'तो ! नीलू के पास भेज दोगे !'

'नहीं । मैं चला जाऊँगा कहीं ।'

'मुझे छोड़कर ।'

'अपने आप । जब तू मेरा कहना ही नहीं मानती तो मैं रहकर क्या करूँगा ।'

'मैंने तुम्हारा क्या कहना नहीं माना ?' चंदा ने कहा—'तुमने कहा था नरेश से न मिलना । मैं जाती हूँ ?'

'अच्छी बात है ।' सुखराम ने कहा । 'ऐसा ही करना चाहिये ।'

'पर दादा', उसने कहा—'मुझे लगता है मैं ठकुरानी हूँ ।'

'तू पागल है ।' सुखराम ने डाँटा । पर वह भीतर ही भीतर हिल उठा था ।

ऊँचे झोंपड़े में लपट उठ रही थी । सुखराम ने बीड़ी सुलगाई । और उसे जैसे विचार आया । पूछा : 'तू पियेगी ?'

'नहीं ।' चंदा ने कहा—'बीड़ी तो तू कहता था नटनी पीती है ।'

'तू नहीं है नटनी ?'

'नहीं ।'

'तू मेरी बेटी नहीं है ?'

'हूँ। पर तू भी तो ठाकुर है।' उसने तड़ाक से उत्तर दिया।

सुखराम का हाथ धरती पर गिर गया। बीड़ी गिर गई।

ठंडी हवा के झोंके आते थे।

'सर्दी तो नहीं लगती तुझे ?' सुखराम ने पूछा।

चंदा ने कहा : 'ये मेरे बाल सब भींग कैसे गये ? दादा।'

सुखराम ने कहा : 'बौछार भीतर आ रही होगी। बाल खोलकर सुखा ले।' और उठकर उसने स्वयं उसके बाल खोले, खूब रगड़-रगड़कर पोंछे और आग पर सुखाये, दूर-दूर से ही। चंदा ने कहा : 'दादा ! मैं गई नहीं, फिर बाल क्यों भींग गये।'

'तू चुप नहीं रह सकती।' सुखराम ने डाँटा।

चंदा ने कुछ नहीं कहा। मुँह ढँककर सो गई। उसको सोते देख उसे चैन आया। तो यह भूल गई है। क्या इसका दिमाग खराब हो गया है। फिर सब याद क्यों नहीं रहा। ठीक है यह वहाँ बेहोश जो हो गई थी। पर क्या वह तब होश में नहीं थी। फिर कहती क्यों थी कि वह कहीं गई थी। सब कैसी हलचल का तूफान था।

सुखराम का सिर फटने लगा। यह सब क्या है ?

चंदा पागल हो गई है ? नहीं, नहीं, वह पागल नहीं हो सकती। उसने उसे अपने हाथ से दूध पिला-पिलाकर पाला है। उसने उसे कितने लाड़ से पाला है।

वह बड़बड़ाने लगा : ठकुरानी ! किसने कहा था तुझसे आने को ! तू बदला ले रही है। मुझसे ! अपने ही बंसज से। क्यों ? क्योंकि मैं तेरी हविस पूरी नहीं कर सका। मैं तेरे अधूरे किले पर कब्जा नहीं कर सका।

पर तूने ही क्या किया ! कुलबोरनी ! तूने घर में आग लगा दी। तू अपने ही घर को उजाड़ने आई है !

तू इस फूल-सी बच्ची को मारना चाहती है। इसे भी तूने अपना ही जैसा अंधा कर दिया है। तूने उस दिन भी हीरा-मोती पीसे थे।

उसने चंदा को देखा। शांत। सो रही है। कितनी कोमल कितनी सुन्दर है। बिल्कुल मिसी बाबा-सी। गोरी। वैसी ही आंखें। वह कैसी थी। दबदबे से चलती थी। हुकम चलाती थी। यह मेम की बेटी है, यह ठकुरानी कहाँ से हो गई।

पर फिर विचार लौटा। मेम भी तो अपने को एक दिन ठकुरानी कहती थी।

ठीक ठकुरानी ही है यह ! कितनी प्यास है इसमें। लहू चाटना चाहती है। देवता ! तू बलि चाहता है !

मैं दूंगा तुझे अपना लहू। चंदा को छोड़ दे। आ मुझ पर टूट। पापी, भूखे ! मुझे चबा जा, कच्चा चबा जा !!

उसने बकस से फोटो और तस्वीर निकाली। एक ठकुरानी। एक मेम !

यह ठकुरानी ही मेम बनी थी।

आज वह मेम की बेटी बनकर आई है !

कब तक आया करेगी यह !

देखा।

ठकुरानी हँसने लगी।

हँसती है कुलबोरनी। तू हँस रही है। आज किसलिये हँस उठी है भवानी !

वह देखता रहा।

मेम कह रही है—सुखराम ! मेरी बेटी महलों में पलेगी। यह संजोग नहीं था कि तूने मेरी बच्ची पाल ली है। यह भी पुरबिले जनम की बात है।

वह देखता रहा। तब जैसे चंदा और ठकुरानी दोनों मुस्कराने लगीं। वह सब एक थीं। वह बार-बार आई थीं। वह बार-बार दुख उठाकर चली गई थी। वह कभी सुख से नहीं रहती। कभी धनी होकर गरीब को चाहती है, कभी उसकी इज्जत लुटती है, कभी वह गरीब होकर धनी को चाहती है···

चंदा मेम की बेटी है। वह नट के घर पली है। उस नट के यहाँ जिसकी खाई पत्तल को महतर नहीं उठाते। उस नट के यहाँ जिसे देखकर नीचों से नीच मुँह बिचकाते हैं। उस नट के यहाँ जिसके पास खेत-क्यार नहीं हैं। उस नट के यहाँ जो कल तक पुलिस वालों के हाथ का खिलौना था, जो आज भी सबसे नीच माना जाता है। क्यों ?

चंदा ठकुरानी जो है !

ठकुरानी !!

ठकुरानी !!!

ठकुरानी !!!!

वही ठकुरानी !!!!!

शब्द बढ़ने लगा। कितनी भयानक प्यास है इसकी। आखिर यह बुझेगी कब!

इसने परवाह नहीं की। इसने राज छोड़ दिया, अपने घर को छोड़ दिया, इसने जात की चिंता नहीं की। क्योंकि यह दरबान से आसनाई कर उठी थी। क्या तड़प रही होगी उसमें। धूल का ढेर बन गया सब कुछ। पर जब छोड़ आई थी तो लौटी क्यों? इसकी आत्मा क्यों मँडराती रही वहीं?

जब रात के अंधेरे में हवा चली तो यह झोंकों पर बैठकर खिलखिलाती रही। इसकी आग ने सबको स्वाहा कर दिया। सबको मटियामेट कर दिया। जब तक एक भी दुश्मन रहा, इसने उन्हें नहीं छोड़ा। सबको मार डाला। जन-बच्चा से लेकर बूढे तक को तबाह कर दिया। फिर भी इसकी आग क्यों नहीं बुझी!

अरी चंडी! तू मानुस देह में रहकर अपनी आत्मा की प्यास मिटाना चाहती है?

तीन-तीन पीढ़ी से तेरे बंसज नटनियों के पेट से जनम लेते रहे। तू देखती रही। वे तड़पते रहे। वे अपने किले को देख-देखकर तड़पते रहे और तू देखती रही। वे गरीबी और बेइज्जती की मार सहते रहे! वे ठाकुर नट हुए तो उन्होंने अपनी आँखों से अपनी इज्जत को गोद-गोदकर छुरियों से कटता हुआ देखा और लहूलुहान दिल से आँखों से आग बरसाते रहे और तूने कुछ नहीं कहा।

अब तू आई है। मेरी बच्ची बनकर आई है। अगर तुझे आना था तो पहले ही क्यों न आ गई?

सुखराम आवेश में था। उसने उन तस्वीरों को उठाकर आग में डाल दिया। वे जल उठीं।

'चली जा!' उसने कहा : 'चली जा! अब मत अइयो यहाँ। आज से मैं ठाकुर नहीं हूँ। नट हूँ। मेरी मां नटिनी थी। मेरी प्यारी नटिनी थी। मेरी कजरी नटनी थी! बाबू भैया कहते हैं यह कुत्तों की जिंदगी है। तूने मुझे कुत्ता बनाया और फिर लालच दिखाती है। मैं तेरे भूत को सीने से लगाये-लगाये फिरता था। और तू मेरे ही हरे पेड़ पर बिजली बनकर मँडराने लगी पापिन! दूर हो जा! मेरी आँखों से दूर हो जा!'

तस्वीरें जल गईं। सुखराम का सिर दर्द करने लगा था। वह जितना ही

भूलने की चेष्टा करता, उतनी ही वह याद आती। ठकुरानी का विकराल रूप उसके सामने नाचने लगा

आ ! उसने कहा। मुझे डराती है भवानी ! आ ! मैं नहीं डरता। मैं तेरे किले में नहीं रहता जहाँ तू प्यासी चिल्लाती फिरती है। जा ! मैं कहता हूँ। तुझे कहीं चैन नहीं मिलेगा। तू मेरी बच्ची पर आँख डालती है।

पर उसे लगा चंदा नहीं है। कहीं नहीं है। यह जो सामने है यह तो वही ठकुरानी सो रही है·····

उसने पुकारा : 'चंदा हो !'

चंदा जग गई। पूछा : 'क्या हुआ दादा !'

'बेटी ! बेटी !' सुखराम ने उसे सीने से चिपकाते हुए कहा, 'तू तो मुझे छोड़ नहीं जायेगी ?'

'क्यों छोड़ूँगी दादा।' उसने निर्मल आँखों से देखते हुए पूछा।

सुखराम उससे डरने लगा था, वह डर कम हुआ। उसने कहा : 'सो जा बेटी ! सो जा !' चंदा फिर सो गई।

सारा गाँव उस वक्त सो रहा था। पर कच्चे घरों के लोग अब भी जाग रहे थे। जगह-जगह छप्पर चुचाने लगते थे। वे बिल्कुल भींग गये थे, आर-पार हो गये थे। कभी-कभी नेपथ्य में हाहाकार होता था। ऐसा लगता जैसे आकाश तक वही रोर व्याप्त हो गई थी। वह गर्जन फिर काँपता और फिर हवा पर झूल जाता। वह कोई टूटता घर होता जिसकी आवाज़ यहाँ भी सुनाई देती। फिर वह निनाद एक दूसरे निनाद की कड़ी पकड़ लेता और लगता कि सारा अन्तराल आज चिल्लाने लगा था।

रात बीत रही थी। सुखराम बैठा था। उसे सोने में डर लगता था। कहीं उसकी चंदा को कोई ले गया तो ! वह उसे नहीं संभाल सकेगा। कल ही वह नीलू के साथ उसे भेज देगा। उन दोनों को दूर कहीं भेज देगा। पर ठकुरानी नहीं मानती। वह तो विलायत में जनम लेकर भी यहीं आ गई थी। फिर क्या होगा !

चंदा नींद में पुकार उठती : 'नहीं नहीं···वहाँ दौलत है···नरेश ठाकुर है···मैं ठकुरानी हूँ···वह मेरा है।'

सुखराम उसे पकड़कर बैठ जाता। आग की लपटें कांपने लगतीं। और फिर नाचतीं। उस समय सुखराम को लगता जैसे चिता की लपटों में से रूहें

निकल रही थीं। वह आँख मींच लेता। उसे बार-बार पसीना निकल आता।

बाहर मूसलाधार पानी गिर रहा था। मोटी-मोटी बूंदें गिरती थीं और घोर नाद कर रही थीं ऐसा लगता था जैसे आकाश और पृथ्वी सब जल-मग्न होने वाले थे। प्रलय मच रही थी। और झोंपड़ा ही हिल उठता था। क्या जाने कब गिर पड़े। पर बाहर भी जायें तो कहाँ जायें!

ठंड बढ़ गई थी। अंधेरे की ताल सुनकर जैसे वायु खम ठोंकने लगती थी। और फिर मल्लयुद्ध होता था और लगता था जैसे दूर-दूर तक कोई पगली भयानक स्वर से चीत्कार करती भागी चली जा रही हो। वह कौन थी! प्यासी ठकुरानी। आज दिशाओं में चिल्ला रही थी। सुखराम थर्रा उठता था।

उस वक्त नटों के झोंपड़ों में कई बहने लगे थे। उनके निवासी ऊँचाई पर बने झोंपड़ों में भाग-भागकर शरण ले रहे थे। कोलाहल मच रहा था।

रात यों ही बीत गई।

सुबह हो गई। पानी थम गया। सुखराम बाहर निकला।

मंगू ने कहा : 'सुनता है झोंपड़े उड़ गये! अरे तू क्या रात सोया नहीं?'

'सोया तो था।' सुखराम ने कहा।

'चल तो जरा देखें। लोगों का तो कोई सहारा ही नहीं रहा।'

वे चले गये और काम में लग गये।

चंदा जगी तो अकेली थी। दादा नहीं था।

तभी छाता लगाये एक आदमी ने पूछा : 'सुखराम करनट यहीं रहता है?'

चंदा बाहर आई। डाकिया था। कहा : 'हाँ।'

चिट्ठी ली। दादा नहीं था तो वह सीधी मेरे पास आई। मैंने बिठाया। पत्र खोला। पढ़कर हिल उठा।

'क्या है बाबू जी।' उसने पूछा।

मैंने पढ़कर देखा। मैं अपने को रोक नहीं सका। वह कितना करुण पत्र था! पता लंदन का था।

'पढ़ो बाबू जी।' चंदा ने कहा।

मैंने उसे अनुवाद करके सुनाया :

'सुखराम!

आज चौदह बरस बाद मैं तुम्हें चिट्ठी लिख रहा हूँ। तब मैं डाक बँगले में था और तुम मेरे यहाँ काम करते थे। तुमने ही मेरी बेटी की जान बचाई थी। वह सूसन, जिसकी तुम इतनी ख़िदमत करते थे, वह पारसाल इस दुनिया को छोड़ गई। मैं बहुत बूढ़ा हो गया हूँ। बीमार हूँ। कब मर जाऊँगा यह कोई नहीं जानता। हिंदुस्तान में रहकर मैंने जो पैसा कमाया था, वह सब मेरे ही काम नहीं आया। आज हिन्दुस्तान आज़ाद है। मैं नहीं जानता तुम कहाँ होगे। अगर यह चिट्ठी तुम्हें मिले तो मुझे तुरन्त लिखना। मैं यहाँ बिस्तर पर पड़े-पड़े तुम्हारे ख़त का इंतज़ार करूँगा।

तुम पूछ सकते हो कि मैंने इतने दिन बाद तुम्हें यह ख़त लिखा है। अब तक क्यों नहीं लिखा? मैं तुम्हें इसका जवाब जरूर दूंगा। बात यह है कि मैं जब पैदा हुआ था तब हम दुनिया में हुकूमत करते थे। मैंने हमेशा हुकूमत की थी। मैं हिन्दुस्तानियों को सचमुच जाहिल और बेवकूफ़ समझता था। पर जब मैंने तुमको और कजरी को देखा तो मेरे सारे विश्वास हिल गये। मैंने देखा गरीबी, ग़ुलामी, इनमें ही आदमी आदमी रहता है। हुकूमत और दौलत उसकी असलियत उससे छीन लेती है और वह असलियत है इंसानियत, जो पहाड़ों और समुन्दरों के पार आती-जाती है, जो इंगलैंड में भी है, और तुम्हारे गाँव में भी है, जहाँ लंदन की-सी मशीनें नहीं है, भीड़ें नहीं हैं।

आज मैं लॉरेंस के बारे में कुछ नहीं कहूँगा क्योंकि वह बराबर मेरी बेटी से मिलता रहा। वह बराबर उससे माफ़ी मांगता रहा और फिर इस लड़ाई में वह मारा गया। वह चला गया। और अब उसके बारे में कुछ भी कहना शराफ़त नहीं कहला सकेगी।

और जानते हो सूसन का क्या हुआ? कजरी मर गई। उसने अपनी थाती तुम्हें सौंप दी। फिर उसने इंगलैंड आकर भी विवाह नहीं किया। वह सदा कहा करती थी। वह नहीं करेगी, वह नहीं करेगी। वह कहती थी मुझसे कि डैडी! दुनिया में अच्छे आदमी सब जगह हैं। कजरी की याद है? उसके पेट में लात लगी थी, उसके बच्चा था, तब उसने कहा था बच्चा फिर हो जायेगा। सूसन कहती थी कि उसकी बच्ची उसके पास नहीं रह सकी।

आज यह ख़त अगर तुम्हें नहीं मिलता, और किसी और को मिल जाता ? तो भी मैं डर नहीं रहा हूँ। मुझे अब रहना ही कितना है। मैं साफ़ देख रहा हूँ कि इज्जत और कानून के जो दायरे हमारे चारों तरफ़ थे, वह अपनी

असलियत छिपाने के लिये थे ताकि दूसरे लोग हमसे डर सकें। सूसन कहती थी कि एक बार उससे अनपढ़ कजरी ने एक बात कही थी जो उसे याद रह गई थी कि धरती मुल्कों में क्यों बँटी हुई है मिसी बाबा। जहाँ मनुष्य खड़ा होता है, वही तो उसकी धरती है। सच! वह कितनी सच बात थी। यह सारी धरती इंसान की है। इसे बाँटना ही पाप है।

ससन सदा बच्ची की याद करती थी। पता नहीं वह बच्ची अब भी ज़िन्दा है या नहीं? उसे मरते दम तक उसकी याद ने नहीं छोड़ा। वह यहाँ नर्स हो गई थी। उसके लिये अच्छे-अच्छे आदमी घूमते रहे। पर उसने कह दिया कि वह अब शादी नहीं करेगी। सचमुच वह कुमारी ही थी। मैं उसे पापिन नहीं समझता। वह बेकुसूर थी और जिसने गलती की थी, वह जीवन भर अपनी इस गलती के लिये पश्चात्ताप करता रहा।

मैं अब मर जाऊँगा। मुझे बचने की कोई उम्मीद नहीं है। मैंने दुनिया में हुकूमत, शान, अदब, कायदे, और रुआब के नाम पर सैकड़ों आदमियों को कुचला था। पर आज जब सबसे दूर होकर मैं सोचता हूँ तो मुझे लगता है, वह सब मैं नहीं कर रहा था। वह तो ऐसा था जैसे कोई बहुत बड़ी मशीन थी, जिसमें मैं सिर्फ एक पुर्ज़ा था।

मौत भी कितनी बड़ी असलियत है। वह मुझसे कहती है कि मैं कुछ छिपाऊँ नहीं। मौत के पास आने पर इन्सान सिर्फ इन्सान रह जाता है। वह सारी घृणा, द्वेष, अहंकार और अन्धकार को छोड़ना चाहता है।

सूसन की बच्ची तुमने पाली है। मैं जानता हूँ, वह तुम्हें बड़ी प्यारी होगी। उसका नाम तुमने चंदा रखा था न? सूसन ने बताया था। सूसन नहीं रही। अगर तुम ठीक समझो तो उस बच्ची को बता देना कि वह सूसन की बच्ची है। अब वह हिन्दुस्तानी है, वह अंगरेज़ी नहीं जानती होगी। वह तुम्हारे पास गरीब भी होगी। पर अच्छा है। मैं उसे बुलाना नहीं चाहता क्योंकि मैं अब दो दिन का मेहमान हूँ। मेरे कोई सन्तान नहीं है, इसलिये अगर तुम उसे बता दोगे कि वह मेरी लड़की की बेटी है तो हिन्दुस्तान की वह लड़की महसूस करेगी कि हम दोनों के मुल्कों में एक ही-से आदमी हैं। हिन्दुस्तान आज़ाद है, मुझे इसका घमण्ड है, क्योंकि मैं देख रहा हूँ कि अगर वह गुलाम होता तो मेरी नवासी भी आज गुलाम होती। स्वतन्त्रता जीवन की शक्ति है, पर वही जो दूसरों को कुचलती नहीं।

मेरी तरफ़ से चंदा को प्यार करना । हम ईसाई दूसरा जन्म नहीं मानते, पर तुम हिन्दू हो । तुम ज़रूर मानते हो । मैं ठीक नहीं जानता कि फिर से जनम होता है या नहीं, पर अगर यह सच है कि होता है, तो मैं यही चाहता हूँ कि एक बार हम तुम फिर मिलें, कभी—किसी भी रूप में । चंदा से मेरी तरफ़ से माफ़ी मांगना, क्योंकि वह बेकुसूर बच्ची झूंठी लोक-लाज के कारण छोड़ दी गई । पर उसकी मां तो मां थी, मां क्या लोक-लाज मानती है । वह सबसे ऊपर होती है । अगर समाज ने उसे वैसे नहीं रहने दिया तो नहीं सही, पर उसने अपनी जिन्दगी को इसीलिये तिल-तिल करके गला दिया । जवाब देना । अगर पत्र न मिले तो भगवान मालिक है । अलविदा—

तुम्हारा—सॉयर'

मैंने देखा, चंदा के नेत्र विस्मय और आनन्द से फट गये थे । वह ठठाकर हँसी । उसके हास्य में गर्व था ।

उसने कहा : 'बाबू भैया !'

'क्या है ?' मैंने पूछा ।

'जानते हो मैं कौन हूँ ।' उसने कहा—'नरेश मेरा है । नरेश मेरा है । मैं अंगरेज़ हूँ, मैं नटनी नहीं हूँ·····

मैं कह नहीं सका । पर वह चिल्ला उठी : 'उन सबने उसे मुझसे छीन लिया है, क्योंकि मैं नटनी हूँ । नहीं·····' और वह फिर हँस उठी । वह संभाल नहीं सकी थी ।

मैंने कहा : 'चंदा !'

'तुम मुझे बहकाते हो !' चंदा ने कहा—'मैं जानती हूँ, सब जानती हूँ···मैं नहीं मानूंगी···नहीं मानूंगी·····'

और वह भाग गई । मैं देखता रह गया । वह कहाँ जायेगी । क्या करेगी । सुखराम सुनेगा तो क्या कहेगा ! क्या वह मुझसे नहीं कहेगा कि मैंने उसे यह सब बताकर गलती की है···पर मैं सोच नहीं सका ।

सांझ हो गई थी । अंधेरा घना हो गया था क्योंकि घटा तो अभी तक सन्नाती हवा के कंधों पर जमी बैठी थी । चारों ओर वही घनघोर नीरवता छा रही थी ।

तभी कुछ शोर-सा मच उठा। मैंने देखा, और मैं समझ नहीं सका।

आगे-आगे सुखराम था। चंदा उसकी बाहों में थी। और धीरे-धीरे वह बढ़ा आ रहा था। क्या हुआ चंदा को! किसीने फिर इसे मारा है! अबके कौन था वह ऐसा। कोलाहल सुनकर भैया, भाभी, नरेश, और सब लोग वहीं एकत्र हो गये थे।

पीछे पुलिस थी। और पुलिस के बीच में वह सुखराम पूर्ण शांत था। वह कैसी भयानक तन्मयता थी जो उसकी पलकों में आकर आज समा गई थी। गहरी और घोर! जैसे समुद्र की नीची-नीची उतार वाली गहराई, जिसमें इतनी शक्ति होती है कि अपने भीतर सब कुछ समा ले जाये। पीछे इस समय धीमे-धीमे स्वर से बातें करती हुई नट-नटनियों की भीड़ थी।

'यह क्या है सुखराम?' मैंने चौंककर पूछा। और पूर्ण शांति के साथ सुखराम हँसा। उसका वह हास्य सुनकर मैंने चंदा की ओर देखा। देखकर मुझे लगा आकाश गिर पड़ेगा। सुखराम चंदा की लाश उठाकर लाया था।

मेरे दोस्त घबरा गये थे। उन्होंने बोलने की कोशिश की। परन्तु जैसे लाज ने उन्हें घेर लिया था। वे प्रयत्न करके भी बोल नहीं सके।

'किसने मारा है इसे?' नरेश ने पूछा।

'मैंने, छोटे सरकार!' सुखराम ने दृढ़ स्वर से कहा, 'मैंने! और किसमें इतनी हिम्मत थी!'

भाभी चकराई हुई थीं।

सुखराम ने पागल की तरह कहा—'जानते हो यह कौन है?'

नरेश ने उसे शून्य दृष्टि से देखा। जैसे वह समझ नहीं पाया था। मैंने देखा वह केवल देख रहा था।

'तुमने मारा है इसे?' मैंने चिल्लाकर पूछा।

'हाँ बाबू भैया। मैंने!' सुखराम ने कहा।

'क्यों?'

'पूछते हो क्यों? छोटे सरकार! तुम रोना नहीं, कहीं छाती न फट जाये तुम्हारी। पर यह चंदा तो नहीं है, यह तो अभागिन है। अरे यह ठकुरानी है। मैंने इसे अधूरे किले में पाया था। छोटे सरकार! वहाँ यह भीतर तहखानों में खेल रही थी।'

मेरे रोंगटे खड़े हो गये।

सुखराम ने कहा : 'हँसती थी, कहती थी मैं ठकुरानी हूँ, मैं अंगरेज हूँ, बाबू भैया·····

वह ठठाकर हँसा। और कहा : 'मैं हार गया। कहीं नहीं मिली। इसने सुपना देखा था। इसके कहने से मैं इसे किले में ले गया था, पर वहाँ से मैं डर-कर भाग आया, वह फिर चली गई। अरे मैं तो उसी ठकुरानी के बंस में हूँ, पर यह तो खुद ठकुरानी है···तीन-तीन जनम से भटक रही थी·····

मैं थर्रा उठा। सुखराम कहने लगा—'इसके साथ दुनिया ने सदा ही जुलम किया। पहली बार यह कतल की गई, दूसरी बार इसकी छाती का दूध टपकता रहा पर अपनी बच्चों को न पिला सकी, और यह तीसरी बार थी। पर रोओ नहीं, आज उबार ली भगवान ने। अब यह नहीं आयेगी। नहीं आयेगी !'

मेरी अधूरी बात ने कितना बड़ा अनर्थ ढा दिया था। मैं अवाक् देखता रहा। सुखराम ने हँसकर कहा : 'बाबू भैया ! जानते हो कहाँ खड़ी थी ! किले के भयानक तहखाने में। और चारों तरफ़ हड्डी के ढेर जमा थे। सामने एक बड़ा उल्लू बैठा था और यह कह रही थी : बोल ! मुझे बता ! खजाना कहाँ है। जानता है मैं कौन हूँ ! मैं ठकुरानी हूँ। मैंने ही तुझे पहरे पर बिठाया था। उल्लू हँसा तो यह भी हँसी। इसने कहा : चौकीदार ! नरेश मेरा है। वे मुझे उसके पास नहीं जाने देते। वे नहीं जानते कि मैं मेम की बेटी हूँ। वे नहीं जानते कि मैं ठकुरानी हूँ। मुझे मेरा धन लौटा दे। वह मेरा हो जायेगा, मेरा हो जायेगा···मैंने सुना। मैं नहीं जानता कि मुझे होश था या नहीं, पर मैंने कहा था : ठकुरानी तू प्यासी है। तू तड़प रही है, आ मैं तेरी भटकती आतमा को आज़ाद कर दूँ, और मैं कुछ नहीं जानता···छोटे सरकार ! तुम्हारी चंदा बड़ी भोली है। लो इसे ले लो। यह कहीं नहीं जायेगी···वह जो चली गई है वह चंदा नहीं थी·····ठकुरानी थी·····ठकुरानी थी·····मैंने उसे आज़ाद कर दिया·····

सुखराम फिर चिल्लाया और उसने जैसे आकाश के कठोर महाशून्य से कहा : अब तो तेरी प्यास बुझ गई भवानी ! तूने तीन-तीन पीढ़ियों को आग पर तपाया और कमबखत आखिर फिर वहीं पहुँची। वह भयानक अंधेरा, ठठरियाँ हँसने लगी थीं, दीवारें चिल्ला रही थीं···ठकुरानी·····ठकुरानी··· और तू पुकार रही थी···नरेश मेरा है···मैं ठकुरानी हूँ·····उसे मुझसे कोई नहीं छीन सकता···और तू चली गई···सचमुच आजाद हो गई : ···

और वह भयानकता से हँसा। उसका वह कठोर हास्य सुनकर सब काँप उठे।

'नरेश ! नरेश !' भाभी चिल्लाई। नरेश उस समय चंदा के मुख को देख रहा था। उसने आवाज सुनकर कहा : 'ठीक कहते हो दादा ! इन्होंने नहीं माना। पर यह ठकुरानी ही थी। मैं जानता था यह ठकुरानी ही थी···यह मेरी ही थी·····

पर मैं थक गया था। आज मैं बहुत थक गया था।

पुलिस सुखराम को ले गई। भैया बैठ गये। वे फिर गाँधी के चित्र के आगे जाकर बैठ गये थे। और कभी एकटक उसे देखते, और कभी बाहर पानी के परे किला देखते, कभी वे उठ बैठते, कभी घूमने लगते। उस समय वे क्या सोच रहे थे, यह मैं नहीं जान सका था।

नरेश किसी गहन चिन्ता में मग्न था। वह एकाएक चमत्कृत हो उठा।

बादल गरज रहे थे। नरेश मेरी सूरत देखता रहा। फिर उसने कहा : 'काका ! जानते हो। तुमने भीतर से देखा है यह किला ? मुझे वहीं भेज दो। मेरी चंदा वहीं रहती है।'

नरेश पास आ गया। भाभी को काटो तो लहू नहीं।

मैंने कहा : 'बेटा !'

नरेश हँसा। कहा : 'नहीं मुझे हमदर्दी की जरूरत नहीं है। मेरी ठकुरानी चली गई है। ठाकुर को तो लहू की प्यास होती है न काका !'

मैंने आँखें फाड़कर देखा। नरेश ने कहा : 'मेरी ठकुरानी को ला दो काका !! पुलिस क्यों ले गई है उसे !!'

मैं पुलिस से चंदा को ले आया। बड़ा कठिन काम था। सुखराम ने उसका गला घोंटा था। शायद वह चिल्ला रही थी और उसने आवाज़ बन्द करनी चाही थी। परन्तु भैया प्रभावशाली आदमी थे। आखिर शव मिल गया। घर लाकर अर्थी सजाई। नरेश ने ही सब काम किया। कहता रहा : 'अच्छा ! देखो ! काका ! डरी हुई तो नहीं है न ?'

उसका दाह किया तो नरेश ने कहा : 'ठकुरानी ! मेरे जीते जी, तेरा जौहर हो गया। सच ही, मैं तुझे बचा नहीं सका।' और नरेश बड़बड़ाया, 'अभागिन ! तू जब तक ठकुरानी बन सकी, तब तक मैं ठाकुर नहीं रहा था। मैं तो आदमी हो गया था। मैं तो तेरे पास आ रहा था, मुझे किसीका भी डर नहीं था।

पर तू भी तो आखिर ठकुरानी ही थी···रुक नहीं सकी न ? अरे हुकूमत होती ही ऐसी भयानक है ।'

मैंने जैसे अपनी बेटी का दाह किया था। फिर नरेश का यह प्रलाप सुनकर मेरे रोम-रोम में एक व्यथा व्याप गई। कितना उन्माद था उसमें। जैसे फूटा पड़ रहा हो।

भींगीं लकड़ियों से धूंआ दे-देकर लपटें निकलती थीं और नरेश देख रहा था।

हम घर आ गये। जब नहा-धो चुके तो भाभी ने खाने को लाकर दिया। मैं नहीं खा सका।

नरेश ने कहा : 'काका खाते क्यों नहीं ?'

वह खाने लग गया था।

मैंने आश्चर्य से देखा।

'माँ बहुत अच्छी है,' नरेश ने कहा : 'यह न होती तो चंदा इतनी जल्दी ठकुरानी कैसे बनती ! इसलिये माँ की असीस लो। खूब खाओ। वह तो चली गई; वह दुखी नहीं है।'

भाभी रो रही थीं। एकमात्र पुत्र क्या कह रहा था। शायद वे खुश होतीं अगर उस वक्त नरेश रोता होता, या उनसे लड़ पड़ता। नरेश ने कहा : 'माँ ! ज़रा और दे न हलुआ ! अच्छा बना है। अब की बार मैं चंदा के साथ आऊँगा तब फिर ऐसा ही बनायेगी न ?'

दूसरे दिन मैं सुखराम से मिलने गया। दरोगा मुझे खुद ले गया। सींखचों के पीछे वह चुपचाप बैठा था। उसके बाल बिखर गये थे। और चेहरा उतर गया था। निढाल हो रहा था।

मैं उसे पहचान नहीं सका।

मैंने कहा : 'सुखराम।'

उसने मुड़कर देखा।

मैंने फिर पुकारा।

वह पागल-सा देख रहा था। फिर अचानक ही उसने कहा जैसे शून्य से कह रहा हो : 'छोटे सरकार, मैंने चंदा को नहीं मारा, वह तो मेरे जिगर का

टुकड़ा थी, मैंने तो ठकुरानी की भटकती आतमा को आज़ाद कर दिया है··· ।'

मैं खड़ा नहीं रह सका ।

घर आकर देखा । नरेश बैठा था । भाभी कह रही थी : 'बेटा ! काका आ गये । तू पूछ रहा था उन्हें !'

वे रो रही थीं । रो-रोकर उनकी आँखें सूज गई थीं । ढोलिन रो रही थी । भैया चुप थे । सब लोग खामोश थे । मुझे देखकर नरेश ने हँसकर कहा : 'आ गये काका ! मैं तुम्हारी ही बाट जोह रहा था । मैं जानता था, तुम अच्छी-अच्छी किताबें लिखते हो, मिल आये ?'

'हाँ' मैंने कहा ।

'उसने क्या कहा ?' नरेश ने पूछा ।

'कुछ नहीं ।' मैंने बात दाबने के लिये कहा ।

और नरेश सूना-सा खड़ा हो गया । फिर चौंककर एकदम उसने कहा : 'कुछ नहीं बोली ?'

'कौन ?'

'वही ठकुरानी ।'

'नरेश !' भाभी के कलेजे को मैंने तड़कते हुए सुना ।

'बेटा !' उस समय भैया विचलित हो गये । वे रोते हुए बोले : 'मुझे माफ़ कर दे, मुझे माफ़ कर दे, मैंने गाँधी की लाश में ठोकर मार दी है, मुझे क्षमा कर·····

परन्तु नरेश ने कहा : 'दद्दू ! मुझसे भूल हो गई । तभी वह नहीं बोली । मैं समझ गया हूँ । तुम्हें घबराने की कोई ज़रूरत नहीं है । सब ठीक हो जायेगा ।' उसने रुककर कहा : 'काका !'

मैंने आँखें उठाईं और दो बूंद नीचे ढुलककर गिर पड़े ।

'मेरी ठकुरानी पर दुनिया आज मोती बरसा रही है', नरेश ने कहा । और फिर बढ़कर कहा : 'अच्छा जानते हो ? वह क्यों रूठ गई ? आज तुमसे क्यों नहीं बोली ?'

भाभी ने सिर पीट लिया । नरेश ने हँसकर कहा : 'मैं भी तो भूल गया था काका, तुमने भी याद नहीं दिलाया ।'

'नरेश !!' मैंने चिल्लाकर कहा ।

'जानता हूँ ।' नरेश ने कहा : 'तुम्हें अब याद आया है ।'

और जैसे कोई बात याद आ गई वह बड़ी मस्ती से हँसा, फिर कहा : 'सुहागिन चली गई वह ! मैंने उसको सेज पर सुलाते वक्त उसकी मांग में मोतियों की लड़ नहीं सजाई, उसके हाथ और पाँवों में महावर नहीं रचाई। उसके चंदन और इतर भी नहीं लगाया। इतनी बड़ी ठकुरानी ! नाराज भी नहीं होगी·····

भैया उठे थे सो वैसे ही बैठ गये। भाभी ने मुँह खोला था, सो खुला ही रह गया। मेरे हाथ उठे पर उठे ही रह गये।

बाहर आकाश में वज्र ठनका और उसकी प्रचण्ड प्रतिध्वनि से धरती का कण-कण सिहों की तरह दहाड़ने लगा, कण-कण हुंकार कर ठनकने लगा···

उस समय मेरी आँखों ने देखा सुदूर विलायत में एक वृद्ध मृत्यु-शैय्या पर पड़ा अन्तिम बार कह रहा होगा : 'आई मेरी चंदा आई·····

निर्द्वन्द्व ! कितनी मानवीयता !

कहाँ है वह मानवीयता की गौरव-गाथा। मैं क्या करूँ !

मैं पुकार-पुकारकर कहना चाहता हूँ कि सुनो !! सुनो ! दिगंतों में यह अधिकार की तृष्णा चिल्ला रही है। पर मैं भी चुप नहीं हूँ। यह कमीने, नीच ही आज इन्सान हैं, इनके अतिरिक्त सबमें पाप घुस गया है क्योंकि उन सबके स्वार्थ और अहंकारों ने उनकी आत्मा को दास बना लिया है। यह कमीने और गरीब अशिक्षा और अज्ञान में छटपटा रहे हैं। जब तक ये शिक्षित नहीं होते, तब तक इन पर अत्याचार होता ही रहेगा। और जब तक ये शिक्षित नहीं होते, तब तक इनके अज्ञान, फूट और घृणा पर संसार में जघन्यता का केन्द्र बना रहेगा। तब तक इनके पुत्र धरती की मिट्टी में पैदा होते रहेंगे और कुत्तों की मौत मरते रहेंगे। परन्तु ये ही एक संबल हैं। शताब्दियों से जो मनुष्य का ज्ञान है, वही मुझसे कह रहा है कि इनके पास दुख सहने की ताकत है। ऐसी अटूट ताकत है कि यह दुख को दुख नहीं समझते। परन्तु जिस दिन ये जान जायेंगे कि मनुष्यत्व क्या है उस दिन नया मनुष्य उठ खड़ा होगा !

शोषण की घुटन सदा नहीं रहेगी। वह मिट जायेगी, सदा के लिये मिट जायेगी ! सत्य सूर्य्य है। वह मेघों से सदैव के लिये घिरा नहीं रहेगा। मानवता पर से यह बरसात एक दिन अवश्य दूर होगी और तब नयी शरद् में नये फूल खिलेंगे, नया आनन्द व्याप्त हो जायेगा।

उसी समय नरेश चिल्लाया : 'चंदा !! तू मुझे छोड़कर चली गई है। नहीं

मैं कायर नहीं हूँ। मैंने तेरा अपमान किया था। मुझे क्षमा कर। आज मैं तेरे सामने हाथ खोलकर भीख माँग रहा हूँ।' वह हँसा—'अरे। तू तो मेम थी, ठकुरानी बन गई आज ! तू वहीं तो जाना चाहती थी !! चली गई !!! पर मुझे तो तू यहीं छोड़ गई !!! क्या मैं नहीं आ सकता वहाँ ??'

और उसने पुकारा : 'मुझे बुला ले ! तेरे बिना मैं जी नहीं सकूंगा ! यह दुनिया बहुत भयावनी है। तू इसे घृणा से छोड़ गई बावरी।' वह फिर हँसा और चिल्ला उठा : 'ठकुरानी बनकर तू रूठ गई है। चंदा ! मैं आ रहा हूँ··· मैं आ रहा हूँ·····'

और बेहोश होकर गिर गया। मैंने आँखों के आँसू धरती पर गिर जाने के बाद देखा अधूरा किला अब भी खड़ा था।

● ● ●

*